संस्कृत विश्वविद्यालय ग्रन्थमाला का 132 वाँ पुष्प

# शिशुपालवध : एक परिशीलन

प्रधान सम्पादक
प्रो. मुरली मनोहर पाठक
कुलपति

सम्पादक
प्रो. शुकदेव भोई

सह सम्पादक
डॉ. जीवन कुमार भट्टराई

शोध–प्रकाशन विभाग
श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय
नई दिल्ली–16

संस्कृतविश्वविद्यालय-ग्रन्थमाला का 132 पुष्प

# शिशुपालवध : एक परिशीलन

प्रधान-सम्पादक

**प्रो. मुरलीमनोहर पाठक**

कुलपति

सम्पादक

**प्रो. शुकदेव भोई**

सह सम्पादक

**डॉ. जीवन कुमार भट्टराई**

**श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय**

**नई दिल्ली-110016**

प्रकाशक :

**श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय**

बी-4, कुतुब सांस्थानिक क्षेत्र, नवदेहली-110016

© प्रकाशकाधीन

प्रकाशनवर्ष : 2024

ISBN : 978-81-972035-7-2

मूल्य : ₹ 1050.00

मुद्रक

**डी.वी. प्रिन्टर्स**

97-यू.बी., जवाहर नगर, देहली-110007

# प्ररोचना

संस्कृत महाकाव्य परम्परा में बृहत्त्रयी–शिशुपालवधम्, किरातार्जुनीयम् और नैषधीयचरितम् का विशिष्ट स्थान है। काव्यसौष्ठव, वर्णनशैली, विषय–वस्तु, शिल्पकला, पात्र आदि की दृष्टि से तीनों ही महाकाव्यों का अपना–अपना वैशिष्ट्य है। महाकवि माघ की कालजयी रचना शिशुपालवध का वचन **क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयतायाः** सर्वथा मनोहारी है। उक्त महाकाव्य का सूक्ष्म दृष्टि से अध्ययन करने पर यह ज्ञात होता है कि माघ ने तात्कालिक विकसित साहित्यिक प्रवृत्तियों का समावेश अपने काव्य में भूरिशः किया है। महाकाव्य के समस्त उत्कृष्ट गुणों के परिपूर्ण होने के कारण यह एक श्रेष्ठ महाकाव्य के रूप में आदृत हुआ है। महाकाव्य में कविकुलगुरु महाकवि कालिदास का काव्यसौन्दर्य एवम् अभिव्यञ्जना, महाकवि भारवि का अर्थगौरव, दण्डी का पदलालित्य, भट्टी का शब्दशास्त्रानुराग विद्यमान है। इसीलिये कहा गया है–

**उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थगौरवम्।**
**दण्डिनः पदलालित्यं माघे सन्ति त्रयो गुणाः॥**

काव्यरचनाधर्मी महाकवि माघ का जितना गुणगान किया जाय उतना कम होगा। इस ग्रन्थ का जितना आलोडन किया जायेगा, उतना नवनीत प्राप्त होता रहेगा। इसी परिप्रेक्ष्य में श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ के साहित्य विभाग द्वारा शिशुपालवध महाकाव्य पर राष्ट्रीय संगोष्ठी आयोजित की गई थी। संगोष्ठी में विद्वानों एवं शोधच्छात्रों द्वारा प्रस्तुत उत्कृष्ट शोध–पत्रों का संकलन रूप **शिशुपालवध : एक परिशीलन** ग्रन्थ प्रकाशित किया जा रहा है। इसके सुधी सम्पादक

प्रो. शुकदेव भोई, आचार्य साहित्य विभाग एवं सह सम्पादक डॉ. जीवनकुमार भट्टराई को सम्यक् सम्पादन के लिये शतशः बधाई देता हूँ। साहित्य समाज का दर्पण है। साहित्य की श्रीवृद्धि से संस्था के उत्कर्ष को जाना जाता है। उत्तम कोटि अनुसंधानात्मक ग्रन्थ के प्रकाशन हेतु शोध-प्रकाशन विभाग के अधिकारियों एवं कर्मचारियों को साधुवाद देता हूँ। आशा करता हूँ कि यह ग्रन्थरत्न समाज में प्रतिष्ठित होगा।

**-मुरलीमनोहर पाठक**

# सम्पादकीय

संस्कृत साहित्य में पञ्चमहाकाव्य के अन्तर्गत बृहत्त्रयी पद से महाकवि भारवि, माघ, श्रीहर्ष के द्वारा विरचित यथाक्रम किरातार्जुनीयम्, शिशुपालवधम् एवं नैषधीयचरितम् ये तीन महाकाव्य प्रतिष्ठित हैं। बृहत्त्रयी में महाकवि माघ प्रणीत शिशुपालवध मध्यमणि के रूप में विद्यमान है। माघ की एकमात्र कृति है यह महाकाव्य, इसीलिए माघ अथवा माघकाव्य इसके पर्याय रूप में प्रचलित हैं। पाण्डित्य के क्षेत्र में माघ का अपना विशिष्ट स्थान है। इसी के प्ररिप्रेक्ष्य में किसी विद्वान् समीक्षक ने कहा है- **नवसर्गगते माघे नवशब्दो न विद्यते।** यह महाकाव्य न केवल रसिकों के हृदय को आह्लादित करने वाला है, अपितु लोकमर्मज्ञों के विचारों के हृदय को भी समृद्ध करने वाला तथा उनका पथ-प्रदर्शन करने वाला है। **काव्येषु माघः, मेघे माघे गतं वयः** प्रभृति सहृदयोक्तियाँ इस काव्य की श्रेष्ठता का उद्‌घोष कर रही हैं।

श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय, नई दिल्ली के साहित्य विभाग द्वारा 'शिशुपालधव महाकाव्य' पर आयोजित राष्ट्रीय संगोष्ठी में प्रतिभाग के रूप में देश के भिन्न-भिन्न संस्थाओं और विश्वविद्यालयों से आये विशेषज्ञ विद्वानों एवं शोधच्छात्रों के द्वारा प्रस्तुत उत्कृष्ट शोधपत्रों का संकलन **शिशुपालवध : एक परिशीलन** नामक ग्रन्थ के रूप में विश्वविद्यालय के शोध-प्रकाशन विभाग द्वारा प्रकाशित किया जा रहा है, जिसमें कुल 42 विद्वानों के शोध निबन्ध समाविष्ट हैं। विश्वविद्यालय के यशस्वी कुलपति प्रो. मुरलीमनोहर पाठक जी का हृदय से धन्यवाद करता हूँ, जिनके कुशल नेतृत्व में विश्वविद्यालय प्रगति पथ पर अग्रसर है। प्रो. पाठक जी ने प्ररोचना प्रदान कर हमें अनुगृहीत किया है। इस ग्रन्थ के सम्यक् प्रकाशन के लिए विश्वविद्यालय के शोधविभागाध्यक्ष प्रो. शिवशङ्कर मिश्र प्रकाशन अनुभाग के अनुसन्धान

सहायक डॉ. ज्ञानधर पाठक एवं सह–सम्पादक डॉ. जीवनकुमार भट्टराई का हार्दिक धन्यवाद करता हूँ साथ ही डी.वी. प्रिन्टर्स के अधिकारी श्री इन्द्रराज खत्री जी को सम्यक् टंकण एवं मुद्रण हेतु साधुवाद देता हूँ। आशा करता हूँ 42 विद्वानों के निबन्ध संग्रह रूप ग्रन्थ अपनी आभा से संस्कृत साहित्य की श्रीवृद्धि को प्राप्त कर समाज में अपना स्थान प्राप्त करेगा। सम्पादन में यदि कहीं स्खलन हो तो उसके लिए क्षमा प्रार्थी हूँ।

**–प्रो. शुकदेव भोई**

# विषयानुक्रमणिका


| | | |
|---|---|---|
| | **प्ररोचना - प्रो. मुरलीमनोहर पाठक** | *iii* |
| | **सम्पादकीय - प्रो. शुकदेव भोई** | *v* |
| 1. | **शिशुपालवध में भक्तितत्त्व**<br>–प्रो. जयप्रकाश नारायण | 1 |
| 2. | **शिशुपालवध में नारियों की दशा**<br>–डॉ. अनुला मौर्य | 19 |
| 3. | **कविसमय की अवधारणा एवं शिशुपालवध महाकाव्य**<br>–डॉ. अजय कुमार झा | 29 |
| 4. | **महाकवि माघ का वैदुष्य**<br>–डॉ. कुन्दन कुमार | 43 |
| 5. | **काव्य गुणों की दृष्टि से शिशुपालवध की समीक्षा**<br>–डॉ. उमाकान्त राय | 66 |
| 6. | **शिशुपालवध में अवतारवाद**<br>–डॉ. मैत्रेयी कुमारी | 74 |
| 7. | **शिशुपालवध महाकाव्य में स्वास्थ्य विषयक चिन्तन (आयुर्वेदीय परिप्रेक्ष्य में)**<br>–डॉ. गोपाल लाल मीना | 81 |
| 8. | **शिशुपालवध-महाकाव्य में शिक्षा-तत्त्व**<br>–डॉ. मीना कुमारी | 88 |
| 9. | **शिशुपालवध में रस-विवेचन**<br>–डॉ. राजकुमार पिलवाल | 97 |

10. **शिशुपालवधमहाकाव्य में ज्योतिषशास्त्रीय अवधारणा** 110
–डॉ. नीरज कुमार

11. **शिशुपालवध में ज्योतिष तत्त्व** 123
–डॉ. नवीन राजपूत

12. **शिशुपालवध महाकाव्य में रसविचार** 137
–डॉ. राजकुमार वर्मा

13. **शिशुपालवध में काव्य शैली** 149
–डॉ. शीला नायक

14. **शिशुपालवध में वर्णित दर्शनशास्त्र एवं पशुशास्त्र - एक अध्ययन** –श्री प्रभात कुमार 160

15. **शिशुपालवध महाकाव्य में आश्रम व्यवस्था** 170
–श्री अंकित कुमार

16. **शिशुपालवध महाकाव्य में भ्वादिगणीय धातुओं का अनुप्रयोग** –श्री विजय यादव 179

17. **शिशुपालवधमहाकाव्य में रसविचार** 189
–डॉ. बुद्धिबल्लभ देवराड़ी

18. **महाकवि माघ का पाण्डित्य** 198
–श्री हरिकेश कुमार त्रिपाठी

19. **'शिशुपालवध' महाकाव्य में प्राकृतिक वर्णन कौशल** 209
–श्री दुर्गा उपाध्याय

20. **शिशुपालवध में अन्तनिर्हित नैतिक विचार** 220
–डॉ. सौम्या कृष्ण

21. **आस्तिक-नास्तिक दर्शनों में महाकवि माघ की अबाधगति** –श्री अभिनेश्वर सिंह 237

22. **शिशुपालवध महाकाव्य में दार्शनिक विचार** 244
–श्री प्रदीप दुबे

| | | |
|---|---|---|
| 23. | **दार्शनिक के रूप में महाकवि 'माघ'**<br>-श्री श्याम शंकर | 253 |
| 24. | **शिशुपालवध में वैदिक तत्त्व**<br>-डॉ. प्रज्ञा शुक्ला | 264 |
| 25. | **शिशुपालवध महाकाव्य का सामाजिक-विवेचन**<br>-श्रीमती वैदेही तिवारी | 272 |
| 26. | **माघकृत शिशुपालवधम् में वर्णित समाज-व्यवस्था का स्वरूप** -सुषमा देवी | 281 |
| 27. | **शिशुपालवध में रस-विमर्श**<br>-डॉ. अमरेश यादव | 294 |
| 28. | **शिशुपालवध महाकाव्य में रस-विमर्श**<br>-डॉ. देवेन्द्र कुमार यादव | 302 |
| 29. | **माघ का पदलालित्य**<br>-श्री अखिलेश्वर सिंह | 313 |
| 30. | **बृहत्त्रयी में शिशुपालवध का स्थान**<br>-डॉ. मुनेश देवी | 322 |
| 31. | **शिशुपालवध में वक्रोक्ति**<br>-डॉ. अमिता | 329 |
| 32. | **शिशुपालवध महाकाव्य में प्रयुक्त प्रमुख पर्वत एवं नदियाँ** - डॉ. विरेन्द्र बहादुर | 339 |
| 33. | **महाकवि माघ का गुणत्रय विमर्श**<br>-श्री अखिलेश कुमार | 350 |
| 34. | **माघे सन्ति त्रयो गुणाः**<br>-डॉ. राकेश कुमार यादव | 364 |
| 35. | **माघे सन्ति त्रयो गुणाः**<br>-श्री बदरे आलाम | 374 |

36. **माघ में तीन गुण** 381

–दीक्षा आर्या

37. **माघे सन्ति त्रयो गुणाः** 388

–डॉ. गोपाल कुमार झा

38. **शिशुपालवध में नदी एवं पर्वत** 396

–श्री राकेश कुमार यादव

39. **शिशुपालवध महाकाव्य में चित्रालङ्कार : एक समीक्षा** 409

–डॉ. संदीप कुमार यादव

40. **शिशुपालवध में पशु-पक्षी का वर्णन** 422

–श्रीमती अर्चना देवी

41. **शिशुपालवध महाकाव्य में नायक विचार** 431

–श्री आकाश आर्य

42. **शिशुपालवध में गजशास्त्र** 454

–डॉ. कन्हैया लाल यादव

# शिशुपालवध में भक्तितत्त्व

**– प्रो. जयप्रकाश नारायण***

अध्यात्म प्रधान भारत (वर्ष) में भक्ति की बड़ी महिमा गायी गई है। भक्ति के द्वारा ईश्वर की आराधना तथा मोक्ष की प्राप्ति की बात भारतीय साहित्य में चिन्तन का विषय रहा है। अपने आराध्य के प्रति अतिशय श्रद्धा या लगाव ही भक्ति कही जाती है। अधिकांशत: देखा गया है कि श्रृंगार और भक्ति का योग होता है। जब श्रृंगार भावना अपने आराध्य के प्रति समर्पित हो जाती है तो वह भक्ति के रूप में परिणत हो जाती है। इसी तरह युवावस्था की श्रृंगार भावना बहुत बढ़ी हुई अवस्था में भक्ति के रूप में बदल जाती है। श्रृंगारी कवि पहुँचे हुए भक्त भी देखे गये हैं। माघ द्वारा शिशुपालवध महाकाव्य लिखने का एक उद्देश्य यह भी था कि वह श्रीकृष्ण के चरित का गुणगान करना चाहते थे इसीलिए कवि वंशवर्णनम् के अन्तिम श्लोक में उन्होंने **"लक्ष्मीपतेश्चरितकीर्तनचारुमात्र"** कहा है। यह माघकाव्य लक्ष्मी के पति विष्णु भगवान् के अवतार श्रीकृष्ण के सुन्दर-सुन्दर चरित्रों के गुणगान से भक्तों के लिए भी ग्राह्य हो गया है। यह महाकवि माघ की भक्ति की पराकाष्ठा ही थी। इसलिए कहा गया है-

**मुरारिपदचिन्ता चेत्तदा माघे रतिं कुरु।**

यह सम्मति वही व्यक्ति दे सकता है जिन्होंने माघ के जीवन का अध्ययन करने के साथ-साथ उनके काव्य का भी अध्ययन किया हो। महाकवि माघ ने वीर और श्रृंगार दोनों को भक्ति में पर्यवसित किया है। राजाश्रयी होते हुए भी महाकवि माघ अन्त में एक महान् भक्त के रूप

---

* विभागाध्यक्ष, संस्कृत विभाग, जामिया मिल्लिया इस्लामिया, नई दिल्ली

में सामने आये हैं। सारा का सारा काव्य जिनको बनाने में या पूर्ण करने में उनकी युवावस्था और वृद्धावस्था का मूल्यवान् समय लगा, श्रीकृष्ण के चरणों में समर्पित है। कभी नारद के रूप में, कभी युधिष्ठिर के रूप में तो कभी भीष्म के रूप में कवि ने अपने भक्त स्वरूप का परिचय दिया है और जिस प्रकार एक भक्त अपने आराध्य के विरोधियों को सहन नहीं कर सकता उसी प्रकार शिशुपाल का वध उनके भक्त हृदय की बहुत बड़ी विजय है। उन्होंने शिशुपालवध में श्रीकृष्ण के लिए लगभग 175 पर्यायों का प्रयोग किया है जिससे इतनी बार नाम स्मरण से ही श्रीकृष्ण की भक्ति सिद्ध हो जाती है जो उपर्युक्त कथन को भी पुष्ट करता है।

काव्यशास्त्र में भक्ति को एक स्वतंत्र रस नहीं माना गया है। उसकी गणना एक भाव के रूप में की गई है। शिशुपालवधमहाकाव्य में वीर भावना, श्रृंगार भावना और भक्ति भावना तीनों ही स्फूट रूप में है। वीर भावना चाहे प्रधान है, किन्तु श्रृंगार तथा भक्ति भावना भी अप्रधान नहीं है। महाकवि माघ भक्त कवि हैं। अत: कभी वे नारद के रूप में श्रीकृष्ण के चरित का गुणगान करते हैं तो कभी पाण्डवों तथा उनके पक्ष के लोगों के माध्यम से अपनी भक्ति को व्यक्त करते हैं। नारद के मुख से श्रीकृष्ण के चरित का गान कराना अपने उद्देश्य की पूर्ति का एक अंग है।

### शिशुपालवध में भक्तितत्त्व का स्वरूप-

शिशुपालवध के प्रथम सर्ग में नारद-श्रीकृष्ण संवाद में भक्ति रस के दर्शन होते हैं। श्रीकृष्ण के लिए नारद पूज्यतम जगद्वन्द्य देवर्षि हैं, तो नारद के लिए श्रीकृष्ण मानवरूप में साक्षात् परब्रह्म परमात्मा ही हैं। दोनों की एक दूसरे के प्रति अमायिक एवं अव्याज भक्ति है। नारद के आने पर भावविभोर यदुनन्दन के विश्वम्भर शरीर में हर्ष समा नहीं रहा है। सूर्य तुल्य मुनि की ओर हर्ष से विकसित नेत्रों से देखते हुए वे आज ही तो यथार्थ में पुण्डरीकाक्ष हुए हैं- ये सभी उद्धरण भक्ति के अनुभाव

हैं। अपने श्रद्धाभाव को व्यक्त करते हुए[1] श्रीकृष्ण कहते हैं, हे मुने! पाप नाशक आपके इस दर्शनमात्र से मैं कृतार्थ हो गया हूँ। फिर भी आपके मुख से आपकी गौरवमयी वाणी सुनना चाहता हूँ। भला कल्याण के प्रति किसको तृप्ति होती है–

**विलोकनेनैव तवामुना मुने**
**कृतः कृतार्थोऽस्मि निबर्हितांहसा।**
**तथापि शुश्रूषुरहं गरीयसी,**
**गिरोऽथवा श्रेयसि केन तृप्यते।।**[2]

भगवान् श्रीकृष्ण के इस स्नेहमय विनय से भक्त नारद की भक्ति भावना कितनी सघन हो गयी होगी इसका अनुमान इस एक वाक्य से ही लगाया जा सकता है। जब वे निस्पृह योगियों को भी एकमात्र साध्य स्पृहा का उल्लेख करते हैं कि ऐसा न कहो पुरुषोत्तम! इससे बड़ा प्रयोजन और क्या हो सकता है कि तुम्हारे दर्शन हो जाय[3] और इसके बाद जो सात श्लोकों में[4] उन्होंने कहे हैं वे ज्ञानी भक्त के महीमान भावोद्‌गार हैं। उसी प्रसंग में उनकी एक उक्ति है– प्रभो, अपने तेज से जगद्द्रोहियों को विनष्ट करने के लिए यदि इस भूतल पर अवतीर्ण न हुए होते तो समाधिनिष्ठों के लिए भी दुर्लभ आप भला मुझ जैसे चर्म चक्षु वाले को कैसे नेत्र गोचर होते–

**निजौजसोज्जासयितुं जगद्द्रुहा–**
**मुपाजिहीथा न महीतलं यदि।**
**समाहितैरप्यनिरूपितस्ततः**
**पदं दृशः स्याः कथमीश मादृशाम्।।**[5]

---

1. शिशुपालवध, 1/26–30
2. वही, 1/29
3. वही, 1/41
4. वही, 1/32–38
5. वही, 1/37

कवि अपनी काव्य सृष्टि का प्रजापति होता है। स्वेच्छा से अचेतन को चेतनवत् तथा चेतन को अचेतनवत् निरूपित करता रहता है। श्रीकृष्ण के प्रति माघ कवि ने उसी भक्ति भावना की झलक द्वारिका नगरी में पायी और उस सागर में भी जिसमें द्वारिका बसी थी। क्योंकि जब श्रीकृष्ण द्वारिका अर्थात् विशाल- द्वार (गोपुर) वाली उस नगरी से बाहर निकले तो सेना लहरियाँ उस नगरी की वीथी रूपी भुजा से चुड़ियों की तरह बाहर निकल पड़ीं, मानो उसे चक्रपाणि के निकलने पर अपना द्वारवतीत्व अर्थात् विशाल द्वारवाला होना प्रिय नहीं लगा, कृष्ण वियोग से कृश हो गयी-

**बलोर्मिभिस्तत्क्षणहीयमानरथ्याभुजाया वलयैरिवास्याः।**
**प्रायेण निक्रामति चक्रपाणौ नेष्टं पुरोद्वारवतीत्वमासीत्।।**[1]

इसी प्रकार जब श्रीकृष्ण सागर तट पर पहुँचे, सागर अपनी गोद में सोने वाले 'युगान्तबन्धु' (आपद्बन्धु) को आया देख अति हर्ष से अपनी उत्तुंग तरंगरूपी बाहुओं को फैलाकर मानो उनकी अगवानी के लिए दौड़ा-

**तमागतं वीक्ष्य युगान्तबन्धुमुत्संगशय्याशयमम्बुराशिः।**
**प्रत्युज्जगामेव गुरुप्रमोदप्रसारितोत्तुंगतरङ्गबाहुः।।**[2]

फिर यमुना पार कर श्रीकृष्ण के इन्द्रप्रस्थ के समीप पहुँचने पर धर्मराज युधिष्ठिर ने बन्धु परिजन समेत जिस प्रकार उनकी अगवानी की, उसमें उनकी भक्ति की सीमा तक पहुँचा स्नेह व्यक्त होता है, तथा श्रीकृष्ण जैसे उनसे मिले उससे उनका भी पाण्डवों के प्रति स्नेह भाव प्रकट होता है।[3] चतुर्दश सर्ग में यज्ञ प्रारंभ करने के पूर्व युधिष्ठिर के सप्रश्रय निवेदन से उनकी श्रीकृष्ण के प्रति भक्ति अभिव्यक्त होती है तथा श्रीकृष्ण के प्रत्युत्तर में उनका युधिष्ठिर तथा पाण्डवों के प्रति स्नेह

---

1. शिशुपालवध, 3/69
2. वही, 3/78
3. वही, 13/1/24

प्रकट होता है।[1] भक्तिभाव का पूर्ण दर्शन चतुर्दश सर्ग में भीष्म के उस समस्त कथन में भी होता है जो उन्होंने सभा में युधिष्ठिर के प्रथम अर्घ्य योग्य व्यक्ति पूछने पर श्रीकृष्ण के प्रति कहे।[2] इसी प्रसंग में उन्होंने श्रीकृष्ण के भक्तवत्सल, सृष्टि कर्तृत्व, पालकत्व तथा संहर्तृत्व का वर्णन करते हुए उनक विशिष्ट अवतारों का गान किया है और अन्त में वे कहते हैं- युधिष्ठिर, तुम पुण्यवान् हो कि जिनके लिए परोक्ष में भी यज्वा यज्ञ करते हैं। तुम्हारे यज्ञ में वे हरि साक्षात् स्थित हुए हैं, पूज्यतम को प्रथम अर्घ्य देकर सम्पूर्ण विश्व में साधुवाद को प्राप्त करो-

**धन्योऽसि यस्य हरिरेष समक्ष एव**
**दूरादपि क्रतुषु यज्वभिरिज्यते यः।**
**दत्त्वार्घमत्रभवते भुवनेषु यावत्-**
**संसारमण्डलमवाप्नुहि साधुवादम्।।**[3]

## शिशुपालवध में नवधा भक्ति-

श्रीमद्भागवत में वर्णन की गई नवधा भक्ति के आदर्श स्वरूप प्रहलाद थे। अपने पिता हिरण्यकशिपु के पूछे जाने पर कि गुरु जी ने आज तक तुमको क्या पढ़ाया है, उन्होंने उत्तर दिया-

**श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।**
**अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्।।**
**इति पुंसार्पिता विष्णौ भक्तिश्चेन्नवलक्षणा।**
**क्रियते भगवत्यद्धा तन्मन्येऽधीतमुत्तमम्।।**[4]

यहाँ नौ प्रकार की भक्ति बताई गई है, (1) श्रवण (2) कीर्तन (3) स्मरण (4) भगवान् की चरण सेवा (5) पूजन (6) वन्दन (7)

---

1. शिशुपालवध, 14-17
2. वही, 14/58-88
3. वही, 14/87
4. भागवत 7-5-23-24

भगवान् में दायमान (8) सखाभाव तथा (9) अपने को समर्पण कर देने का भाव ये ही नवधा भक्ति के रूप हैं।

**1. श्रवण भक्ति-**

जो भगवान में पूर्ण भक्ति रखते हैं, उन भक्तों के द्वारा कहे हुए भगवान् के नाम, रूप, गुण, प्रभाव, लीला, तत्त्व और रहस्य से पूर्ण अमृतमयी कथाओं का श्रद्धा और प्रेम पूर्वक श्रवण करना तथा उन अमृतमयी कथाओं का श्रवण करके उनके प्रेम से मुग्ध हो जाना श्रवण भक्ति है। माघ काव्य में महाकवि माघ की श्रवण भक्ति का तो प्रश्न ही उपस्थित नहीं हो सकता है क्योंकि उन्हें भगवान् के नाम को किसके द्वारा सुनना है। उनको तो शिशुपाल के वध की कथा पाठक अथवा श्रोताओं को सुनानी है। इसके अतिरिक्त वह स्वयं पंडित एवं ज्ञानी हैं, पुराणों एवं शास्त्रों के ज्ञाता हैं अत: ज्ञान की व भक्ति की बातें सुनने के लिए उनको अन्यत्र जाने की आवश्यकता ही नहीं हुई।

**2. कीर्तन भक्ति-**

भगवान् के नाम, रूप, गुण, प्रभाव, चरित्र, तत्त्व और रहस्य का और बड़े प्रेम और उत्साह के साथ उच्चारण करते-करते शरीर में रोमांच, कण्ठावरोध, अश्रुपात, हृदय की प्रफुल्लता एवं मुग्धता आदि का होना कीर्तन भक्ति कहलाता है। शिशुपालवध महाकाव्य का मुख्य उद्देश्य ही भगवान् के चरित का कीर्तन करना है। अत: जहाँ-जहाँ भी भगवान् से सम्बन्धित बातें आई हैं वहीं-वहीं पर कवि का हृदय प्रफुल्लित होकर भगवान् के तत्त्व और रहस्य को श्रद्धा के साथ प्रस्तुत करने लगता है। कथानक में जहाँ कहीं भी विश्राम का अवसर मिला वहीं पर हो सका तो भगवान् का गुणगान करना आरम्भ कर दिया। कहीं-कहीं तो माघ ने एक कथावाचक के रूप में भगवान् श्रीकृष्ण के सगुण रूप का वर्णन किया है।

भगवान् श्रीकृष्ण इन्द्रप्रस्थ की ओर प्रस्थान कर रहे हैं। उस समय भृत्यवर्ग ने सूर्य की धूप का निवारण करने के लिए उन पर छत्र लगा दिया। उनके दोनों ओर चंवर डुल रहे हैं, मानो आकाशगंगा की धारा

दोनों ओर से प्रवाहित हो रही हो। उनके मस्तक पर मुकुट की मणियाँ रंग-बिरंगी धातुवाली थी। कानों में मरकत मणि से जुड़े हुए सुन्दर कुण्डल थे जिनकी पीत किरणें उनके नीले वक्षस्थल पर पड़कर मयूर पिच्छ की भ्रांति पैदा करती थी। उनकी दोनों भुजाएं केयूर मुक्तावाला धारण किये हुए थे। कौस्तुभमणि भी उन्होंने धारण कर रखी थी। पीताम्बर धारी थे, कौमोदकी, नन्दक, शार्ङ्ग, पांचजन्य आदि को अपने हाथों में धारण करके रथ पर विराजमान हुए प्रस्थान कर रहे थे। इस भाँति तृतीय सर्ग में श्लोक संख्या 2 से श्लोक संख्या 22 तक भगवान् श्रीकृष्ण की उस साकार मूर्ति का वर्णन कवि ने किया है जो पढ़ने के बाद कृष्ण के प्रति भक्ति भावना को जागृत करते हैं। रथ पर चढ़कर श्रीकृष्ण अपनी सेना सहित द्वारकापुरी से बाहर निकल रहे हैं उसी में भक्त कवि को भगवान् द्वारा बनाई हुई तथा वेदों, पुराणों व शास्त्रों में वर्णित सृष्टि का स्मरण हो आता है। वह आनन्दविभोर होकर कह बैठता है-

**प्रजा इवांगादरविन्दनाभेः शम्भोर्जटाजुटतटादिवापः।**
**मुखादिवाथ श्रुतयो विधातुः पुरान्निरीयुर्मुरजिद्ध्वजिन्यः॥**[1]

'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते, ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत् बाहुराजन्य कृत' इत्यादि श्रुतियों का निचोड़ कवि ने यहाँ सुन्दरतापूर्वक प्रस्तुत कर दिया है। रैवतक पर्वत से इन्द्रप्रस्थ की ओर श्रीकृष्ण अपनी सेना के साथ चले जा रहे हैं। कवि मार्ग में चलती हुई उस सेना के कार्यकलापों तथा मनोविनोदों का वर्णन करता है। अश्वों ऊँटों, रथों आदि के चलने के साथ-साथ गजों के चलने पर व्याकुल रमणियों का वर्णन करते हुए ही कवि श्रीकृष्ण के गुणगान में लग जाता है। गोपों के साथ श्रीकृष्ण के साहचर्य का स्मरण हो जाता है। कुछ श्लोकों में श्रीकृष्ण का कीर्तन बड़ा सुन्दर हुआ है-

**आगच्छतोऽनूचि गजस्य घण्टयोः**
**स्वनं समाकर्ण्य समाकुलाङ्गनाः।**

---

1. शिशुपालवध, 3/65

**दूरादपावर्तितभारवाहणाः**
**पथोऽपस्त्रुस्त्वरितं चमूचराः॥**

**ओजस्विवर्णोज्ज्वलवृत्तशालिनः**
**प्रसादिनोऽनुज्झितगोत्रसंविदः।**

**श्लोकानुपेन्द्रस्य पुरः स्म भूयसो**
**गुणान्समुद्दिश्य पठन्ति वन्दिनः॥**

**निःशेषमाक्रान्तमहीतलो जलै-**
**श्चलन् समुद्रोऽपि समुज्झति स्थितिम्।**
**ग्रामेषु सैन्यैरकरोदवारितैः**
**किमव्यवस्थां चलितोऽपि केशवः॥**

**गोष्ठेषु गोष्ठीकृतमण्डलासनान्**
**सनादमुत्थाय मुहुः स वल्गतः।**
**ग्राम्यानपश्यत्कपिशं पिपासितः**
**स्वगोत्रसंकीर्तनभावितात्मनः॥**[1]

श्रीकृष्ण के इन्द्रप्रस्थ में प्रविष्ट हो जाने पर तो कवि युधिष्ठिर के रूप में उनके गुणों का गायन करता हुआ अघाता नहीं है। फिर श्रीकृष्ण की पूज्यता को सिद्ध करने के बहाने भीष्म के रूप में भी कवि भक्ति में विभोर होकर कीर्तन करने में तल्लीन है। शिशुपालवध का चौदहवाँ सर्ग इस कीर्तन से भरा पड़ा है-

**आदितामजननाय देहिनामन्ततां च दधतेऽनपायिने।**
**बिभ्रते भुवमधः सदाथ च ब्रह्मणोऽप्युपरि तिष्ठते नमः॥**

**केवलं दधति कर्तृवाचिनः प्रत्ययानिह न जातु कर्मणि।**
**धातवः सृजति संहृशास्तयः स्तौतिरत्र विपरीतकारकः॥**

**पूर्वमेष किल सृष्टवानपस्तासु वीर्यमनिवार्यमादधौ।**
**तच्च कारणमभूद्धिरणमयं ब्रह्मणोऽसृजदसाविदं जगत्॥**

---

1. शिशुपालवध, 12/34-36, 38

**सत्यवृत्यमपि मायिनं जगद्वृद्धमप्युचितनिद्रमर्भकम्।**
**जन्म बिभ्रतमजं नव बुधा यं पुराणपुरुषं प्रचक्षते।।**[1]

फिर कवि प्रायः सभी अवतारों का समाहार श्रीकृष्ण में करता हुआ आनन्द में मग्न होकर भीष्म के रूप में ही युधिष्ठिर का साधुवाद देता है। जिसके समक्ष भगवान् स्वयं आकर उपस्थित हो गये हैं-

**धन्योऽसि यस्य हरिरेष समक्ष एव**
**दुरादपि क्रतुषु यज्वभिरिज्यते यः।**
**दत्त्वार्घमत्रभवते भुवनेषु यावत्-**
**संसारमण्डलमवाप्नुहि साधुवादम्।।**[2]

शिशुपाल जैसे दुष्ट का वध कर लेने भर से ही श्रीकृष्ण के चरित्र की समाप्ति नहीं हो जाती। नररूप के अतिरिक्त उनका एक रूप और भी है जिसकी अभिव्यक्ति प्रक्षिप्त श्लोकों में प्रतीयमान अर्थ के रूप में हुई है-

**न महानयं न च बिभर्ति गुणसमतया प्रधानताम्।**
**स्वस्य कथयति चिराय पृथग्जनतां जगत्यनभिमानतां दधत्।।**[3]

न तो यह महान् है न प्रधान है न भूत है न तन्मात्रा है न अहंकार है, प्रत्युत् इन सबसे (चौबीसों) परे पचीसवाँ पदार्थ परम पुरुष है।

**क्षणमेष राजसतथैव जगदुदयदर्शितोद्यतिः।**
**सत्वहितकृतमतिः सहसा तमसा विनाशयति सर्वमावृतः।।**[4]

यहाँ प्रतीयमान अर्थ में श्रीकृष्ण को ब्रह्मा, विष्णु और शिवरूप बताया गया है। कीर्तन के रूप में गुणगान का एक और अवसर भी कवि माघ को अनायास ही प्राप्त हो जाता है। शिशुपाल सेना संहित श्रीकृष्ण के साथ रण-संग्राम में लड़ना चाहता है, किन्तु युद्ध के नियमों

---

1. शिशुपालवध, 14/65-67, 70
2. वही, 14/87
3. वही, 15-2
4. वही, 15-13 प्रक्षिप्त

के अनुसार दूत के द्वारा संवाद तो भेजना चाहिए। इसी क्षत्रियोचित परम्परा के पालन के लिए शिशुपाल सात्यकि को दूत बनाकर भेजता है। वहाँ पहुँचकर सात्यकि का दूत कृत्य एक संवाद में बदल जाता है। कवि को कीर्तन का यह एक अच्छा अवसर मिल जाता है। कवि की इस संवाद में स्तुति, निन्दा में पर्यवसित होती है। स्तुति रूपी अर्थ कीर्तन ही है–

**अधिवह्निपतंगतेजसो नियतस्वान्तसमर्थकर्मणः।**
**तव सर्वविधेयवर्तिनः प्रणतिं बिभ्रति केन भूभृतः।।**

**जनतां भयशून्यधीः परैरभिभूतामवलम्बसे यतः।**
**तव कृष्ण गुणास्ततो नरैरसमानस्य दधत्यगण्यताम्।।**[1]

महाकवि माघ ने श्रीकृष्ण के साकार रूप (सगुणरूप) का कीर्तन इस प्रकार किया है–

**निवेशयामासिथ हेलयोद्धृतं फणाभृतां छादनमेकमोकसः।**
**जगत्त्रयैकस्थपतिस्त्वमुच्चकैरहीश्वरस्तम्भशिरःसु भूतलम्।।**[2]

**अनन्यगुर्वास्तव केन केवलः पुराणमूर्तेर्महिमावगम्यते।**
**मनुष्यजन्मापि सुरासुरान्गुणैर्भवान्भवच्छेदकरैः करोत्यधः।।**[3]

युद्ध भूमि में श्रीकृष्ण को युद्ध कराते हुए भी कवि उन्हीं के कीर्तन में इस भाँति लग जाता है–

**चतुरम्बुधिगर्भधीरकुक्षेर्वपुषः संधिषु लीनसर्वसिन्धोः।**
**उद्गुः सलिलात्मनस्त्रिधाम्नो जलवाहावलयः शिरोरुहेभ्यः।।**[4]

इस प्रकार कवि ने यहाँ साकार ईश्वर की भक्ति प्रस्तुत की है। इसके अतिरिक्त श्रीकृष्ण का कीर्तन प्रथम सर्ग में निराकार रूप में इस भाँति कवि नारद के मुख से हुआ है–

1. शिशुपालवध, 16/6
2. वही, 1/34
3. वही, 18/35
4. वही, 20/66

उदीर्णरागप्रतिरोधकं जनैरभीक्ष्णमक्षुण्ण तयाऽति दुर्गमम्।
उपेयुषो मोक्षपथं मनस्विनस्त्वमग्र भूमिर्निरपायसंश्रया॥

उदासितारं निगृहीतमानसैर्गृहीतमध्यात्मदृशा कथञ्चन।
बहिर्विकारं प्रकृतेः पृथग्विदुः पुरातनं त्वां पुरुषं पुराविदः॥[1]

**3. स्मरण भक्ति-**

प्रभु के नाम, रूप, गुण, प्रभाव, लीला, तत्त्व और रहस्य का प्रेम में मुग्ध होकर मनन करना और इस भाँति मनन करते-करते भगवान् के स्वरूप में तल्लीन हो जाना ही स्मरण भक्ति है।

महाकवि माघ के कीर्तन में स्मरण भी समाविष्ट है। भगवान् श्रीकृष्ण को बारम्बार स्मरण करने का तो मानो उनका स्वभाव ही बन गया था। वह सदैव सर्वगुण सम्पन्न भगवान् श्रीकृष्ण के अद्भुत रूप लावण्य संयुक्त स्वरूप का विशेष रूप से स्मरण किया करते थे।

**4.** पाद सेवन **5.** अर्चन **6.** वन्दन इन भक्ति भेदों का इस काव्य में प्रसंग नहीं आया।

**7. दास्य भक्ति-**

प्रभु को स्वामी और अपने को सेवक समझना दास्य भक्ति के लक्षण हैं। माघ की भक्ति कुछ-कुछ इसी रूप की है।

**8.** श्रीकृष्ण के प्रति युधिष्ठिर आदि पाण्डवों का जो भाव है वह कुछ-कुछ सख्य भक्ति से मिलता जुलता है।

**9. आत्मनिवेदन भक्ति-**

तन-मन-धन सहित अपने आपको तथा कर्मों को श्रद्धापूर्वक और प्रेम पूर्वक भगवान् को समर्पण कर देना आत्मनिवेदन भक्ति है।

कवि ने जहाँ कृष्ण को पूज्यतम भक्ति बताया है वहीं यज्ञ की निर्विघ्न समाप्ति का सारा श्रेय भी कृष्ण को समर्पित कर दिया है। पाण्डवों ने श्रीकृष्ण के परामर्श को स्वीकार करके अपना सारा जीवन,

1. शिशुपालवध, 1/32-33

नीति, धर्म आदि ईश्वरार्पित कर दिये हैं।

कवि माघ के जीवन चरित्र से विदित होता है कि ईश्वर की विभूतियों के रूप में आये हुए अतिथियों तथा याचकों को अपना सर्वस्व अर्पित कर दिया है।

उपर्युक्त नवधाभक्ति विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि कवि ने श्रीकृष्ण के प्रति अपनी भक्ति का जो स्वरूप प्रदर्शित किया है वह प्रमुखतया दूसरी और तीसरी प्रकार की भक्ति के अन्तर्गत है।

**शिशुपालवध में अवतार विवेचन–**

शिशुपालवध महाकाव्य में महाकवि माघ ने अपने प्रमुख आदर्श पात्र श्रीकृष्ण को विष्णु के राम, कृष्ण व नृसिंहादि छः (1. श्रीकृष्ण 2. विष्णु 3. वराह 4. नृसिंह 5. राम 6. परशुराम) अवतारों के रूप में प्रस्तुत किया है। कवि अपने महाकाव्य के आरम्भ में ही भगवान् श्रीकृष्ण को जगत् के प्रमुख आधार लक्ष्मीपति के रूप में प्रस्तुत करते हैं–

**श्रियः पतिः श्रीमति शासितुं जगत्**
**जगन्निवासो वसुदेवसद्मनि।**
**वसन् ददर्शावतरन्तमम्बरात्**
**हिरण्यगर्भाङ्गभुवं मुनिं हरिः॥**[1]

उक्त पद्य के माध्यम से रूक्मिणी रूप से अवतीर्ण लक्ष्मी के पति, लोक का शासन करने के लिए शोभा सम्पन्न वसुदेव जी की गृहवाटिका में सुखपूर्वक निवास करते हुए श्रीकृष्ण का अवतार के रूप में उल्लेख किया है।

इसी पद्य के समर्थन में देवर्षि नारद जी श्रीकृष्ण को शिशुपालवध महाकाव्य में आदिपुरुष के रूप में प्रस्तुत करते हैं–

**उदासितारं निगृहीतमानसैः**
**गृहीतमध्यात्मदृशा कथञ्चन।**

1. शिशुपालवध, 1/1

**बहिर्विकारं प्रकृतैः पृथग् विदुः**
**पुरातनं त्वां पुरुषं पुराविदः॥[1]**

प्रथम सर्ग में जब नारद जी भगवान् श्रीकृष्ण के पास आते हैं तो वे 6 पद्यों द्वारा भगवान् श्रीकृष्ण के वराहादि अवतारों का वर्णन करते हैं।

ऐसा ही वर्णन भगवान् श्रीकृष्ण की परिचयात्मक स्तुति में भीष्म पितामह भी 14वें सर्ग में वराह अवतार का वर्णन करते हुए कहते हैं कि वराह रूपधारी श्रीकृष्ण ने केसरों से सागर के जल प्रवाह को हटाकर प्रकाशमान सा देखा था–

**स्कन्धधूननविसारिकेसरक्षिप्तसागरमहाप्लवामयम्।**
**उद्धृतामिव मुहूर्तमैक्षत स्थूलनासिकवपुर्वसुन्धराम्॥[2]**

उक्त पद्य में श्रीकृष्ण के वराहरूप का भान हो जाता है। इसी प्रकार नृसिंहावतार वर्णन में कवि कहता है कि नृसिंहावतार लेकर श्रीकृष्ण ने हिरण्यकशिपु के वक्ष स्थल को अपने कोमल नखों से विदीर्ण कर दिया तथा नृसिंहरूपधारी श्रीकृष्ण भगवान् ने बड़े-बड़े नाखूनों द्वारा असुरों का नाश कर दिया था–

**दिव्यकेसरिवपुः सुरद्विषो नैव लब्धशममायुधैरपि।**
**दुर्निवाररणकण्डु कोमलैर्वक्ष एष निरदारयन्नखैः॥[3]**

वामनावतार रूप में राजा बलि से धरा को प्राप्त करने के अभिलाषी वे इन्द्र के अनुज बन गये थे तथा शीघ्र ही सूर्य व चन्द्र मण्डल को पार किया हुआ श्रीकृष्ण का चरण आकाश में नहीं समा सका, किं वा आसमान से भी बड़ा हो गया–

**क्रामतोऽस्य ददृशुर्दिवौकसो**
**दूरमूरुमलिनीलमायतम्।**

---

1. शिशुपालवध, 1/33
2. वही, 14/71
3. वही, 14.72

**व्योम्नि दिव्यसरिदम्बुपद्धति-**
**स्पर्धयेव यमुनौघमुत्थितम्।।**[1]

इसी प्रकार भीष्म पितामह द्वारा मोहिनीरूप (14.78) दत्तात्रेय (14.79) परशुराम (14.80) रामावतार (14.81) तथा इसी प्रकार 5 पद्यों (14.82-86) में भगवान् श्रीकृष्णावतार का वैदुष्यपूर्ण विवेचन किया गया है। ब्रह्मा द्वारा स्वयं प्रार्थित वसुदेव रूपी कश्यप के श्रीकृष्ण भगवान् हुए (14.82) देवगण श्रीकृष्ण के बिना सागर मन्थन में असमर्थता जता रहे थे तो वहीं दूसरी ओर ग्वाल बाल दधिमंथन में असमर्थ बने थे, साथ ही शिशुपालवध के संकेत भी दर्शनीय है-

**यं समेत्य च ललाटलेखया**
**बिभ्रतः सपदि शंभुविभ्रमम्।**
**चण्डमारुतमिव प्रदीपव-**
**च्चेदिपस्य निरवाद्विलोचनम्।।**[2]

ऐसा ही वर्णन देवर्षि नारद शिशुपालवध महाकाव्य के प्रथम सर्ग में श्रीकृष्णावतार वर्णन करते हुए कहते हैं कि राक्षसों के बोझ से पृथ्वी पर तरह-तरह के अत्याचार हो रहे थे। इसीलिए तो उसके बोझ को कम करने के लिए स्वर्ग से पृथ्वी पर अवतीर्ण हुए तथा आपके इस धरा को उपकृत किया-

**लघूकरिष्यन्नतिभारभङ्गुरा-**
**ममूं किल त्वं त्रिदिवादवातरः।**
**उदूढलोकत्रितयेन सांप्रतं**
**गुरुर्धरित्री क्रियतेतरां त्वया।।**[3]

इस प्रकार शिशुपालवध में वर्णित श्रीकृष्ण ने विविध अवतारों के माध्यम से इस धरा को उपकृत कर दुष्टों का नाश किया। जैसा कि

---

1. शिशुपालवध, 14.7
2. वही, 14.85
3. वही, 1.36

गीता में भी कहा गया है- "यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत" इत्यादि।

**माघ की धार्मिक चेतना-**

शिशुपालवध महाकाव्य के गहन अध्ययन से यह बतला पाना संभव नहीं है कि माघ का धर्म क्या था। वे किसके उपासक रहे होंगे और उनकी धार्मिक भावना किस प्रकार की रही होगी?

एक ओर शिशुपालवध महाकाव्य में उन्होंने विष्णु के अवतार की प्रशंसा अथवा स्तुति करके यह प्रमाणित किया है कि वे विष्णु के पूर्ण भक्त थे तो दूसरी ओर उनके सूर्योपासक होने का संकेत भी मिलता है। सूर्य मंदिर के पुण्यलाभ को उन्होंने प्राप्त किया था। इसी तरह स्थान-स्थान पर वे बौद्ध धर्म के सिद्धान्तों में अपनी पूर्ण श्रद्धा प्रकट करते हैं। साथ ही प्रति सर्ग के अन्त में "श्री" शब्द का प्रयोग तथा श्रीमाल नगर की भाग्यश्री खीमेलमाता की पूजा से देवी के उपासक भी प्रतीत होते हैं और अन्यत्र शिव को नानारूपों में चित्रित करके वे शिव भक्त के रूप में भी हमारे सम्मुख आते हैं।

**1. विष्णु भक्ति सम्बन्धी उद्धरण-** 1/11, 1/14, 1/33, 1/34

उपर्युक्त श्लोकों में विष्णु के आदिपुरुष का और पुराण पुरुषत्व का निर्देश है। ऐसा करके महाकवि ने भगवान् विष्णु (अवतार रूप में श्रीकृष्ण) के प्रति अपनी भक्ति भावना प्रकट की है, अन्यत्र भी कई स्थलों पर विष्णु के अवतारों का वर्णन हुआ है। नारद के द्वारा की गई स्तुति के व्याज से माघ ने भगवान् विष्णु के प्रति अपनी श्रद्धा प्रकट की है।

**2. सूर्यभक्ति भावना का आधार-**

भोज प्रबन्ध एवं प्रबन्ध चिन्तामणि में माघ के सूर्य भक्त होने के सम्बन्ध में भी संकेत प्राप्त होते हैं। यद्यपि शिशुपालवध में कहीं भी इस प्रकार का संकेत कहीं भी प्राप्त नहीं होता तथापि जैसा कि सर्वविदित

है कि शाकद्विपीय ब्राह्मण सूर्योपासक रहे हैं। सूर्योपासना उनकी कुल परिपाटी के रूप में रही है और जहाँ तक माघ का सम्बन्ध है प्रबन्ध चिन्तामणि के प्रमाणों के अनुसार राजा भोज द्वारा महाकवि माघ को (जगत्स्वामी) सूर्यमंदिर का पुण्य लाभ प्राप्त हुआ जो महाकवि के सूर्योपासक होने का द्योतक है।

**3. बौद्ध सिद्धान्तों के प्रति आस्था–**

**सर्वकार्यशरीरेषु मुक्त्वाऽङ्गस्कन्धपञ्चकम्।**
**सौगतानामिवात्माऽन्यो नास्ति मंत्रो महीभृताम्।।**[1]

उपर्युक्त पद्य में एक बौद्ध, शरीर में आत्मा नाम की कोई वस्तु स्वीकार नहीं करता। वह शरीर को पाँच स्कन्धों में मुक्त मानता है– (1) रूप (2) वेदना (3) विज्ञान (4) संज्ञा और (5) संस्कार

इस श्लोक में महाकवि माघ का बौद्धधर्म से प्रभावित होना स्पष्ट विदित होता है। इस बात की पुष्टि कवि वंशवर्णन में माघ के पिता सुप्रभदेव के उपदेश से भी होता है–

**काले मितं तथ्यमुदर्कपथ्यं तथागतस्येव जनः सचेताः।**
**विनानुरोधात् स्वहितेच्छयैव महीपतिर्यस्य वचश्चकार।।**

–कविवंशवर्णन, 2

माघ के पिता सुप्रभदेव के वाक्य बुद्ध के उपदेश की भाँति मानकर राजा वर्मलात उन उपदेशों को बिना किसी संकोच के स्वीकार करते हैं।

एक स्थान पर हरि (श्रीकृष्ण) को बुद्ध भगवान् बताया गया है और शिशुपालपक्षीय राजाओं को काम की सेना।

**इति तत्तदा विकृतरूपमभजत्तदविभिन्नचेतसम्।**
**मारबलमिव भयंकरतां हरिबोधिसत्त्वमभिराजमण्डलम्।।**[2]

---

1. शिशुपालवध, 2/28
2. वही, 15.58

हरि को बोधिसत्व का रूप देना कवि का बौद्ध धर्म के प्रति श्रद्धा प्रकट करता है। माघ द्वारा 'जिन:' शब्द के प्रयोग से कुछ विद्वान् उन्हें बुद्ध से सम्बद्ध मानते हैं तो कुछ जैन महावीर से।

**भीमास्त्रराजिनस्तस्य बलस्य ध्वजराजिनः।**
**कृतघोराजिनश्चक्रे भुवः सरुधिरा जिनः॥**[1]

**4. शिवभक्ति के उदाहरण-**

**आच्छादितायतदिगम्बरमुच्चकैर्गा-**
**माक्रम्य संस्थितमुदग्रविशालश्रृंगम्।**
**मूर्ध्नि स्खलत्तुहिनदीधितिकोटिमेन**
**मुद्वीक्ष्य को भुवि न विस्मयते नगेशम्॥**[2]

उपर्युक्त श्लोक में नगराज पर्वत रैवतक को कैलाशपति शंकर का रूप दिया गया है। उस नगपति रैवतक (शंकर) को देखकर कौन आश्चर्य में नहीं पड़ेगा-

**उच्चैर्महारजतराजिविराजितासौ-**
**दुर्वर्णभित्तिरिह सान्द्रसुधासवर्णा।**
**अभ्येति भस्मपरिपाण्डुरितस्मरारे-**
**रुद्वहिन्लोचनललामललाटलीलाम्॥**[3]

इस श्लोक में भी रैवतक पर्वत की सफेद दीवार को जो स्वर्ण की रेखा से सुशोभित है भगवान् त्रिनेत्र शंकर की भाँति दिखाकर शिव का स्मरण किया है।

इसी प्रकार 4.64 में गजचर्मधारी शिव का माघ ने स्मरण किया है। 4.65, 9-27.28, 14.18, 18.19 16 वें सर्ग के 46 वें श्लोक में तो स्पष्ट रूप में ही शिव को विष्णु से भी ऊँचा मानकर अपनी शिव के प्रति प्रगाढ़ भक्ति का परिचय दिया है-

---

1. शिशुपालवध, 19/112
2. वही, 4/19
3. वही, 4.28

**क्रियते धवलः खलूच्चकैर्धवलैरेव सितेतरैरधः।**
**शिरसौधमधत्त शङ्करः सुरसिन्धोर्मधुजित्तमङ्घ्रिणा।।**[1]

निर्मल को निर्मल व्यक्ति ही ऊँचा उठाते हैं और मलिन लोग तो उसे नीचा ही दिखाते हैं। (धवल शरीर) शंकर जी गंगा को तो सिर पर धारण करते हैं, किन्तु मलिन अर्थात् नीलकान्ति वाले विष्णु उसे चरण में धारण करते हैं। यहाँ शिव को विष्णु से श्रेष्ठ बताया गया है।

भक्ति के इन विभिन्न केन्द्रबिन्दुओं को देखकर महाकवि माघ की भक्ति का स्वरूप समन्वयात्मक निश्चित होता है। उस समय जितने धर्म प्रचलित थे उन सभी की कल्याणकारिता में उनका विश्वास था। इसीलिए उन्होंने किसी एक धर्म की अत्यधिक निन्दा नहीं की प्रत्युत् जिस धर्म की जो बात उन्हें अच्छी लगी उसे आस्था पूर्वक लिखा। वैसे माघ सनातनी मूर्तिपूजक हिन्दू थे। शिव, विष्णु, सूर्य आदि सबकी उपासना वे करते थे।

माघ का काव्य उस युग की सर्वश्रेष्ठ रचना है। ऐसी रचना जिसमें रस पक्ष, कला पक्ष और पाण्डित्य पक्ष तीनों की जबरदस्त अन्विति उनके कवि मद को बढ़ाने वाली न होकर अपने आराध्य के प्रति समर्पण के भाव से लिखे हुए हैं।

श्रीकृष्ण माघ के परम आराध्य थे। शिशुपालवध की रचना के बहाने उन्हें श्रीकृष्ण का चरित कीर्तन करना था। उन्होंने उनका चरितमात्र इसमें चारु माना है। अतः उन्होंने कवि वंशवर्णन में कहा है-

**लक्ष्मीपतेश्चरितकीर्तनमात्रचारु।**

यद्यपि इस महाकाव्य का प्रयोजन 'सुकविकीर्ति दुराशा है' किन्तु श्रीकृष्ण चरितगान ही परम प्रयोजन प्रतीत होता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि शिशुपालवध महाकाव्य में कलापक्ष के साथ-साथ भावपक्ष की भी प्रधानता है।

---

1. शिशुपालवध, 16/46

# शिशुपालवध में नारियों की दशा

- डॉ. अनुला मौर्य*

**महाकवि माघ** - अनूठी उपमाओं एवं प्रसाद मधुरा वाणी द्वारा संस्कृत की रस सरिता को प्रवाहित करने वाले महाकवि माघ का नाम परम गौरव के साथ विद्वानों में लिया जाता है। संस्कृत साहित्य के बृहत्त्रयी महाकाव्य में माघ का नाम अत्यन्त प्रतिष्ठित है। इनकी एकमात्र रचना शिशुपालवधम् काव्य की श्रेष्ठता का उद्घोष करती है। बृहत्त्रयी में माघ का महाकाव्य मध्यमणि के रूप में प्रतिष्ठित है। शिशुपालवध के अन्त में कविवंशवर्णन नामक अध्याय में महाकवि माघ ने अपने वंश का परिचय दिया है। माघ के पितामह सुप्रभदेव श्रीमाल के राजा श्रीवर्मल के यहाँ धर्मसचिव थे। ये स्थान गुजरात और राजस्थान प्रान्त की सीमा पर स्थित है।[1] माघ के पिता का नाम दत्तक था। माघ का जीवन सामन्तीय सम्पन्नता तथा अटूट ऐश्वर्य के मध्य व्यतीत हुआ था।[2] शिशुपालवध के द्वितीय सर्ग के एक श्लोक के आधार पर विद्वान् लोग माघ का समय छठी या सातवी शताब्दी के आसपास मानते हैं।[3] माघ की विद्वत्ता के विषय में प्रचलित उक्ति है[4]– **मेघे माघे गतं वयः।**

---

* पूर्व प्राचार्या, कालिन्दी महाविद्यालय, ईस्ट पटेल नगर, नई दिल्ली

1. शिशुपालवध, कविवंशवर्णनम्।
2. तस्याभवद्दत्तक इत्युदात्तः क्षमी मृदुर्धर्मपरस्तनूजः।
   यं वीक्ष्य वैयासमजातशत्रोर्वचो गुणग्राहि जनैः प्रतीये।– शिशुपालवधम्, पं. हरगोविन्द शास्त्री, पृष्ठ 940
3. अनुसूत्रपदन्यासा सद्वृत्तिः सन्निबन्धना।
   शब्दविद्येव नो भाति राजनीतिरपस्पशा॥– शिशुपालवधम्, 2/112
4. उद्धृत : महाकवि माघ, उनका जीवन और कृतियाँ, मनमोहन लाल ज. शर्मा, पृष्ठ 2

अर्थात् कालिदासकृत 'मेघदूत' तथा माघकृत 'शिशुपालवध' के अध्ययन में ही विद्वानों की आयु समाप्त हो गई। महाकवि कालिदास की कृतियों में उपमा, भारवि की कृति में अर्थगौरव और दण्डी की कृति में पदलालित्य गुण है, किन्तु माघ की कृति में उक्त तीनों गुण समाहित हैं।[1] माघ के वैदुष्य सम्बन्ध में अत्यन्त प्रसिद्ध उक्ति है- **नवसर्गगते माघे नव शब्दो न विद्यते** अर्थात् शिशुपालवध के 9वें सर्ग के बाद कोई नया शब्द ही नहीं मिलता अर्थात् सभी शब्दों का प्रयोग माघ ने 9 सर्गों में ही कर दिया है।

**शिशुपालवध**- शिशुपालवध की कथा कई ग्रन्थों में है। मूलरूपेण यह कथा महाभारत के सभापर्व में है।[2] श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध में भी यह कथा है।[3] इन दोनों ग्रन्थों के अतिरिक्त पद्मपुराण, विष्णुपुराण तथा ब्रह्मवैवर्तपुराण में भी यह कथा संक्षेप में वर्णित है।[4] कथासार इस प्रकार है- राजसूय यज्ञ में दीक्षित युधिष्ठिर के 'पहले किसकी अग्रपूजा की जाये?' ऐसा पूछने पर सहदेव ने श्रीकृष्ण की अग्रपूजा करने के लिए कहा और उनके कथन का सभी सदस्यों ने अनुमोदन किया। तदनुसार युधिष्ठिर के द्वारा अग्रपूजा करने पर शिशुपाल श्रीकृष्ण की निन्दा करने लगा। शिशुपाल के द्वारा अपशब्द प्रयोग की सीमा लांघने पर श्रीकृष्ण ने सुदर्शन चक्र से शिशुपाल का शिर काट डाला। इस लघु कथानक को महाकवि माघ ने बहुत उत्तमता के साथ विभिन्न वर्णनों के माध्यम से मन्थर गति से आगे बढ़ाया है।

इस कथावस्तु के अन्तर्गत ऋषि वर्णन, मन्त्रणा वर्णन, इन्द्रप्रस्थ प्रस्थान वर्णन, द्वारकापुरी वर्णन, समुद्र वर्णन, रैवतक पर्वत वर्णन, ऋतु

---

1. उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थगौरवम्।
   दण्डिनः पदलालित्यं माघे सन्ति त्रयो गुणाः॥ - उद्धृत, वही, पृष्ठ 1
2. महाभारत, सभापर्व, अध्याय 33-45
3. श्रीमद्भागवत, दशमस्कन्ध, अध्याय 69-74
4. पद्मपुराण 279/1-23, विष्णुपुराण 14/44-53, ब्रह्मवैवर्तपुराण 113/23-37

वर्णन, वन विहार वर्णन, जल क्रीडा वर्णन, सन्ध्या वर्णन, दूत सम्प्रेषण आदि का विशेष उल्लेख मिलता है।

## शिशुपालवध में नारियों की दशा-

सृष्टि का श्री गणेश नारी एवं पुरुष दोनों के पारस्परिक गुणों के आधार पर ही माना गया है। बिना एक के दूसरे के स्वतन्त्र अस्तित्व की कल्पना नहीं की जा सकती। जीवन की ज्योति, शक्ति एवं प्रेरणा की स्त्रोत नारी ने अपने सहज गुणों से सर्वदा पुरुष की सहज चेतना को प्रदीप्त किया है। आज समाज में नारी को जो सम्मान मिला है, वह उसकी साधना, सत्यता, सहनशीलता, सौम्यता, सौष्ठवता आदि सहजगुणों का ही सुफल है। पुनश्चापि नारी को सदैव संघर्ष करना पड़ा, अनेक यातनाएँ सहन करनी पड़ीं। महाकवि माघ ने भी नारियों की दशा का उल्लेख शिशुपालवध में सामाजिक अवस्थाओं का वर्णन करते हुए प्रसङ्गानुसार किया है। यद्यपि शिशुपालवध में किसी स्त्री पात्र का नामतः विशेष उल्लेख नहीं मिलता, लेकिन वन विहार वर्णन, जलक्रीड़ा वर्णन आदि में नारी सम्बन्धी चर्चा की गई है, जिसके माध्यम से स्त्रियों की दशा का वर्णन किया जा सकता है।

**वर्णाश्रम व्यवस्था एवं नारियों की शिक्षा-** शिशुपालवध में वर्णाश्रम व्यवस्था का उल्लेख मिलता है। उस समय वर्णव्यवस्था का जोर था। जो चार वर्ण में सम्मिलित नहीं थे उनकी सन्तान वर्णसंकर कहलाती थीं। वर्णसंकर सन्तान का समाज में आदर नहीं था चाहे वह स्त्री हो या पुरुष। द्विजवर्ण उच्च माने जाते थे।

माघकालीन स्त्रियाँ शिक्षित थीं अथवा नहीं इसका स्पष्टतः वर्णन नहीं मिलता, किन्तु वे रणभूमि में जाती थीं और अपने पति के पूर्व ही मरना पसन्द करती थीं। स्त्रियाँ प्रायः घरेलू जीवन ही बिताती थीं। राजपूत बालिकाओं को सम्भवतः अपने घरों में ही अस्त्र-शस्त्र की शिक्षा दी जाती थीं। ऐसे सामाजिक अवसर भी होते थे जहाँ स्त्री पुरुष एक विशेष मर्यादा का निर्वाह करते हुए मनोरंजन में निर्बाध रूप से प्रवृत्त हुआ करते

थे। जिसका स्पष्ट उल्लेख वन-विहार वर्णन में प्राप्त होत है- "यादवजनों ने अनेकविध पुष्पों से युक्त वनों में स्त्रियों के साथ जाने की इच्छा की अन्यथा वे कामदेव के महान अस्त्रभूत केवल पाँच बाणों को भी सहन करने में समर्थ नहीं थे।"[1] प्रियों के साथ जाने का शोभन अवसर पाकर यादव रमणियाँ भी पैदल चल पड़ीं और अनेक प्रकार के विलास प्रारम्भ हो गये।[2] इस प्रसंग में अनेक नायिकाओं की सुन्दर चेष्टाओं का वर्णन हुआ है।

**वैवाहिक स्थिति**- माघकालीन समाज में एक गोत्र में विवाह निषिद्ध था। विवाह पूर्व यह अवश्य देख लिया जाता था कि वर व वधू कहीं एक गोत्र के तो नहीं। विवाह के पश्चात् कन्या का गोत्र पिता का गोत्र न होकर, पति का गोत्र ही उसका गोत्र हो जाता था। पति को इसलिए गोत्रभित् की उपाधि दी गई है।[3] शिशुपालवध में दहेज-प्रथा की पूरी झलक मिलती है। विवाहिता वधू श्वसुराल में पुरुषों के पूर्व ब्रह्ममुहूर्त में उठती थीं, यही उनका कर्तव्य था।[4] प्रातःकाल से ही स्त्रियाँ घर के कार्य में व्यस्त हो जाती थीं। पानी लेने के लिए कुएँ तक जाना होता था। विवाह के समय नव विवाहिता पुत्री का पिता और नव पुत्र वधू को श्वशुर अपनी गोद में बैठा कर आभूषण दिया करते थे। इस प्रथा का माघ ने स्पष्ट उल्लेख तृतीय सर्ग में किया है।[5] विवाह बन्धन बड़ा बन्धन था। उस समय अपने ही जाति में विवाह करने का बन्धन हो गया था। शनैः शनैः विवाह में वर्ण और जाति की ही नहीं उपजाति की समानता भी आवश्यक प्रतीत होने लगी।

---

1. शिशु. 7/2
2. वही, 7/3-6
3. तदयुक्तमङ्ग तव विश्वसृजा न कृतं यदीक्षणसहस्रतयम्।
   प्रकटीकृता जगति येन खलु स्फुटमिन्द्रताद्य मयि गोत्रभिदा॥ -शिशु. 9.80
4. द्रष्टव्य- प्रथमप्रबुद्धनदराजसुता. का प्रयोग। - शिशु. 9.30
5. रथांगभर्त्रेऽभिनवं वराय यस्याः पितेव प्रतिपादितायाः।
   प्रेम्णोपकण्ठं मुहुरङ्कभाजो रत्नावलीरम्बुधिराबबन्ध॥- शिशु. 3.36

विवाह के पश्चात् विदाई के अवसर पर लड़की के माता–पिता रोते थे।[1] उस समय का दृश्य करुणापूर्ण होता था। सगे–सम्बन्धी, पड़ोसी, माता–पिता, भाई–बहन गाँव की सीमा तक कन्या को पहुँचाने जाते थे। उस समय स्त्रियाँ धूप से बचने के लिए छत्र धारण करती थीं। महाकवि कालिदास के कवियों में भी इस प्रकार का वर्णन मिलता है। यह प्रथा आधुनिक समाज में भी प्रकारान्तर से प्रचलित है। विधवाओं का विवाह नहीं होता था। स्त्रियों की पुरुष अधीनता बढ़ रही थी, वे इस युग में आकर विलास की सामग्री बन रही थीं। माघ के समय बहुविवाह तथा उपपत्नी रखने की प्रथा प्रचलित थी तथा इस प्रथा को उच्चकुलीनता एवं शालीनता का सामाजिक चिह्न माना जाता था।[2]

**पर्दा प्रथा**– शिशुपालवध महाकाव्य के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि पर्दा प्रथा का प्रचलन इस काल में अत्यधिक था। स्त्रियाँ मुख पर घूँघट डालतीं तथा पर्दे के भीतर रहती थीं। माघ ने इस प्रसंग का उल्लेख निम्न प्रकार से किया है[3]– "परिजनों द्वारा वाहनों से नीचे उतारी जाने वाली, देखने वाले लोगों को दूर हटाने में परेशान कंचुकियों से युक्त, उन रानियों की मुखश्री, जिनके घूँघट का वस्त्र नीचे उतरते समय खिसक गया था, क्षण भर के लिए लोगों ने भय मिश्रित कुतूहल के साथ देख लिया।"

श्रीकृष्ण इन्द्रप्रस्थ के मार्ग में जा रहे थे, तब ग्रामीण स्त्रियाँ उन्हें खेतों की बाड़ की ओर से नीचे झुककर चुपके से देख रही हैं। यह भी

---

1. अपशङ्कमङ्कपरिवर्तनोचिताश्चलिताः पुरः पतिमुपैतुमात्मजाः।
अनुरोदितीव करुणेन पत्रिणां विरुतेन वात्सतलयैष निम्नगाः।– शिशु. 4.47
2. सततमतभिभाषणं मया ते परिपणितं भवतीमनानयन्त्या।
त्वयि तदिति विरोधनिश्चितायां भवति भवत्वसुहृज्जनः सकामः॥ –वही. 7.9
3. यानाज्जनः परिजनैरवतार्यमाणा राज्ञीर्नरापनयनाकुलसोविदल्लाः।
स्रस्तावगुण्ठनपटाः क्षणलक्ष्यमाणवक्त्रश्रियः सभयकौतुकमीक्षते स्म॥– वही 5.17

पर्दे का ही एक रूप है। इन्द्रप्रस्थ सभा भवन में प्रियतमों के साथ नव वधूएँ लज्जा के मारे दूसरी ओर मुँह करके खड़ी थीं, यह उल्लेख भी पर्दा प्रथा का संकेत करता है।

**सती-प्रथा**- माघ के समय में सती-प्रथा का प्रचार जोरों पर था। महाकवि माघ ने इस प्रथा की प्रशंसा करते हुए लिखा है- जो सती होती हैं वे दूसरे जन्म में अपनी आकांक्षा की पूर्ति करके परम भाग्यशालिनी होती हैं।[1] इस युग की स्त्रियों का जीवन अत्यन्त साहस तथा वीरता से पूर्ण था। तभी यादव रमणियों का वन विहार, जलक्रीड़ा आदि वर्णन में विशेष उल्लेख मिलता है। पति के मारे जाने तथा शत्रु से घिर जाने पर अथवा पति के असह्य रोग से पीड़ित होने से मरणोन्मुख पति के सम्मुख सतीत्व की रक्षा के लिए अग्नि में हँसते-हँसते भस्म होना तत्कालीन स्त्रियों के लिए बायें हाथ का खेल था।

**मदिरा पान**- शिशुपालवध में स्थान-स्थान पर नारियों का, रमणियों का मदिरापान का वर्णन मिलता है। मदिरा पान के साथ हास, परिहास, वक्रोक्तियों का भी उल्लेख मिलता है। मदिरा पान के वर्णन में कवि ने पूरा 10वाँ सर्ग (विशेषकर श्लोक 12-38 तक) लिखकर जो चित्र उपस्थित किया है, उससे यह भी स्पष्ट होत है कि माघ इन परिस्थितियों से गुजरा था। मध्ययुग में राजघरानों में मद्यपान, परस्त्रीगमन, मृगया, जलविहार आदि की अधिकता रहा ही करती थी एवं इन सबको विलास का चिह्न माना जाता था। प्रमाणार्थ 11वें सर्ग में एक श्लोक भी वर्णित है।[2] पुरुष और स्त्रियाँ दोनों ही विशेष अवसरों पर मदिरा में मस्त रहकर भोगमय जीवन बिताते थे।

---

1. रुचिधाम्नि भर्तरि भृशं विमलाः परलोकमभ्युपगते विविशुः।
   ज्वलनं त्विषः कथमिवेतरथा सुलभोऽन्यजन्मनि स एव पतिः॥-शिशु. 9.13
2. अधिरजनि वधूभिः पीतमैरेयरिक्तं
   कनकचषकमेतद्रोचनालोहितेन।
   उदयदहिमरोचिर्ज्योतिषाक्रान्तमन्तः
   मधुन इव तथैवापूर्णमद्यापि भाति॥- वही 11.51

**धार्मिक स्थिति**- माघ ने शिशुपालवध के चतुर्दश सर्ग के 35 श्लोकों में राजसूय यज्ञ का वर्णन किया है। श्रीकृष्ण की आज्ञा पाकर युधिष्ठिर राजसूय यज्ञ के लिए तैयार हो गये। उस समय द्रौपदी के विषय में एक श्लोक में वर्णन मिलता है- "यजमान की धर्मपत्नी द्रौपदी ने दर्भ निर्मित मेखला को धारण किया और उनके द्वारा हवि को ऋत्विज् लोग प्रणयन आदि संस्कारों से युक्त अग्नि में हवन करने लगे।"[1] इस प्रकरण से यह पता चलता है कि स्त्रियों को यज्ञ करने का अधिकार था एवं मेखला धारण करने से तात्पर्य स्त्रियों के उपनयन, वेदारम्भ आदि संस्कार भी होते थे। तत्कालीन स्त्रियों में शिष्टाचार का एक विशिष्ट रूप था। वे अतिथियों को देवता के रूप में मानकर उत्साह एवं उल्लास से परिपूर्ण होकर सत्कार करती थीं।

महाकाव्य के प्रथम श्लोक 'श्रियः पति श्रीमति शासितुं....मुनिं हरिः' से स्पष्ट होता है कि उस समय पौराणिक धर्म एवं देवी-देवताओं का प्रचलन बढ़ गया था। अधिकांश घरों में सन्ध्या वन्दन और हवन आदि धार्मिक कृत्य हुआ करते थे। मन्त्रों से आहुतियाँ दी जाती थीं और मन्त्रों के जाप हुआ करते थे।[2] शिशुपालवध में महाकवि माघ ने बौद्ध धर्म के सुन्दर-सुन्दर सैद्धान्तिक बातें एवं नियम लिखकर लोगों को धार्मिक समन्वय की ओर प्रेरित किया है।

**स्त्रियों की वेशभूषा**- शिशुपालवध में स्त्रियों की वेशभूषा का वर्णन अनायास ही हो गया है क्योंकि शृंगारवर्णन के प्रसंग में वेशभूषा का विशेष महत्त्व होता है और वेशभूषा तत्कालीन परिस्थिति को दर्शाती है। उस समय स्त्रियाँ कानों में कर्णफूल तथा पैरों में नूपुर धारण करती थीं। करधनी, मोतियों की माला तथा कंकण उनके प्रमुख आभूषण होते थे। पति के विदेश जाने पर स्त्रियाँ अपना कंकण उतार देती थीं।[3] शरीर

---

1. बद्धदर्भमयकाञ्चिदामया वीक्षितानि यजमानजायया।
   शुष्मणि प्रणयनादिसंस्कृते तैर्हवींषि जुहवाम्बभूविरे॥- शिशु. 14.22
2. प्रतिशरणमशीर्णज्योतिरग्न्याहितानां....साधु सान्नाय्यमग्निः। शिशु. 11.41-42
3. बलोर्मिभिस्तत्क्षणहोयमान....। -शिशु. 3.69, पं. हरगोविन्द शास्त्री, पृष्ठ 169

पर अंगराग, होठों पर अलते का रंग, नेत्रों में अंजन लगाने की प्रथा दिखाई देती है।[1] स्त्रियाँ वृक्षों के पल्लव और फूलों से कर्णों को विभूषित करती थीं। माघ कवि शिशुपालवध में दो वस्त्रों का वर्णन विशेष रूप से करते हैं अर्थात् स्त्रियाँ उत्तरीय और अधोवस्त्र का प्रयोग करती थीं।[2] दसवें सर्ग में करधनी[3] का तथा आठवें सर्ग में दुपट्टा का भी उल्लेख मिलता है।[4]

**उपसंहार-**

साहित्य समाज का दर्पण होता है एवं कवि तत्कालीन समाज के प्रतिनिधि होते हैं। सामाजिक परिस्थितियों एवं इतिहास का ज्ञान कवि के काव्य के माध्यम से ही मिलता है। भारतीय नारी का इतिहास हमारी संस्कृत के इतिहास का अभिन्न अंग है। नारी की स्थिति-परिस्थितियों ने अनेक सामाजिक मोड़ों में सांस्कृतिक इतिहास के अनेक अध्यायों का निर्माण किया है। भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता के विवेचक डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल ने मतानुसार 'स्त्री वृत्त का व्यास है और पुरुष उसकी परिधि है। जिस प्रकार वृत्त के व्यास को तिगुना करके परिधि बनती है उसी प्रकार स्त्री के जीवन से गुणित होकर पुरुष का जीवन बनता है।' प्राचीन भारतीय समाज का मूल आधार वर्णाश्रम व्यवस्था था। आश्रम व्यवस्था की इमारत सदैव गृहस्थ धर्म पर टीकी रहती है एवं गृहस्थ धर्म का मूल स्त्रियों पर आश्रित रहता है। महाकवि माघ ने नारी-विमर्श के प्रसङ्ग में समस्त सामाजिक गुण-दोषों को निष्पक्ष रूपेण चित्रित किया है। शिशुपालवध में नारी की अवस्था ह्रासोन्मुख दृष्टिगोचर होती है। उसकी सामाजिक स्थिति प्रसंशनीय नहीं कही जा सकती। नारी

---

1. द्रष्टव्य- शिशु. 9/44-54 में रमणियों के श्रृंगार वर्णन प्रसंग।
2. वही 13.32 एवं
   कररुद्धनीवि दयितोपगतौ गलितं त्वराविरहितासनया।
   क्षणदृष्टहाटकशिलासदृशस्फुरदूरुभित्ति वसनं ववसे॥- शिशु. 9.75
3. शिशु. 10.83
4. कौशेयं वज्रदपि....नीर जाक्ष्या:। - शिशु. 8.6

विषयक उदार एवं विशाल दृष्टिकोण समाप्त प्राय था, उसका देवी पद लुप्त हो चुका था। गार्हस्थ्य एवं दाम्पत्य जीवन के उच्चादर्श केवल वर्णन की वस्तु रह गई थी। उस समय समाज में सतीप्रथा कुरीतियों के रूप में व्याप्त था। पर्दाप्रथा प्रचलित होने के कारण सामान्यत: स्त्रियों की उन्नत दशा नहीं थी एवं उन्हें सामाजिक अधिकार प्राप्त नहीं थे। मदिरापान का प्रचलन बढ़ा हुआ था, विधवाओं का विवाह कथमपि सम्भव नहीं था। उत्तराधिकार नियमों की दृष्टि से स्त्रियों की दशा ठीक नहीं थी, नारी सामाजिक एवं आर्थिक दृष्टि से परतन्त्र थी। निर्धन वर्ग की स्त्रियाँ धनार्जन करती थीं, किन्तु कुलीन घरों की स्त्रियों से धनार्जन की अपेक्षा नहीं की जाती थी। समाज में गृहिणी, पत्नी, प्रेयसी, माता के विविध रूपों में आहृत होने पर भी वह अपने व्यक्तिगत आचरण में स्वतन्त्र नहीं थी। पुरुषों के लिए बहुविवाह की स्वीकृति भी नारी की परतन्त्रता में सहायक थी। स्त्री पति का तिरस्कार एवं अपमान सहती हुई भी पतिकुल में रहने को विवश थी, किन्तु पुरुष सच्चरित्रता एवं शीवती पत्नी के रहते हुए भी बहुविवाह के लिए स्वतन्त्र था। पतिव्रता सम्बन्धी नियमों का कठोरता के साथ पालन होता था, किन्तु पत्नी धर्म का पालन के लिए निर्धारित नियम नहीं थे। पुरुषों के लिए बहुभार्यात्व की प्रथा थी, राजाओं की प्राय: एकाधिक पत्नियाँ हुआ करती थीं। कुलनारियों के अतिरिक्त एक प्रकार की सार्वजनिक स्त्रियाँ भी थीं जो गणिका नाम से पुकारी जाती थीं। सामान्यतया लोग इन्हें हेय दृष्टि से देखते थे।

दूसरी ओर माघकाव्य में यह भी उल्लेख मिलता है कि राजकुल की स्त्रियाँ आपातकाल में शासन में सहयोग देती थीं परन्तु राजनीति में उसका सक्रिय योगदान नहीं था। राजकुल की स्त्रियों को राजपुरुषों के साथ वार्तालाप, अतिथि सत्कार, यज्ञ कार्य में सहयोग, पर्यटन, क्रीडा करने, मनोरंजन तथा सामूहिक समारोह में भाग लेने की स्वतन्त्रता थी। धार्मिक क्षेत्र में नारी पति को सहयोगिनी एवं सह-धर्मचारिणी थी। धर्मानुष्ठान एवं धार्मिक क्रियाएँ बिना पत्नी के सम्पन्न नहीं हो सकती थी प्रत्येक धार्मिक संस्कार पत्नी के साथ करणीय था।

निष्कर्षत: समाज रचना के लिए नर और नारी स्तम्भ स्वरूप हैं। अत: दोनों को पारस्परिक सामञ्जस्य एवं सहयोग से कार्य करना चाहिए और एक-दूसरे के प्रति उदार एवं सहानुभूति पूर्ण दृष्टिकोण रखना चाहिए। पुरुष द्वारा नारी का अनादर एवं अपमान उसके लिए सुखद न होकर दु:खद ही होता है। जो समाज के लिए भी घातक तत्त्व सिद्ध होता है। नारी का पतन समाज का पतन है और नारी का उत्कर्ष समाज का उत्कर्ष। अत: नारी को समाज की प्रगति का मूल मानकर उसका सर्वथा आदर करना चाहिए यही माघ का समाज व उसके कर्णधारों के लिए सन्देश है।

# कविसमय की अवधारणा एवं शिशुपालवध महाकाव्य

- डॉ. अजय कुमार झा*

संस्कृत साहित्य के समीक्षा शास्त्र में कविसमय की अवधारणा का विवेचन आचार्य राजशेखर अपनी रचना 'काव्यमीमांसा' में करते हैं। उनसे पहले इस विषय पर किसी आचार्य ने कोई महत्त्वपूर्ण विवेचन नहीं किया है। सर्वप्रथम राजशेखर इस विषय का वर्णन करते हैं :-

पहले के विद्वानों ने सहस्र शाखाओं वाले वेद का अवगाहन करके, शास्त्रों को समझकर, देश-देशान्तर तथा विभिन्न द्वीपों का भ्रमण करके जिन तत्त्वों की उपलब्धि कर उन्हें रचना में संजोया, उनमें देश, काल आदि की अपेक्षा से अन्यथा होता हुआ भी तथात्व रूप में निबद्ध जो पदार्थ है, वह कविसमय है। इस कविसमय के मूल को न देखने वाले तथा प्रयोगमात्र को देखने वाले (अधकचरे कवियों ने) रूढ़ कर दिया। इस प्रकार कविसमय का मूल कुछ और है तथा एक-दूसरे को लाभान्वित करने के लिए स्वार्थवश धूर्त कुछ लोगों द्वारा चलाया हुआ गलत अर्थ कुछ और है।[1]

राजशेखर के इस वर्णन से कविसमय के संदर्भ में निम्न तथ्य उभर कर आते हैं -

1. काव्यों में कविसमय के सन्निवेश की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है,

---

* सत्यवती कॉलेज (दिल्ली विश्वविद्यालय), अशोक विहार, दिल्ली

1. काव्यमीमांसा, अध्याय 14, पृ. 197

2. इसके मूल में वेदादि शास्त्रों के गहन अध्ययन और भ्रमण से प्राप्त ज्ञान समाहित है।
3. ये अपने देश, कालादि से अन्यथा होते हुए भी तथारूप होते हैं।
4. कुछ धूर्त कवियों ने इसके यथार्थ को समझे बिना इसको रूढ़ कर दिया है।

**आचार्य राजशेखर ने कविसमय की परिभाषा दी है-**

**अशास्त्रीयमलौकिकं च परम्परायातं यमर्थमुपनिबध्नन्ति कवयः स कविसमय[1]?** अर्थात् कविलोग जिस अशास्त्रीय, अलौकिक तथा परम्परागत अर्थ को निबद्ध करते हैं, वह कविसमय है। इस लक्षण में तीन प्रमुख बातें है- (1) कविसमय अशास्त्रीय और अलौकिक है, (2) यह परम्परागत है तथा (3) कवियों द्वारा उपनिबद्ध अर्थ है।

**अशास्त्रीय और अलौकिक :-** अशास्त्रीय और अलौकिक कहने का अर्थ शास्त्र-विरूद्ध और लोक-विरूद्ध नहीं है। इसका तात्पर्य यह है कि यह कवि की प्रतिभा की नवीन उद्भावना होती है, जिसके लिए शास्त्र और लोक का समर्थन अनिवार्य नहीं हैं। जैसे- अन्धकार का मुष्टिग्राह्य और सूचीभेद्य होना लोक और शास्त्र से समर्थित नहीं है।

**परम्परागत :-** कविसमय को परम्परायात कहने का तात्पर्य है कि कविसमय के प्रयोग में प्राचीन तथा प्रसिद्ध कवियों को प्रमाण मानना चाहिए।

**(3) कवि उपनिबद्ध अर्थ :-** कविसमय की व्याप्ति काव्य जगत् तक ही है। लोक में अथवा किसी अन्य साहित्य में ऐसे प्रयोग नहीं हो सकते हैं। यह पूर्णतः कवियों की प्रतिभा है और काव्य तक सीमित रहता है। चित्रकला मूर्तिकला आदि यत्र-तत्र ऐसी अवधारणाएँ देखने को मिलती हैं। परन्तु वहाँ ये अवधारणाएँ काव्यजगत् से ही गई हैं।

---

1. काव्यमीमांसा, पृष्ठ 197

आचार्य राजशेखर के अनुसार कविसमय का अर्थ-निबन्धन है। यह अर्थ-निबन्धन जाति, द्रव्य, गुण और क्रिया में होता है। जात्यादि में अर्थ-निबन्धन तीन प्रकार से होता है[1] - (1) असत्-निबन्धन (2) सत्-निबन्धन तथा (3) नियम-निबन्धन। आचार्य राजशेखर **असत्-निबन्धन** को वर्ण्य वस्तु का संस्कार कहते हैं। इसमें वस्तु के प्रकृत स्वरूप का विधान न करके अप्रकृत स्वरूप का विधान किया जाता है। जैसे अपयश और पाप का कृष्ण वर्ण होना। अपयश और पाप अमूर्त अवधारणाएँ हैं। अमूर्त का कोई रंग नहीं होता है। अपयश और पाप अमूर्त होने के कारण वर्णहीन हैं, परन्तु कवि परम्परा इन दोनों को कृष्ण वर्ण का मानती है। यहाँ अपयश और पाप के अप्रकृत रूप का विधान है। **सत्-निबन्धन** में वस्तु के प्रकृत स्वरूप की अस्वीकृति होती है। इसमें वस्तु पर अप्रकृत विशेषताओं का आरोप नहीं किया जाता है, परन्तु वस्तु में स्वाभाविक रूप से विद्यमान विशेषताओं का निराकरण कर दिया जाता है।[2] जैसे- मालती पुष्प के विषय में कवि-प्रसिद्धि है कि यह वसन्त ऋतु में नहीं खिलता है। वस्तुतः यह पुष्प वर्ष में दो बार खिलता है- वसन्त एवं वर्षा-शरद् ऋतु में। परन्तु वर्षा और शरद् ऋतु में इसकी आभा विशेष मनोहारी होती है। सम्भवतः इसी कारण से कवि परम्परा में वसन्त ऋतु में मालती के फूल न खिलने की परम्परा विकसित हो गई।

**नियम-निबन्धन**- इसमें वस्तु के विविध वृत्तियों का निराकरण करके एक का नियमन किया जाता है। कहने का तात्पर्य यह है कि किसी वस्तु की अनेक स्वाभाविक प्रवृत्तियाँ होती हैं। परन्तु जब उन वृत्तियों में से किसी एक वृत्ति को प्रधान बना दिया जाता है तथा उसी में वह रूढ़ हो जाता है, तब ऐसे निबन्धन को नियम-निबन्धन कहते हैं।[3] जैसे- कवि-परम्परा के अनुसार मकर केवल समुद्र में रहता है।

---

1. स च चतुर्द्धा जातिद्रव्यगुणक्रियारूपार्थतया। तेऽपि प्रत्येकं त्रिधा असतो निबन्धनात्, सतोऽप्यनिबन्धनात्, नियमतश्च। काव्यमीमांसा, पृ. 197
2. वही, अध्याय 14 पृष्ठ 200
3. अनेकत्र प्रवृत्तवृत्तीनामेवकत्राचरणं नियमः। वही, अध्याय, 14 पृ. 201

सामान्य रूप से मकर की स्थिति समुद्र तथा नदियों में होती है। परन्तु समुद्र के गम्भीर तथा अथाह जल में मकर स्वच्छन्दता पूर्वक विहार करता है। नदियों में ऐसा नहीं होता है। इसलिए मकर-विहार की समुद्र में श्रेष्ठता के कारण कवि-परम्परा में मकर की स्थिति समुद्र में ही होती है। यह नियम-निबन्धन का उदाहरण है।

इस प्रकार काव्य में सौन्दर्य की प्रतिष्ठा के लिए तथा उसकी सुष्ठु चर्वणा के लिए कविगण जागतिक तथा शास्त्रीय विषयों को अजागकि और अशास्त्रीय रूप में प्रस्तुत करते हैं। ऊपर वर्णित तीनों प्रकार का निबन्धन जाति, द्रव्य, गुण और क्रिया में होता है।[1] **जाति में निबन्धन**- कवि-परम्परा में चन्दन के वृक्ष केवल मलय पर्वत पर होते हैं और उनमें फल तथा पुष्प नहीं लगते हैं। ये दोनों ही तथ्य वास्तविकता से दूर हैं। यह वृक्ष मलय पर्वत के अतिरिक्त अन्य स्थलों पर भी होता है तथा इनमें फूल और फल भी लगते हैं। वनौषधिदर्पणकार के अनुसार चन्दन के पुष्प फीके और बाद में बैंगनी हो जाते हैं। परन्तु कवि की दृष्टि उपयोगितावादी होती है। वह मलय पर्वत के सौन्दर्य पर मुग्ध है इसलिए वह चन्दन वृक्ष का सम्बन्ध मलयपर्वत के साथ स्थायी कर देता है। इसी प्रकार चन्दन वृक्ष का काष्ठ ही उपयोगी होती है। उसके पत्ते, पुष्प और फल का कोई उपयोगी नहीं होता है। अतः काव्य संसार में चन्दन का वृक्ष फूल और फलों से रहित हो गया। इस प्रकार का निबन्धन जातिगत निबन्धन कहलाता है।

**द्रव्य में निबन्धन**- इसको एक उदाहरण से समझते हैं। काव्य-संसार में ज्योत्स्ना को अञ्जलि-ग्राह्य और घड़े में भरने योग्य माना जाता है। आचार्य राजशेखर ने भी कहा है- **कुम्भावहाह्यत्वं च ज्योत्स्नायाः**[2]**।** लौकिक जगत् में ज्योत्स्ना प्रकाशस्वरूप है। लोक में कोई भी ज्योत्स्ना को अञ्जलिग्राह्य तथा घड़े में भरने योग्य नहीं कहता है। वस्तुतः चन्द्रमा की ज्योत्स्ना का औषधियों पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है। इसके

1. काव्यमीमांसा, पृ. 197
2. वही, पृ. 202

अतिरिक्त उसकी शीतलता सुखमय होती है। रात्रि के अंधकार को दूर करना भी उसकी एक प्रमुख उपादेयता है। सम्भवतः इन्हीं कारणों से ज्योत्स्ना का सम्बन्ध तरल द्रव्य से जुड़ गया। सामान्यतया तरल पदार्थ अञ्जलिग्राह्य तथा घड़े में भरने योग्य होता है तथा इसी समानता के कारण ज्योत्स्ना को भी काव्य-संसार में अञ्जलि-ग्राह्य तथा घड़े में भरने योगय माना गया है।

**गुण में निबन्धन**- गुण में निबन्धन के उदाहरण के रूप में आचार्य राजशेखर ने 'कुन्द' पुष्प का उदाहरण दिया है- कुन्द के कुड्मल लाल नहीं होते हैं।[1] कुन्द एक प्रकार का पुष्प है जो शिशिर और वसन्त की सन्धि काल में विकसित होता है। इस पुष्प के पंखुड़ियों का ऊपरी भाग ईषत् रक्ताभ होता है किन्तु विकसित होने पर श्वेत दिखाई देता है। अनेक कवियों ने दाँतों की उपमा कुन्द-कुड्मलों से दी हैं। दाँतों का रंग श्वेत होता है। श्वेत दाँत ही सौन्दर्योत्पादक होते हैं। इसलिए कवियों ने श्वेत दाँतों के साथ उपमान-उपमेय स्थापित करने के लिए 'कुन्द के कुड्मल रक्तिम' नहीं होते हैं, ऐसा कहा है।

**क्रिया में निबन्धन**- चकोर पक्षी के विषय में दो कवि प्रसिद्धियाँ हैं- (1) वह चन्द्रिका पान करता है तथा अंगारा चुगता है। लौकिक जगत् में चकोर एक सामान्य पक्षी है, जो सामान्य पक्षी के समान व्यवहार करता है। चन्द्रिका का पान और अंगारा चुगना किसी भी पक्षी की विशेषता नहीं है। किसी भी प्रमाण से चकोर की ये दोनों क्रियायें समर्थित नहीं है। पक्षी-शास्त्रीय ग्रन्थों से पता चलता है कि चकोर सन्ध्या काल में मुखर हो जाता है। सन्ध्या में ही चन्द्रमा की किरणें पृथ्वी पर आती है। सम्भवतः इसी समानता के आधार पर चकोर के चन्द्रिका पान करने की कल्पना जुड़ गयी। इसी प्रकार चकोर राख में अपना खाद्य पदार्थ खोजता है। राख अंगार नहीं है परन्तु इसी से चकोर को अंगारा चुगने वाला कहा जाने लगा।

---

1. काव्यमीमांसा पृ. 211

चन्द्रिकापान और अंगार चुगना दो विपरीत क्रियायें हैं। एक ही पक्षी में दो विपरीत क्रियायें कल्पित करने का उद्देश्य वस्तुतः रूचि-वैलक्षण्य को प्रकट करना है।

इस प्रकार आचार्य राजशेखर ने कविसमय के भेदोपभेद के वर्णन से इसकी गम्भीरता को प्रकट किया है। यह एक प्रकार का अर्थ-निबन्धन है जो वस्तु की जाति, द्रव्य, गुण और क्रिया में किया है। यह अर्थ-निबन्धन वस्तु के वास्तविक स्वरूप से भिन्न होने पर भी किसी न किसी रूप में उससे जुड़ा होता है।

मेघदूत के प्रसिद्ध टीकाकार आचार्य मल्लिनाथ ने कतिपय प्रसिद्ध कविसमयों का उल्लेख किया है-

**स्त्रीणां स्पर्शात् प्रियंगुर्विकसति वकुलः सीधुगण्डूषसेकात्।**
**पादाघातादशोकस्तिलककुरवकौ वीक्षणालिंगनाभ्याम् मन्दारो।।**

**नर्मवाक्यात् पटुमृदुहसनाच्चम्पको वक्त्रावाताच्च चूतोगीतान्न।**
**मेरूर्विकसति च पुरो नर्तनात्कर्णिकार।।**[1]

अर्थात् स्त्रियों के स्पर्श से प्रियंगु, उनके मदिरा के कुल्ले से वकुल, पैर के आघात से अशोक, देखने से तिलक, आलिंगन करने से कुरवक, मधुरवाणी से मंदार, मुस्कान से चम्पक, फूँक से आम, गीत से नमेरु और नृत्य से कनेर खिल जाते हैं।

आचार्य हेमचन्द्र ने अपनी रचना काव्यानुशासन में कवि समय की एक लम्बी सूची प्रस्तुत की है।[2] प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी ने काव्यानुशासन में वर्णित कविसमयों में से कुछ प्रमुख का उल्लेख किया है- समुद्र में वडवाग्न, लहर आदि, नदी में जलज, कमल, भ्रमर, हंस आदि, आश्रम में हिंसक पशुओं का शान्त रहना, चक्रवाक मिथुन का आदर्श प्रेम तथा रात्रि विरह, चातक द्वारा स्वाति नक्षत्र का ही जल पीना, अंधकार का मुष्टिग्राह्य या सूचीभेद्य होना, चकोर का चन्द्रिका पान, यश,

1. मेघदूत, 2/28 पर मल्लिनाथ की टीका
2. काव्यानुशासन, अध्याय - 1

हास का शुक्ल वर्ण का होना, कोप और अनुराग का रक्तवर्ण का होना। अशोक वृक्ष में फल न लगना, चन्दन वृक्ष में पुष्प और फल का अभाव, वसंत ऋतु में ही कूजना, काम–वासना का मूर्त और अमूर्त होना, कृष्ण और नील वर्ण की एकता, कृष्ण और हरित की एकता, पीत और रक्त की एकता, शुक्ल और गौर की एकता आदि।[1]

कविसमय विषयक इन सूचियों का विश्लेषण करने पर इसके विषय में निम्नलिखित तथ्य सामने आते हैं–

(1) कविसमय महाकवियों की नवनवोन्मेष–शालीनी प्रतिभा का प्रतिफल है। विशिष्ट प्रतिभा के धनी महाकवि ही कविसमय की उद्भावना कर पाते हैं। सामान्य कवि विशिष्ट कवियों द्वारा उद्भावित कवि समय का प्रयोग अपनी रचनाओं में करते हैं। धीरे–धीरे कविसमय की उद्भावना कम तथा प्रयोग अधिक होने लगा। इसी से कविसमय विषयक परम्परा का निर्माण हुआ तथा कालान्तर में कविसमय का परम्परायत होना अनिवार्य हो गया।

(2) कविसमय के परम्परायत होने से काव्यशास्त्र के साथ–साथ कवि समय की भी क्षति हुई। कविसमय की नई उद्भावनाएँ बन्द हो गई।

(3) कविसमय की अवधारणा का मुख्य लक्ष्य था– काव्य में प्रयोगधर्मित के साथ–साथ काव्यासौन्दर्य की सृष्टि।

प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी भी कवि समय में तीन तत्त्वों की उपस्थिति स्वीकार करते हैं–

(1) कवि प्रतिभा की मौलिकता तथा स्वातंत्र्य : जिससे अज्ञात, अदृष्ट अर्थ प्रतिभात होते हैं।

(2) मर्यादा : जो इन अर्थों के औचित्य की स्थापना करती हैं, तथा–

---

1. संस्कृत काव्यशास्त्र और काव्य–परम्परा, पृ. 85

(3) परम्परा : जो इन अर्थों को सुसंबद्ध रूप देती है।

इस प्रकार कविसमय के विविध पक्षों एवं भेदोपभेद पर विमर्श करने से स्पष्ट होता है कि यह काव्य में सौन्दर्यवर्धक तत्त्वों में प्रमुख है। यह अलंकारों में भी प्राणाधान करने वाला तत्त्व है। यह रस को महनीय बनाता है। यह वर्ण्यविषयक को चमत्कारपूर्ण एवं प्रभावोत्पादक बनाता है। काव्यशास्त्र के आचार्यों ने इसको अलंकार के साधन के रूप में दोषापहार के रूप में तथा ध्वनि की सामग्री के रूप में स्वीकार किया है।

महाकवि माघ प्रणीत शिशुपालवध महाकाव्य में काव्यशास्त्री परम्पराओं एवं सिद्धान्तों के साथ-साथ अनेक नूतन प्रयोग मिलते हैं, कविसमय के विषय में भी ये बातें लागू होती हैं। महाकवि माघ ने प्राचीन महाकवियों द्वारा प्रयुक्त कविसमय का प्रयोग अपने महाकाव्य में खूब किया है, साथ ही अपनी नवनवोन्मेषशालीनी प्रतिभा से अनेक मौलिक कविसमयों का उन्मेष किया है जो परवर्ती साहित्यकारों के लिए अत्यन्त उपादेय सिद्ध हुआ।

शिशुपालवध एक बृहत्महाकाव्य है। कविसमय की दृष्टि से इस सम्पूर्ण महाकाव्य का अध्ययन एक शोध-प्रबन्ध का विषय बन जाता है। इसलिए इस शोध निबन्ध में शिशुपालवध महाकाव्य में प्रयुक्त कतिपय प्रसिद्ध एवं महाकवि माघ की मौलिक प्रतिभा के परिचायक कविसमयों को अध्ययन कर प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।[1]

शिशुपालवध महाकाव्य के प्रथम सर्ग में भगवान् श्रीकृष्ण के शरीर की तुलना नवीन मेघ के श्यामवर्ण से की है। राजशेखर के अनुसार मेघ को श्यामवर्ण का मानना कविसमय है। यद्यपि मेघ श्याम और श्वेत वर्ण का होता है। परन्तु वर्षाऋतु में मेघ के श्याम वर्ण की प्रधानता होती है। वर्षाऋतु की कालीघटा घनघोर वर्षा कराती है। इसलिए कवियों ने मेघ के श्यामवर्ण की प्रधानता के कारण इसके अन्य वर्णो

---

1. संस्कृतकाव्यशास्त्र और काव्य परम्परा, पृ. 84

का निराकरण कर श्यामवर्ण का स्वीकार किया है। शिशुपालवध में यहाँ पर शिशुपाल के वध के लिए भगवान् श्रीकृष्ण के प्रस्थान की उपमा श्याम मेघ से उचित ही है।[1]

इसी सर्ग में भगवान् श्रीकृष्ण की सर्वव्यापकता को समुद्र में वड़वाग्नि के समान बताई गई है। समुद्र में वड़वाग्नि की स्थिति कविसमय के अन्तर्गत आता है। वड़वाग्नि समुद्र के अन्दर जल में रहता है। जल और अग्नि कभी साथ-साथ नहीं रह सकते हैं। परन्तु कवियों ने काव्यों में इन दोनों को साथ-साथ दिखला कर स्वभाव-वैलक्षण्य का प्रतिपादन किया है। यहाँ पर भी भगवान् श्रीकृष्ण की सौम्य चरित्र में उग्र का आधान इस कविसमय के प्रयोग से किया गया है।[2]

द्वितीय सर्ग में भगवान् श्रीकृष्ण के दाँतों की उपमा कुन्द पुष्प की कलियों से दी गई है। कविसमय के अनुसार कुन्द पुष्प यद्यपि कई रंगों का होता है। परन्तु उसकी श्वेतता प्रसिद्ध है। इसी प्रसिद्धि के कारण काव्य पराम्परा में कुन्द पुष्प केवल श्वेत माना जाता है तथा कविगण श्वेतता की प्रकाष्ठा को बताने के लिए इसका प्रयोग करते हैं। यहाँ पर भी भगवान् श्रीकृष्ण के दाँतों की श्वेतता को बताने के लिए ही कवि ने उसकी उपमा कुन्द पुष्प से दी है। यह उपमा प्रयोग भी कविसमय के अन्तर्गत आता है।[3]

शिशुपालवध महाकाव्य के चतुर्थ सर्ग में महाकवि माघ ने एक नया प्रयोग किया है। रैवतक पर्वत के वर्णन का प्रसंग है। रात्रि की वेला है, चन्द्रमा की किरणें इस पर्वत पर पड़ रही हैं। इसी पर्वत पर अनेक

---

1. स काञ्चने यत्र मुनेरनुज्ञया नवाम्बुदश्यामवपुर्न्यविक्षत।
   जिगाय जम्बूजनितश्रियः श्रियं सुमेरुशृङ्गस्य तदा तदासनम्॥ शिशुपालवध, 1/19
2. स तप्तकार्त्तस्वरभास्वराऽम्बरः कठोरताराधिपलाञ्छनच्छविः।
   विदिद्युते वाडवजातवेदसः शिखाभिराश्लिष्ट इवाम्भसां निधिः॥ वही, 1/20
3. द्योतितान्तःसभैः कुन्दकुड्मलाग्रदतः स्मितैः।
   स्नपितेवाभवत्तस्य शुद्धवर्णा सरस्वती॥ वही, 2/7

रत्न हैं, जिनकी किरणें भी इस को प्रकाशित कर रही हैं। यहाँ पर चन्द्रमा की किरणों एवं रत्नों की किरणों के मिश्रित होने से ऐसा प्रतीत होता है मानो सहस्त्र किरणों वाले सूर्य उदित हो गये हैं और इसी भ्रम में वहाँ के कमल रात्रि में भी विकसित हो जाते हैं।[1] यहाँ रैवतक पर्वत पर रात्रि में भी दिन होना तथा कमल में भ्रम होना महाकवि का नवीन प्रयोग है। यह प्रयोग कविसमय का सुन्दर निदर्शन है।

सप्तम सर्ग में रैवतक पर्वत पर भगवान् श्रीकृष्ण के विहार का वर्णन है। उनके साथ अनेक युवक-युवतियाँ भी रैवतक पर्वत पर जा रही हैं। युवतियों के विलासपूर्वक गमन से उनके नखों से निकलने वाली प्रभा इन्द्रधनुष का निर्माण रही हैं।[2] यहाँ युवतियों के नखों की प्रभा से इन्द्रधनुष के निर्माण के वर्णन में महाकवि की नवीन कल्पना सामर्थ्य का परिचय मिलना है। यह प्रयोग कविसमय की श्रेणी में आता है।

इसी सर्ग में युवतियाँ मदमस्त होकर जा रही हैं। उनके हाथ के कंगन बज रहे हैं, वृक्ष के नीचे आने पर उन पर वृक्ष के फूल गिरते हैं। यहाँ महाकवि अपने कल्पना वैभव से युवतियों पर पुष्प के स्वाभाविक पतन को वृक्ष के हर्ष के रूप में वर्णित करते हैं, अर्थात् युवतियों के समागम से प्रसन्न वृक्ष उन पर पुष्प वृष्टि करते हैं।[3] यहाँ पर महाकवि माघ ने अशास्त्रीय और अलौकिक कल्पना की है। कहीं पर भी अवचेतन वृक्ष की प्रसन्नता की बात नहीं कही गई है। अतः यहाँ कविसमय का सुन्दर सन्निवेश दृष्टिगोचर होता है।

---

1. भिन्नेषु रत्नकिरणैः किरणेष्विहेन्दोरुच्चावचैरुपगतेषु सहस्रसंख्याम्।
   दोषापि नूनमहिमांशुरसौ किलेति व्याकोशकोकनदतां दधते नलिन्याः॥
   शिशुपालवध, 4/46
2. नखरुचिरचितेन्द्रचापलेखं ललितगतेषु गतागतं दधाना।
   मुखरीतवलयं पृथौ नितम्बे भुजलतिका मुहुरस्खलत्तरुण्याः॥ वही, 7/4
3. मुदितमधुभुजो भुजेन शाखाश्चलितविश्रृंखलशंखकं धुवत्याः।
   तरुरतिशयितापराङ्गनायाः शिरसि मुदेव मुमोच पुष्पवर्षम्॥ वही, 7/30

इसी सर्ग में नायिका के वर्णन प्रसंग में कहा गया है कि कोई अंगना ऊँचे स्थान पर स्थित फूल का तोड़ने की इच्छा से अपने हाथ को फूल की तरफ ऊपर उठाती है और पंजे पर खड़ी हो जाती है। जिससे फूल तक उसके हाथ पहुँच जाए परन्तु वह अपने ही दोनों स्तनों के भार को न सह सकने के करण गिर जाती है।[1]

महाकवि माघ ने नायिका के सौन्दर्य एवं भोलापन को प्रकट करने के लिए जिस प्रकार से वर्णन किया है, नायिका के गिरने का कारण उसके ही स्तनद्वय को बताया है, वह अशास्त्रीय और अलौकिक होने पर भी काव्य-सौन्दर्य में चमत्कार का आधान करता है। स्तनद्वय का बड़ा होना तथा उसके कारण नायिका का गिरना ये दोनों ही कविसमय का सुन्दर दृष्टान्त है।

संस्कृत कवियों ने प्रेम के संयोग और वियोग पक्षों का वर्णन करने के लिए चकवा-चकवी नामक पक्षी का भरपूर प्रयोग किया है। यह एक काल्पनिक पक्षियों (नर और मादा) का जोड़ा है। इनका प्रेम अद्भुत है। कहा जाता है कि ये जोड़े नदी के किनारे पर रहते हैं। दिन भर ये पक्षीद्वय साथ-साथ रहते हैं, परन्तु रात्रि होने पर दैव-शाप के कारण इनका वियोग हो जाता है और रात भर ये एक-दूसरे के वियोग में तड़पते रहते हैं। पुनः प्रातःकाल इनका मिलन होता है। यही कारण है कि आदर्श प्रेमी-युग्म के रूप में इन पक्षीद्वय का वर्णन साहित्य में किया गया है।

महाकवि माघ ने अष्टम सर्ग में अपने-अपने प्रियतमों के द्वारा प्रियतमाओं के गाढ़ चूम्बनादि करने पर भी सीत्कारादि न करने की उपमा चकवा-चकवी से दी है।[2]

---

1. मृदुचरणतलाग्रदुःस्थितत्वादसहतरा कुचकुम्भयोर्भरस्य।
   उपरि निरवलम्बनं प्रियस्य न्यपतदथोच्चतरोच्चिचीषयाऽन्या॥ शिशुपालवध, 7/48
2. मुग्धायाः स्मरललितेषु चक्रवाक्या निःशंकं दयिततमेन चुम्बितायाः।
   प्राणेशानभिविदधुर्विधूतहस्ताः सीत्कारं समुचितमुत्तरं तरुण्यः॥ वही, 8/13

महाकवि के अनुसार चकवा जब अपनी प्रियतमा का निर्दयतापूर्वक गाढ़ आलिङ्गन, चुम्बन, मर्दन करता है तब भी अपने प्रियतम के प्रेम में मूढ़ हुई चकवी न ही किसी प्रकार का प्रतिरोध करती है और न ही सीत्कारादि। इसी प्रकार नायिकाएँ अपने प्रियतमों के गाढ़ आलिङ्गन में मूढ़ हो गई और किसी प्रकार से सीत्कार आदि के द्वारा विरोध प्रकट नहीं की।

इसी सर्ग के एक श्लोक में एक पोखर (तालाब) पर नायिकाओं के पहुँचने पर पोखर कमल के पुष्पों से अर्घ्य देकर, पक्षियों के शब्दों से सम्भाषण करके, फेन से खुशी प्रकट करके तथा जल से पैर धोकर अतिथियों का सत्कार करता है।[1] यहाँ अचेतन पोखर का चेतन प्राणियों जैसा व्यवहार करना न शास्त्रसिद्ध है और न ही लोकसिद्ध। परन्तु यह वर्णन काव्य-सौन्दर्य में वृद्धि कर रहा है। इसलिए यहाँ कविसमय का मनोरम सन्निवेश है।

इसी सर्ग के एक प्रसंग में वर्णन है कि जलाशय में स्नान करने के लिए गई युवतियों ने वहाँ खूब क्रीडा किया। जलक्रीडा का भरपूर आनन्द लेकर युवतियाँ जलाशय से बाहर निकली और भीगे वस्त्रों को उतार कर सूखे नए वस्त्र पहनने लगी। नए वस्त्र रमणियों के सुन्दर शरीर पर जाकर आनन्द से हँसने लगे तथा भीगे वस्त्र उनके शरीर से वियोग के कारण जल के बूँदों को गिराते हुए अपनी पीड़ा को प्रकट कर रहे थे।[2] यहाँ निर्जीव वस्त्रों में आनन्द और पीड़ा की अनुभूति का वर्णन कविकल्पित होने के कारण कविसमय की श्रेणी में आता है। यहाँ यह वर्णन सापेक्ष है। इस नूतन प्रयोग से रमणियों के शरीर के अतिशय सौन्दर्य की सहज अभिव्यञ्जना हो रही है।

---

1. उत्क्षिप्तस्फुटितसरोरुहार्घ्यमुच्चैः सस्नेहं विहगरुतैरिवालपन्ती।
   नारीणामथ सरसी सफेनहासा प्रीत्येव व्यतनुत पाद्यमूर्मिहस्तैः॥
   शिशुपालवध, 8/14
2. वासांसि न्यवसत यानि योषितस्ताः शुभ्राभ्रद्युतिभिरहासि तैर्मुदेव।
   अत्याक्षुः स्नपनगलज्जलानि यानि स्थूलाश्रुस्त्रुतिभिर्ररोदि तैः शुचेव॥ वही, 8/66

संस्कृत कवियों के लिए देवताओं में कामदेव का विशेष महत्त्व है। लगभग सभी कवियों ने अपनी रचनाओं में किसी न किसी रूप में कामदेव का वर्णन किया है। शास्त्रों में कामदेव को प्रजनन का देवता माना गया है। परन्तु संस्कृत साहित्य में कामदेव श्रृंगारिक चेष्टाओं के देवता के रूप में, वासना के देवता के रूप में रूढ़ हो गये हैं। यह देवता नर और नारी में एक दूसरे के प्रति आर्कषण उत्पन्न करता है। भ्रमर पंक्ति इसके धनुष की प्रत्यञ्चा है और पुष्प इसके बाण हैं। अपने इसी बाण से यह स्त्री और पुरुष को कामोन्मत्त बनाता है।

महाकवि माघ ने भी अपने महाकाव्य शिशुपालवध में कामदेव का वर्णन अनेक स्थलों पर किया है। नवम सर्ग के श्लोक संख्या 38 से 43 तक[1] कामदेव का मनोरम वर्णन है। कामदेव दिनभर बूढ़े व्यक्ति के समान शान्त रहता है। रात्रि होते ही खिड़कियों से चन्द्रमा की किरणों का प्रवेश होते ही वह वैसे ही चञ्चल हो जाता है, जैसे बूढ़ा व्यक्ति छड़ी पाकर। फिर वह अपना तीर चलाना शुरू कर देता है। उसके तीर से कामीजनों की वासना जागृत हो जाती है, युवक-युवतियाँ एक-दूसरे के पास जाकर अपनी वासना को संतुष्ट करते हैं।

यहाँ कामदेव का वर्णन कविसमय की दृष्टि से किया गया है।

इसी प्रकार इस महाकाव्य के 12वें सर्ग में हाथियों के मदजल का वर्ण[2] 11वें और 13वें सर्ग में उदयाचल और अस्ताचल का वर्णन[3] कविसमय के अन्तर्गत आते हैं।

**संदर्भग्रन्थ सूची-**

कविसमय मीमांसा – विष्णुस्वरूप, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, 196

1. शिशुपालवध, 9/38-43
2. वही, 11/7
3. वही, 13/35, 64

| | | |
|---|---|---|
| काव्यमीमांसा (राजेश्वर) | – | केदारनाथ शर्मा, बिहार राष्ट्र भाषा परिषद्, पटना, 1962 |
| काव्यादर्श (दण्डी) | – | देवेन्द्रनाथ शर्मा, बिहार राष्ट्र भाषा परिषद्, पटना, 1962 |
| काव्यानुशासन (हेमचन्द्र) | – | मेहरचन्द लक्ष्मण दास, दिल्ली– 1986 |
| काव्यालंकार (भामह) | – | देवेन्द्रनाथ शर्मा, बिहार राष्ट्र भाषा परिषद्, पटना, 1962 |
| काव्यालंकार सूत्र (वामन) | – | चौखम्बा संस्कृत सीरीज, बनारस, 1907 |
| माघ में वक्रोक्ति | – | जयप्रकाश नारायण, विद्यानिधि प्रकाशन, दिल्ली 2008 |
| शब्दकल्पद्रुम | – | राधाकान्तदेव बहादुर, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, 1971 |
| शिशुपालवध (माघ) | – | चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1993 |
| शिशुपालवध (माघ) | – | रामनारायण बेनी प्रसाद, इलाहाबाद, 1969 |
| संस्कृत काव्यशास्त्र और काव्य-परम्परा | – | राधावल्लभ त्रिपाठी, प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली, 2004 |
| संस्कृत साहित्य का इतिहास | – | बलदेव उपाध्याय, शारदा मंदिर, वाराणसी, 2004 |
| संस्कृत हिन्दी कोश | – | वामन शिवराम आप्टे, मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली, 1981 |
| समीक्षा शास्त्र के भारतीय मानदण्ड | – | रामसागर त्रिपाठी, अशोक प्रकाशन, दिल्ली, 1970 |

# महाकवि माघ का वैदुष्य

-डॉ. कुन्दन कुमार*

महाकवि माघ का अविर्भाव सातवीं शताब्दी में हुआ था। कालिदास भट्टि और भारवि इनके पूर्ववर्ती एवं आदर्श कवि थे। अतः 'शिशुपालवधम्' पर इन कवियों की शैली का प्रभाव प्रचुर रूप से देखा जाता है।

राजशेखर काव्यमीमांसा में वाङ्मय का शास्त्र और काव्य दो रूपों में विभाजन कर इस दृष्टि से कवियों के तीन भेद करते हैं– शास्त्रकवि, काव्यकवि और उभयकवि। इस प्रकार भट्टि शास्त्रकवि और कालिदास काव्यकवि हैं। परन्तु महाकवि माघ के काव्य में शास्त्रीय तत्त्वों एवं सिद्धान्तों के वर्णन के साथ-साथ सहृद हृदयसंवेद्य कल्पनाजन्य सूक्ष्मातिसूक्ष्म रसपूर्णभावों का सामञ्जस्य प्राप्त होता है, अतः वे उभयकवि हैं।

माघ के ऊपर तत्कालीन युग की काव्य-प्रवृत्तियों का प्रभाव पूर्णतः परिलक्षित होता है। इनका शास्त्राभ्यास इतना अधिक था कि पूर्ववर्ती कवियों द्वारा प्रभावित होते हुए भी वे शिशुपालवध में पाण्डित्य प्रदर्शन का लोभ संवरण नहीं कर पाये। इस सम्बन्ध में डॉ. भोला शंकर व्यास ने लिखा है–"कालिदास मूलतः कवि हैं और भटिट कोरे वैयाकरण, किन्तु माघ स्वतन्त्र रूप से पाण्डित्य एवं कवित्व को लेकर उपस्थित होते हैं।"

'शिशुपालवधम्' के सूक्ष्मतया अनुशीलन से यह ज्ञात होता है कि उन्हें वेद, वेदान्त, उपनिषद्, धर्मशास्त्र, मन्त्र-तन्त्र, पुराण, इतिहास, छन्द, ज्योतिष, कामशास्त्र, आयुर्वेद, सङ्गीत, सामुद्रिकशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, हयशास्त्र, गजशास्त्र, काव्यशास्त्र, षड्दर्शन, बौद्ध-जैनदर्शन सहित विविध क्षेत्र के शास्त्रों का प्रचुर ज्ञान था। इस प्रकार ये सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र,

---

* टी.जी.टी. 'संस्कृत', दिल्ली सरकार, दिल्ली

पद-वाक्य-प्रमाणज्ञ, सकलविद्यानिष्णात आदि अनेक उपाधियों से विभूषित किये जा सकते हैं। इनके इन्हीं गुणों को देखते हुए डॉ. व्यास इन्हें **'आल राउन्डर स्कॉलर'** मानते हैं।

'शिशुपालवधम्' महाकवि माघ का **'यशः शरीर'** माना जाता है। संभवतः इसी कारण यह 'माघकाव्य' के नाम से प्रख्यात हो गया।

माघ ने अपने युग तक विकसित समस्त साहित्यिक प्रवृत्तियों तथा विधाओं का समावेश अपने काव्य में किया है। महाकाव्य के समस्त उत्कृष्ट गुणों से परिपूर्ण होने के कारण शिशुपालवधम् एक श्रेष्ठ महाकाव्य के रूप में समादृत है। इस महाकाव्य में कालिदास का काव्यसौन्दर्य एवं अभिव्यञ्जना, भारवि का अर्थगौरव, दण्डि का पदलालित्य, भट्टि का शब्दशास्त्रानुराग विद्यमान है। कलापक्ष और भावपक्ष में सन्तुलन स्थापित करते हुए काव्य को सजाने-सँवारने की कला में माघ निष्णात हैं।

महाकवि भारवि इनके पूर्ववर्ती एवं आदर्श कवि थे जिन्होंने **'विचित्र मार्ग'** का प्रवर्तन किया था, जिसमें भावपक्ष की उपेक्षा करके कलापक्ष को बढ़ावा दिया गया। पाण्डित्यप्रदर्शन की इस प्रवृत्ति से माघ न बच सके। माघ में पाण्डित्य एवं वैदुष्य का अहंकार ही था जिसके कारण वे 'किरातार्जुनीयम्' की शैली, वृत्ति और शब्दावली का अनुशरण करते हुए 'शिशुपालवधम्' की रचना की और भारवि से आगे निकल गये। उनका काव्य अपने युग में सर्वाधिक पाण्डित्यपूर्ण और सर्वश्रेष्ठ घोषित हुआ जो आगे चलकर श्रीहर्ष के 'नैषधीयचरितम्' की रचना का प्रेरणास्रोत बना। अद्यापि सम्पूर्ण कविकुल को कई शताब्दियों से चुनौती देता हुआ 'बृहत्त्रयी' अपने सिंहासन पर आरूढ़ है। आज तक 'बृहत्त्रयी' के अभिधान को कोई भी काव्यरचना खण्डित करने का साहस नहीं कर सका है।

काव्यरचना में माघ के सर्वाङ्गीण उत्कर्ष को देखकर ही प्राचीन कवियों एवं आचार्यों ने उनकी मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है। अपने वैशिष्ट्य के कारण अन्य कवियों की अपेक्षा माघ के सम्बन्ध में

प्रशस्तियाँ कुछ ज्यादा ही प्राप्त होती हैं। यथा हि–

1. **उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थगौरवम्।**
   **दण्डिनः पदलालित्यम् माघे सन्ति त्रयो गुणाः॥**
2. **तावद्भा भारवेर्भाति यावन्माघस्य नोदयः।**
   **उदिते नैषधे काव्ये क्व माघः क्व च भारविः॥**
3. **नवसर्गे किराते च नवसर्गे च नैषधे।**
   **नवसर्गगते माघे नवशब्दो न जायते।**
4. **मेघे माघे गतं वयः।**
5. **मुरारिपदचिन्ता चेत्तदा माघेऽरतिं कुरू।**
   **मुरारिपदचिन्ता चेत्तदा माऽघे मतिं कुरू॥**
6. **काव्येषु माघः कविकालिदासः।**
7. **माघेनैव च माघेन कम्पः कस्य न जायते।**
   **स्मरन्तो भा-रवेरेव कवयः कपयो यथा॥**
8. **कृत्स्नप्रबोधकृद्वाणी भारवेरिव भारवेः।**
   **माघेनैव च माघेन कम्पः कस्य न जायते॥**
9. **घण्टामाघः।**
10. **माघेन विघ्नितोत्साहा नोत्सहन्ते पदक्रमे।**
11. **माघः शिशुपालवधं विदधत् कविमदवधं विदधे।**

समस्त प्रशस्तियाँ माघ के कवित्व, पाण्डित्य एवं वैदुष्य के सम्बन्ध में कही गयी हैं। इन प्रशस्तियों तथा 'शिशुपालवधम्' के आलोक में माघ के वैदुष्य से सम्बन्धित कुछ तथ्य अवलोकनीय हैं–

1. **व्याकरणप्रयोग–** माघ व्याकरण के उद्भट विद्वान् थे। उन्होंने व्याकरण के सूक्ष्म नियमों का पालन अपने काव्य में भलीभाँति किया है। व्याकरण के प्रसिद्ध ग्रन्थों का उल्लेख करते हुए लिखते हैं–

**अनुत्सूत्रपदन्यासा सद्वृत्तिः सन्निबन्धना।**
**शब्दविद्येव नो भाति राजनीतिपरस्पशा॥**[1]

उनकी व्याकरण-विषयक विशेषता शिशुपालवधम् में यत्र-तत्र दिख पड़ती है। उनके व्याकरण-विषयक प्रयोग को उस बीहड़ शब्दारण्य की संज्ञा दी जा सकती है जिसमें कोई भी अल्पज्ञानी वैयाकरण दिग्भ्रान्त हो भटक सकता है, जैसे-

**पुरीमवस्कन्दलुनीहि नन्दनं**
**मुषाण रत्नानि हरामराङ्गनाः।**
**विगृह्य चक्रे नमुचिद्विषा बली**
**य इत्थमस्वास्थ्यमहर्दिवं दिवः॥**[2]

यह श्लोक माघ के लकार प्रयोग की सूक्ष्मता एवं विशेषता को प्रमाणित करता है। इसके अतिरिक्त उन्होंने यत्र-तत्र व्याकरणशास्त्र के सिद्धान्तों को भी स्पष्टतः उल्लेख किया है। यथा-

(1) उदात्त स्वर एक पद में अन्य सभी स्वरों का निघात (अनुदात्त) कर देता है-

**निहन्त्यरीनेकपदे यः उदात्तः स्वरानिव।**[3]

(2) मदिरा के मद ने प्रमादाओं के चिरप्रसुप्त विभ्रमविलास को ऐसे प्रकट कर दिया जैसे उपसर्ग ने धातु के गूढ़ अर्थ को-

**सन्तमेव चिरमप्रकृतत्वादप्रकाशितमदिद्युतदङ्गे।**
**विभ्रमं मधुमदः प्रमदानां धातुलीनमुपसर्ग इवार्थम्॥**[4]

इस प्रकार माघ ने अपने व्याकरण ज्ञान को काव्य में अनेकत्र प्रयोग किया है। इसके अतिरिक्त व्याकरण सम्मत नवीन शब्दों का प्रचुर प्रयोग है- **बिभराम्बभूवे, पारेसमुद्रग, मध्येजलम्, वैरायितारः, अघटतेः, निषेदिवान् तथा न्यधायिषाताम्** इत्यादि। इनके व्याकरणज्ञान विषयक

1. शिशुपालवध, 2.112
2. वही, 1-51
3. वही, 2/95
4. वही, 10.15

प्रयोग प्रत्येक सर्ग में उद्धृत हैं। अपने व्याकरण सम्बन्धी पाण्डित्य प्रदर्शन के लिए कदाचित् ही कोई श्लोक हो जिसमें उन्होंने किसी सुन्दर, सुदृड़, ललित तथा नूतन शब्द का प्रयोग न किया हो।

**2. छन्दोयोजना–** माघ ने 'शशुपालवधम्' में कुल 46 छन्दों का प्रयोग किया है, जबकि कालिदास ने 'रघुवंशम्' तथा 'कुमारसंभवम्' में केवल 18 तथा भारवि ने 'किरातार्जुनीयम्' में 24 छन्दों का प्रयोग किया है। भारवि एक सर्ग में कुल 16 छन्दों का प्रयोग करते हैं तो माघ ने एक सर्ग में 22 छन्दों तक का प्रयोग कर डाला है।

उनके छन्दप्रयोग वर्ण्यविषय एवं प्रसङ्ग के अनुकूल काव्यसौन्दर्य को बढ़ाने वाले हैं। रैवतक पर्वत के वर्णन में उसके वैचित्र्य को शब्दचित्रों द्वारा प्रदर्शित करने की भावना से माघ ने अनेक छन्दों का प्रयोग किया है। 'शिशुपालवधम्' में माघ के छन्दप्रयोग उनके वैदुष्य एवं नैपुण्य का परिचायक है।

माघ ने 'धृतश्री' या 'पंचकावली' नामक एक नूतन छन्द का प्रयोग किया है जो इनके अतिरिक्त संस्कृतवाङ्मय में संभवतः और किसी कवि ने नहीं किया है और ऐसा प्रतीत होता है कि इसी श्लोक के आधार पर उसका लक्षण किया गया है। श्लोक इस प्रकार है–

**तुरगशताकुलस्य परितः परमेकतुरङ्गजन्मनः।**
**प्रमथितभूभृतः प्रतिपथं मथितस्य भृशं महीभृता।**
**परिचलतो बलानुजबलस्य पुरः सततधृतश्रिय-**
**श्चिरविगतश्रियो जलनिधेश्च तदाभवदन्तरं महत्॥**[1]

माघ ने प्रचलित छन्दों के अतिरिक्त अनेक अप्रचलित छन्दों का भी प्रयोग किया है। यथा– कुररीरूता, कुटजा, मेघविस्फूर्जित, रमणीयक और अतिशायिनी इत्यादि।

**3. निर्वचनीयता एवं नूतन शब्द प्रयोग–** यद्यपि माघ ने निरुक्त के सैद्धान्तिक पक्षों का स्पष्टतः उल्लेख नहीं किया है। तथापि

1. शिशुपालवध, 3.82

शब्दों की व्याख्या तथा उसके अर्थ के बारे में यत्र तत्र उनकी अवधारणा परिलक्षित होती है। यथा–

**इति विशकलितार्थामौद्धवीं वाचमेना–**
**मनुगतनयमार्गामर्गलां दुर्नयस्य .....।**[1]

यहाँ 'विशकलितार्थ' शब्द का अर्थ 'विवेचितार्थ' निर्वचन सिद्धान्त के अनुसार ही है।

इसी प्रकार अन्यत्र– **ववृषुर्वृषनादिनो नदीनां......।**[2] इस श्लोकांश की व्याख्या में मल्लिनाथ लिखते हैं–**"वृषवद्वृषभवन्नदन्ति गर्जन्तीति वृषनादिनः (मेधाः)।"** निरुक्तकार भी **"नदना भवन्ति नद्यः"** ऐसा लिखते हैं।

**"अनुरुसारथेः"**–(1.2) शब्द का निर्वचन इस प्रकार है– **"अविद्यमानावुरू यस्य सोऽनूरुः स सारथिर्यस्य तस्यानुरुसारथेः सूर्यस्य।"** यहाँ सूर्य का जो सारथि है वह लंगड़ा है तथा उसकी जंघा नहीं है, यह अर्थ प्रकट होता है। केवल सूर्य कहने से यह उद्देश्य पूरा नहीं होता। जबकि इस शब्द से ''जंघाविहीन अरुण नामक सारथि से युक्त सूर्य'' यह अर्थ स्पष्टतः ग्रहण होता है।

इस प्रकार माघ अनेक ऐसे शब्दों का प्रयोग करते हैं जिनमें बहुत से ऐतिहासिक और शास्त्रीय तथ्य शब्दों की निरुक्ति करने पर निकलते हैं। निर्वचनपटु होने के कारण माघ शब्दों के प्रयोग में सावधान रहते हैं। वर्ण्यविषय को अधिकाधिक संप्रेषणीय बनाने वाले नये शब्दों के प्रयोग इनके काव्य में भरे पड़े हैं। व्युत्पत्ति निमित्तक शब्दों के प्रयोग में उनकी निर्वचन पटुता परिलक्षित होती है।

महाकवि माघ के बारे में यह प्रशस्ति काफी प्रसिद्ध है– **"नवसर्गगते माघे नवशब्दो न विद्यते।"** वे एक बार प्रयुक्त किये गये शब्दों को दोबारा प्रयुक्त नहीं करते हैं। माघ के किसी भी नूतन (नव)

---

1. शिशुपालवध, 2.118
2. वही, 20.70

सर्ग में देखा जाय तो (अनव) पुराने शब्द का प्रयोग दृष्टिगोचर नहीं होगा। भाषा पर असाधारण अधिकारसम्पन्न माघ ने अपने व्याकरण वैदुष्य, कोष वैभव और विविध शास्त्रीय व्युत्पत्ति के सहारे बिलकुल नये शब्दों का प्रयोग किया है। वस्तुतः उस युग के कविमानस में विदग्धपाण्डित्य का तथा शास्त्रीय ज्ञान का प्रदर्शन एक ग्रन्थि के रूप घर कर गया था। वे इस प्रवृत्ति में सर्वाग्रणी थे। एक गणना के आधार पर करीब 1800 नये शब्दों का प्रयोग माघ ने किया है। सिर्फ कृष्ण के ही 70 से अधिक नामों का उल्लेख किया है, जिसकी पुनरावृत्ति प्रायः नहीं है। कई नामों को तो माघ ने स्वयं गढ़ा है। इसके अतिरिक्त सर्वसाधारण में प्रचलित शब्दों के स्थान पर माघ प्रयत्नपूर्वक नूतन अप्रचलित शब्द प्रयुक्त करते हैं, जिसकी सूची काफी लम्बी है। उदाहरणस्वरूप कुछ शब्द द्रष्टव्य हैं–

| **अप्रचलित प्रयुक्त शब्द** | **प्रचलित शब्द** |
|---|---|
| अभ्रमुभर्ता | ऐरावत |
| तुरंगकान्तामुखहव्यवाह | वडवाग्नि |
| मंक्षु | द्रुतम् |
| कर्कर | दर्पण |
| वृत्त | मृत |
| मलिम्लुच | पाटच्चर |
| भुजिष्य | किंकर |

**4. अलङ्कारयोजना एवं शब्दार्थलालित्य–** माघ शब्दार्थलालित्य के संवर्द्धन हेतु अलङ्कार योजना पर विशेष बल देते हैं। इस सम्बन्ध में स्वयं उन्होंने अपना मत ही प्रस्तुत किया है–

**नालम्बते दैष्टिकतां न निषीदति पौरुषे।**
**शब्दार्थौ सत्कविरिव द्वयं विद्वानपेक्षते।।**[1]

1. शिशुपालवध, 2.86

शब्द-योजना की दक्षता के साथ अर्थकल्पना की अप्रतिम प्रौढ़ि माघ में विद्यमान है। शब्दों की वक्रता एवं अर्थों की भङ्गिमा माघ की विशेषता है। माघ ने अपने पूर्ववर्ती भारवि आदि महाकवियों का अनुकरण करते हुए अलङ्कारों का भूयिष्ठ उपयोग किया है। माघ में कालिदास एवं भारवि की रचनाशैली का सामञ्जस्य प्राप्त होता है। अतः ये कवित्वशक्ति एवं व्युत्पत्ति इन दोनों गुणों से सम्पन्न थे। उन्होंने अपने काव्य को एक ओर रसभाव से सराबोर किया, तो दूसरी ओर अलङ्कारगुणों का जमघट लगा दिया। **'माघे सन्ति त्रयो गुणाः'** इस कविप्रशस्ति के आलोक में देखा जाये तो माघ ने कालिदास के सदृश उपमा के अनेक सुन्दर प्रयोग किये हैं।

द्वारका की शोभा का वर्णन करते हुए माघ लिखते हैं– स्निग्धाञ्जनश्याम श्रीकृष्ण से उसी प्रकार नगरी सुशोभित हो रही है जिस प्रकार अलंकृतवधु की शोभा तिलकबिन्दु से होती है–

**स्निग्धाञ्जनश्यामरुचिः सुवृत्तो**
**वध्वा इवाध्वंसितवर्णकान्तेः।**
**विशेषको वा विशिशेष यस्याः**
**श्रियं त्रिलोकीतिलकः स एव॥**[1]

रैवतक पर्वत पर सूर्योदय के दृश्य का वर्णन करते हुए माघ ने उपमा की जो बेजोड़ कल्पना की है वह अद्भुत् एवं अपूर्व है। यह उपमा प्रयोग विद्वानों को इतना अच्छा लगा कि उन्होंने माघ को घण्टामाघ का विरुद प्रदान कर दिया–

**उदयति वितोर्ध्व-रश्मिरज्जावहिम-**
**रुचौ हिमधाम्नि याति चास्तम्।**
**वहति गिरिरयं विलम्बिघण्टाद्वय-**
**परिवारित-वारणेन्द्रलीलाम्॥**[2]

---

1. शिशुपालवध, 3.63
2. वही, 4.20

इन काव्यगत उपमानों के अतिरिक्त माघ ने जो शास्त्रगत उपमानों की झड़ी लगाई है वह अन्य कवियों के द्वारा अद्यावधि अनुलंघनीय बनी हुई है।

इसी प्रकार माघ ने यमक के अनेक प्रयोग किये हैं। शिशुपालवधम् का सम्पूर्ण षष्ठ सर्ग यमकों की बस्ती है। पुनः अर्थालङ्कारों की तो शिशुपालवधम् में भरमार है। उनके द्वारा लगभग 56 अलङ्कारों का प्रयोग किया गया है। इस प्रकार देखा जाय तो किसी एक काव्य में 56 अलङ्कारों का प्रयोग उनके वैदुष्य को द्योतित करता है।

**5. पदलालित्य–** माघ दण्डि के समान पदलालित्य के प्रयोग में निष्णात हैं, ऐसा विद्वज्जन समीक्षक कहते हैं। माघ, दण्डी तथा कालिदास की तरह स्वाभाविक और जयदेव तथा श्रीहर्ष आदि की तरह अनुप्रास एवं यमक पर आश्रित द्विविध पदलालित्य का प्रयोग करने में दक्ष हैं। उनके पदलालित्य प्रयोग में संगीतात्मकता का आनन्द है। षष्ठ सर्ग में यमक युक्त पद्यों में लालित्य का प्राचुर्य है। वसन्तकाल में मधुकर गुञ्जन का ध्वनिमय चित्र इस प्रकार माघ खींचते हैं–

**मधुरया मधुबोधितमाधवी मधुसमृद्धिसमेधितमेधया।**
**मधुकराङ्गनया मुहुरुन्मद ध्वनिभृता निभृताक्षरमुज्जगे।।**[1]

पुनः रैवतक-पर्वत के वर्णन में माघ ने पदलालित्य का यमक युक्त मधुर सन्निवेश किया है, जिसमें देवाङ्गनाओं के राक्षसोपद्रव से मुक्त होकर सुखपूर्वक निवास का वर्णन है–

**राजीवराजीवशलोलभृङ्गं मुष्णन्तमुष्णं ततिभिस्तरूणाम्।**
**कान्तालकान्ता ललनाः सुराणां रक्षोभिरक्षोभितमुद्वहन्तम्।।**[2]

प्रभात वर्णन के निम्नाङ्कित पद्य में पूर्णरूप से विकसित माधुर्य गुण का सन्निवेश अत्यन्त चमत्कारजनक है। हवा बहने का वर्णन करने वाले इस पद्य पर मोहित होते हुए टीकाकार मल्लिनाथ ने कहा है कि

1. शिशुपालवध, 6.20
2. वही, 4.9

आचार्यों द्वारा प्रतिपादित दसों गुणों का इस श्लोक में सुन्दर सन्निवेश है–

**विकचकमलगन्धैरन्धयन् भृङ्गमालाः**
**सुरभितमकरन्दं मन्दमावातिवातः।**
**प्रमदमदनमाद्यद्यौवनोद्दामरामा–**
**रमणरभसखेदस्वेदविच्छेददक्षः।।**[1]

उपमाप्रयोग एवं अर्थगौरव की भांति पदलालित्य का एक अत्यन्त सुन्दर प्रयोग द्रष्टव्य है। उनके द्वारा प्रयुक्त शब्दों को इधर–उधर नहीं खिसकाया जा सकता है। पदों का सुन्दर, मनोहर, और अपरिवर्तनीय सन्निवेश से पदलालित्य की योजना अनुपम बन पड़ी है। इसमें यमक के साथ नाद (रिदम) का मणिकाञ्चन प्रयोग विशिष्ट प्रभाव छोड़ता है–

**नवपलाशपलाशवनं पुरः स्फुटपरागपरागतपङ्कजम्।**
**मृदुलतान्तलतान्तमलोकयत् स सुरभिं सुरभिं सुमनोभरैः।।**[2]

**6. अर्थगौरव–** माघ के काव्य में भारवि के समान अर्थगौरव का प्राचुर्य है। वे कुछ विशिष्ट शब्दों से उत्पन्न होने वाले अर्थगौरव को सप्त स्वरों से उत्पन्न होने वाले गान के सदृश व्यापक प्रभाव युक्त मानते हैं। कालिदास और भारवि के समान माघ ने अनेक ऐसे अर्थगौरवपूर्ण वाक्यों का प्रयोग किया है जो हमारे दैनिक जीवन के प्रत्येक चरण में उपयोगी हैं।

रावण के अद्भुत साहस का वर्णन करते हुए नारद कहते हैं कि जिस रावण ने त्रैलोक्य का स्वामी बनने की इच्छा से शिव के प्रति अनुरागातिरेक में अपने दशम सिर को भी काटना चाहा और जब इस पर उसकी कामना के अनुरूप ही पिनाकी प्रसन्न हो गए तो साहस प्रेमी उसने शिवजी के प्रसाद को भी विघ्न ही माना–

**प्रभुर्बुभूषुर्भुवनत्रयस्य यः शिरोतिरागाद्दशमं चिकर्तिषुः।**
**अतर्कयद्विघ्नमिवेष्टसाहसः प्रसादमिच्छासदृशं पिनाकिनः।।**[3]

---

1. शिशुपालवध, 11.19
2. वही, 6.2
3. वही, 1.49

रावण के साहस का इसमें बढ़कर और सुन्दर वर्णन नहीं किया जा सकता।

माघ के द्वारा वर्णित प्रायः सभी अलङ्कार किसी न किसी सुन्दर व्यंग्य अर्थ के गौरव से मण्डित हैं। अर्थगौरवपूर्ण सूक्तियाँ इनकी मौलिक चिन्तनशीलता और प्रतिभा को प्रकट करती है। कालिदास, भारवि, माघ, श्रीहर्ष तथा भवभूति जैसे मूर्धन्य कवि शिरोमणियों की ही कृतियों में ऐसी सूक्ति सुषमा देखने को मिलती है। यथा–

**( 1 ) सर्वः स्वार्थं समीहते ( 2.65 )**

**( 2 ) समय एव करोति बलाबलम् ( 6.44 )**

**( 3 ) क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयतायाः ( 4.17 )**

**( 4 ) भवति महत्सु न निष्फलः प्रयासः ( 7.1 )**

**( 5 ) नान्यस्य गन्धमपि मानभृतः सहन्ते ( 5.42 )**

**7. कलापक्ष–** माघ कवित्वशक्ति सम्पन्न होते हुए भी कलापक्ष के प्रति अत्यधिक आसक्त थे। उन्होंने अपने काव्य में इस तरह के अनेक प्रयोग किये हैं। इस क्षेत्र में उनकी विशेषता ऐसी थी मानों वे वर्णों या शब्दों से खेल रहे हों। उनके काव्य में चित्रालङ्कारों की भरमार है। वे शब्दचित्र की रचना में अत्यधिक मुखर होते हैं। स्वयं माघ के ही शब्दों में– जैसे सर्वतोभद्र-चक्रगोमूत्रिकादि बन्धों द्वारा महाकाव्य विषम हो जाता है वैसे ही व्यूहों अर्थात् सेना के विशिष्ट विन्यासों द्वारा वह शिशुपाल-सैन्य विषम हो गया था–

**विषमं सर्वतोभद्रचक्रगोमूत्रिकादिभिः।**
**श्लोकैरिव महाकाव्यं व्यूहैस्तदभवद्बलम्॥**[1]

इस चित्रबन्धमयी रचना द्वारा महाकवि का व्यक्तिगत उद्देश्य केवल इतना ही था कि वे प्रमाणित करना चाहते थे कि वे इस कठिन

1. शिशुपालवध, 19.41

रचना को करने में भी पूर्ण सिद्धहस्त अथवा सर्वश्रेष्ठ हैं। वे चित्रालङ्कारों में एकाक्षर श्लोक की रचना करते हैं–

**दाददो दुद्ददुद्दादी दादादो दुददीददोः।**
**दुद्दादं दददे दुद्दे ददाददददोऽददः।।**[1]

इसी प्रकार 10 द्वयक्षर श्लोक, (19.66, 84,86,94,98,100,102,104, 106,108) एक एकाक्षरपादश्लोक (19.3), दो अर्धसमश्लोक (19.5, 54) दो श्लोकों का प्रतिलोमयमकरूप (19.33, 34) एक श्लोक में श्लोकप्रतिलोम यमक (19.190) एक असंयुक्त वर्णात्मक श्लोक (19. 68), एक अतालद्रव्याक्षरश्लोक (19.110), एक निरोष्ठ श्लोक (19. 11) दो समुद्गयमक (19.58, 118), एक त्र्यर्थकश्लोक (19.116), एक गतप्रत्यागत श्लोक (19.88) माघ ने रचकर अपने वैदुष्य को प्रकट किया है। एकाक्षरपादश्लोक का उदाहरण द्रष्टव्य है–

**जजौजोजाजिजिज्जाजी तं ततोऽतिततातितुत्।**
**भाभोऽभीभाभिभूभाभूरारारिररिरीररः।।**[2]

गतप्रत्यागतश्लोक का उदाहरण–

**तं श्रिया घनयाऽनस्तरुचा सारतया तया।**
**यातया तरसा चारुस्तनयाऽनघया श्रितम्।।**[3]

इस प्रकार के शब्दचित्रात्मक चित्रालङ्कारों से कवि माघ सहजतापूर्वक खेलते से प्रतीत होते हैं। इसके अतिरिक्त चित्रबन्धों की रचना में भी माघ ने अपने पाण्डित्य कौशल का अद्‌भुत पराक्रम दिखाया है। यथा– सर्वतोभद्र (19.27), मुरजबन्ध (19.29) गोमुत्रिकाबन्ध (19.46) अर्धभ्रमक (19.72) तथा सर्गान्त में एक चक्रबन्ध (19.20) वाली रचना है। ये चित्रबन्धमयी रचनाएं अतिशय श्रमसाध्य हैं। सर्वतोभद्र का उदाहरण 19वें सर्ग के 27वें श्लोक में द्रष्टव्य है–

---

1. शिशुपालवध, 19.114
2. वही, 19.3
3. वही, 19.88

| | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| स | का | र | ना | ना | र | का | स |
| का | य | सा | द | द | स | य | का |
| र | सा | ह | वा | वा | ह | सा | र |
| ना | द | वा | द | द | वा | द | ना |
| ना | द | वा | द | द | वा | द | ना |
| र | सा | ह | वा | वा | ह | सा | र |
| का | य | सा | द | द | स | य | का |
| स | का | र | ना | ना | र | का | स |

सर्वतोभद्र एक कठिन बन्ध है। इसमें ऊपर से नीचे, नीचे से ऊपर, ऊपर ऊपर या नीचे नीचे पढ़ने पर वर्णों की समानरूप से आवृत्ति होती है। इसके चारों चरणों में 1-8, 2-7, 3-6, 4-5 वर्ण समान होते हैं। प्रत्येक चरण आधे के बाद उलट कर लिखा जाता है और प्रत्येक पंक्ति का प्रथम से चतुर्थ अक्षर तक क्रम से सीधे-उल्टे पढ़ने पर श्लोक के प्रथम से चतुर्थपाद बन जाते हैं। इसी प्रकार पंचम से अष्टम वर्ण तक क्रमशः प्रत्येक पंक्ति के सीधे-उल्टे पढ़ने पर अगले पद्य में चतुर्थ, तृतीय, द्वितीय तथा प्रथम पंक्तियाँ बन जाती हैं।

ये सब चित्रबन्ध अथवा चित्रालङ्कार शब्दालंकारों में गिने जाते हैं। माघ के ये प्रयोग शब्दों के साथ कलाकारी हैं। इस प्रकार शब्दों के खेल में माघ जैसी निपुणता का दर्शन अन्यत्र असंभव है। अतः माघ को **'शब्दों के खिलाड़ी'** या **'शब्दों के कारीगर'** कहा जाय तो अतिशयोक्ति न होगी।

**8. दार्शनिकता–** माघ दर्शन के छः आस्तिक सम्प्रदायों के अतिरिक्त बौद्ध-जैन दर्शनों के सिद्धान्तों से पूर्ण अवगत हैं तथा 'शिशुपालवधम्' में यथास्थान उनका प्रयोग भी करते हैं।

**9. मीमांसा–** माघ ने युधिष्ठिर के यज्ञ की विवेचना के प्रसंग

में वेद एवं मीमांसा के ज्ञान को प्रकट किया है। देवताओं का आवाहन करने वाले मंत्र-विशेष तथा यज्ञाङ्ग के साधनभूत मंत्र-विशेष के द्वारा तत्तद्देवताओं के आह्वान हेतु मन्त्रोच्चारण की मीमांसा पर जोड़ देते हुए वे कहते हैं–

**शब्दितामनपशब्दमुच्चकैर्वाक्यलक्षणविदोऽनुवाक्यया।**
**याज्यया यजनकर्मिणोऽत्यजन्द्रव्यजातमपदिश्य देवताम्।।**[1]

माघ यज्ञप्रसङ्ग का वर्णन करते हैं कि किस प्रकार सामवेत्ता हस्तसञ्चालन द्वारा सात स्वरों की कल्पना के साथ सामगान करते थे और होता अध्वर्यु आदि ऋक् एवं यजुष् का गान करते थे–

**सप्तभेदकरकल्पितस्वरं साम सामविदसंगमुज्जगौ।**
**तत्र सूनृतगिरश्च सूरयः पुण्यमृग्यजुषमध्यगीषत।।**[2]

माघ ने यजमान की धर्मपत्नी को हविष्य आदि पदार्थों को देखने के बाद संस्कारयुक्त होने पर हवन करने का 'पत्न्यवेक्षते' मन्त्र द्वारा विधान का वर्णन किया है–

**बद्धदर्भमयकाञ्चिदामया वीक्षितानि यजमानजायया।**
**शुष्मणि प्रणयनादिसंस्कृते तैर्हवींषि जुहवाम्बभूविरे।।**[3]

**10. सांख्य–** द्वारका में नरशिखित्रय की मन्त्रणा-सभा में बलराम ससंरम्भ अपनी सलाह देते हुए श्रीकृष्ण से कहते हैं कि सेना द्वारा प्राप्त की गई विजय फलभागी साक्षी रूप (बिना कुछ किए भी) तुम्हें वैसे ही प्राप्त हो, जैसे सांख्य-शास्त्र में बुद्धि अथवा महत्त्व के भोग आत्मा के कहे जाते हैं–

**विजयस्त्वयि सेनायाः साक्षिमात्रेऽपदिश्यताम्।**
**फलभाजि समीक्ष्योक्ते बुद्धेर्भोग इवात्मनि।।**[4]

---

1. शिशुपालवध, 14.20
2. वही, 14.21
3. वही, 14.22
4. वही, 2.59

इसी सांख्यसिद्धान्त की प्रतिध्वनि (युधिष्ठिर के यज्ञ में ऋत्विजों द्वारा किये गये यज्ञानुष्ठान का फल किस प्रकार धर्मराज को प्राप्त हो रहा था इसके निरूपण में) कर्णगोचर हो रहा है–

**तस्य सांख्यपुरुषेण तुल्यतां बिभ्रतः स्वयमकुर्वतः क्रियाः।**
**कर्तृता तदुपलम्भतोऽभवद्वृत्तिभाजिकरणे यथर्त्विजि।।**[1]

प्रथम सर्ग में ही श्रीकृष्ण के विनयप्रदर्शन पर नारद निवेदन करते हैं कि चित्तवृत्तियों पर संयम करने वाले को अध्यात्मदृष्टि से किसी प्रकार गोचर होने वाले आपको पुराविदों ने प्रकृति से पृथक् तथा विकृतियों से बाह्य पुरातन पुरुष कहा है–

**उदासितारं निगृहीतमानसैर्गृहीतमध्यात्मदृशा कथञ्चन।**
**बहिर्विकारं प्रकृतेः पृथग्विदुः पुरातनं त्वां पुरुषं पुराविदुः।।**[2]

**11. योग–** रैवतक पर्वत पर स्थित योगियों का वर्णन करते हुए माघ कहते हैं कि वे योगीजन किस प्रकार मैत्री, करुणा, मुदिता आदि द्वारा चित्तप्रसाधन कर, अविद्या-अस्मिता आदि क्लेशों को क्षीण कर, सबीज समाधि अर्थात् प्रकृति पुरुष का विवेक प्राप्त कर उस ख्याति (ज्ञान) से भी निवृत्त होना अर्थात् स्वयं प्रकाश पुरुष में स्थित होना चाहते हैं–

**मैत्र्यादिचित्तपरिकर्मविदो विधाय**
**क्लेशप्रहाणमिह लब्धसबीजयोगाः।**
**ख्यातिं च सत्त्वपुरुषान्यतयाधिगम्य**
**वाञ्छन्ति तामपि समाधिभृतो न रोद्धुम्।।**[3]

**12. न्याय–** माघ प्रत्यक्षज्ञान की प्रक्रिया में निर्विकल्पकज्ञान एवं सविकल्पकज्ञान का संकेत करते हैं–

---

1. शिशुपालवध, 14.19
2. वही, 1.33
3. वही, 4.55

**चयस्त्विषामित्यवधारितं पुरा**
**ततः शरीरीति विभाविताकृतिम्।**
**विभुर्विभक्तावयवं पुमानिति**
**क्रमादमुं नारद इत्यबोधि सः॥**[1]

यहाँ दूरस्थ वस्तु का निरवयव ज्ञान होता है पुनः निकट आने पर सावयव ज्ञान होता है। इस क्रमिक ज्ञान के आधार पर जब नारद अत्यन्त समीप उपस्थित हो जाते हैं तब निश्चयात्मक ज्ञान हो जाता है कि ये देवर्षि नारद ही हैं।

माघ न्याय के सिद्धान्तपरक तथ्यों को रेखाङ्कित करते हैं–

**असम्पादयतः कञ्चिदर्थं जातिक्रियागुणैः।**
**यदृच्छाशब्दवत्पुंसः संज्ञायै जन्म केवलम्॥**[2]

अर्थात् जाति (गोत्वादि), क्रिया (पाचकत्वादि) और गुण (शुक्लत्वादि) के द्वारा किसी अर्थ विशेष को सम्पादित न करते हुए (डित्थ–डवित्थ आदि) यदृच्छा शब्द के समान जाति। (ब्राह्मण आदि), क्रिया (अध्ययन आदि) तथा गुण (शौर्यादि) के द्वारा किसी (पुण्य, कीर्ति, पुरुषार्थ आदि) प्रयोजन की सिद्धि को नहीं करते हुए पुरुष का जन्म (देवदत्त, यज्ञदत्त आदि) नाम के लिए है।

माघ न्याय के तर्कसम्मत सिद्धान्तों का निरूपण प्रस्तुत पद्य में करते हैं–

**अप्यनारभमाणस्य विभोरुत्पादिताः परैः।**
**ब्रजन्ति गुणतामर्थाः शब्दा इव विहायसः॥**[3]

स्वयं क्रियाशून्य कुछ नहीं करने वाले भी सर्वसमर्थ विजिगीषु राजा के दूसरे अन्यान्य ग्यारह राजाओं या गुप्तचरादि के द्वारा सम्पादित प्रयोजन उसी प्रकार गुण बन जाते हैं जिस प्रकार स्वयं कुछ नहीं करने

1. शिशुपालवध, 1.3
2. वही, 2.47
3. वही, 2.91

वाले भी व्यापक आकाश के दूसरे पटहादि के द्वारा पैदा किये गये शब्द गुण बन जाते हैं।

**13. वैशेषिक–** इस दर्शन में द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय और अभाव ये सात पदार्थ माने गये हैं। माघ वैशेषिक सम्मत पदार्थ ज्ञान का वर्णन इस श्लोक में करते हैं–

**अन्तर्जलौघमवगाढवतः कपोलौ**
**हित्वा क्षणं विततपक्षतिरन्तरीक्षे।**
**द्रव्याश्रयेष्वपि गुणेषु रराज नीलो**
**वर्णः पृथग्गत इवालिगणो गजस्य।।**[1]

अर्थात् जल के भीतर प्रविष्ट हाथी के दोनों कपोलों को छोड़कर क्षणमात्र पंखमूलों को फैलाया हुआ (श्यामवर्ण) भ्रमरसमूह ऐसा प्रतीत होता है कि मानो नीलिमा-शुभ्रता आदि गुणों के द्रव्याश्रित रहने पर भी हाथी का नीलवर्ण पृथक् होकर स्थित हो।

**14. वेदान्त–** माघ 'अद्वैत वेदान्त' के तत्त्वों का निरूपण अनेक स्थानों पर करते हैं। संसार को मिथ्या माया मानकर ब्रह्म या परमात्मा को ही एक मात्र सत्य मानते हैं तथा ब्रह्मज्ञान प्राप्ति की साधना एवं मोक्षप्राप्ति की भी चर्चा करते हैं।

श्रीकृष्ण को जगदाधार या पूर्णब्रह्म के रूप में वर्णन करते हुए माघ लिखते हैं कि सृष्टि के संहारकाल में भगवान् श्रीकृष्ण समस्त जीवात्माओं को अपने में समेट लेते हैं जिस प्रकार मकड़ी अपने द्वारा उगले गये जाल को अपने में समेट लेती है–

**युगान्तकालप्रतिसंहृतात्मनो**
**जगन्ति यस्यां सविकासमासत्।**
**तनौ ममुस्तत्र न कैटभद्विष-**
**स्तपोधनाभ्यागमसंभवा मुदः।।**[2]

---

1. शिशुपालवध, 5.38
2. वही, 1.23

भगवान् कृष्ण नारद से कहते हैं– हे महर्षि! संसार में हजारों किरणों वाला सूर्य जिस अन्तःकरणस्थ मोहान्धकार अर्थात् अज्ञान रूप अन्धकार को दूर नहीं कर सका उसे आपने अपने ज्ञान रूप तेज से बलपूर्वक नष्ट कर दिया–

**जगत्यपर्याप्तसहस्रभानुना न यन्नियन्तुं समभावि भानुना।**
**प्रसह्य तेजोभिरसंख्यतां गतैरदस्त्वया नुन्नमनुत्तमं तमः।।**[1]

**15. जैन-बौद्धदर्शन–** माघ पक्के वैष्णव होते हुए भी जैन-बौद्ध आदि अन्य धर्मों एवं नास्तिक दर्शनों से पूर्णतः परिचित थे। वे अन्य धर्मों के अमूल्य सन्देशों एवं दार्शनिक तथ्यों की यथास्थान विवेचना करते हैं–

बौद्धों के पञ्चस्कन्धों का संकेत करते हुए माघ लिखते हैं–

**सर्वकार्यशरीरेषु मुक्त्वाङ्गस्कन्धपञ्चकम्।**
**सौगतानामिवात्मान्यो नास्ति मन्त्रो महीभृताम्।।**[2]

जैन धर्म के बारे में माघ लिखते हैं–

**भीमास्त्रराजिनस्तस्य बलस्य ध्वजराजिनः।**
**कृतघोराजिनश्चक्रे भुवः सरुधिरा जिनः।।**[3]

जिन (महावीर) का अवतार धारण करने वाले श्रीकृष्ण भगवान् ने शत्रुओं की सेना की जो भयंकर अस्त्र-शस्त्रों तथा ध्वजा-पताकाओं से सुशोभित थी एवं घोर युद्ध कर चुकी थी, उस भूमि को रक्त से प्लावित कर दिया।

**16. शास्त्रीय सन्दर्भ–** नाटक के सन्दर्भ में भरत की यह उक्ति प्रसिद्ध है–

**न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला।**
**न स योगो न तत्कर्म नाट्येऽस्मिन् यन्न दृश्यते।।**[4]

1. शिशुपालवध, 1.27
2. वही, 2.28
3. वही, 19.112
4. ना.शा. 1.113-4

कवि के सम्बन्ध में भामह ने काव्यालङ्कार में कहा है–

**न स शब्दो न तद्वाच्यं न स न्यायो न सा कला।**
**जायते यन्न काव्याङ्गमहो भारो महान् कवेः॥**[1]

महाकवि माघ के सम्बन्ध में यह दोनों उक्ति अत्यन्त सटीक प्रतीत होती है। अनेक शास्त्रों के ज्ञाता माघ वास्तव में भारवान् कवि हैं। 'शिशुपालवधम्' में विभिन्न शास्त्रों के अनेक सन्दर्भों के प्रसंग प्राप्त होने से यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि वे सर्वशास्त्रज्ञाता सकलविद्यानिष्णात एवं वैदुष्यसम्पन्न प्रतिभा के धनी कवि थे।

**17. काव्यशास्त्र–** माघ काव्यशास्त्र के मर्मज्ञ थे। उनके 'शिशुपालवधम्' में काव्य के तीनों भेदों (उत्तम, मध्यम और अधम) के प्रचुर उदाहरण मिलते हैं। मम्मट ने काव्यभेद का निर्धारण बाद में किया किन्तु माघ ने उदाहरण स्वरूप श्लोक पहले ही रच दिए। माघ सत्कवि के लिए शब्दार्थज्ञान के महत्त्व का संकेत करते हुए शब्द और अर्थ के साहित्य को काव्यशरीर की मान्यता देते हैं– **शब्दार्थौ सत्कविरिव द्वयं विद्वानपेक्षते।** (2.68)

वे शब्द और अर्थ की अपेक्षा रखने वाले कवि को सिर्फ ओज या प्रसाद गुण में ही रुचि न रखकर रसभावविद् भी होने का परामर्श देते हैं।[2]

उनके अनुसार लोकोत्तर आह्लाद के लिए रसपरिपाक आवश्यक है। रस को काव्यलक्षण में महत्त्व देते हुए स्थायिभाव तथा सञ्चारिभाव की भी चर्चा करते हैं–

**स्थायिनोऽर्थे प्रवर्तन्ते भावाः सञ्चारिणो यथा।**
**रसस्यैकस्य भूयांसस्तथा नेतुर्महीभृतः॥**[3]

---

1. काव्यालङ्कार, भामह– 5.4
2. नैकमोजः प्रसादो वा रसभावविदः कवेः॥ (2.83)
3. शिशुपालवध, 2.87

नाट्यशास्त्रीय तत्त्व की दृष्टि से पूर्वरङ्ग के बारे में माघ कहते हैं–

**पूर्वरङ्गः प्रसङ्गाय नाटकीयस्य वस्तुनः।**[1]

**18. गजशास्त्र–** गज के स्वभाव एवं क्रियाकलाप का वर्णन करते हुए माघ लिखते हैं–

**उत्क्षिप्तगात्रः स्म विडम्बयन्नभः समुत्पतिष्यन्तमगेन्द्रमुच्चकैः।**
**आकुञ्चितप्रोहनिरूपितक्रमं करेणुरारोहयते निषादिनम्।।**[2]

अर्थात् शरीर के आगे के हिस्से को ऊपर उठाया हुआ तथा भविष्य में आकाश की ओर उठते हुए पर्वतराज का अनुकरण करता हुआ और ऊँचा (विशालकाय) हाथी अपने संकुचित किये हुए पिछले पैर के निचले सन्धि स्थान पर पैर को रखे हुए महावत को चढ़ा रहा था।

**19. अश्वशास्त्र–** माघ अश्वविद्या से भलीभाँति परिचित थे। उन्होंने अश्व के लक्षण, गति, चाबुक, अश्व की स्वाभाविक दिनचर्या, घुड़सवारी, अश्वों के भेद, लगाम, अश्व के गुण-दोष आदि के बारे में सूक्ष्मतया वर्णन किया है। घुड़सवारी की प्रवीणता का उल्लेख करते हुए माघ वर्णन करते हैं–

**दन्तालिकाधरणनिश्चलपाणियुग्म-**
**मर्धोदितो हरिरिवोदयशैलमूर्ध्नः।**
**स्तोकेन नाक्रमत वल्लभपालमुच्चैः**
**श्रीवृक्षकी पुरुषकोन्नमिताग्रकायः।।**[3]

अर्थात् पिछले दोनों पैरों को धरती पर टेककर अगले दोनों पैरों को ऊपर उठाये हुए उदयाचल के शिखर पर विराजमान अर्द्ध उदित सूर्यनारायण की भाँति स्थित श्रीवृक्ष नामक विशेष भँवरी वाला अश्व,

1. शिशुपालवध, 2.8
2. वही, 12/5
3. वही, 5.56

लगाम (के दोनों छोरों) को निश्चलता के साथ दोनों हाथों से पकड़े हुए कोचवान को तनिक भी गिराने में समर्थ न हो सका अर्थात् लगाम की रस्सी को सावधानी से पकड़े हुए श्रेष्ठ घुड़सवार को पटक नहीं सका।

माघ घोड़े के बारे में कहते हैं कि घोड़ा लोटने से पूर्व जमीन सूँघता है तथा लोटने के बाद शरीर को कँपाता है। उन्होंने घोड़े के अतिरिक्त गाय, बैल तथा साँढ आदि पशुओं के बारे में भी अनेकविध वर्णन किया है।

**20. सङ्गीतशास्त्र** – माघ ने सङ्गीत एवं अन्यान्य ललित कालाओं की सूक्ष्म बातों की चर्चा अनेक जगह की है। नृत्य, नाट्य, गायन, वाद्य, स्वर, ताल, लय आदि के सम्बन्ध में माघ का असाधारण अधिकार था। उनकी सङ्गीतकुशलता का परिचय कराता यह श्लोक द्रष्टव्य है–

**रणद्भिराघट्टनया नभस्वतः**
**पृथग्विभिन्नश्रुतिमण्डलैः स्वरैः।**
**स्फुटीभवद्ग्रामविशेषमूर्च्छना-**
**मवेक्षमाणं महतीं मुहुर्मुहुः॥**[1]

अर्थात् नारद जी अपनी उस महती वीणा को बार-बार देखते जा रहे थे जिससे वायु के आघात से पृथक्-पृथक् निकलने वाले स्वरों से तथा उनके अनुरणन अर्थात् गुञ्जार से निकलने वाली श्रुतियों के समूहों एवं सा, रे, ग, म, प, ध, नी इन सप्तस्वरों के तीनों ग्राम तथा उनकी विशेष प्रकार की इक्कीस मूर्च्छनाएँ अपने आप प्रकट हो रही थी।

**21. आयुर्वेद एवं राजनीति** – माघ आयुर्वेद की चिकित्सा पद्धति एवं राजनीति को सम्यक् रूप से जानते थे। उन्होंने प्रायः आयुर्वेद के माध्यम से राजनीति को समझाया है। उन्होंने बढ़ते हुए रोग और शत्रु को एक समान माना है। अर्थात् जिस प्रकार रोग बिना उपचार के व्यक्ति के ऊपर अपना प्रभाव स्थापित कर लेता है ठीक उसी प्रकार शत्रु का

1. शिशुपालवध, 1.10

स्वभाव होता है–

**उत्तिष्ठमानस्तु परो नोपेक्ष्यः पथ्यमिच्छता।**
**समौ हि शिष्टैराम्नातौ वर्त्स्यन्तावामयः स च।।**[1]

उनके अनुसार चतुर्थ उपाय अर्थात् दण्ड से साध्य होने वाले शत्रु के साथ सामनीति का व्यवहार करना अपना ही अपकार करना है। कौन बुद्धिमान् पसीना से (अर्थात् ऐसे उष्ण उपचार द्वारा जिससे रोगी को पसीना हो) साध्य होने वाले अपरिपक्व (तरुण) ज्वर को जल से सींचता है? अर्थात् कोई नहीं।

माघ यक्ष्मा रोग के लक्षण को उपमान देकर राजनीतिक कुशलता को बतला रहे हैं–

**मा वेदि यदसावेको जेतव्यश्चेदिराडिति।**
**राजयक्ष्मेव रोगाणां समूहः स महीभृताम्।।**[2]

अर्थात् "वह चेदिराज शिशुपाल अकेला है, अतः सरलता से जीता जा सकता है" ऐसा न समझें क्योंकि यह रोगों के समूह राजयक्ष्मा की भाँति राजाओं का समूह है। तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार ज्वर, खाँसी, रक्त, पित्तादि के प्रकोप अनेक रोगों के समूह हैं, वैसे ही वह अकेला नहीं है तथा उसका जीतना बहुत सरल नहीं है।

**22. कामशास्त्र–** माघ कामकला सम्बन्धित सिद्धान्तों का विवेचन करते हुए कहते हैं–

**यां यां प्रियः प्रैक्षत कातराक्षी सा सा ह्रिया नम्रमुखी बभूव।**
**निःशङ्कमन्याः सममाहितेर्ष्यास्तत्रान्तरे जघ्नुरमुं कटाक्षैः।।**[3]

अर्थात् अङ्गनाओं के प्रिय भगवान् श्रीकृष्ण जिन-जिन की ओर देखते थे, वे-वे लज्जा से चकितनेत्रा होकर नीचे की ओर मुँह कर लेती थी। और दूसरी (जिसकी ओर भगवान् नहीं देखत थे, वे उसी समय

1. शिशुपालवध, 2.10
2. वही, 2.96
3. वही, 3.16

श्रीकृष्ण को देखने के समय) ईर्ष्यायुक्त निर्लज्जभाव से एक साथ ही कटाक्ष से देखकर उन्हें घायल कर रही थी। कामविषयक एक अन्य श्लोक द्रष्टव्य है–

**रतान्तरे यत्र गृहान्तरेषु वितर्दिनिर्यूहविटङ्कनीडः।**
**रुतानि शृण्वन् वयसां गणोऽन्तेवासित्वमाप स्फुटमङ्गनानाम्।।**[1]

अर्थात् उस द्वारकापुरी के भवनों के भीतर बनी हुई विहार वेदिकाओं के बाहर निकले हुए काष्ठ के अग्रभाग में रहने वाले तोता, मैना आदि पक्षियों ने रमणियों के सुरतकालिक शब्दों को सुन-सुनकर स्पष्ट ही उनकी शिष्यता प्राप्त कर ली थी। अर्थात् पक्षियों ने रति के समय के सीत्कार आदि शब्दों को बोलना सीख लिया था।

इस प्रकार विभिन्न दृष्टियों से माघ का मूल्याङ्कन करने पर यह स्पष्टतया कहा जा सकता है कि माघ विविधशास्त्र-निष्णात, बहुमुखी, प्रतिभासम्पन्न एवं महापण्डित कवि थे। अनेक शास्त्रीय तथ्यों का प्रचुर प्रयोग होने के कारण यह काव्य 'शास्त्रकाव्य' के रूप में प्रसिद्ध है। जिस मार्ग का आरम्भ भारवि ने किया उसे माघ ने परिणति पर पहुँचा दिया। इस प्रकार माघ भारवि से पाण्डित्य में आगे निकल गये और परवर्ती पाण्डित्य प्रदर्शन के इच्छुक कवियों के लिए यह काव्य एक प्रेरणास्रोत बन गया। इस मार्ग में माघ के बाद श्रीहर्ष ही 'नैषधीयचरितम्' लिखकर माघ के श्रेष्ठ उत्तराधिकारी बने। वास्तव में माघ वैदुष्य की प्रतिमूर्ति थे। यदि इन्हें **'कठिन काव्य का प्रेत'** कहा जाय तो अतिशयोक्ति न होगी। सोमेश्वरदेव ने इनके सम्बन्ध में ठीक ही कहा है–

**विरक्तश्चेत् दुरुक्तिभ्यो निवृत्तिं वाऽथ वाञ्छसि।**
**वयस्य कथ्यते तथ्यं माघसेवां कुरुष्व तत्।।**[2]

निःसन्देह अपने वैदुष्यपूर्ण काव्य के कारण माघ आजतक विद्वज्जनों के लिए आदर्श बने हुए हैं।

---

1. शिशुपालवध, 3.55
2. कीर्तिकौमुदी 1.13

# काव्य गुणों की दृष्टि से शिशुपालवध की समीक्षा

- डॉ. उमाकान्त राय*

**काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये।**
**सद्यः परनिर्वृतये कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे।।[1]**

काव्य, यश, धन, व्यवहारिक ज्ञान, अमंगल का नाश, शीघ्र आनन्द की प्राप्ति एवं सबसे महत्वपूर्ण काव्यप्रयोजन कान्ता सम्मित उपदेश अर्थात् कान्ता के समान हितोपदेश को देने वाला है। इन प्रयोजनों से प्रतीत होता है कि 'प्रयोजनमनुदिश्य मन्दोऽपि न प्रवर्तते' अर्थात् काव्य के द्वारा ही व्यास, वाल्मीकि, व्यास, कालिदास, भवभूति, भारवि, माघ, दण्डी, बाण, हर्ष, भोज, जयदेव, जगन्नाथ, मम्मट आदि कवियों का यश आज भी इस संसार में विद्यमान है। एक-एक पद्य पर सहस्त्रों मुद्राएँ प्राप्त होने की कथाएँ राजतरंगिणी आदि में उपलब्ध हैं। श्रीहर्षादि से बाणादि को धन-लाभ होने की वार्ता से कौन अपरिचित है? सूर्यशतक; सूर्य-स्तुति आदि से मयूरादि के कुष्ठ जैसे भयंकर रोगों का समूल विनाश हो जाना प्रसिद्ध ही है। इस प्रकार काव्य के आचार्यों ने ब्रह्मरूप में प्रतिपादित किया है-

**यदेतद्वाङ्मयं विश्वमर्थमूर्त्या विवर्तते।**
**सोऽस्मि काव्यपुमानम्ब पादौ वन्देय तावकौ।।**

**न स शब्दौ न तद्वाच्यं न स न्यायो न सा कला।**
**जायते यन्न काव्यांगम् .....................।।**

---

* सम्पादक, तत्त्वान्वेषण पत्रिका, वाराणसी

1. का.प्र. 1/2

यही कारण है कि परम प्रयास-साध्य-योग, जप-तप, वेद, उपनिषद् तथा दर्शनादि के परिशीलन की अपेक्षा अत्यन्त सरल, सरस एवं ब्रह्मानन्द सहोदर काव्यशास्त्र के परिशीलन में लोगों की अधिक प्रवृत्ति होती है।

इस संसार में मानव जीवन का उद्देश्य धर्म, अर्थ, काम, एवं मोक्ष की प्राप्ति है, जिसका मुख्य साधन वेदशास्त्रों का ज्ञान है। परन्तु वेदशास्त्रों के निरस तथा कठिन होने से उन्हें वे ही मनुष्य पढ़ने तथा समझने में समर्थ हैं। जिनकी बुद्धि अत्यन्त तीक्ष्ण एवं परिपक्व है। कोमल बुद्धि वालों के लिये अत्यन्त सरल एवं सरस होने से काव्य ही एक ऐसा साधन है, जो उन्हें धर्मादि सुखप्राप्ति कराने में समर्थ है। यथा-

**चतुर्वर्गपफलप्राप्तिः सुखादल्पधियामपि।**
**काव्यादेव............॥**[1]

इसे स्पष्ट करते हुए भरतमुनि कहते हैं कि धर्मार्थियों को धर्म, कामार्थियों को काम, विद्याभिलाषियों को विद्या तथा दीन दुःखियों को परम शान्ति आदि देने वाला एकमात्रा काव्य ही है। जैसा कि महाकवि माद्य की सम्भोग-शृंगारिक पदों की स्निग्धता अतिशय मुग्धकारिणी है-

**यां यां प्रियः प्रैक्षत कातराक्षी सा सा ह्रिया नम्रमुखी बभूव।**
**निःशंकमन्याः सममाहितेर्ष्यास्तत्रान्तरे जघ्नुरमुं कटाक्षैः॥**[2]

अर्थात् जिस-जिस प्रिया को प्रिय श्रीकृष्ण ने देखा उसने लज्जा से मुख को नीचा कर लिया इस पर दूसरी युवतियाँ उस प्रियतम कृष्ण पर ईर्ष्यावश निर्भय होकर एक साथ अपने कटाक्षों से प्रहार करने लगी।

अतः शिशुपालवध की कथा का आधार महाभारत के सभापर्व अध्याय 33 से 45 तक की कथा है। महाकवि माघ ने अपनी नवीन उद्भावनाओं से इस छोटी सी कथा को एक बीस सर्ग के महाकाव्य का रूप दिया है। शिशुपालवध महाकाव्य में शिशुपाल का वध ही आधिकारिक

---

1. सा.द. 1/2
2. शिशुपालवध, 3/16

कथा है, जिसका अनेक प्रासंगिक वर्णनों द्वारा विस्तार किया गया है। कथावस्तु आधिकारिक और प्रासंगिक के भेद से दो प्रकार की होती है। आधिकारिक वस्तु का साक्षात सम्बन्ध नायक तथा काव्य के फल से होता है। परन्तु प्रासंगिक वस्तु में नायक से भिन्न किसी अन्य का वृत्त रहता है।

इस महाकाव्य की कथा को देखने पर प्रतीत होता है कि यह एक घटना प्रधान महाकाव्य है। घटना प्रधान काव्यों में कवि की दृष्टि किसी मुख्य घटना पर होती है और उसका समस्त वस्तु विन्यास उस घटना पर ही केन्द्रित रहता है। परन्तु रामाण या बुद्धचरित जैसे व्यक्ति प्रधान महाकाव्यों में नायक के समस्त जीवन का परिचय मिलता है। यहाँ कवि की दृष्टि व्यक्ति के जीवन की सभी मुख्य घटनाओं पर रहती है। इस घटना प्रधान शिशुपालवध महाकाव्य में शिशुपाल का वध ही मुख्य घटना है। अन्य सभी प्रासंगिक वर्णन उसके साथ सन्निबद्ध है। महाकवि माघ कहते हैं कि प्रबन्धकाव्य में सम्बन्ध निर्वाह का महत्वपूर्ण स्थान है–

**बह्वपि स्वेच्छया कामं प्रकीर्णमभिधीयते।**
**अनुज्झितार्थसम्बन्धः प्रबन्धो दुरुदाहरः॥**[1]

अर्थात् इच्छानुसार बहुत सी असंगत बातें सरलता से कही जा सकती हैं, परन्तु ऐसे प्रबन्ध का कहना कठिन है, जिसमें पदार्थों की संगति विच्छिन्न न हुई हो।

महाकवि माघ प्रबन्धकाव्य की इतिवृत्ति निर्वाहकता में सफल नहीं कहे जा सकते हैं। इस ओर उनका ध्यान भी नहीं है। मूल कथा पहले, दूसरे तथा चौदहवें से बीसवें सर्ग तक पायी जाती हैं।

**अमानवं जातमजं कुले मनोः**
**प्रभाविनं भाविनमन्तमात्मनः।**
**मुमोच जानन्नपि जानकीं न यः**
**सदाभिमानैकधना हि मानिनः॥**[2]

1. शिशुपालवध, 2/72
2. वही, 1/67

**अथोपपत्तिं छलनापरोऽपरामवाप्य शैलूष इवैष भूमिकाम्।**
**तिरोहितात्मा शिशुपालसंज्ञया प्रतीयते सम्प्रति सोऽप्यसः परैः।।[1]**

**बलावलेपादधुनाऽपि पूर्ववत् प्रबाध्यते तेन जगज्जिगीषुणा।**
**सतीव योषित्प्रकृतिः सुनिश्चला पुमांसमभ्येति भवान्तरेष्वपि।।[2]**

अर्थात् मानव भिन्न तथा जन्मरहित होते हुए भी मनुष्य रूप में मनु के कुल में उत्पन्न तथा अत्यन्त प्रभावशाली आपको अपना अवश्य ही मारने वाला जानते हुए भी जिस रावण से सीता को नहीं छोड़ा। "क्योंकि मानी पुरुषों का अभिमान ही मुख्य धन होता है।" तथा इसके बाद रावण के शरीर को छोड़ने के पश्चात् दूसरों को छलने में तत्पर वह रूपान्तर को धारण करने वाले नट के समान दूसरे जन्म को प्राप्त करके, इस समय शिशुपाल नाम से अपने स्वरूप को छिपाये हुए वह रावण होते हुए भी अन्य जनों को दूसरा ही प्रतीत होता है। तथा विजय की इच्छा करने वाला वह शिशुपाल बल के गर्व से इस समय भी पहले (रावणादि पूर्व जन्म की अवस्था) के समान संसार को पीड़ित कर रहा है, क्योंकि पतिव्रता नारी के समान स्थिर स्वभाव प्रकृति, दूसरे जन्म में भी उसी; पूर्व जन्म के पुरुष को प्राप्त कर लेता है।

इसमें भी कयी अप्रासंगिक वर्णनों का कवि ने विस्तारपूर्वक विवेचन किया है। शेष चतुर्थ सर्ग से त्रायोदश सर्ग तक का वर्णन आनुषंगिक है, जिसका आवश्यकता से अधिक विस्तार आलोचकों को खटकता है। जो कथा की प्रवाह को रोक लेता है। जैसे–

**स्फुरदधीरतडिन्नयना मुहुः प्रियमिवागलितोरुपयोधरा।**
**जलधरावलिरप्रतिपालितस्वसमया समयाज्जगतीधरम्।।[3]**

अर्थात् चमकती हुई चंचल बिजली वाली सघन बादलों से भरी मेघ पंक्ति अपने उचित समय पर ठीक उसी तरह उपस्थित हुई, जैसे चंचल नेत्रों वाली, पुष्ट यौवन वाली नायिका अपने संकेतित समय पर

---

1. शिशुपालवध, 1/69
2. वही, 1/72
3. वही, 6/25

प्रिय को प्रतीक्षा में न डालती हुई उसके पास में उपस्थित होती है।

इस प्रकार वीररस-प्रधान शिशुपालवध के पूरे 6 सर्गों में श्रृंगार लीलाओं का वर्णन वीर रस को आच्छादित कर लेता है। काव्य के मध्य भाग को पढ़ने पर वह श्रृंगार का ही काव्य लगने लगता है। अतः कहा जा सकता है कि यहाँ श्रृंगार रस, वीर-रस की चर्वणा में बाधक बन गया है।

**चिररतिपरिखेदप्राप्तनिद्रासुखानां**
**चरममपि शयित्वा पूर्वमेव प्रबुद्धाः।**
**अपरिचलितगात्राः कुर्वते न प्रियाणा-**
**मशिथिलभुजचक्राश्लेषभेदं तरुण्यः[1]॥**

अर्थात् प्रातःकाल हो गया है रात्रि की रतिक्रीडा से थककर सोये हुए दम्पत्तियों में से नायिकाएँ पहले जग गयी हैं, परन्तु वे अपने शरीर को इसलिए नहीं हिलाती डुलाती हैं कि कहीं उनके हाथ के हट जाने से उनके प्रियतम की नींद न टूट जाय।

**साम्प्रदायिक आलोचना :-**

प्राचीन काल से माघ के प्रशंसकों की मानो बाढ़ सी रही है। उन्होंने अपने उद्गारों को प्रायशः श्लोकबद्ध किया है। यथा-

**उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थगौरवम्।**
**दण्डिनः पदलालित्यं माघे सन्ति त्रयो गुणाः॥**

कालिदास की उपमा, भारवि का अर्थगौरव, दण्डी का पद लालित्य ये तीनों विशेषतायें माघ में विद्यमान हैं।

**कविताकुन्दविलकासन कृतिने विजित-जनता-निदाघाय।**
**दलितोददामाधाय प्रणतिं कलयामि माघाय॥**

कविता-रूपी कुन्द-पुष का विकास करने वाले, जनता के सन्ताप को मिटा देने वाले और उच्छृंखल पाप शमन करने वाले माघ (कवि तथा मास) को प्रणाम करता हूँ।

---

1. शिशुपालवध, 1/13

**माघो माघ इवाशेषं क्षमः कम्पयितुं जगत्।**
**श्लेषामोदभरं चापि सम्भावयितुमीश्वरः॥**

माघ कवि माघ मास की भाँति सारे संसार को कँपा देने में समर्थ हैं। ये दोनों संसार को संश्लिष्ट और आनन्दमय बना देने में भी समर्थ हैं।

**कृत्स्नप्रबोधकृद्वाणी भारवेरिव भारवेः।**
**माघेनेव च माघेन कम्पः कस्य न जायते॥**

सूर्य की प्रभा के समान भारवि की वाणी सर्वज्ञता प्रदान करती है। माघ मास की भाँति माघ कवि से किसकी कम्पन्न उत्पन्न नहीं होती?

**माघेन विघ्नितोत्साहा नोत्सहन्ते पदक्रमे।**
**स्मरन्तो भारवेरेव कवयः कपयो यथा॥**

जिस प्रकार माघ मास की ठण्डक से पीड़ित वानर दुबक कर बैठे रहते हैं और केवल सूर्य की प्रभा का ध्यानमात्र करते हैं, उसी प्रकार कविगण माघ की प्रतिभा से पराभूत होकर काव्य-रचना छोड़कर केवल भारवि का नाम लेते हैं।

**तावद्भा भारवेर्भाति यावन्माघस्य नोदयः।**
**उदिते च पुनर्माघे भारवेर्भारवेरिव॥**

सूर्य की किरणें तभी तक प्रभावित रहती हैं, जब तक माघ मास नहीं आता। वैसे ही भारवि की प्रतिभा तभी तक समादरणीय रही, जब तक माघ का उदय नहीं हुआ। जिस प्रकार माघ मास में सूर्य की किरणें हतप्रभ होती हैं, उसी प्रकार माघ कवि के उदय होने पर भारवि हतप्रभ हैं।

**मुरारि-पद-चिन्ता चेत् तदा माघे रतिं कुरू।**

यदि विष्णु-भक्ति स्वीकरणीय हो तो माघ काव्य का अध्ययन करें।

**माघे मेघे गतं वयः।**

शिशुपालवध और मेघदूत में पूरे जीवन भर के अध्ययन की सामग्री है।

**नवसर्गगते माघे नवशब्दो न विद्यते।**

शिशुपालवध का नवम सर्ग पढ़ लिया तो फिर नये शब्द साहित्य में न मिलेंगे।

**माघः शिशुपालवधं विदध्ने कविमदवधं विदधे।**

माघ के शिशुपालवध को पढ़ कर कवियों को अपनी तुच्छता प्रतीत होती है। माघ विषयक उपर्युक्त प्रशस्तियाँ केवल शाब्दिक नहीं है। वास्तव में परवर्तियुग के असंख्य कवियों पर उनकी गहरी छाप पड़ी है और उनकी पद्धति पर कवि चले हैं। डॉ. एस.के. डे के शब्दों में-

"The extent of his influence on his succesors, in whose estimation he stands even higher than Kalidasa and Bharavi, indicates the fact that it is Magha, more than Kalidasa and Bharavi, who sets the standard of later verse maing; but the immense popularity ofhis poem also shows that there is alwaysa demand for poetry ofa little lower and more artificial kind."[1]

**कला :-**

महाकवि माघ ने अपनी कला के मानदण्ड प्रस्तुत किये हैं। यथा-

**क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति। तदेवरूपं रमणीयतायाः॥**[2]

अर्थात् रमणीय वही है, जो प्रतिक्षण एक नये रूप में आकृष्ट करते हैं। 'कीथ' ऐसा प्रतीत होता है कि पूर्ववर्ती रमणीयता को माघ ने नवता प्रदान करने के लिए काव्य की रचना की है।

शिशुपालवध के कथानक में परम्परागत आख्यान का भी अभिनव रूप मिलता है, उससे कवि की तत् सम्बन्धी कला का परिचय मिलता

---

1. History of Sanskrit Literature P. 94.
2. शिशुपालवध, 4/17

है, जिसके बल पर शिशुपालवध की कथा में उन तत्त्वों का समावेश किया जाता है, जो किरातार्जुनीय में विद्यमान हैं। नारद का द्वारका में कृष्ण के घर आना और इन्द्र का यह संवाद सुनाना है कि चिदनरेश शिशुपाल का अन्त करना मानव और देवताओं के कल्याण के लिए है- इन दो नई बातों का आरम्भ में संयोजित कर लेने पर माघ की उन सभी वर्णनों के लिए समुचित और प्रासंगिक अवसर मिल गया, जो किरातार्जुनीय में है। फिर तो बलराम और उद्धव के साथ राजनीतिक परामर्श, सेना का प्रयाण आदि सांगोपांग वर्णन में माघ को भारवि से अधिक स्वाभाविक और विस्तृत क्षेत्र मिल गया। कृष्ण के इन्द्रप्रस्थ-प्रवेश-वर्णन में माघ अश्वघोष और कालिदास के तत् सम्बन्धी वर्णनों से अधिक सफल है। शिशुपालवध में महाभारत की अपेक्षा विवाद छोटे हैं।

संस्कृत काव्य-साहित्य के लिए उपर्युक्त अनुकरण-पद्धति अत्यन्त ह्रास-जनक सिद्ध हुई है। अपने कथानकों के लिए महाभारत, रामायण आदि इतिहास और पुराणों पर पूरा अवलम्बित होना, अपने काव्य के वर्णनों को पूर्ववर्ती कवियों के वर्णनों के अनुरूप बनाना तथा छन्द, अलंकार और काव्य-बन्ध की सनातन परम्परा को अपनाना काव्य के ऐसे शाश्वत तत्त्व से बन गये कि नवीनता का नाम ही मिट गया। काव्य की रूप-रेखा और उसके तत्त्वों के सम्बन्ध में अभिनव दृष्टिकोण का प्रयोग न करना प्रायः सभी परवर्ती कवियों की सामान्य त्रुटि है।

**संदर्भः**


1. संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास, डॉ. कपिलदेव द्विवेदी
2. संस्कृति साहित्य का इतिहास, आचार्य बलदेव उपाध्याय
3. शिशुपालवधम्, महाकवि माघ, चौखम्बा सुरभारती, वाराणसी
4. काव्यप्रकाश, आचार्य मम्मट, टीकाकार आचार्य विश्वेश्वर
5. साहित्यदर्पण, आचार्य विश्वनाथ, चौखम्बा भवन, वाराणसी
6. संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, चौखम्बा भवन, वाराणसी
7. Dr. S.K. Dey, History of Sanskrit Literature

# शिशुपालवध में अवतारवाद

- डॉ. मैत्रेयी कुमारी*

आस्था के केन्द्र स्वरूप उपास्य अथवा आदर्शरूप में किसी महान् व्यक्तित्व की स्वीकृति अवतार कहलाता है। ऐसे व्यक्तित्व को जैन-परम्परा में तीर्थङ्कर, बौद्ध परम्परा में बुद्ध, ईसाई धर्म में ईश्वर पुत्र, इस्लाम धर्म में पैगम्बर और हिन्दू धर्म में इसे अवतार के रूप में स्वीकार किया गया है।[1]

श्रीमद्भगवद्गीता में भी श्रीकृष्ण कहते हैं-

**यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।**
**अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥**

**परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।**
**धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे॥**[2]

'अवतार' शब्द की व्युत्पत्ति 'अव' उपसर्गपूर्वक 'तृप्लवनसन्तरणयो:' धातु से घञ् प्रत्यय करने से हुआ है- 'अव+तॄ+घञ्=अवतार:'।

'अवेतृस्त्रोर्घञ्' इस सूत्र से निष्पन्न 'अवतार' शब्द का अर्थ है- सन्तरण में सक्षम परमतत्त्व का किसी उच्चस्थल से नीचे उतरना अर्थात् किसी दैवीय शक्ति का दिव्य-लोक से भूतल पर उतरना। भारतीय परिप्रेक्ष्य में सामान्यतया 'अवतार' शब्द किसी सामान्य व्यक्ति के जन्म

---

* असिस्टेण्ट प्रोफेसर (संस्कृत), कमला नेहरू कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

1. तीर्थङ्कर बौद्ध और अवतार : डॉ. रमेश चन्द्र गुप्ता, विषय प्रवेश, पृ. 7।
2. श्रीमद्भगवद्गीता, 3/7-8

लेने के अर्थ की अपेक्षा ईश्वर के शरीर धारण करने के अर्थ में ही अधिक प्रचलित है।

हिन्दू धर्म का एक सामान्य तत्त्व है- ईश्वर की विविध रूपों में अभिव्यक्ति की स्वीकृति और यही अभिव्यक्ति अवतारवाद की अवध ारणा का प्राण है। अवतार की अवधारणा हिन्दू धर्म की विविधता में अनूस्यूत एकता को प्रतिबिम्बित करता है। इसमें अवतार को धर्मप्रवर्तक के रूप में भी स्वीकार किया गया है।[1] इस धर्म में जीवन का चरम साध्य ईश्वर का सान्निध्य प्राप्त करना है। इस ईश्वर का जगत् में यथार्थ प्रतिनिधि अवतारी पुरुष के जीवन का आदर्श होता है, जिसका अनुकरण करके ईश्वर का सान्निध्य प्राप्त किया जा सकता है।

भारत में अवतार अपने उपनिषद् युग में उपजी एक जटिल दार्शनिक अवधारणा है। कहीं इसे सामान्य जैविक चरित्रों में ईश्वरीय गुणों की अभिव्यक्ति के रूप में लिया गया है तो कहीं साक्षात् ईश्वर का पृथ्वी पर उतर आने की तरह। पुराणों में अलग-अलग मान्यताओं के अनुसार ईश्वर के आठ (8) से लेकर उनतीस (29) अवतारों की चर्चा है जिनमें 8 सभी में समान हैं, यथा - मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, राम और कृष्ण। इनमें से मत्स्य, कूर्म, वराह (शूकर), नृसिंह (शेर और इंसान का मिला-जुला रूप) और वामन (बौना) को जैविक नाम से जाना जाता रहा है। अवतारों की निश्चित गणना करना एक दुष्कर कार्य है। भागवत पुराण में कहा गया है-

**अवताराह्यसंख्येया हरेः सत्त्वनिधेर्द्विजाः।**
**यथा विदासिनः कुल्याः सरसः स्युः सहस्त्रशः॥**[2]

परन्तु अग्निपुराण, वराह पुराण, दशावतारचरितम्[3] इत्यादि में दस अवतार कहे गए हैं- मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, राम, कृष्ण, बुद्ध और कल्कि-

---

1. तीर्थङ्कर, बुद्ध और अवतार : डॉ. रमेशचन्द्र गुप्ता, विषय प्रवेश, पृ. 7
2. श्रीमद्भागवतपुराण, 1/3/26
3. दशावतारचरितम्, क्षेमेन्द्र 1/2-3

**मत्स्यः कूर्मो वराहश्च नरसिंहोऽथ वामनः।**
**रामो रामश्च रामश्च बुद्धः कल्किश्च ते दश॥**[1]

तथा,

**जलजौ वनजौ खर्वः त्रिरामी सकृपोऽकृतः।**
**अवतारा वनजौ कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्॥**[2]

भगवान् श्रीकृष्ण ने स्वयं दशरूपों में अवतार ग्रहण किया है। संभवतः छठी सदी तक ये अवतार सर्वमान्य हो गए थे। सातवीं-आठवीं सदी की प्राप्त मूर्तियों से इसकी पुष्टि होती है। दशावतार परम्परा का उत्कर्ष 8वीं से लेकर 17वीं शताब्दी तक अविच्छिन्न रहा है, परन्तु 10वीं से 12वीं शताब्दी तक प्रचार की दृष्टि से दशावतारों का सर्वोत्कृष्ट युग रहा है। सप्तम शतक में महाकवि माघ रचित 'शिशुपालवधम्' में विष्णु के दश में से छः अवतारों (वराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, राम एवं कृष्ण) का वर्णन मिलता है।

'माघे सन्ति त्रयो गुणाः' तथा 'मुरारि पदचिन्ता चेत्तदा माघे रतिं कुरु' की उक्ति को चरितार्थ करने वाले इस माघकाव्य (शिशुपालवधम्) की कथा का आरम्भ आकाश मार्ग से उतरते हुए महर्षि नारद को देखते हुए श्रीकृष्ण के गुणवर्णन से तथा नारद मुनि के द्वारकागमन से हुआ है। महाकाव्य के प्रारंभ में ही महाकवि ने विष्णु के अवतार श्रीकृष्ण के जीवनोद्देश्य को स्पष्ट कर दिया है-

**श्रियः पतिः श्रीमति शासितुं जगत् जगन्निवासो वसुदेवसद्मनि।**
**वसन् दर्शावतरन्तमम्बरात् हिरण्यगर्भाङ्गभुवं मुनिं हरिः॥**[3]

इसमें अवतार का उद्देश्य लोकत्राण (अर्थात् धरा को राक्षसों के अत्याचार से मुक्त करना) है। श्रीकृष्ण कहते हैं-

---

1. शब्दकल्पद्रुम : राजाराधाकान्तदेव, 1/124
2. पद्मपुराण, उत्तरकाण्ड 257/40-41
3. शिशुपालवधम्, 1/1

**न दूये सात्वतीसूनुर्यन्मह्यमपराध्यति।**
**यत्तु दन्दह्यते लोकमदो दुःखाकरोति माम्।।[1]**

**लघूकरिष्यन्नतिभारभङ्गुराममूं किल त्वं त्रिदिवादवातरः।**
**उदूढलोकत्रितयेन सांप्रतं गुरुर्धरित्री क्रियतेतरां त्वया।।[2]**

यह लोकत्राण ही 'निपातनीया हि सतामसाधवः' महाकाव्य का मूल स्वर है।

इस महाकाव्य में महाकवि माघ ने अपने प्रमुख आदर्शपात्र श्रीकृष्ण को विष्णु के वराह, वामन, नृसिंह, परशुराम, राम एवं कृष्ण इत्यादि विविध अवतारों के रूप में प्रस्तुत किया है। प्रारम्भ में ही श्रीकृष्ण को जगत् के प्रमुख आधार लक्ष्मीपति के रूप में प्रस्तुत किया है।[3] जिसमें रुक्मिणी लक्ष्मी का और भगवान् श्रीकृष्ण विष्णु का अवतार हैं, ऐसा द्योतित होता है।

यों तो श्रीकृष्ण को भगवान् विष्णु के प्रमुख दस अवतारों में से आठवाँ अवतार माना जाता है, परन्तु 'शिशुपालवधम्' में देवर्षि नारद श्रीकृष्ण को आदिपुरुष कहते हैं-

**उदासितारं निगृहीतमानसैः**
**गृहीतमध्यात्मदृशा कथञ्चन।**
**बहिर्विकारं प्रकृतेः पृथग् विदुः**
**पुरातनं त्वां पुरुषं पुराविदः।।[4]**

इनके वराहावतारी रूप का वर्णन करते हुए माघ कहते हैं- जैसे कोई कारीगर मकान के ढ़ाँचे (टीन-छप्पर) आदि को अत्यन्त सहजतापूर्वक ऊँचे-ऊँचे खंभों पर रख देता है, ठीक वैसे ही तीनों लोकों के सृष्टिकर्त्ता आपने अतीव सरलतापूर्वक भूतल को शेषनाग के मस्तकों के ऊपर रख दिया जो भूतल (पाताल लोक) का आवरण है-

---

1. शिशुपालवधम्, 2/11
2. वही, 1/36
3. वही, 1/1
4. वही, 1/33

**निवेशयामासिथहेलयोद्धृतं फणामृतां छादनमेकमोकसः।**
**जगत्त्रयैकस्थपतिस्त्वमुच्चकैरहीश्वरस्तम्भशिरःसु भूतलम्।।**[1]

भीष्म पितामह भी श्रीकृष्ण की स्तुति करते हुए कहते हैं कि वराह रूपधारी आपने केसरों से सागर के जल प्रवाह को हटाकर प्रकाशमान सा देखा था–

**स्कन्धधूननविसारिकेसरक्षिप्तसागरमहाप्लवामयम्।**
**उद्धृतामिव मुहूर्तमैक्षत स्थूलनासिकवपुर्वसुन्धराम्।।**[2]

नृसिंहरूप धारण कर अपने कोमल नखों से हिरण्यकशिपु के वक्षःस्थल को विदीर्ण कर उसका नाश कर दिया था–

**दिव्यकेशरिवपुः सुरद्विषो नैवलब्धशममायुधैरपि।**
**दुर्निवाररणकण्डु कोमलैर्वक्ष एष निरदारयन्नखैः।।**[3]

वामनावतार का वर्णन करते हुए माघ कहते हैं कि इन्द्र के अनुज आपने राजा बलि से धरा (तीन पग भूमि) पाने के अभिलाषी शीघ्र ही सूर्य एवं चन्द्रमंडल को पार किया, आपका चरण आकाश में न समा सका, आसमान से भी बड़ा हो गया–

**क्रामतोऽस्य ददृशुर्दिवौकसो दूरमूरुमलिनीलमायतम्।**
**व्योम्नि दिव्यसरिदम्बुपद्धतिस्पर्धयेव यमुनौघमुत्थितम्।।**[4]

परशुरामावतार का वर्णन करते हुए माघ कहते हैं– रेणुका पुत्र परशुराम रूपधारी आपने कार्तवीर्यरूपी वन को नष्ट किए गए बहुत से वाहनों, पत्तों के समूहवाला, काटी गयी बहुत सी शाखाओं के समान भुजाओं वाला और शोभा (छाया) से रहित बना दिया।

---

1. शिशुपालवधम्, 1/34
2. वही, 14/71
3. वही, 14/72
4. वही, 14/07

**रेणुकातनयतामुपागतः शातितप्रचुरपत्रसंहति।**
**लूनभूरिभुजशाखमुज्झितच्छायमर्जुनवनं व्यधादयम्।।**[1]

रामावतारी रूप का वर्णन महाकवि माघ ने इस प्रकार किया है-

प्रजापालक आपने राक्षसराज रावण को मार कर दुष्टों का नाश किया-

**एष दाशरथिभूयमेत्य च ध्वंसितोद्धतदशाननामपि।**
**राक्षसीमकृत रक्षितप्रजस्तेजसा धिकविभीषणां पुरीम्।।**[2]

तत्पश्चात् पाँच श्लोकों (14/82-86) में कृष्णावतार की स्तुति की है-

**निष्प्रहन्तुममरेशविद्विषामर्थितः स्वयमथ स्वयंभुवा।**
**सम्प्रति श्रयति सूनुतामयं कश्यपस्य वसुदेवरूपिणः।।**

**तात नोदधिविलोडनं प्रति त्वद्विनाथ वयमुत्सहामहे।**
**यः सुरैरिति सुरौधवल्लभो बल्लवैश्च जगदे जगत्पतिः।।**

**नात्तगन्धमवधूय शत्रुभिश्छायया च शमितामरश्रमम्।**
**योऽभिमानमिव वृत्रविद्विषः पारिजातमुदमूलयद्दिवः।।**

**यं समेत्य च ललाटलेखया बिभ्रतः सपदि शंभुविभ्रमम्।**
**चण्डामारुतमिव प्रदीपवच्चेदिपस्य निरवाद्विलोचनम्।।**

**यः कोलतां बल्लवतां च बिभ्रद् दंष्ट्रामुदस्याशु भुजां च गुर्वीम्।**
**मग्नस्य तोयापदि दुस्तरायां गोमण्डलस्योद्धरणं चकार।।**[3]

शिशुपाल के राक्षसावतार रूप की चर्चा भी माघकाव्य में प्राप्त होती है। वह अपने प्रथम जन्म में हिरण्यकशिपु नामक दैत्य था जिसका वध आपने (श्रीकृष्ण ने) अपने नखों से नृसिंहरूप में प्रकट होकर किया था-

---

1. शिशुपालवधम्, 14/80
2. वही, 14/81
3. वही, 14/82-86

**सटाच्छटाभिन्नघनेन बिभ्रता नृसिंह सैंहीमतनुं तनुं त्वया।**
**स मुग्धकान्तास्तनसङ्गभङ्गुरैरुरोर्विदारं प्रतिचस्करे नखैः॥**[1]

बाद में उसने तीनों लोकों को भयभीत करने वाला तथा स्वर्ग पर अधिकार करने हेतु स्वर्ग की रक्षा को नष्ट कर देने वाला महाभयंकर रावण के रूप में जन्म लिया था, तीसरे जन्म में वह शिशुपाल रूप में प्रकट हुआ जो पूर्व से भी अधिक शक्तिसम्पन्न एवं पराक्रमी प्रतीत होता है–

**अथोपपत्तिं छलनापरोऽपरामवाप्य शैलूष इवैष भूमिकाम्।**
**तिरोहितात्मा शिशुपालसंज्ञया प्रतीयते सम्प्रति सोऽप्यसः परैः॥**[2]

इस प्रकार 'शिशुपालवधम्' में वर्णित श्रीकृष्ण ने विविध अवतारों के माध्यम से इस धरा को उपकृत कर दुष्टों का नाश किया। यद्यपि अवतारी वर्णन में पुनरावृत्ति प्राप्त होती है – एक बाद नारद के मुख से पुनः 14 वें सर्ग में भीष्म पितामह के माध्यम से। इससे श्रीकृष्ण की राजनीति एक ओर जहाँ मर्यादित, अनुशास्ति, प्रजाहित एवं राष्ट्र विकास की धुरी का पर्याय है, वहीं दूसरी ओर शिशुपाल की राजनीति प्रजापीड़क, हठी, अहंकारी, स्वार्थलोलुप एवं आतंककारी है। प्राचीन राजनीति में यद्यपि आतंकी शिशुपाल ने श्रीकृष्ण के समक्ष घुटने टेक दिए, परन्तु वर्तमान समय में शिशुपाल की भाँति ही आतंकी राजनीति हो गई है, मानवता तार-तार हो रही है। आज आवश्यकता है श्रीकृष्ण के समान लोककल्याणार्थ धर्मानुमोदित राजनीतिज्ञ की जो कलुषित राजनीति से दूर रहकर सच्ची राष्ट्रभावना का डिंडिमघोष कर आम जनमानस में अभिनव चेतना स्थापित कर सके।

महाकवि माघ ने अवतार वर्णन के विभिन्न आध्यात्मिक एवं दार्शनिक पक्षों के माध्यम से मनुष्य को अध्यात्म की ओर लाने, आत्मा के रहस्य को समझने, दूसरों के दुःख दर्द में भागीदार बनने हेतु प्रयास किया है, साथ ही संपूर्ण लोक के लिए 'शिवास्ते पन्थानः सन्तु' की मंगलकामना अभिव्यक्त की है।

---

1. शिशुपालवधम्, 1/47
2. वही, 1/69

# शिशुपालवध महाकाव्य में स्वास्थ्य विषयक चिन्तन

## (आयुर्वेदीय परिप्रेक्ष्य में)

**-डॉ. गोपाल लाल मीना***

'शिशुपालवध' महाकाव्य संस्कृत-काव्य सृष्टि के अमूल्य रत्नों में से एक महाकवि माघ की कृति है, जिसकी गणना संस्कृत वाङ्मय में प्रतिष्ठित बृहत्त्रयी के द्वितीय मणि के रूप में की जाती है। इसमें महाकाव्य के सभी गुण पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होते हैं। जिसका कारण है कि महाकवि ने अपने पूर्ववर्ती सभी कवियों के उत्कृष्ट गुणों का इसमें पूर्णरूपेण समन्वय किया है। संस्कृत-काव्य जगत् के अवगाहनोपरान्त यह सुप्रसिद्ध कथन युक्ति संगत ही है कि-

**उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थगौरवम्।**
**दण्डिनः पदलालित्यं माघे सन्ति त्रयो गुणाः॥**[1]

अर्थात् कालिदास आदि में केवल एक-एक गुण मुख्य रूप से है, किन्तु माघ में ये तीनों गुण समष्टि रूप में विद्यमान हैं।

माघ की एक कालजयी कृति में देवर्षि नारद द्वारा शिशुपाल के पूर्वजन्मों का विवरण देते हुए उसके अत्याचारों का उल्लेख, श्रीकृष्ण से उसके संहार की प्रार्थना, युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में श्रीकृष्ण का इन्द्रप्रस्थ पहुँचना, शिशुपाल का अभद्र व्यवहार और क्रुद्ध श्रीकृष्ण द्वारा

---

* सहायक प्रोफेसर, संहिता एवं संस्कृत विभाग, चिकित्सा विज्ञान संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

1. संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास, डॉ. कपिलदेव द्विवेदी (पृ. 212)

उसका वध 20 सर्गों में कवित्व की पराकाष्ठा को छुता हुआ सुवर्णित है।

चूँकि इस शोध पत्र का विषय शिशुपालवध में स्वास्थ्य विषयक चिन्तन (आयुर्वेदीय परिप्रेक्ष्य में) है। इसलिए विषयगत दृष्टिकोण में तथा उसकी वर्तमान प्रासंगिकता में शिशुपालवध में वर्णित स्वास्थ्य विषयक सुभाषितों की व्याख्या द्वारा रोगों की जानकारी देना, उनसे बचाव के उपाय खोजना एवं आयुर्वेद शास्त्र के मूल उद्देश्य– **'प्रयोजनं चास्य स्वस्थस्य स्वास्थ्यरक्षणामातुरस्य विकारप्रशमनं च'।**[1] **इहं खल्वायुर्वेदप्रयोजनं व्याध्युयसृष्टानां व्याधिपरिमोक्षः स्वास्थस्य रक्षणं च'।**[2]

अर्थात् स्वस्थ व्यक्ति के स्वास्थ्य की रक्षा और रोगी व्यक्ति के रोगों को दूर करना रूपी प्रयोजन को शिशुपालवधम् कृति से ग्रहण कर जनकल्याणकारी स्वरूप को प्रस्तुत करना विषय का लक्ष्य है।

खाद्य पदार्थों मे श्रेष्ठ घृत का विवेचन करते हुए महाकवि माघ अपने ग्रन्थ के द्वितीय सर्ग में लिखते हैं–

**अमृतं नाम यत्सन्तो मन्त्रजिह्वेषु जुह्वति।**
**शोभैव मन्दरक्षुब्धक्षुभिताम्भोधिवर्णना।।**[3]

अर्थात् विद्वान् लोग विधिपूर्वक जो हवि अग्नि में हवन करते हैं, वस्तुतः वही तो अमृत है। और पौराणिकों का यह कहना कि समुद्र का मन्दराचल से मन्थन करने पर जो अमृत निकला है वह तो समुद्र का महत्त्व मात्र है। इस प्रकार के वर्णन से समुद्र की शोभा ही बढ़ती है।

यहाँ पर मन्त्रजिह्वः – **मन्त्रा एव जिह्वा येषां, अग्नि-मन्त्रजिह्वः सप्त जिह्वः सुजिह्वौ हव्यवाहनः।**[4] **अमृतम्-घृत-अमृतं यज्ञशेषे स्यात्**

1. चरक सूत्रस्थान, 30/26
2. सुश्रुत सूत्रस्थान, 1/14
3. शिशुपालवधम्, 2/107
4. वैजयन्ती

**पीयूषे सलिले घृते।**[1]

इस श्लोक का तात्पर्य यह है कि समुद्र मन्थन से निकला हुआ अमृत एक काल्पनिक वस्तु है, इन्द्रलोक के लिए घृत ही अमृत है और वैद्यकशास्त्र के अनुसार सब स्नेहों में घृत ही सर्वश्रेष्ठ होता है- **सर्पिस्तैलं वसा मज्जासर्वस्नेहोत्तमा मताः। एषु चैवोत्तमं सर्पिः।**[2] इस प्रकार शरीर के लिए आवश्यक अनेक जीवनियों में 'A' जीवनिय जो मस्तिष्क संस्थान के स्वास्थ्य के लिए उपयुक्त होता है, स्नेह विलेय है। इसलिए आयुर्वेद में घृत 'अमृतं' के नाम से व्याख्यायित है। **'क्षीरघृताभ्यासो रसायनानाम् श्रेष्ठतमः।'**[3] तथा इसको आयुवर्धक और पुष्टि कारक कहा गया है-

**घृतेन जुहुयादग्निं, घृतेन स्वस्ति वाच्येत्।**
**घृतं दद्याद्, घृतं प्राशेद् गवां पुष्टिसमश्नुते॥**
**आयुर्घृतं, नदी पुण्यं, भयं चोरः, सुखं प्रिया।**
**वैरं द्यूतं, गुरुर्ज्ञानं, श्रेयो ब्राह्मणपूजनम्॥**[4]

इसी प्रकार स्वास्थ्य का विचार करते हुए शिशुपालवधम् में उद्धवजी तेजस्विता के महत्त्व को प्रतिपादित करते हुए कहते हैं कि तेज एवं शक्ति के चाहने वाले राजा को षड्गुण रूपी रसायन का सेवन करना चाहिए–

**षाड्गुण्यमुपयुञ्जीत शक्त्यपेक्षी रसायनम्।**
**भवन्त्यस्यैवमंगानि स्थास्नूनि बलवन्ति च॥**[5]

क्योंकि षड्गुण जारित रसायन के सेवन से शरीर के समस्त अंग (शरीर के समस्त अवयव) स्थिर एवं शक्ति सम्पन्न होते हैं और इनके

---

1. मेदिनी
2. चरक सूत्रस्थान, 13/13
3. चरक सूत्रस्थान, 25/40
4. रूद्रालंकार टीका
5. शिशुपालवधम्, 2/93

अभाव में अंग शिथिव हो जाते हैं। वैद्यकीय दृष्टि में षड्गुण जारित पारद से बनाया हुआ रसायन का विशेषण है। पारद का जितने अधिक बार गंधक के साथ जारण किया जाता है उतनी अधिक उसके गुण कर्म की वृद्धि होती है। यथा- **तुल्ये तु गन्धके जीर्णे शुद्धाच्छत गुणोरसः। द्विगुणे गंधके जीर्णे सर्वथा सर्वकुष्ठहा।। त्रिगुणे गंधके जीर्णे सर्वजाड्यविनाशनः। चतुर्गुणे तथा जीर्णे वलिपलितनाशनः।। गंधे पंचगुणे जीर्णे क्षयक्षयकरोरसः। षड्गुणे गंधके जीर्णे सर्वरोगहरो रसः।**[1]

मकरध्वज या चन्द्रोदय एक अति प्रयुक्त तथा बहुत प्रसिद्ध रसायन योग है। यह हृदय (Heart Tonic), हृदयोत्तेजक (Heart Stimulant), वल्य तथा वृष्य योग है। अतः आयुर्वृद्धि के साथ-साथ बालकों एवं युवकों में सम्पूर्ण शरीर विकास, अकाल वृद्ध युवकों तथा प्रौढ़ों में शारीरिक तथा मानसिक सर्वसाधारण दौर्बल्य से पीड़ितों में, हृदय दौर्बल्य तथा रक्तचापल्यता में, राजयक्ष्मा तथा अन्य शरीरशोषक विकारों में और स्वस्थ मनुष्यों को अधिक स्वस्थ तथा बलवान बनाने में यह योग बहुत ही लाभदायक होता है।

इसी युक्तियुक्ता में शिशुपालवधकार कहते हैं यदि राजा अपने बलाबल पर चिन्तन किये बिना षड्गुणों का प्रयोग करे तो उसके राज्य का क्षय होता है-

**स्थाने शमवतां शक्त्या व्यायामे वृद्धिरंगिनाम्।**
**अयथाबलमारम्भो निदानं क्षयसम्पदः।।**[2]

और यदि क्षमा-शील राजा अवसर देखकर अपनी शक्ति (प्रभाव, उत्साह और मन्त्ररूप) के अनुसार सन्ध्यादि षड्गुणों का प्रयोग करे, तो उसके राज्य की वृद्धि होती है। जैसे व्यायामशील व्यक्ति अपनी शक्ति के अनुसार व्यायाम करता है तो उसकी शारीरिक शक्ति बढ़ती है और उसका शरीर सुदृढ़ होता है, इसके विपरीत स्थिति में उसका बल क्षीण

1. आयुर्वेद प्रकाश एवं वैधकीयसुभाषित साहित्य, पृ. 388
2. शिशुपालवधम्, 2/94

होता है और शरीर रोगों का घर बन जाता है।

इसी प्रसंग में उद्धवजी शिशुपाल को राजयक्ष्मारोगी कहकर उसकी भयंकरता की ओर संकेत करते हैं-

**मा वेदि यदसावेको जेतव्यश्चेदिराडिति।**
**राजयक्ष्मेव रोगाणां समूहः स महीभृताम्॥**[1]

यहाँ वे कहते हैं- हे श्रीकृष्ण शिशुपाल अर्थात् चेदिनरेश अकेला है, उसे जीतना सरल है, यह न समझें, क्योंकि शिशुपाल राजाओं का समूह हैं, जैसे रोगों का समूह अर्थात् ज्वर, खांसी, रक्तपित्तादि जन्य अनेक रोगों का सामूहिक नाम राजयक्ष्मा है। राजयक्ष्मा (Tuberculosis) को ठीक करना कोई मामूली काम नहीं है। क्योंकि राजा के सामने उसको मदत करने वाले उसके साथ अनेक उपसर्ग और उपद्रव रहते हैं। इसलिए चरक ने कहा है- **राजयक्ष्मा रोगसमूहानां श्रेष्ठः॥**[2]

वाग्भट्ट कहते हैं- **अनेकरोगानुगतो बहुरोगपुरः सरः।**[3] आचार्य वाग्भट्ट ने राजयक्ष्मा की व्युत्पत्ति इस प्रकार से की- **'नक्षत्राणां द्विजानां च राज्ञोऽभूद्यदयं पुरा। यच्च राजा च यक्ष्मा च राजयक्ष्मा ततः स्मृतः॥**[4]**'** इस प्रकार आचार्य वाग्यभट्ट ने इसे नक्षत्रों का, औषधियों का द्विजों का और राजा चन्द्र अर्थात राजा का रोग कहा है- **नक्षत्राणां द्विजानां च राज्ञोऽभूद्यदयं पुरा।**[5] अतः अन्य रोगों की तुलना में सबसे अधिक मनुष्य इससे पीड़ित तथा मृत होने के कारण यह रोग मृत्यु का राजा कहलाता है। उपर्युक्त श्लोक में उद्धव जी ने शिशुपाल की शक्ति और आसानी से न हारने वाले राजा के रूप में श्रीकृष्ण के सामने उनकी स्थापना की है। जिसकी तुलना समस्त रोगों के राजा राजयक्ष्मा से की गई है। अतः प्रत्येक स्वस्थ व्यक्ति को राजयक्ष्मा के

1. शिशुपालवधम्, 2/96
2. चरक सूत्रस्थान, 25/40
3. वाग्भट अष्टांगहृदय निदान स्थान, 5/2
4. अष्टांगहृद्रय निदान स्थान, अध्याय 5/3
5. वही

बारे में जानकर उससे बचने के उपाय करने चाहिए। क्योंकि इस रोग की भयंकरता का वर्णन ऊपर किया जा चुका है। अपने ग्रन्थ में कालिदास के महाकाव्य की प्रसिद्ध सुक्ति– **'शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्'**[1] का अनुसरण करते हुए शिशुपालवध कार अनेक रोगों एवं उनके समाध ान का मार्ग प्रशस्त करते हैं। प्रस्तुत श्लोक में उन्होंने आमज्वर अर्थात् बहुत दिनों तक जारी रहने वाले संतत् स्वरूप के ज्वर का प्रथम सप्ताह का ज्वर, जिसको तरूण ज्वर या नवज्वर भी कहते हैं कि और संकेत करते हैं–

**चतुर्थोपायसाध्ये तु शत्रौ सान्त्वमपक्रिया।**
**स्वेद्यमामज्वरं प्राज्ञः कोऽम्भसा परिषिञ्चति।।**[2]

अर्थात् (साम, दाम, भेद, दण्ड इन चारों उपायों में से) चौथे उपाय से अर्थात् दण्ड से साध्य मानने वाले शत्रु पर शान्ति का प्रयोग करना हानिकारक होता है, जैसे– पसीना लाने योग्य (स्वेदन कार्यार्ह) कच्चे (आम) ज्वर को कौन विद्वान् पानी से सींचता है? कोई नहीं। क्योंकि इस रोग में पसीना नहीं आता है यथा–

**आसप्तरात्रात्तरूणं ज्वरमाहुर्मनीषिणः।।**[3]

**स्त्रोतसां संनिरूद्धत्वात् स्वेदना नाधिगच्छति। स्वस्थानात्प्रच्युते चाग्नौ प्रायशस्तरूप ज्वरे।**[4] अतः आमज्वर में स्वेदल औषधियों का उपयोग करने के लिए कहा है, जल सिंचन नहीं। आयुर्वेदीय पक्ष को स्पष्ट करते हुए माघ कहते हैं कि–

**उत्तिष्ठमानस्तु परो नोपेक्ष्यः पथ्यमिच्छता।**
**समौ हि शिष्टैराम्नातौ वर्त्स्यन्तावामयः स च।।**[5]

---

1. कुमारसम्भवम्, 5/33
2. शिशुपालवधम्, 2/54
3. चक्रपाणिदत्त संग्रह, चरक चिकित्सा स्थान, 3
4. चरक चिकित्सा स्थान, 3/132
5. शिशुपालवधम्, 2/10

(श्रीकृष्ण के अनुसार) हित चाहने वाले व्यक्ति को बढ़ते हुए शत्रु की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए, क्योंकि बढ़ते हुए रोग और शत्रु को राजनीतिज्ञों ने समान (बराबर) कहा है। और सही भी है कि व्याधी की उपेक्षा किसी के लिए भी श्रेयस्कर नहीं है। तदन्तर अपने स्वास्थ्य विषयक अनुचिन्तन में माघ स्पष्ट करते हैं कि-

**असाध्यः कुरुते कोपं प्राप्ते काले गदो यथा।।**[1]

अर्थात् अपथ्यसेवन करने पर भी उस समय असाध्य रोग प्रकट न होकर (रोगी दुर्बल होने के) उचित समय पर प्रकुपित होकर उसका नाश करता है। अतः अपथ्य सेवन कदापि नहीं करना चाहिए। क्योंकि आयुर्वेद हमेशा यही कहता है कि-

**हिताहितं सुखं दुःखमायुस्तस्य हिताहितम्।**
**मानं च तच्च यत्रोक्तमायुर्वेदः स उच्यते।।**[2]

इस प्रकार क्या हितकर है और क्या अहितकर है, सुखयुक्त तथा दुःखयुक्त आयु के लक्षण, उसका प्रमाण अप्रमाण, आयुष्य तथा अनायुष्य द्रव्य, गुण और कर्म आदि आयु से सम्बन्धित ज्ञानयुक्त सुभाषितों की यथा स्थान शिशुपालवध में चर्चा विभूषित है। यहाँ सर्वसाधारण सुलभ सुभाषितों की प्रस्तुत शोधपत्र में व्याख्या करने का एक लघु प्रयास है। अतः इससे सभी अपने स्वास्थ्य से सम्बन्धित लाभ को प्राप्त कर सकते हैं। क्योंकि-

**सर्वमेव परित्यज्य शरीरमनुपालयेत्।**
**शरीरस्य प्रणष्टस्य सर्वमेव विनश्यति।।**[3]

---

1. शिशुपालवधम्, 2/84
2. चरक सूत्रस्थान, 1/41
3. चाणक्य राजनीति शास्त्र

# शिशुपालवध-महाकाव्य में शिक्षा-तत्त्व

**- डॉ. मीना कुमारी**

शिक्षा शब्द 'शिक्ष्' धातु से व्युत्पन्न है, जिसका अर्थ है 'सीखना'। जिस व्यक्ति के मन में सीखने की इच्छा होती है वह कहीं से भी, किसी से भी ग्राह्य को ग्रहण कर लेता है। **शिशुपालवध** के प्रथम तथा द्वितीय सर्ग में व्यवहारिक जीवन की शिक्षा देने वाले कुछ संकेत प्राप्त होते हैं।

जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है- इस महाकाव्य में शिशुपाल के वध की कथा वर्णित है। देवर्षि नारद आकाशमार्ग से द्वारका पुरी श्री-कृष्ण के पास आते हैं और शिशुपाल के वध के लिए उन्हें प्रेरित करते हैं। शिशुपाल अपने पूर्व जन्मों में क्रमशः हिरण्यकश्यपु नामक असुर तथा लंकाधिपति रावण था। इस जन्म में भी वह अपनी दुष्टप्रवृत्ति का परित्याग नहीं कर पाया था। श्रीकृष्ण नारद का विधिवत् सत्कार करने के अनन्तर अत्यन्त विनम्रतापूर्वक निवेदन करते हैं कि हे मुने! आपके दर्शनमात्र से मैं सन्तुष्ट हो गया हूँ, तथापि आपके कल्याणकारी वचननों को सुनना चाहता हूँ। इस प्रकार कृष्ण बड़ी चतुराई से नारद के आने का प्रयोजन पूछते हैं। जीवन में श्रद्धेय जनों की गरिमा को बनाये रखते हुए, उनके साथ वार्तालाप को प्रारम्भ करने के कौशल का उपदेश यहाँ निहित है-

**गतस्पृहोऽप्यागमनप्रयोजनं**
**वदेति वक्तुं व्यवसीयते यया।**
**तनोति नस्तामुदितात्मगौरवो**
**गुरुस्तवैवागम एष धृष्टताम्॥**[1]

---

1. शिशुपालवध, 1/30

नारद श्रीकृष्ण को कहते हैं कि शिशुपाल ने इससे पूर्व हिरण्यकशिपु और रावण के रूप में अपने दुष्ट आचरणों से सभी को पीड़ित किया था और तब उन्होंने क्रमशः नरसिंह तथा राम के रूप में अवतरित होकर उसका विनाश किया था। अब इस जन्म में भी वह अपनी दुष्टप्रवृत्ति के वशीभूत होकर सभी को सन्तप्त करता रहता है। इसके अनन्तर वह श्रीकृष्ण को शिशुपाल के वध के लिए प्रेरित करते हैं, जिससे यह पृथिवी उसके भार से मुक्त हो सके। नारद और श्रीकृष्ण के मध्य यह सम्पूर्ण वार्तालाप सर्वथा एकान्त में हुआ। इसमें कोई सन्देह नहीं कि सुधी जन सिद्धि से पूर्व अपने मन्तव्य को गुप्त ही रखना श्रेयस्कर समझते हैं।

नारद के लौट जाने के अनन्तर श्रीकृष्ण दुविधाग्रस्त हो जाते हैं, क्योंकि उनके समक्ष दो परस्पर विरोधी कार्य एक साथ ही उपस्थित हो गए हैं। एक ओर नारद के माध्यम से शिशुपाल के वध हेतु प्रेषित इन्द्र का आदेश है, तो दूसरी ओर राजसूय यज्ञ में सम्मिलित होने के लिए युधिष्ठिर का निमन्त्रण। अन्ततः वे अपने पितृव्य एवं सचिव **उद्धव** तथा अपने बड़े भ्राता **बलराम** से मन्त्रणा करने का निश्चय करते हैं। एतदर्थ वे उन दोनों के साथ सभा मण्डप में जाते हैं। यद्यपि शास्त्रकारों के द्वारा वनादि निर्जन स्थल ही मन्त्रणा के योग्य घोषित किए गए हैं। सभाभवन उस दृष्टि से उपयुक्त नहीं कहा जा सकता। परन्तु यह भी उल्लेखनीय है कि शास्त्रकारों द्वारा जिस बात पर बल दिया गया है- वह है 'एकान्त'। यद्यपि श्रीकृष्ण, उद्धव तथा बलराम मन्त्रणा के लिए सभा भवन में आए हैं; तथापि वहाँ केवल उन तीनों के उपस्थित होने का कथन होने से मन्त्रणा के लिए अनिवार्य 'एकान्त' की सिद्धि हो जाती है।

श्रीकृष्ण उद्धव तथा बलराम के समक्ष अपनी दुविधा प्रकट करते हुए कहते हैं कि यदि हम यज्ञ में सम्मिलित नहीं होते हैं, तो भी युधिष्ठर अपने राजसूय यज्ञ को निर्विघ्न सम्पन्न करने में समर्थ हैं। भीम, अर्जुन आदि दिग्विजयी भ्राताओं के कारण उनकी शक्ति अतुलित है।

अतः उनके द्वारा पराजित सभी राजा उन्हें कर देते हैं। ऐसी स्थिति में यदि श्रीकृष्णादि उनके यज्ञ में सम्मिलित नहीं भी होते हैं, तो कोई हानि नहीं होगी। फिर भी वह कोई भी निर्णय लेने से पूर्व उन दोनों के विचारों को जानने की इच्छा प्रकट करते हैं। जीवन में सही निर्णय लेने के लिए यह आवश्यक है कि व्यक्ति अपने अन्य आत्मीय जनों अथवा विद्वज्जनों से भी चर्चा करे; इसके अनन्तर ही अपने विवेक के अनुसार कार्य करे। माघ के अनुसार सारभूत तत्त्व को जानने वाला व्यक्ति भी कर्तव्य कार्य के विषय में सन्देहयुक्त रहता है– **ज्ञातसारोऽपि खल्वेकः सन्दिग्धे कार्यवस्तुनि।** यहीं एक से एक महत्वपूर्ण जीवनसूत्र पाठकों के हाथ में थमाते हुए माघ कहते हैं कि– **महीयांसः प्रकृत्या मितभाषिणः** अर्थात् महान् व्यक्ति स्वभाव से ही मितभाषी होते हैं। कहने का अभिप्राय यही है कि जीवन में कर्म को प्रधान मानने वाले लोग बातों में समय को व्यर्थ नहीं गवाँते।

उद्धव आयु में तथा अनुभव में ज्येष्ठ थे। श्रीकृष्ण के अपनी बात कह चुकने के अनन्तर जैसे ही कुछ कहने के लिए उद्यत हुए; बलराम ने एक प्रकार से उन्हें रोकते हुए, अपना पक्ष रखना प्रारम्भ कर दिया। अपने मत की श्रेष्ठता सिद्ध करने के उद्धेश्य से उन्होंने कहा कि वे संक्षेप में कहे गए श्रीकृष्ण के में निहित सिद्धान्तों को ही विस्तृत रूप से कहना चाहते हैं। संसार में प्रायः ऐसे लोग दृष्टिगत होते हैं, जो अपने पक्ष को सही सिद्ध करने के लिए अन्यों की बातों को अथवा उनके नाम का सहारा लेते हैं–

**संक्षिप्तस्याप्यतोऽस्यैव वाक्यस्यार्थगरीयसः।**
**सुविस्तरतरा वाचो भाष्यभूता भवन्तु मे।।**[1]

इस प्रकार की प्रवृत्ति वाले लोग अपने विरोधी जनों को परास्त अथवा उनके उत्साह को मन्द करने के उद्धेश्य से ऐसा करते हैं। उद्धव चतुर राजनीतिज्ञ एवं कार्तज्ञ थे। अतः सम्भवतः इसी कारणवश बलराम मन ही मन उनसे प्रतिस्पर्धा रखते थे। उन्हें अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करने

1. शिशुपालवध, 2/24

का उपयुक्त समय प्रतीत हुआ। वे उन पर कटाक्ष करते हुए कहते हैं कि जो लोग कार्तज्ञ माने जाते हैं, वे वस्तुतः बहुत चतुर होते हैं। जो उनका विरोध करता है, ऐसे उस व्यक्ति को वह विद्वान् होने पर भी, मूर्ख घोषित कर देते हैं। किन्तु अपना समर्थन करने वाले मूर्ख को भी, बृहस्पति के सदृश विद्वान् बना देते हैं।

तो लोक व्यवहार का ज्ञान होना चाहिए। बलराम कहते हैं कि कार्य को प्रारम्भ करने से पूर्व उससे सम्बद्ध सभी पक्षों पर भली भाँति विचार करना चाहिए। जब किसी योद्धा का वाण लक्ष्य से च्युत हो जाता है, तो बाण-सन्धान के समय की गई उसकी सभी चेष्टाएँ, लोगों को व्यर्थ की उछल-कूद ही प्रतीत होती हैं। बलराम कहते हैं कि इसी प्रकार कर्तव्य-अकर्तव्य का विचार न करने वाले शास्त्रज्ञ व्यक्ति की बातें प्रभावी होने पर भी व्यर्थ होती है-

**अनिर्लोडितकार्यस्य वाग्जालं वाग्मिनो वृथा।**
**निमित्तादपराद्धेषोर्धानुष्कस्येव वल्गितम्।।**[1]

सन्तोष को परम निधान कहा जाता है। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि मनुष्य उद्योग ही न करे। बलराम कहते हैं कि समुद्र अगाध जल से परिपूर्ण होने पर भी शान्त होकर नहीं रहता; अपितु वह चन्द्रमा के उदय की अभिलाषा करता है। यह तो एक वैज्ञानिक और सर्वविदित तथ्य है कि पूर्णमासी के दिन समुद्र में ज्वारभाटा आते हैं और उसकी लहरें ऊपर उठती हैं। इसी प्रकार मनुष्य को चाहिए कि समृद्धि सम्पन्न होने पर भी वह निरन्तर कार्यशील रहे। वैसे भी मनुष्य की वास्तविक सम्पत्ति तो उसकी कर्मठता ही है।

बलराम श्रीकृष्ण से कहते हैं कि जब तक शत्रु का समूल विनाश न किया जाये, तब प्रतिष्ठा-प्राप्ति दुर्लभ है। शुष्क धूलि पर जल टिकता नहीं है। धूल उसे अपने अन्दर समाहित कर लेती है, किन्तु जब वही धूल जल की अधिकता से कीचड़ रूप में परिवर्तित हो जाता है, तब जल उस पर स्थिर रह पाता है-

1. शिशुपालवध, 2/27

**विपक्षमखिलीकृत्य प्रतिष्ठा खलु दुर्लभा।**
**अनीत्वा पङ्कतां धूलिमुदकं नावतिष्ठते॥**[1]

बलराम के इस कथन को इस परिप्रेक्ष में प्रेरणीय कहा जा सकता है कि मानव के जीवन में अनेक प्रकार की समस्यायें आती रहती हैं। हो सकता है कि कभी उसे ऐसा लगे कि अब उसके जीवन में सुख से व्यतीत होगा, क्योंकि उसकी समस्या दूर हो गई है। जबकि जब तक समस्या के मूल में न जाया जाये, तब तक उस समस्या का स्थायी समाधान नहीं हो सकता और न ही व्यक्ति वास्तविक सुख का अनुभव कर सकता है।

शिशुपाल बलराम तथा कृष्ण की बुआ का पुत्र है। राजनीतिशास्त्र की दृष्टि से उसे उन दोनों का सहज मित्र कहा जा सकता है; किन्तु बलराम के अनुसार जीवन में न कोई सहज मित्र होता है, न शत्रु। कार्यवश ही कोई किसी का मित्र अथवा शत्रु होता है..... **सखा गरीयान् शत्रुश्च कृत्रिमस्तौ हि कार्यतः।** पुनः बलराम कहते हैं कि उपकार करने वाले शत्रु से सन्धि करनी चाहिए, किन्तु हानि पहुँचाने वाले मित्र के साथ नहीं। सांसारिक जीवन से सम्बन्धित सत्य का उद्घाटन करने वाली है, बलराम की यह उक्ति। ऐसा देखा गया है कि जिन्हें हम अपना मित्र अथवा आत्मीय मानकर अत्यधिक विश्वास करते हैं, वही हमारे मर्म पर आघात करते हैं। किन्तु, जिन्हें हम अपना शत्रु समझते हैं, वही अवसर आने पर हमारी सहायता करते हैं।

शिशुपाल, बलराम के अनुसार, क्रोध से परिपूर्ण ऐसा शत्रु है जिसकी उपेक्षा करना किसी भी दृष्टि से उचित नहीं है। ऐसा करना उसी प्रकार से आत्मघातक है, जिस प्रकार जीर्ण तृणराशि में जलती हुई आग को डालकर हवा के बहने की दिशा में उसके समीप सोना–

**विधाय वैरं सामर्षे नरोऽरौ य उदासते।**
**प्रक्षिप्योदर्चिषं कक्षे शेरते तेऽभिमारुतम्॥**[2]

1. शिशुपालवध, 2/34
2. वही, 2/42

यहाँ यह भाव ध्वनित होता है कि यदि किसी कारणवश किसी से विवाद हो गया हो, तो उस विवाद का समाधान ढूँढना चाहिए। उपेक्षाभाव रखने से उस विवाद के फलस्वरूप उत्पन्न हुई कटुता भविष्य में घातक हो सकती है।

व्यक्ति की प्रकृति के अनुसार ही उसके साथ व्यवहार करना बुद्धिमत्ता है। एक बार गलती करने वाला व्यक्ति क्षम्य होता है, किन्तु बार बार अपराध करने वाले को भी क्षमा नहीं करना चाहिए। बलराम श्रीकृष्ण से कहते हैं कि शिशुपाल स्वभावतः दुष्ट है, अतः उसे क्षमा नहीं करना चाहिए। यह सत्य है कि क्षमा को वीरों का आभूषण कहा गया है, किन्तु जो शत्रु अपने विचारों में किसी प्रकार के परिवर्तन करने का इच्छुक न हो, ऐसे शत्रु को कभी क्षमा नहीं करना चाहिए। स्वाभिमानी व्यक्ति कभी भी अपना अपमान करने वाले व्यक्ति को क्षमा नहीं करता। पैरों से आहत होने पर धूल जैसी तुच्छ और जड़ वस्तु भी, स्वयं को ठोकर मारने वाले व्यक्ति के सिर पर चढ़कर अपने अपमान का प्रतीकार करती है।

**पदाहतं यदुत्थाय मूर्धानमधिरोहति।**
**स्वस्थादेवापमानेऽपि देहिनस्तद्वरं रजः॥**

अभिमान और स्वाभिमान में अन्तर होता है। ठोकर मारने वाले पैर अभिमानी व्यक्ति का प्रतीक कहे जा सकता हैं और उड़कर सिर पर चढ़ने वाली धूल स्वाभिमानी व्यक्ति का। व्यक्ति को अभिमानी नहीं होना चाहिए, किन्तु अपने स्वाभिमान का कभी परित्याग नहीं करना चाहिए। गम्भीरता तथा दृढ़संकल्प इन दोनों, गुणों की विद्यमानता चरित को उदात बनाती है। बलराम का मत है कि ऐसे मनस्वी पुरुष को अपमानित करने का कोई कदापि साहस नहीं कर सकता। दृष्टान्त देते हुए वे कहते हैं कि सूर्य और चन्द्र दोनों ने एक समान अपराध किया था, किन्तु राहु सूर्य को देर से और सोम को शीघ्र ग्रसता है। कारण सूर्य और चन्द्रमा की प्रकृति का अन्तर। सूर्य अत्यन्त तेजस्वी है, जबकि चन्द्रमा सौम्य-

**तुल्येऽपराधे स्वर्भानुर्भानुमन्तं चिरेण यत्।**
**हिमांशुमाशु ग्रसते तन्म्रदिम्नः स्फुटं फलम्॥**[1]

तृणराशि थोड़ी सी भी प्रतिकूल वायु के चलने पर, उसके बहने की दिशा की ओर झुक जाती हैं। आत्मबल से रहित मनुष्यों की भी लोक में यही स्थिति होती है। अपने समक्ष आने वाली छोटी-छोटी बाधाओं से घबराकर वे अपने लक्ष्य से विचलित हो जाते हैं, यह कथमपि प्रशस्त नहीं है। बलराम के अनुसार जिस प्रकार ऊपर चढ़ने के लिए ऊँची सीढ़ियों की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार कीर्तिरुपी स्वर्ग की प्राप्ति के लिए शत्रुओं के उन्नत मस्तक पर पैर रखना अर्थात् उन्हें परास्त करना आवश्यक है-

**अकृत्वा हेलया पादमुच्चैर्मूर्धसु विद्विषाम्।**
**कथङ्कारमनालम्बा कीर्तिर्द्यामधिरोहति॥**[2]

बलराम के इस कथन को हम लोकव्यवहार की दृष्टि से इस रूप में ग्रहण कर सकते हैं कि जब तक बाधारूपी शत्रुओं का पूर्णरूपेण उन्मूलन किया जाये, तब तक जीवन सुखमय नहीं हो सकता और इसके लिए आत्मबल अथवा मानसिक रूप से दृढ़ होना आवश्यक है।

बलराम स्वभाव में उग्रता के पक्षधर हैं। वे कहते हैं कि जो चन्द्र मृग को अपने अंक में आश्रय देने वाला है, उसे संसार में 'मृगलाञ्छन' (मृग के कलंक वाला) कहते हैं। किन्तु पशुओं को निर्दयतापूर्वक मारने वाला सिंह 'मृगाधिपति' (मृगों का स्वामी) कहा जाता है-

**अङ्काधिरोपितमृगश्चन्द्रमा मृगलाञ्छनः।**
**केसरी निष्ठुरक्षिप्तमृगयूथो मृगाधिपः॥**[3]

लोक में प्रायः देखा जाता है कि कोमल और दयालु स्वभाव वाले लोगों का, अन्य जन अनपेक्षित लाभ उठाते हैं, साथ ही कार्य हो जाने

---

1. शिशुपालवध, 2/49
2. वही, 2/52
3. वही, 2/53

पर उनके सम्बन्ध में दुष्प्रचार भी करते हैं। किन्तु जो चतुर और अपना स्वार्थ सिद्ध करने वाले होते हैं, उन्हीं का वह आदर करते हैं। तो बलराम की इस उक्ति में ग्रहण करने योग्य तत्त्व क्या है? यही कि व्यक्ति को अपनी कोमल, दयालु और दूसरों की सहायता करने वाले स्वभाव का परित्याग न करते हुए व्यवहारिक दृष्टिकोण रखना चाहिए।

संसार में प्रत्येक मनुष्य की प्रकृति भिन्न होती है; अतः प्रत्येक के साथ एक जैसा व्यवहार नहीं किया जा सकता। बलराम कहते हैं कि वह बुखार जो केवल पसीना आने पर ही दूर हो सकता है, एक कुशल वैद्य उसके लिए कभी शीतलोपचार नहीं करता उसी बल के द्वारा वश में किए जा सकने योग्य शत्रु के साथ कभी भी सामपूर्वक व्यवहार नहीं करना चाहिए–

**चतुर्थोपायसाध्ये तु रिपौ सान्त्वमपक्रिया।**
**स्वेद्यमामज्वरं प्राज्ञः कोऽम्भसा परिषिञ्चति॥**[1]

वे यह भी कहाते हैं कि ऐसे शत्रु के साथ सामपूर्वक व्यवहार करने से उसी प्रकार कष्टप्राप्ति होती है, जिस प्रकार उष्ण घी में जल की बूँदों को छोड़ने पर। स्पष्ट है कि यद्यपि बलराम का कथन राजनैतिक परिप्रेक्ष में है, तथापि लौकिक जनों के लिए भी समान रूप से उपादेय है।

बलराम जब अपनी बात समाप्त कर शान्त हो जाते हैं, उसके अनन्तर श्रीकृष्ण उद्धव से अपना पक्ष रखने का संकेत करते हैं। उद्धव भावावेश में कहे गए बलराम के वचनों का युक्तियुक्त रीति से खण्डन करते हैं यद्यपि उनके द्वारा दिए गए तर्क पूर्णतया राजनैतिक परिप्रेक्ष में हैं, किन्तु जिस प्रकार से उन्होंने ज्येष्ठ होने पर भी धैर्य रखा वह अनुकरणीय है। वह चाहते तो अपना पक्ष पहले रख सकते थे, किन्तु बलराम को बोलने के लिए उद्यत देख कर उन्होंने पहले उन्हें अपनी बात कहने देना उचित समझा। स्वयं भी उन्होंने अपना पक्ष श्रीकृष्ण ने संकेतपूर्वक इसके लिए प्रेरित किया। यहाँ यह भी ध्यातव्य है कि उद्धव

1. शिशुपालवध, 2/54

श्रीकृष्ण के पितृव्य थे तथा आयु में उनसे ज्येष्ठ भी। किन्तु यहाँ दोनों के सम्बन्ध को एक शासक तथा उसके मन्त्री के सन्दर्भ में देखना चाहिए। उद्धव ने यहाँ एक मन्त्री के रूप में अपने स्वामी के प्रति अपनी मर्यादा का पालन किया। दैनन्दिन जीवन में हमें भी इस प्रकार विभिन्न सम्बन्धों से जुड़ी अपनी मर्यादाओं का पालन करना चाहिए। कष्ट की बात यह है कि आजकल इस बोध का प्रायः अभाव ही दिखाई देता है।

अन्ततः हम कह सकते हैं कि माघ का यह महाकाव्य रसिकों के हृदय को ही आनन्द प्रदान करने वाला नहीं है, अपितु लोकमर्मज्ञों के विचारों को भी समृद्ध करने वाला तथा उनका पथ प्रदर्शन करने वाला है। एक कवि या रचनाकार की रचना से क्या-क्या और किस किस दृष्टि से ग्राह्य है, यह पाठक पर निर्भर करता है।

# शिशुपालवध में रस-विवेचन

-डॉ. राजकुमार पिलवाल*

**'शिशुपालवधम्'** महाकवि **'घण्टा माघ'** की एकमात्र कृति है, जिसकी गणना 'बृहत्त्रयी' के अन्तर्गत की जाती है। 20 सर्गों व 1650 छन्दों से समन्वित इस ग्रन्थ की उपजीव्यता का श्रेय 'महाभारत' को प्राप्त है। पाण्डित्य-प्रदर्शन के क्षेत्र में महाकवि माघ का अपना विशिष्ट स्थान है। एक कहावत भी है- **"नवसर्गगते माघे नवशब्दो न विद्यते।"** शिशुपालवध में अङ्गी रस वीर है, शृङ्गार रौद्र भयानक आदि रस इसमें अङ्ग-रूप में सन्निविष्ट हैं। अङ्ग-रसों में शृङ्गार को प्रामुख्य प्राप्त हुआ है। शिशुपालवध में वीर रस का सन्निबन्धन श्रीकृष्ण, शिशुपाल तथा दोनों की सेनाओं के वीरों के माध्यम से हुआ है।

## वीर-रस

शिशुपालवध में नायक-गत वीर रस के सर्वप्रथम दर्शन होते हैं, जहाँ शिशुपाल के पूर्व जन्म के वृत्तान्त को प्रस्तुत करते हुए नारद श्रीकृष्ण से कहते हैं- नृसिंह! विशाल शरीर को धारण किये हुए केसरों के समूहों से मेघ को विदीर्ण करने वाले अपने कान्ता-स्तन-द्वय के सङ्ग से टेढ़े नखों से पेट फाड़कर उस हिरण्यकशिपु का वध किया।[1] यहाँ हिरण्यकशिपु आलम्बन, उद्दीपन उनका औद्धत्य, श्रीकृष्ण द्वारा उनका

---

* पूर्व शोधच्छात्र, साहित्यविभाग, श्री ला.ब.शा.रा.सं. विश्वविद्यालय

1. सटाच्छटाभिन्नघनेन बिभ्रता नृसिंह! सैंहीमतनुं तनुं त्वया।
स मुग्धकान्तास्तनसङ्गभङ्गुरैरुरोविदारं प्रतिचस्करे नखैः॥
शिशुपालवध-1/47

वध अनुभाव तथा मति समृति एवं गर्व आदि सञ्चारी भाव हैं। प्रतिनायक-गत शौर्य के दर्शन भी काव्य के प्रथम सर्ग में होते हैं। नायक की वीरता को प्रतिष्ठापित करने के लिए प्रतिनायक के भी शौर्य का वर्णन नितान्त आवश्यक है। रावण-रूप में वर्तमान शिशुपाल के विषय में नारद की उक्ति है- 'युद्ध में वरूण के द्वारा छोड़े गये तथा रावण के द्वारा क्रोध के साथ किए गये हुङ्कार से लौटाये गये रस्सी के समान नागपास नामक शस्त्रों ने भययुक्त होकर प्रयोक्ता के ही कण्ठ को वेग के साथ प्राप्त कर लिया है।[1]'

द्वितीय सर्ग में पहले बलराम श्रीकृष्ण के उत्साह को उद्दीप्त करने के लिए वचन कहते हैं।[2] वे उन्हें शिशुपाल की याद दिलाते हैं[3] तथा उसकी वीरता का भी उल्लेख करते हैं।[4] अनन्तर उद्धव श्रीकृष्ण की उत्साह वृद्धि के लिए वचन का प्रयोग करते हैं[5] तथा शिशुपाल की वीरता तथा वीरों के साथ उसके मैत्री सम्बन्ध की ओर सङ्केत करते हैं।[6]

तृतीय सर्ग में श्रीकृष्ण उद्धव की सम्मति को स्वीकार कर इन्द्रप्रस्थ के लिए सेना सहित प्रस्थान करते हैं। यद्यपि वे युधिष्ठर के राजसूय-यज्ञ में सम्मिलित होने जा रहें हैं तथापि शिशुपाल के साथ युद्ध की योजना भी उनके मस्तिष्क में विद्यमान है। कवि ने श्रीकृष्ण के दिव्य अस्त्र धारण करने का भी विस्तार से वर्णन किया है।[7] इस प्रकार

---

1. शिशुपालवध, 1/56
2. वही, 2/33-35, 43,45,52,60,63,64,66
3. वही, 2/38, 41
4. त्वयि भौमं गते जेतुमरौत्सीत्स पुरीमिमाम्।
   प्रोषितार्य्यमणं मेरोरन्धकारस्तटीमिव॥ शि.पा.व.- 2/39
5. उदेतुमत्यजन्नीहां राजसु द्वादशस्वपि।
   जिगीषुरेको दिनकृदादित्येष्विव कल्पते॥ शि.पा.व.- 2/81, अन्यत्र- 2/95, 115-117
6. शिशुपालवध, 2/95-100
7. तस्यातसीसूनसमानभासो भ्राम्यन्मयूखावलिमण्डलेन।
   चक्रेण रेजे यमुनाजलौघः स्फुरन्महावर्त्त इवैकबाहुः॥ शि.पा.व.- 3/17

महाकवि माघ ने अपने नायक की वीरता का सुष्ठु प्रतिपादन किया है।

षोडश सर्ग में दूत के मुख से प्रतिनायक के शौर्य एवं पराक्रम का सुन्दर परिचय दिखाया है, जो प्रतिनायक-गत वीर रस के पोषण में सहायक हुआ है।[1] दूत अपने स्वामी के पराक्रम का वर्णन करते हुए कहता है- 'युद्ध में शत्रु लोग भय से इनके मुख को नहीं देखते, यह आश्चर्य नहीं है, क्योंकि वह शिशुपाल भी भागते हुए शत्रुओं की पीठ को ही देखता है, उनके मुख को भी नहीं देखता।[2]' 'दर्प से उद्धत जो राजा अपने मस्तक को शिशुपाल के चरण के पास नहीं रखता, दर्प-हीन यह शिशुपाल ही उस राजा के मस्तक पर अपने चरण को रख देता है।[3] इन दोनों उदाहरणों में शत्रुगण आलम्बन हैं। उनकी चेष्टाएँ उद्दीपन, शिशुपाल द्वारा उनका परास्त किया जाना, उनके मस्तक पर चरण-प्रहार आदि अनुभाव तथा मति और गर्व आदि सञ्चारी भाव है।'

सप्तदश सर्ग में वर्णन है कि यादवों से तिरस्कृत होकर दूत के चले जाने पर बजने से भयङ्कर नगाड़ों वाली श्रीकृष्ण की सेना क्षण-मात्र में युद्ध के लिए तैयार हो गई।[4]

अष्टादश सर्ग में दोनों सेनाओं के तुमुल-युद्ध के वर्णन के पश्चात् एकोनविंश सर्ग में द्वन्द्व-युद्ध का वर्णन चित्र-बन्ध द्वारा किया गया है। शत्रु-सेना का भय-जनित पलायन श्रीकृष्ण-सेना की वीरता को पुष्ट करता है। कुमार प्रद्युम्न ने दर्प करने वाली जिन सेनाओं को दूर

---

1. शिशुपालवध, 16/62, 63,65,67-69, 83
2. न तद्द्भुतमस्य यन्मुखं युधि पश्यन्ति भिया न शत्रवः।
   द्रवतां ननु पृष्ठमीक्षते वदनं सोऽपि न जातु विद्विषाम्॥ शि.पा.व.- 16/60
3. न चिकीर्षति यः स्मयोद्धतो नृपतिस्तच्चरणोपगं शिरः।
   चरणं कुरुते गतस्मयः स्वमसावेव तदीयमूर्द्धनि॥ शि.पा.व.- 16/68
4. निराकृते यदुभिरिति प्रकोपिभिः स्पशे शनैर्गतवति तत्र विद्विषाम्।
   मुरद्विषः खनितभयानकानकं बलं क्षणादथ समनह्यताऽऽजये॥ शि.पा.व.-
   17/20

से ही भालों से मारा, वे सेनाएँ फिर युद्ध की भूमि में नहीं आयीं।[1]

श्रीकृष्ण ने शत्रु पर किस प्रकार आक्रमण किया, इसका विस्तार से वर्णन किया गया है। श्रीकृष्ण की युद्ध-वीरता अद्भुत है।[2] उन्होंने शत्रुओं के नेत्रों की पुतलियों में बाणों से प्रहार किया क्योंकि वे सूक्ष्म निशाने को बेधने वाले थे।[3] श्रीकृष्ण ने पयोधर-तुल्य गज कुम्भों को भिगोने वाले, हृदय के विदीर्ण होने से उत्पन्न शत्रुओं के रक्त से उनकी रमणीयों के अश्रुओं से नदियों को बहवा दिया।[4]

विंश-सर्ग में शिशुपाल तथा श्रीकृष्ण के युद्ध का वर्णन किया है। यहाँ नायक-गत[5] तथा प्रतिनायक-गत[6] वीर-रस की अति सुन्दर योजना हुई है। शिशुपाल के धनुष से अविच्छिन्न गिरने वाले, लक्ष्य-वेध की सामर्थ्य धारण करते हुए, लौह-शुद्धि-युक्त और पङ्ख-सहित बाण उस प्रकार निकलने लगे, जिस प्रकार वादी के मुख से निरन्तर निकलने वाली वाचकता शक्ति को धारण करते हुए शुद्ध पक्षों कों ग्रहण किए हुए शब्द निकलते हैं।[7]

श्रीकृष्ण के वीरासन का भी कवि ने वर्णन किया है।[8] अपने

---

1. दूरादेव चमूर्मल्लैः कुमारो हन्ति स स्म याः।
   न पुनः सांयुगीं तां स्म कुमारो हन्ति सम्मयाः॥ शि.पा.व- 19/17
2. शिशुपालवध, 19/95-120
3. वही, 19/99
4. या बभार कृतानेकमाया सेना ससारताम्।
   धनुः स कर्षन् रहितमायासेनाऽऽससार ताम्॥ शि.पा.व.-19/15
5. शिशुपालवध, 20/18-24
6. वही, 20/7-11, 13-17
7. अनुसन्ततिपातिनः पटुत्वं दधतः शुद्धिभृतो गृहीतपक्षाः।
   वदनादिव वादिनोऽथ शब्दाः क्षितिभर्तुर्धनुषः शराः प्रसस्रुः॥ शि.पा.व.- 20/11
8. उरसा विततेन पातितांसः स मयूराञ्चितमस्तकस्तदानीम्।
   क्षणमालिखितो नु सौष्ठवेन स्थिरपूर्वापरमुष्टिराबभौ वा॥ शि.पा.व.- 20/20

नायक की वीरता का वर्णन कवि ने इस प्रकार किया है- शिशुपाल के नागास्त्र का प्रयोग करने पर श्रीकृष्ण ने मुस्कराकर अपनी ध्वजा के ऊपर बैठे हुए गरुड़ को देखा और तब अयुतों गरुड़ उस गरुड़ से निकल कर उड़ने लगे।[1] शिशुपाल के आग्नेयास्त्र का प्रयोग करने पर श्रीकृष्ण ने मेघास्त्र का प्रयोग किया। उनके केशों से मेघ श्रेणियाँ निकलने लगीं।[2] इस प्रकार श्रीकृष्ण ने शिशुपाल-प्रयुक्त सभी अस्त्रों को शीघ्र ही प्रतिहत कर दिया।[3] नायक और प्रतिनायक द्वारा विविध अस्त्रों के प्रयोग के वर्णन द्वारा दोनों की युद्धवीरता का सुन्दर निरूपण हुआ है। अन्त में श्रीकृष्ण ने अपने सुदर्शन चक्र द्वारा शिशुपाल के शिर को काट दिया।[4] यहाँ शिशुपाल आलम्बन है, उसकी चेष्टाएँ उद्दीपन, श्रीकृष्ण द्वारा शिर काटा जाना अनुभव तथा मति, स्मृति गर्व आदि सञ्चारी हैं। जिनसे वीर के स्थायी उत्साह की सुन्दर व्यञ्जना हुई है।

अब तक वीर-रस के युद्ध-वीर का निरूपण किया गया। अब अन्य रूपों का भी संक्षेप में विवेचन प्रसङ्ग प्राप्त है। युधिष्ठिर की **दान-वीरता** का शिशुपालवध में विशुद्ध चित्रण हुआ है।[5] युधिष्ठिर की सभा में धन की इच्छा से पुरुष बिना धन पाये नहीं गया, रोग की चिकित्सा कराने की इच्छा से आया हुआ रोगी रोग की चिकित्सा कराये बिना नहीं गया और खाने की इच्छा से आया हुआ पुरुष बिना भोजन

---

1. शिशुपालवध, 20/41-58
2. वही, 20/59-74
3. इति नरपतिरस्त्रं यद्यदाविश्चकार प्रकुपित इव रोगः क्षिप्रकारी विकारम्।
   भिषगिव गुरुदोषच्छेदिनोपक्रमेण क्रमविदथ मुरारिः प्रत्यहंस्तत्तदाशु॥ शि.पा.व.- 20/76
4. राहुस्त्रीस्तनयोरकारि सहसा येनाश्लथाऽऽलिङ्गन-
   व्यापारैकविनोददुर्ललितयोः कार्कश्यलक्ष्मीर्वृथा।
   तेनाऽऽक्रोशत एव तस्य मुरजित्तत्काललोलामल-
   ज्वालापल्लवितेन मूर्धविकलं चक्रेण चक्रे वपुः॥ शि.पा.- 20/78
5. शिशुपालवध, 14/44-49

किये नहीं गया।[1]

चतुदर्श सर्ग में युधिष्ठिर की **धर्म-वीरता** का उल्लेख हुआ है।[2] युधिष्ठिर श्रीकृष्ण से कहते हैं- 'दोषरहित यज्ञ को करने की इच्छा करने वाले मैं, समस्त सामग्रियों को एकत्रित कर आपकी उसी प्रकार प्रतीक्षा कर रहा हूँ, जिस प्रकार धान्य को ओसने वाला किसान हवा की प्रतीक्षा करता है। मैंने जिस धर्म को धर्मपूर्वक प्राप्त कर रक्षा की तथा उसे बढ़ाया, उस धन को मैं विधि-पूर्वक सत्पात्रों में दान करूँगा, आप उसका सेवन करें तथा मैं अग्नि में हवन करूँगा।[3]' युधिष्ठिर के ये वचन उनकी धर्म-वीरता के ही सूचक हैं। दया-वीरता का कोई उल्लेखनीय प्रसङ्ग शिशुपालवध में प्राप्त नहीं होता है।

### रौद्र-रस–

शिशुपालवध में रौद्र-रस का अति सुन्दर निबन्धन हुआ है। रौद्र के स्थायी भाव क्रोध का चित्रण करता हुआ कवि कहता है- 'श्रीकृष्ण पर पहले से ही वैर-युक्त शिशुपाल को, युधिष्ठिर कृत श्रीकृष्ण की अग्रपूजा से अधिक बढ़े हुए क्रोध ने उस प्रकार प्राप्त किया, जिस प्रकार अपथ्य-सेवन एवं भाग्य के परिणाम से बढ़ा हुआ ज्वर मनुष्य को प्राप्त करता है।[4] अनन्तर कवि ने कुपित शिशुपाल के क्रोध के अनुभावों का सुन्दर चित्रण किया है।[5]' उसने अपने कंधे से खम्भे पर धक्का मारा।[6] टेढ़े भ्रू-द्वय वाला एवं अधिक भ्रू-भङ्ग होने से भयंकर ललाट

1. शिशुपालवध, 14/45,47,48
2. वही, 14/16-11
3. स्वापतेयमधिगम्य धर्मतः पर्य्यपालयमवीवृधञ्च यत्।
   तीर्थगामि करवै विधानतस्तज्जुषस्व जुहवानि चानले॥ शि.पा.व.- 14/9
4. प्रथमं शरीरजविकारकृतमुकुलबन्धमव्यथी।
   भाविकलहफलयोगमसौ वचनेन कोपकुसुमं व्यचीकसत्॥ शि.पा.व.- 15/12
5. शिशुपालवध, 15/3-10
6. क्षणमाऽऽश्लिषद्घटितशैलशिखरकठिनांसमण्डलः।
   स्तम्भमुपहितविधूतिमसावधिकावधूनितसमस्तसंसदम्॥ शि.पा.व.- 15/6

वाला उसका मुख मानो फिर तृतीय नेत्र से युक्त सा होकर क्रूर सा हो गया।[1] उसका भ्रू-भङ्ग उसके क्रोध के विकट रूप का परिचायक है। अन्यत्र भीष्म के वचन सुनकर शिशुपालपक्षीय राजा अतिक्षुब्ध हो गए हैं- उनके गात्रारब्ध क्रोधानुभावों का अतिसुन्दर चित्रण प्राप्त होता है।[2] कुछ चित्र द्रष्टव्य हैं- 'क्रोध से रक्त-वर्ण, काली पुतलियों से अनुमानित लाल नेत्र वाले बाणासुर का मुख कील-युक्त सूर्य-मण्डल के समान संसार के भय के लिए प्रज्ज्वलित हो गया। अनन्तर शिशुपाल के गर्व तथा अमर्ष आदि सञ्चारी भावों की सुन्दर व्यञ्जना की गई है।[3]' शिशुपालवध में रौद्र रस के प्रसङ्ग में क्रोध के अनुभावों का अवसर तथा पात्र-भेद से अनेक बार वर्णन हुआ है किन्तु उसमें किसी प्रकार का वैरस्य नहीं आने पाया है। शिशुपाल-दूत के वचन सुनकर सभा तत्काल क्षुब्ध हो गई। इस प्रसङ्ग में राजाओं के क्रोधानुभावों का अतिविस्तार से वर्णन किया गया है।[4] कुछ चित्र इस प्रकार हैं- 'अत्यन्त क्रुद्ध होकर परस्पर दोनों हाथों को रगड़ते हुए सुधन्वा नामक राजा के चूर्णित हुई अंगुठियों के सोने की धूलि से पङ्किल दोनों हाथों को निरन्तर बहते हुए पसीने के पानी ने धो दिया। मद्य-पान से कलुषित दोनों नेत्रों को घुमाता हुआ, हाथ को भूमि पर पटक कर भयंकर गर्जन करता हुआ, क्रोध से अत्यन्त रक्त-वर्ण शरीर को धारण करता हुआ प्रसेनजित् नामक राजा गेरु से लाल शरीर वाले हाथी के समान भयंकर हो गया।[5] रौद्र के स्थायी क्रोध की यहाँ जैसी व्यञ्जना हुई है, वह सहृदयों से छिपी

1. कृतसन्निधानमिव तस्य पुनरपि तृतीयचक्षुषा।
   क्रूरमजनि कुटिलभ्रु गुरूभ्रुकुटीकठोरितललाटमाननम्॥ शि.पा.व.- 15/8
2. शिशुपालवध, 15/47-57
3. शितितारकाऽनुमितताम्रनयनमरुणीकृतं क्रुधा।
   बाणावदनमुददीपि भिये जगतः सकीतलमिव सूर्यमण्डलम्॥ शि.पा.व.- 15/48
4. शिशुपालवध, 17/3-19
5. विवर्तयन् मदकलुषीकृते दृशौ कराऽऽहतक्षितिकृतभैरवाऽऽरवः।
   क्रुधा दधत्तनुमतिलोहिनीमभूत्प्रसेनजिद्गज इव गैरिकारुणः॥ शि.पा.व.- 17/13

नहीं है। उस तुमुल युद्ध में पदातियों के क्रोध की व्यञ्जना इस प्रकार हुई है– शत्रुओं के खड्ग से कटे हुए खड्ग वाले पैदल सैनिक क्रोध के कारण दाँतों से शत्रु को उस प्रकार काटने लगे, जिस प्रकार शत्रुओं के खड्ग से कटे हुए सूँड़ तथा पूँछ वाले हाथी क्रोध के कारण दाँतों से शत्रु को छेदते हैं।[1] यहाँ शत्रुगण आलम्बन हैं, उनके द्वारा खड्ग को काटा जाना उद्दीपन, पदातियों का उन्हें दाँत से काटना अनुभाव तथा उग्रता और अमर्ष आदि सञ्चारी भाव हैं। विंश सर्ग में शिशुपाल के क्रोध का वर्णन करते हुए कवि की उक्ति है– 'युद्ध में श्रीकृष्ण के पराक्रम को नहीं सहन करते हुए, अतएव क्रोधजन्य सिकुड़ने से तीन रेखाओं वाले तथा चढ़ी हुई भ्रुकुटी से भयंकर मुख को धारण करते हुए निर्भीक शिशुपाल ने श्रीकृष्ण को युद्धार्थ ललकारा।[2]' यहाँ श्रीकृष्ण आलम्बन, उनकी चेष्टाएँ उद्दीपन, शिशुपाल के मुख का भ्रू-युगल भीषण होना आदि अनुभाव तथा गर्व, अमर्ष आदि सञ्चारी भाव हैं।

**भयानक-रस–**

शशुपालवध में भय भाव की भी कहीं-कहीं सुन्दर व्यञ्जना हुई है। युद्ध-स्थल से कुछ लोगों के पलायन का वर्णन करते हुए कवि की उक्ति है– 'वृक्ष की दाढ़ी के समान आचरण करते हुए मधुमक्खी के छत्ते को, गाल रगड़ते हुए हाथी के द्वारा हिलाए जाने पर, बड़ी-बड़ी मधुमक्खियों से काटे जाते हुए लोग व्याकुलतापूर्वक भागने लगे।[3] यहाँ गज आलम्बन है, उसकी चेष्टा तथा लोगों का मधुमक्खियों द्वारा काटा जाना उद्दीपन, पलायन अनुभव, त्रास, श्रम आदि सञ्चारी भाव हैं। भयानक रस का एक अन्य उदाहरण इस प्रकार है– शत्रु के बाण से कटी हुई गर्दन वाले, अतएव आकाश की ओर अत्यन्त ऊँचे उछले हुए

---

1. शिशुपालवध, 19/55
2. मुखमुल्लसितत्रिरेखमुच्चैर्भिदुरभ्रूयुगभीषणं दधानः।
   समिताविति विक्रमानमृष्यन् गतभीराह्वत चेदिराजमरारिम्॥ शि.पा.व.– 20/1
3. श्मश्रूयमाणे मधुजालके तरोर्गजेन गण्डं कषता विधूनिते।
   क्षुद्राभिरक्षुद्रतराभिराऽऽकुलं विदश्यमानेन जनेन दुद्रुवे॥ शि.पा.व.– 12/54

राहु के समान भयंकर आकार वाले किसी शूरवीर के मुख से अप्सराओं का मुख-रूपी चन्द्रमा भयभीत हो गया।[1]

### वीभत्स-रस–

जुगुप्सा भाव की व्यञ्जना युद्ध-प्रसङ्ग में कहीं-कहीं हुई है। प्राय: वीभत्स रस के वर्णन में आलम्बन का स्वरूप-चित्रण मात्र कर दिया जाता है। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं- युद्ध-भूमि के लघुतम गर्त में एकत्रित, आयुध से कटे हुए लोगों का रक्त जो शोभित हो रहा था, वह यमराज की रमणीयों के दुपट्टे को रंगने के लिए रखा कुसुम्भ पुष्पों का पानी था क्या? ......... माँस के लिए मरे हुए लोगों के ऊपर आकाश में घूमते हुए पक्षी ऐसे ज्ञात होते थे मानो इस समय (मरने पर) भी भयङ्कर शस्त्रों से शरीर को छोड़े हुए शूरवीरों के मूर्तिमान प्राण ही उड़ रहे हों।..... जलती हुई जीभ वाली स्यारिन ने, युद्ध में मरे हुए तेजस्वियों के शरीर के साथ जो तेज खाया, भीतर गए हुए उस तेज को मानो ज्वाला के छल से वमन करती हुई स्यारिन उच्च स्वर में चिल्लाने लगी।[2] इन उदाहरणों में क्रम से रक्त, पक्षी तथा शिव (स्यारिन) रूप आलम्बन का स्वरूप-चित्रण किया गया है। इस प्रकार के अन्य भी अनेक उदाहरण वहाँ देखे जा सकते हैं।[3]

### शृङ्गार-रस–

शिशुपालवध में अङ्ग-रसों में शृङ्गार रस की सर्वाधिक सुन्दर योजना हुई है। चतुर्थ सर्ग से एकादश सर्ग तक तथा त्रयोदश सर्ग में

---

1. लूनग्रीवात् सायकेनापरस्य द्यामत्युच्चैराननादुत्पतिष्णो:।
   त्रेसे मुग्धै: सैंहिकेयानुकाराद्रौद्राऽऽकारादप्सरोवक्त्रचन्द्रै:॥ शि.पा.व.- 18/59
2. ओजोभाजां यद्रणे संस्थितानामादत्तीव्रं सार्द्धमङ्गेन नूनम्।
   ज्वालाव्याजादुद्वमन्ती तदन्तस्तेजस्तारं दीप्तजिह्वा ववाशे॥ शि.पा.व.- 18/75
3. शिशुपालवध, 18/57, 72,76,77

शृङ्गार के विविध चित्र देखे जा सकते हैं। इसमें सम्भोग शृङ्गार का प्राधान्य है। इसमें रति के आलम्बन हैं- नायक एवं नायिकाएँ। उद्दीपन रूप में कवि के रैवतक, षड्ऋतु, सन्ध्या, चन्द्रोदय आदि का वर्णन किया है। कहीं-कहीं केवल अनुभावों तथा केवल सञ्चारी भावों की सुन्दर व्यञ्जना हुई है।

चतुर्थ सर्ग में विलासी यादवों तथा उनकी अङ्गनाओं की रतिविषयक इच्छा का अनेक बार उल्लेख किया गया है।[1] 'रैवतक पर विकसित कमलों वाले जल हैं जिनमें ऐसे तट-द्वय को दोनों भाग में धारण करते हुए नदों से दिन के श्रम को दूर किये हुये तथा सुवर्ण भूषणों से अलङ्कृत यादव-जन, गन्ने के रस से बने हुए सुस्वाद मद्य को पीकर रति के लिए एकान्त में प्रियतमा के शरीर से वस्त्र को हटा रहे हैं।'[2] यहाँ प्रियतमाएँ आलम्बन, मद्य-पान तथा एकान्त आदि उद्दीपन, वस्त्रों को हटाया जाना अनुभव तथा औत्सुक्य एवं हर्ष आदि सञ्चारी भावों से रति भाव व्यञ्जित हुआ है।

पञ्चम, षष्ठ एवं सप्तम सर्ग में विभिन्न नायिकाओं के विविध चित्र प्राप्त होते हैं। 'शरीर में पसीने के जल से विशेष रूप से सटी हुई चोली को रति-काल में किए गए नख-क्षत को पुनः विदीर्ण कर निकालती हुई, अतएव दिखलाई पड़ते हुए विशाल स्तन एवं बाहु-मूल वाली कृशोदरी युवक के नेत्रों के लिए क्षण-मात्र आनन्द-प्रद हो गई।[3]'

---

1. शिशुपालवध, 4/42, 45,51,66,67
2. सार्धं कथञ्चिदुचितैः पिचुमर्दपत्रैरास्यान्तरालगतमाम्रदलं म्रदीयः। दासेरकः सपदि संवलितं निषादैर्विप्रं पुरा पतगराडिव निर्जगार॥ शि.पा.व.- 5/66
3. प्रस्वेदवारिसविशेषविषक्तमङ्गे कूर्पासकं क्षतनखक्षतमुत्क्षिपन्ती। आविर्भवद्घनपयोधरबाहुमूला शातोदरी युवदृशां क्षणमुत्सवोऽभूत्॥ शि.पा.व. - 5/23

अन्यत्र नायिकाओं के विलास-पूर्वक-गमन[1], चुम्बन[2], आलिङ्गन[3], नख-क्षत[4], सीत्कार[5], सूरत[6] आदि का विविध प्रकार से वर्णन किया गया है। यथा- 'सामने वृक्ष से लिपटी लता का अनुसरण करती हुई किसी अङ्गना से सरलता से चञ्चलता रूपी दोष का विचार छोड़कर सखियों के सामने ही प्रियतम का आलिङ्गन कर लिया।[7]'

अष्टम सर्ग में जल-केलि का वर्णन करते हुए कवि ने काम-शास्त्र के आधार पर शृङ्गार वर्णन किया है। 'हाथ में प्रियतम के हाथ को पकड़ कर चलती हुई कमल लोचना रमणी के सब अङ्गों के प्रियतम के स्पर्श को प्राप्त कर उत्पन्न सुख से पुष्ट होते रहने पर, दृढ़ता को प्राप्त करती हुई भी रेशमी साड़ी शिथिल नीवी वाली होती हुई बार-बार नीचे की ओर खिसक रही है।'

दशम सर्ग में यादवों तथा यादव-रमणियों के बाह्य एवं आभ्यन्तर सुरत का भी वर्णन प्राप्त होता है।[8]

---

1. शिशुपालवध, 7/16-23
2. मुखकमलकमुन्नमय्य यूना यदभिनवोढवधूर्बलादिचुम्बि।
   तदपि न किल बालपल्लवाग्रग्रहपरया विविदे विदग्धसख्या॥ शि.पा.व.- 7/44, अन्यत्र 8/10, 26
3. शिशिरमासमपास्य गुणोऽस्य नः क इव शीतहरस्य कुचोष्मणः।
   इति धियाऽस्तरुषः परिरेभिरे घनमतो नमतोऽनुमतान् प्रियाः॥ शि.पा.व. -6/65, अन्यत्र 7/46,49
4. किसलयशकलेष्ववाचननीयाः पुलकिनि केवलमङ्गके निधेयाः।
   नखपदलिपयोऽपि दीपितार्थाः प्रणिदधिरे दयितैरनङ्गलेखाः॥ शि.पा.व.- 7/39, अन्यत्र 8/55
5. व्रणभृता सुतनोः कलसीत्कृतस्फुरितदन्मरीचिमयं दधे।
   स्फुटमिवावरणं हिममारुतैर्मृदुतया दुतयाऽधरलेखया॥ शि.पा.व.-6/59
6. समय एव करोति बलाबलं प्रणिगदन्त इतीव शरीरिणाम्।
   शरदि हंसरवाः परुषीकृतस्वरमयूरमयूरमणीयताम्॥ शि.पा.व.- 6/44
7. शिशुपालवध, 7/46
8. वही, 10/39-54, 55-80

बाह्य-सुरत में दृष्टि-स्पर्श[1], आलिङ्गन[2] तथा चुम्बन[3] आदि का वर्णन किया गया है। आभ्यन्तर-सुरत का वर्णन करते हुए कवि की रसपूर्ण उक्ति है- 'नाभि-रूपी तड़ाग में मञ्जन कर शीघ्र ही वस्त्र को ग्रहण करने के लिए प्रवृत्त एवं नीवी के समीप पहुँचे हुए प्रियतम के हाथ को रमणी ने अपने दोनों हाथों से रोक सा लिया।[4]'

इन्द्रप्रस्थ पहुँचे हुए श्रीकृष्ण को देखने के लिए मार्गों में आई हुई रमणियों की शृङ्गार-चेष्टाओं का भी सुविस्तृत वर्णन किया गया है।[5] रमणियों का विभ्रम[6] तथा विलास[7] दर्शनीय है- 'शीघ्रता के कारण हार के स्थान पर करधनी को पहने हुए केशों में कर्पूर को लगाए हुए, दोनों कपड़ों को उल्टा पहने हुए और कर्णभूषण को कङ्कण बनाये हुए रमणियाँ वेग से चल पड़ी।[8]'

**हास्य-रस–**

शिशुपालवध में हास्य का प्रसङ्ग कहीं-कहीं पर आया है। यथा-

---

1. स्पर्शभाजि विशदच्छविचारौ कल्पिते मृगदृशां सुरताय।
   सन्नतिं दधति पेतुरजस्रं दृष्टयः प्रियतमे शयने च॥ शि.पा.व.- 10/39
2. सङ्कथेच्छुरभिधातुमनीशा सम्मुखी न च बभूव दिदृक्षुः।
   स्पर्शनेन दयितस्य नतभ्रूरङ्गसङ्गचपलापि चकम्पे॥ शि.पा.व.-10/41
3. शिशुपालवध, 10/542-54
4. प्राप्य नाभिनदमज्जनमाशु प्रस्थितं निवसनग्रहणाय।
   औपनीविकमरुन्ध किल स्त्री वल्लभस्य करमाऽऽत्मकराभ्याम्॥ शि.पा.व. -10/60
5. शिशुपालवध, 13/31-48
6. त्वया विप्रकृतश्चेद्यो रुक्मिणी हरता हरे।
   बद्धमूलस्य मूलं हि महद्वैरतरोः स्त्रियः॥ शि.पा.व.- 2/38
7. शिशुपालवध, 2/59
8. रभसेन हारपददत्तकाञ्चयः प्रतिमूर्धजं निहितकर्णपूरकाः।
   परिवर्तिताम्बरयुगाः समापतन् वलयीकृतश्रवणपूरकाः स्त्रियः॥ शि.पा.व.- 13/32

हथिनी से डरा हुआ तथा सब लोगों को हँसाने वाला गधा तब तक उछलता रहा, जब तक सरके हुए आसन से निवस्त्र नितम्बों वाली अन्तःपुर की वधू गिर नहीं पड़ी।[1] वधू का वस्त्र-हीन होना तथा उस वधू को गधे से गिरना उद्दीपन है। इन्द्रप्रस्थ पहुँचे हुए श्रीकृष्ण को देखने के लिए मार्गों में आई हुई स्त्रियों का वर्णन करते हुए महाकवि माघ एक स्थल पर कहते हैं- शीघ्रता के कारण हार के स्थान पर करधनी को पहने हुए केशों में कर्णपुर को लगाए हुए दोनों कपड़ों को उल्टा पहने हुए और कर्णभूषण को कङ्कण बनाए हुए रमणियाँ वेग से चल पड़ी।[2] यहाँ विकृत वेष वाली रमणीयाँ हास भाव की आलम्बन है।

**अद्भुत-रस-**

शिशुपालवध में विस्मय भाव की भी सुन्दर व्यञ्जना हुई है। विंश सर्ग के अन्तिम श्लोक में अद्भुत रस है- 'इस (शिशुपाल के शिर कट जाने) के बाद शोभा-युक्त, दुन्दुभि-घोषों के सहित दिव्य पुष्प-वृष्टि से युक्त, क्षण मात्र ऋषियों से स्तुत, शिशुपाल के शरीर से निकलकर प्रकाश से आकाश में सूर्य की शोभा को फैलाते हुए, श्रीकृष्ण के शरीर में प्रकाश प्रवेश करते हुए तेज को युद्ध में उपस्थित राजाओं ने आश्चर्य-चकित होते हुए देखा।'[3]

इस प्रकार शिशुपालवध में अङ्गी रस वीर है। शृङ्गार रौद्र भयानक आदि रस इसमें अङ्ग-रूप में सन्निविष्ट हैं। अङ्ग-रसों में शृङ्गार को प्रामुख्य प्राप्त हुआ है।

---

1. त्रस्तः समस्तजनहासकरः करेणोस्तावत्खरः प्रखरमुल्ललयाञ्चकार।
   यावच्चलासनविलोलनितम्बबिम्बविस्त्रस्तवस्त्रमवरोधवधूः पपात॥ शि.पा.व.- 5/7
2. शिशुपालवध, 13/32
3. श्रिया जुष्टं दिव्यैः सपटहरवैरन्वितं पुष्पवर्षै-
   र्वपुष्टश्चैद्यस्य क्षणमृषिगणैस्तूयमानं निरीय।
   प्रकाशेनाऽऽकाशे दिनकरकरान्विक्षिपद्विस्मिताक्षै-
   र्नरेन्द्रैरौपेन्द्रं वपुरथ विशद्धाम वोक्षम्बभूवे॥ शि.पा.व.- 20/79

# शिशुपालवधमहाकाव्य में ज्योतिषशास्त्रीय अवधारणा

- डॉ. नीरज कुमार*

संस्कृत साहित्य के देदीप्मान नक्षत्र महाकवि माघ के शिशुपालवध को पढ़कर हमें उनके दोहरे व्यक्तित्व की स्पष्ट झलक दिखाई देती है, जिसमें एक ओर उत्कृष्ट कवित्व है, तो दूसरी ओर उदात्त पाण्डित्य। जहाँ तक कवित्व का प्रश्न है, माघ का कवित्व काव्यशास्त्र के नियमानुगत विकसित हुआ है। अत: माघ का काव्य **"शब्दार्थौ काव्यम्"** इस काव्यलक्षण की कसौटी कहा जा सकता है। माघ-काव्य प्रतिभा के अखण्ड भण्डार के अधिष्ठाता है। काव्य के कलावादी दृष्टिकोण के पीछे उनके दो लक्ष्य रहे हैं, एक तो यह कि वे परम्परा से हटकर काव्य की सर्जना नहीं करना चाहते तथा दूसरा यह कि वे अपने पूर्व के सभी कवियों को कलावादिता में अपने से पीछे छोड़ देना चाहते हैं। यही कारण है कि माघ का व्यक्तित्व संस्कृत-साहित्य सृजन के क्षेत्र में पर्याप्त स्पर्धात्मक रहा है।

शिशुपालवधमहाकाव्य संस्कृत साहित्य की एक अमूल्य निधि है। **"नवसर्गगते माघे नवशब्दो न विद्यते"** के आचार्य माघ की यह पाण्डित्यपूर्ण रचना संस्कृत विद्वानों के द्वारा अत्यन्त ही समादृत हुई है। इस महाकाव्य में अनेक वर्णनों में महाकवि द्वारा अनेक शास्त्रीय विषयों पर चर्चा की है, उसमें भी ज्योतिषशस्त्र का विवेचन करने में उनकी विशिष्ट रुचि दिखाई देती है। महाकवि द्वारा विभिन्न स्थानों में दिव्य

---

* सहायकाचार्य, श्री सनातन धर्म संस्कृत महाविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल (उत्तराखण्ड)

चरित्र सम्बद्ध कथा प्रसङ्गों का वर्णन भिन्न-भिन्न रूपों में मिलता है, उन कथांशों के अन्तर्गत ही विभिन्न स्थानों में ज्योतिषशास्त्रीय संबद्ध ग्रह नक्षत्रों द्वारा बनने वाले विशिष्ट योगों की स्थिति, ऋतु मुहूर्त्तादि द्वारा बनने वाले विशिष्ट स्थिति तथा मनुष्य के विभिन्न शरीराङ्गों की आकृति का ज्ञान सामुद्रिकशास्त्रानुगत करते हुए उनके शुभाशुभ विचारों का वर्णन तथा शकुन सूचक शुभाशुभ फल को ज्योतिषी सन्दर्भों में प्रस्तुत किया है। यह ज्योतिषशास्त्र वेद का नेत्र है, अतः अन्य अङ्गों में इसकी प्रधानता तर्क सङ्गत है-

**वेदस्य चक्षुः किलशास्त्रमेतत्प्रधानताङ्गेषु ततोऽस्य युक्ता।**
**अङ्गैर्यतोऽन्यैरपि पूर्णमूर्तिश्चक्षुर्विना कः पुरुषत्वमेति।।**[1]

इस ज्योतिषशास्त्र का कर्म से गहरा सम्बन्ध है। ज्योतिषशास्त्र में फल प्राप्ति का समय कर्मफल या कर्म भेद के आधार पर किया जाता है। यहाँ कर्म की संज्ञा तीन प्रकार से की गयी है, संचित, प्रारब्ध, क्रियमाण इन्हीं त्रिविध कर्मों का विचार करके तीन भिन्न-भिन्न पद्धतियाँ प्राप्त होती हैं। फलितशास्त्र में संचित कर्मों का फल विचार जन्मकुण्डली के अन्तर्गत निर्मित विविध योगों के माध्यम से, क्रियमाण कर्मों का फलविचार गोचरवश प्रश्नकुण्डली के माध्यम से, जिस कर्मफल की प्राप्ति प्रारब्ध कर्म के अनुसार दशाओं के माध्यम से प्राप्त होती है, उसे प्रारब्ध कर्म कहते हैं। ज्योतिषशास्त्र में प्रारब्ध कर्म का परिचय भारतीय ज्योतिष के प्रवर्तक महर्षियों ने प्रतिपादित किया है कि कर्म करके मनुष्य अपने अनिवार्य फल को अवश्य ही प्राप्त करता है। कहा भी है-

**स्वर्गाद्यनुभवक्षीण शिष्य प्राचीनकर्मणाम्।**
**भोगाय जननं नृणां मोहभाजां मुहुर्मुहु।।**

**स्वकर्म भोक्तुं जायन्ते प्रायेणैव हि जन्तवः।**
**क्षीणे कर्मणि चान्यत्र पुनर्गच्छति देहिनः।।**[2]

---

1. प्रश्नमार्ग, 1/12
2. प्रश्नमार्ग, 1/33-35

यद्यपि मनुष्य का कर्म करना अथवा न करना उसकी स्वयं की इच्छा पर निर्भर हो सकता हैं परन्तु यदि कहीं भी उससे एक भी कर्म निष्पादित होता है तो उसे इस कर्म का फल भोगना ही पड़ेगा।

अर्थात् अन्य जन्म में मनुष्य ने जो शुभाशुभ कर्म किये हैं, उन अर्जित कर्मों की फलप्राप्ति को ज्योतिषशास्त्र स्पष्ट रूप में अभिव्यंजित करता है। इस प्रकार ज्योतिषशास्त्रीय ग्रन्थ के द्वारा जातक के जीवनकाल में प्राप्त होने वाले शुभाशुभ सुख एवं दुःख का कारण पूर्वजन्म में किये गये कर्मो के अनुसार विवेचन किया जाता है। इसी ज्योतिषशास्त्रीय सिद्धान्त को लेकर महाकवि माघ ने शिशुपालवधमहाकाव्य में शिशुपाल के पूर्वजन्म का वृतान्त ग्रन्थ के आरम्भ में प्रतिपादित किया है–

**बलावलेपादधुनापि पूर्ववत्**
**प्रबाध्यते तेन जगज्जिगीषुणा।**
**सतीव योषित्प्रकृतिः सुनिश्चला**
**पुमांसमभ्येति भवान्तरेष्वपि।।**[1]

यह सर्वविदित है कि प्राचीन काल में सभी लोग अपनी दिनचर्या में यात्रादि प्रसंगों में तथा कार्य विशेष के लिये नक्षत्रादि का ज्ञान रखते थे। जब सामान्य व्यक्ति अपने जीवन में इनको महत्त्व देगा तो विशिष्टजनों का इस विषय की ओर लगाव होना स्वाभाविक है। महाकाव्य में नायक व प्रतिनायक के आक्रमण को सूर्य व चन्द्र ग्रहण के समान वर्णन किया है, क्योंकि पूर्णिमा को चन्द्रमा षोडश कला सम्पन्न (पूर्णवली) होता है, तभी राहु उस पर आक्रमण करता है जब कि अमा पूर्व में बली सूर्य पर राहु का आक्रमण होता है–

**ध्रियते यावदेकोऽपि रिपुस्तावत्कुतः सुखम्।**
**पुरः क्लिश्नाति सोमं हि सैंहिकेयोऽसुरद्रुहाम्।।**[2]

जैसे कि ज्योतिष ग्रन्थों में ग्रहण होने पर राजा के लिये अनिष्ट, अतिवृष्टि, अनावृष्टि या महामारी द्वारा प्रजा का विनाश व धन क्षय

1. शिशुपालवध, 1/72
2. शिशुपालध, 2/35

आदि का होना स्वभाविक है। इस ग्रह आच्छादन को श्रीमद्गणेशदैवज्ञ विरचित ग्रहलाघवम् में इस प्रकार कहा है-

**छादयत्यर्कमिन्दुर्विधं भूमिभा**
**छादकच्छाद्यमानैक्यखण्डं कुरु।**
**तच्छरोनं भवेच्छन्नमेतद्यदा**
**ग्राह्यहीनावशिष्टं तु खच्छन्नकम्॥**[1]

इसी प्रकार ग्रहों की मैत्री को भी कवि ने प्रसंगानुसार महाकाव्य में उचित स्थान दिया है। क्योंकि व्यवहार में देखा जाता है कि परिस्थिति के अनुसार कभी शत्रु मित्र हो जाता है। मित्र शत्रु हो जाता है महाकाव्य में शिशुपाल की भगवान् श्रीकृष्ण के साथ शत्रुता का विवेचन करते हुए महाकवि माघ ने ज्योतिषशास्त्र प्रसिद्ध ग्रहों की कृत्रिमशत्रुता को निम्नलिखित श्लोक के माध्यम से प्रस्तुत किया है-

**सखा गरीयान् शत्रुश्च कृत्रिमस्तौ हि कार्यतः।**
**स्यातामभित्रौ मित्रे च सहजप्राकृतावपि॥**[2]

ज्योतिषशास्त्र में सभी ग्रहों के स्वाभाविक 1/4 नैसर्गिक 1/2 मैत्री, स्वाभाविक शत्रुता, स्वाभाविक तटस्थता, स्वाभाविक समानता और जन्म-कुण्डली में ग्रहों का परस्पर सम्बन्ध होना विशेष महत्त्व रखता है। इस प्रकार ग्रहों की स्वाभाविक मित्रता-शत्रुता को सारावली में निम्नलिखित रूप में वर्णित किया गया है-

**मित्राणि सूर्याद्गुरुभौमचन्द्राः**
**सूर्येन्दुपुत्रौरविचन्द्रजीवाः।**
**भानुः सशुक्रः शशिसूर्यभौमा**
**मन्देन्दुजौ शुक्रबुधौ क्रमेण॥**
**शुक्रार्कजा चन्द्रमसो न कश्चित्-**
**सौम्यः शशी शुक्रबुधौ रवीन्दू**

---

1. ग्रहलाघवम्, 5/5
2. शिशुपालवध, 2/36

**सोमार्कवक्रा रवितस्त्वमित्र**
**मित्रारिशेषो न सुहृन्न शत्रुः।।**[1]

मानसागरी में निम्नलिखित रूप में वर्णन किया गया है–

**शत्रूमन्दसितौसमश्च.......मित्रं स्थितः।।**[2]

इस प्रकार ज्योतिषशास्त्र प्रसिद्ध ग्रहमैत्रीसिद्धान्त को लेकर शिशुपाल पूर्वजन्म के कर्मों के अनुसार व इस जन्म के कर्मो के अनुसार ही वह भगवान् का शत्रु बन गया। जिस कारण भगवान् श्रीकृष्ण को शिशुपाल का वध करना पड़ा। यहाँ पर महाकवि द्वारा भगवान् श्रीकृष्ण के मातृस्वस्रा के पुत्र शिशुपाल के लिए माघ ने ज्योतिषशास्त्र प्रतिपादित ग्रहमैत्रीसिद्धान्त को विशिष्ट युक्तियों द्वारा प्रकाशित किया। इसके साथ ही कवि ने शीघ्र व सरलतापूर्वक कार्य सम्पन्न करने हेतु मृदु, मैत्र, क्षिप्र संज्ञक नक्षत्रों का आश्रय लिया है। ज्योतिषशास्त्रानुसार पुष्य नक्षत्र को 'सर्वसिद्धिकर' एवं सर्वदिशा की यात्रा में शुभ माना है।– **"सर्वसिद्धिकरः पुष्यः"**[3] ज्योतिषशास्त्र में प्रतिपादित इस विषय की चर्चा को महाकवि माघ ने निम्न रूप में प्रस्तुत किया है–

**रराज सम्पादकमिष्टसिद्धः सर्वासु दिक्ष्वप्रतिषिद्धमार्गम्।**
**महारथः पुष्यरथं रथांगी क्षिप्रं क्षपानाथ इवाधिरूढः।।**[4]

सन्दर्भगत् टीका करते हुए मल्लिनाथ का कथन इस प्रकार है।–

**पुष्यो हस्तो मैत्रमप्याश्विनञ्च चत्वार्याहुः सर्वादिग्द्वारकाणि।**[5]

मुहूर्त्तचिन्तामणिकार ने क्षिप्रादिक नक्षत्र विवेचन को इस प्रकार प्रस्तुत किया है–

---

1. सारावली, 4/28–29
2. मानसागरी, पृ. 243–2–3
3. बृहज्योतिस्सार, पृ. 185
4. शिशुपालवध, 3/22
5. शिशु. मल्लिनाथ टीका, 3/22

**हस्ताश्विपुष्याभिजितः क्षिप्रं लघु गुरुस्तथा।**
**तस्मिन् पण्यरतिज्ञानं भूषाशिल्पकलादिकम्।।**[1]

वशिष्ठ मतानुसार इस प्रकार कहा गया है–

**कथितान्यपि लघुवृन्दे चरसंज्ञे तीन कार्यणि।**[2]

इसी प्रकार शुभ मुहूर्त्त में किया गया यात्रा प्रस्थान यात्रा में विघ्न नहीं आने देता तथा अभीष्ट कार्य की सिद्धि करता है। इसी ज्योतिषशास्त्रीय सिद्धान्त का आश्रय लेकर महाकवि माघ ने पुष्य नक्षत्र में सुदर्शनचक्रधारी भगवान् श्रीकृष्ण के रथारोहण का वर्णन किया है–

**कलादधानः सकलाः स्वभाभिरुद्भासयन्सौधसिताभिराशा।**
**यां रेवतीजानिरियेष हातुं न रौहिणेयो न च रोहणीशः।।**[3]

ज्योतिषशास्त्रानुसार पुष्य नखत्र में रथारोहण–गजारोहण आदि कार्य शुभफल कारक माने हैं। साथ ही कवि ने सूर्य चन्द्र द्वारा होने वाले वेशि–वाशि, सुनफा–अनफा व दुरुधरा योगों को भी अपने महाकाव्य में समुचित स्थान दिया है। यहाँ ज्योतिषशास्त्रीय सिद्धान्त का उल्लेख महाकवि माघ ने इस प्रकार किया है– "पवनपुत्र" (भीमसेन) तथा "इन्द्रपुत्र" (अर्जुन) के मध्य में स्थित शोभा सम्पन्न श्रीकृष्ण सूर्य से भिन्न किन्हीं दो ग्रहों गुरु और शुक्र के मध्य स्थित होने से "दुरुधरा" नामक योग को धारण करते हुए सुन्दर चन्द्रमा के सदृश अत्यधिक शोभायमान हो रहे हैं।

**पवनात्मजेन्द्रसुतमध्यवर्तिना नितरामरोचि रुचिरेण चक्रिणा।**
**दधतेव योगमुभयग्रहान्तरस्थितिकारितं दुरुधराख्यमिन्दुना।।**[4]

ज्योतिषशास्त्रीय ग्रन्थ बृहज्जातक में दुरुधरा योग को निम्न रूप में प्रस्तुत किया है–

---

1. मुहूर्तचिन्तामणि, नक्षत्रप्रकरण–श्लो.– 6
2. मुहर्त्तचिन्तामणि, पृ. 74
3. शिशुपालवध, 3/60
4. शिशुपालवध, 13/22

**हित्वार्कसुनफाऽनफादुरुधराः स्वान्त्योभयस्थैर्ग्रहैः।**
**शीतांशोः कथितोऽन्यथा तु बहुभिः केमद्रुमोऽन्यैस्त्वसौ।।**[1]

उपरोक्त ज्योतिषशास्त्रीय लक्षणों का आश्रय लेकर महाकवि माघ ने भगवान् श्रीकृष्ण के दोनों ओर भीम व अर्जुन का वर्णन उसी प्रकार किया है जिस प्रकार ज्योतिषशास्त्रीय ग्रन्थों में सुनफादि योगों का वर्णन किया गया है, महाकवि ने इन वर्णनों से श्रीकृष्ण के सौभाग्य को दर्शाया है।

सामुद्रिकशास्त्र को भी कवि ने काव्य में समुचित स्थान दिया है। महाकाव्य में नारद जी के शरीर कान्ति, जटा तथा अंग प्रत्यंग का वर्णन सामुद्रिकशास्त्र के अनुसार होने से कवि की उत्कृष्ट ज्ञानशीलता को प्रकट करता है। जैसे-

**दधानमम्भोरुहकेसरद्युतीर्जटाः शरच्चन्द्रमरीचिरोचिषम्।**
**विपाकपिगास्तुहिनस्थलीरुहो धराधरेन्द्रं व्रततीततीरिव।।**[2]

प्रस्तुत पद्य में उपमा अलंकार का प्रयोग कर महाकवि ने महर्षि नारद के शरीर कान्ति को **"शरच्चन्द्रमरीचिरोचिषम्"** शरद्ऋतु के चन्द्रमा की किरणों के समान कान्ति युक्त कहा तथा उनकी जटाओं को दो विशेषणों से विभक्त किया है **"अम्भोरुहकेसरद्युतिः"** तथा **"विपाकपिंगस्तुहिनस्थलीरुहो"** तथा नारद की उपमान रूप में **"धराधरेन्द्रं व्रततीततीरिव"** वर्णित है।

अर्थात् नारद की शरीरकान्ति को चन्द्रसदृश तथा उनके वर्ण को पर्वतराज हिमालय के सदृश कहा है। इस प्रकार शरीरकान्ति तथा शरीरवर्ण वैशिष्ट्य की चर्चा सामुद्रिकशास्त्र में विशद्रूप से चर्चित है। जैसे- सामुद्रिकशास्त्र नामक ग्रन्थ में इस प्रकार से वर्णित है-

**स्निग्धा सिताच्छहरितानयनाभिरामा।**
**सौभाग्यमार्दवसुखाभ्युदयान्करोति।।**

---

1. बृहज्जातक- चन्द्रयोगाऽध्याय, 13/3
2. शिशुपालवध, 1/5

**सर्वार्थसिद्धिजननी जननीव चाप्या।**
**छायाफलं तनुभृतां शुभमादधाति।।**[1]

शिशुपालवधमहाकाव्य में नारद की कान्ति को चन्द्रमा के सदृश बताया है, यह चन्द्रसदृश कान्ति सामुद्रिकशास्त्र में सुखसम्पन्नता सूचक रूप में है-

**स्निग्धत्वक्का धनिनो मृदुभिः**
**सुभगा विचक्षणास्तनुभिः।।**[2]

कुछ स्थानों पर श्रीकृष्ण के मुख, नेत्र, वक्षस्थल की विशालता का सामुद्रिकशास्त्र के अनुसार वर्णन करते हुए व्यक्तित्व को महान कर दिया है कृष्ण पत्नियों के नेत्र, कपोल, ओष्ठमाधुर्य का विवेचन भी सामुद्रिकशास्त्रानुसार होने से नारी सौन्दर्य व भाव भंगिमायें दर्शनीय हैं। जैसे-

**पतत्पतंगप्रतिमस्तनोनिधिः पुरोऽस्य यावन्न भुवि व्यलीयत।**
**गिरेस्तडित्वानिव यावदुच्चकैर्जवेन पीठादुदतिष्ठदच्युतः।।**[3]

प्रस्तुत पद्य में महाकवि ने नारद और श्रीकृष्ण की शरीरकान्ति को वर्णित किया है। सामुद्रिकशास्त्रानुगत् इस कान्तिवैशिष्ट्य की चर्चा प्राचीन सामुद्रिकाचार्यों ने इस प्रकार से कि है-

**चण्डाऽधृष्या पद्महेमाग्नि-**
**वर्णयुक्ता तेजोविक्रक्रमैः सम्प्रतापैः।**
**आग्नेयीति प्राणिनां स्याज्जयाय**
**क्षिप्रं सिद्धिं वाञ्छितार्थस्य धत्ते।।**[4]

महाकवि माघ ने कथानायक श्रीकृष्ण के शरीरांग सौन्दर्य वर्णन प्रसंग को सामुद्रिकशास्त्रानुसर प्रस्तुत किया है। महाकाव्य में महर्षि नारद

---

1. सामुद्रिकशास्त्र-प्रथमखण्ड, श्लोक 15
2. बृहत्संहिता-पुरुषलक्षण, श्लोक 8
3. शिशुपालवध, 1/12
4. बृहत्संहिता-पुरुषलक्षण, श्लोक 92

और भगवान् श्रीकृष्ण के समागम वर्णन करते हुए महाकवि माघ ने भगवान् श्रीकृष्ण के विलोचनसौन्दर्य को निम्नलिखित पद्य में प्रस्तुत किया–

**निदाघधामानमिवाधिदीधितिं**
**मुदा विकासं मुनिमभ्युपेयुषी।**
**विलोचने बिभ्रदधिश्रितश्रिणी**
**स पुण्डरीकाक्ष इति स्फुटोऽभवत्।।**[1]

प्रस्तुत पद्य में महाकवि माघ ने काव्यलिंगालंकार का प्रयोग करते हुए भगवान् श्रीकृष्ण के नेत्रों को "पुण्डरीक" (कमलनेत्र) सदृश कहा है, तथा सूर्य सदृश तेजस्वी नारद की उपस्थिति होने से उनके कमल सदृश नेत्र हर्ष से विकसित हो गये हैं। इस प्रकार सामुद्रिकशास्त्रीय ग्रन्थों में उक्त नेत्र विकास विवेचन का सम्यक् परिचय मिलता है। इसी सिद्धान्त का आश्रय लेकर महाकवि माघ ने भगवान् श्रीकृष्ण के नेत्रों को पुण्डरीकाक्ष कहा है। वराहमिहिर ने बृहत्संहिता में इस प्रकार कहा है–

**पद्मदलाभैर्धनिनो रक्तान्तविलोचनाः श्रियो भाजः।**
**मधुपिंगलैर्महार्था मार्जारविलोचनैः पापाः।।**
**हरिणाक्षा मण्डललोचनाश्च जिह्मैश्च लोचनैश्चौराः।**
**क्रूराः केकरनेत्र गजसदृशविलोचनाश्च भूपतयः।।**[2]

महाकाव्य में भगवान् श्रीकृष्ण के वक्षस्थल सौन्दर्य को निम्नलिखित शब्दों में प्रस्तुत किया है–

**उभौ यदि व्योम्नि पृथक्प्रवाहावाकाशगङ्गापयसः पतेताम्।**
**तेनोपमीयेत तमालनीलमामुक्तमुक्तालतमस्य वक्षः।।**[3]

प्रस्तुत पद्य में महाकवि माघ ने श्रीकृष्ण के वक्षस्थल की श्यामलता तथा विशालता को विविध अलंकारों का प्रयोग करते हुए

---

1. शिशुपालवध, 1/24
2. बृहत्संहिता–पुरुषलक्षण, 64–65
3. शिशुपालवध, 3/8

सामुद्रिकशास्त्रानुसार ही प्रस्तुत किया है। बृहत्संहिता में वक्षस्थलवैशिष्ट्य को इस प्रकार कहा गया है–

**समवक्षसोऽर्थवन्तः पीनैः शूरा ह्यकिञ्चनास्तनुभिः।**
**विषमं वक्षो येषां ते निःस्वाः शस्त्रनिधनाश्च।।**[1]

काव्य स्रष्टा ने स्थान–स्थान पर शकुनशास्त्र को भी अपने महाकाव्य में महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है। काव्यारंभ में ही लोगों द्वारा नारद जी का दर्शन (पुण्यात्मा व तपोनिधियों का दर्शन) को शुभ सूचक मानते हुए महाकाव्य के महत्त्व को बढ़ा दिया है। इस प्रकार के महापुरुषों का दर्शन भूत, वर्तमान, भविष्य तीनों कालों के लिए शुभ–सूचक है। जैसे–

**विधाय तस्यापचितिं प्रसेदुषः**
**प्रकाममप्रीयत यज्वनां प्रियः।**
**ग्रहीतुमार्यान्परिचर्यया मुहु–**
**र्महानुभावा हि नितान्तमर्थिनः।।**[2]

प्रस्तुत पद्य में महाकवि माघ ने शकुनविद्या का आश्रय लेते हुए काव्य में पुण्यात्माओं तथा तपोधनियों का दर्शन शुभसूचक रूप में प्रस्तुत किया है। यहाँ महापुरुषों के पुण्यदर्शन पूजन की चर्चा को भद्रबाहुसंहिता में निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत किया है–

**देवतान् पूजयेत् वृद्धान् लिंगनो ब्राह्मणान् गुरुन्।**
**परिहारेण नृपती राज्यं मोदति सर्वतः।।**[3]

भद्रबाहुसंहिता में श्रेष्ठपूजनीय वृद्धजनों के पूजन से पाप का नाश होता है ऐसा निर्दिष्ट है।

**दैवतं दीक्षितान् वृद्धानथ पूजयेत् ब्रह्मचारिणः।**
**ततस्तेषां तपोभिश्च पापं राज्ञां प्रशाम्यति।।**[4]

---

1. बृहत्संहिता, पुरुषलक्षण, श्लोक 29
2. शिशुपालवध, 1/17
3. भद्रबाहुसंहिता, 13/181
4. भद्रबाहुसंहिता, 13/116

इसी प्रकार अग्रिम पद्य में शकुनशास्त्रीय सिद्धान्तों का अनुकरण करते हुए देवर्षि नारद के पुण्य दर्शन को महाकवि माघ ने श्रीकृष्ण की उक्ति रूप में प्रस्तुत किया है–

**हरत्यघं सम्प्रति हेतुरेष्यतः शुभस्य पूर्वाचरितैः कृतं शुभैः।**
**शरीरभाजां भवदीयदर्शनं व्यनक्ति कालत्रितयेऽपि योग्यताम्।।**[1]

शकुनशास्त्रीय ग्रन्थों में भद्रपुरुषों का दर्शन शुभसूचक रूप में वर्णित है। भद्रबाहुसंहिता में पुण्यदर्शन को निम्नलिखित शब्दों में प्रकाशित किया है–

**सर्वेषां शकुनानाञ्च प्रशस्तानां स्वरः शुभः।**
**पूर्णं विजयामाख्याति प्रशस्तानाञ्च दर्शनम्।।**[2]

कवि ने जहाँ कथा नायक के पक्ष में शुभ शकुनों का वर्णन किया है वहीं शत्रुनायक के विनाश हेतु धूमकेतु का उदय अपशकुन के रूप में वर्णित किया है। जैसे–

**ओमित्युक्तवतोऽथ शार्ङ्गिण इति व्याहृत्य वाचं नभ-**
**स्तस्मिन्नुत्पतिते पुरः सुरमुनाविन्दोः श्रियं बिभ्रति।**
**शत्रूणामनिशं विनाशपिशुनः क्रुद्धस्य चैद्यं प्रति**
**व्योम्नीव भ्रुकुटिच्छलेन वदने केतुश्चकारास्पदम्।।**[3]

प्रस्तुत पद्य में भगवान् श्रीकृष्ण की वक्रभ्रकुटि को महाकवि ने धूमकेतु के रूप में प्रस्तुत किया है। शकुनशास्त्रानुसार धूमकेतु का उदय[4] उपप्लव उत्पन्न करने वाला माना है। इसी प्रकार भद्रबाहुसंहिता नामक ग्रन्थ में भी धूम्रकेतु के उदय प्रभाव की चर्चा की है–

**बृहस्पतिं यदा हन्याद् धूम्रकेतुरथार्चिभिः।**
**वेदविद्याविदो वृद्धान् नृपंस्तज्ज्ञांश्च हिंसति।।**[5]

---

1. शिशुपालवध, 1/26
2. भद्रबाहुसंहिता, 13/102
3. शिशुपालवध, 1/75
4. मुहूर्त–पारिजात, यात्रप्रकरण, पृष्ट 298
5. भद्रबाहुसंहिता, 21/29

शुभ शकुनों का वर्णन करते हुए कहीं प्रशस्त स्वर (श्रीकृष्ण, बलराम, उद्धव की वाणी) का भी परिचय सुधी पाठकों को कराया है, कहीं शुभ वर्ण की वस्तु, कहीं कमल पुष्पों की चर्चा करने से यात्रावर्णन प्रसंग पाठकों के लिये रुचिकर बन गया है। साथ ही यात्राकाल में सौभाग्यवती नायिकाओं का दर्शन यात्रा को अमंगल रहित बना दे रहा है। जैसे-

**प्राणच्छिदां दैत्यपतेर्नखानामुपेयुषां भूषणतां क्षतेन।**
**प्रकाशकार्कश्यगुणौ दधानाः स्तनौ तरुण्यः परिवब्रुरेनम्॥**

**आकर्षतेवोर्ध्वमतिक्रशीयानत्युन्नतत्वाकुचमण्डलेन।**
**ननाम मध्योऽतिगुरुत्वभाजा नितान्तमाक्रान्त इवांगनानाम्॥**

**यां यां प्रियः प्रैक्षत कातराक्षी**
**सा सा ह्रिया नम्रमुखी बभूव।**
**निःशंकमन्या सममाहितेर्ष्या-**
**स्तत्रान्तरे जघ्नुरमुं कटाक्षैः॥**[1]

प्रस्तुत पद्य में शकुनशास्त्रीय सिद्धान्तों का अनुशरण करते हुए महाकवि माघ ने श्रीकृष्ण की हस्तिनापुर यात्रा प्रस्थान में सौभाग्यवती देवीयों की उपस्थिति शुभसूचक बताई है।

पुनः शुभ शकुनों का वर्णन करते हुए पूर्ण चन्द्र का दर्शन, मधुर संगीत श्रवण, स्तुति गान, मृदंगध्वनि ये सभी यात्रा को रमणीय बना रहे हैं। जैसे-

**यियासतस्तस्य महीध्ररन्ध्रभिदापटीयान्पटहप्रणादः।**
**जलान्तराणीव महार्णवौघः शब्दान्तराण्यन्तरयाञ्चकार॥**[2]

शकुनशास्त्र में नगाड़ों की ध्वनि, मृदंगादि वाद्ययन्त्रों की ध्वनि के श्रवण को शुभफल सूचक रूप में माना है-

---

1. शिशुपालवध, 3/14, 15, 16
2. शिशुपालवध, 3/24

**भेरीशंखमृदंगश्च प्रयाणे ये यथोचिताः।**
**निबध्यन्ते प्रयातानां विस्वरा वाहनाश्च ये।।**[1]

साथ ही वन विहार जलक्रीड़ा, मयूर दर्शन, मयूर स्वर, द्विज दर्शन, साधु पुरुष, दर्शनादि के द्वारा यात्रा को सुगम बना दिया है। जैसे-

**द्रुतमध्वन्नुपरि पाणिवृत्तयः**
**पणवा इवाश्वचरणक्षता भुवः।**
**ननृतुश्च वारिधरधीरवारण-**
**ध्वनिहृष्टकूजितकलाः कलापिनः।।**[2]

प्रस्तुत पद्य में शकुनशास्त्र का अनुकरण करते हुए महाकवि ने मयूरादि द्वारा किये गये मधुर शब्द को यात्रा में शुभ फल सूचक माना है। बृहत्संहिता में मयूरादि के द्वारा किये गये मधुर ध्वनि को निम्नलिखित रूप में प्रकाशित किया है-

**कुक्कुटेभपिरिल्यश्च शिखिवञ्जुलछिक्कराः।**
**बलिनः सिंहनादश्च कूटपूरी च पर्वतः।।**[3]

साथ ही प्रतिपक्षी राजाओं के शरीर का वस्त्र गिरना, [4]राजकन्याओं के हाथ से कास्य पात्र पतन[5] तथा शत्रु युवतियों के नेत्रों से प्रवाहित होती अश्रुधार[6] शत्रु राजाओं के लिये विनाश अपशकुन रूप में वर्णित है।

इस प्रकार शिशुपालवध महाकाव्य का अवलोकन करते हुए काव्य में ज्योतिषशास्त्र संबद्ध, सूर्यादि ग्रहों की स्थिति, सूर्यग्रहण व विभिन्न ग्रह नक्षत्रों द्वारा निर्मित योगों का विचार विशद्रूप में चर्चित है। साथ ही विभिन्न प्रसंगों में अन्य ज्योतिषशास्त्रीय तत्त्वों का वर्णन कर महाकवि माघ ने अपनी प्रतिभा के कुशल ज्योतिषशास्त्रज्ञता का परिचय दिया है।

---

1. भद्रबाहुसंहिता, 13/119
2. शिशुपालवध, 13/5
3. बृहत्संहिता-शकुन अध्याय, श्लोक 20
4. शिशुपालवध, 15/57
5. शिशुपालवध, 15/81
6. शिशुपालवध, 15/81, 15।84

# शिशुपालवध में ज्योतिष तत्त्व

**-डॉ. नवीन राजपूत***

परम प्रयास साध्य योग, जप, तप या वेद-वेदान्तादि दर्शनशास्त्रों के परिशीलन की अपेक्षा काव्यशास्त्र के परिशीलन में ही लोगों की अधिकतर प्रवृत्ति होती है। भरतमुनि ने स्पष्ट कहा है कि धर्मार्थियों को धर्म, कामार्थियों को काम, विद्याभिलाषुकों को विद्वत्ता तथा दीन दु:खियों एवं शोकसन्तप्तों को परम शान्ति आदि देन वाला एकमात्र काव्य ही है।

भामहाचार्य ने सत्काव्य सेवन से धर्मार्थकाममोक्ष-रूप पुरूषार्थ चतुष्टय, कलाओं में वैचक्षण्य, प्रीति एवं कीर्ति की प्राप्ति होना कहा है। मम्मटाचार्य ने स्पष्ट ही कहा है कि यश, व्यावहारिक निपुणता, अमंगलनाश, परमनिवृत्ति तथा कान्ता के समान हितोपदेश देने वाला है।

रसगंगाधरकार पण्डितराज जगन्नाथ ने **"रमणीयार्थप्रतिपादकः शब्दः काव्यम्"** तथा **रसे सारश्चमत्कार** वचनों द्वारा रमणीयार्थ-प्रतिपादक शब्द को काव्य कहकर रस में चमत्कार को ही रस माना है। विश्वनाथ ने **"वाक्यं रसात्मकं काव्यम्"** कारिकानुसार रसात्मक वाक्यों को ही काव्य माना है। इस प्रकार चमत्कारपूर्ण रसात्मक गुणालंकार युक्त निर्दोष वाक्यों को काव्य कहते हैं। यह सर्वसम्मत निर्दिष्ट लक्षण समष्टिरूप से विचार करने पर सिद्ध होता है।

## काव्य के भेद तथा महाकाव्य का लक्षण

दृश्य तथा श्रव्य भेद से काव्य दो प्रकार का होता है। इसमें प्रथम दृश्यकाव्य का नामान्तर रूपक भी है यह नाटकादिभेद से दस प्रकार का होता है तथा द्वितीय श्रव्यकाव्य पद्यामक, गद्यात्मक और उभयात्मक अर्थात गद्यपद्यात्मक भेद से तीन प्रकार का होता है, इनमें भी प्रथम

---

* श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रिय, संस्कृत विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

पद्यात्मक काव्य में महाकाव्य, खण्डकाव्य, कुलक, कलापक, सन्दानितक, युग्मक और मुक्तक, सात भेद होते हैं।

महाकाव्य सर्गबन्ध होता है। कोई एक देव या उत्तम वंशज धीरोदात्त क्षत्रिय अथवा एक कुल में उत्पन्न अनेक राजाओं के चरित का वर्णन किया जाता है। शृंगार, वीर तथा शान्त इन तीन रसों में से कोई एक रस प्रधान तथा नव रसों में से शेष रस अप्रधान होते हैं। महाभारतादि इतिहास के या अन्य किसी सज्जन के चरित का वर्णन होता है। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष रूप पुरुषार्थ चतुष्टय में से कोई एक लक्ष्य होता है। ग्रन्थादि में नमस्कारात्मक, वस्तुनिर्देशात्मक या आशीर्वादात्मक मंगल रहता है। किसी किसी महाकाव्य में प्रथम दुष्टों की निन्दा तथा सज्जनों की प्रशंसा भी रहती है। पूरे सर्ग में न तो बहुत बड़े और न बहुत छोटे तथा कम से कम आठ सर्ग होते हैं। सर्ग के अन्त में आगामी सर्ग की कथा का संकेत रहता है। सन्ध्या, सूर्य, चन्द्र, रात्रि, प्रदोषकाल, अन्धकार, दिन, प्रातःकाल, मध्याह्न, आखेट, पर्वत, रितु, सम्भोग तथा विप्रलम्भ शृंगार, मुनि, स्वर्ग, नगर, यज्ञ, युद्ध, यात्रा, विवाह, मन्त्रणा, पुत्रोत्पत्ति, आदि जलक्रीडा, वनविहार आदि में से किन्हीं का यथायोग सांगोपांग वर्णन किया जाता है। कवि वृत्त कथा नायक या किसी अन्य मुख्य के नाम पर महाकाव्य का नाम रहता है और सर्ग में वर्णित कथा के नाम पर प्रत्येक सर्ग का नाम रहता है। उपर्युक्त के अनुसार शिशुपाल में सर्गबन्ध रचना, श्री कृष्णभगवान् नायक वीररस अङ्गी तथा अन्य रस अंग महाभारत का इतिवृत्त (कथांश) शिशुपालवधात्मक दुष्टनिग्रहरूप फल, वस्तुनिर्देशात्मक मंगलाचरण, प्रथम एक छन्द तथा अन्त में दूसरे छन्द में प्रत्येक सर्ग की रचना, विंशतिसर्गात्मक अनेक छन्दों में सर्ग की रचना, प्रत्येक सर्ग में आगामी कथांश की सूचना, युद्धयात्रा, द्वारकापुरी, समुद्र, रैवतक पर्वत, सेनानिवेश, छः रितु, पुष्पावचय, जलक्रीडा, सायंकाल, चन्द्रोदय, मद्यपान, प्रभात, प्रयाग तथा यमुना, सेनाप्रयाण, यज्ञसभा, द्वन्द्वादियुद्ध आदि का यथास्थान सागोंपाङ्ग वर्णन है। शिशुपाल के वधरूप फल के आधार पर शिशुपालवध महाकाव्य नाम होने से यह शिशुपालवध महाकाव्य में परिगणित होता है, जो इसके सर्वथा उपयुक्त है।

## शिशुपालवध महाकाव्य की श्रेष्ठता

यद्यपि संस्कृतसाहित्य में सहस्र महाकवि एवं अनेक रचित ग्रन्थरत्न हैं, तथापि पं. दुर्गाप्रसादजी के कथानुसार पहले रघुवंश, कुमारसम्भव, किरतार्जुनीय, शिशुपालवध तथा नैषधीयचरित तथा मेघदूत इन छः काव्यों का ही प्रचार प्रसार एवं अध्ययन-अध्यापन प्रचलित था। इन छः काव्यों में रघुवंश, कुमारसम्भव और मेघदूत महाकवि कालिदास की कृतियाँ लघुत्रयी नाम से प्रसिद्ध हैं तथा शेष किरातार्जुनीय, शिशुपालवध तथा नैषधीयचरित महाकाव्य क्रमशः भारवि, माघ तथा श्रीहर्ष के रचे हैं और ये बृहत्त्रयी कहे जाते हैं और इन्हीं के अध्ययन-अध्यापन द्वारा सर्वाधिक प्रचार प्रसार अब तक होता रहा है।

अब यहाँ शिशुपालवध (माघ) महाकाव्य के प्रति विद्वानों की अमित श्रद्धा का संक्षिप्त परिचय देना भी अप्रासंगिक नहीं होगा किसी कवि ने सत्य ही कहा है–

**उपमाकालिदासस्य भारवेरर्थगौरवम्।**
**नैषधे पदलालित्यं माघे सन्ति त्रयो गुणा॥**

एक समय किसी बृद्ध महाविद्वान् से किसी ने पूछा कि आपने किन किन ग्रन्थों का अध्ययन किया है, जिससे आपकी बुद्धि इतनी विशद् एवं दूरदर्शिनी हो गई है। उसके उत्तर में उक्त बृद्ध महाविद्वान् ने कहा **'मेघे माघे गतं वयः'** अर्थात् कालिदासकृत मेघदूत काव्य तथा माघकृत माघ (शिशुपालवध) काव्य में मैंने अपनी पूर्ण आयु समाप्त कर दी है। इससे भी माघ की महत्ता स्पष्टतया प्रतिपादित होती है।

**शिशुपालवध की विषयवस्तु** - श्रीमद्भागवत के दसवें स्कन्ध के 74 वें अध्याय तथा महाभारत के सभा पर्व के 33 वें से 45 वें (13 अध्याय) तक शिशुपालवध की कथा उपलब्ध होती है। शिशुपालवध 20 सर्गों का महाकाव्य है, इसमें 1350 श्लोक हैं। इन्द्र से प्रेरित श्री नारद जी कृष्ण को शिशुपाल के वध के लिए प्रोत्साहित करते हैं और तदनुसार श्रीकृष्ण पाण्डवों के राजसूय यज्ञ को जाते हुए शिशुपाल का वध करते हैं। इतने से लघु कथानक को लेकर 20 सर्गों के महाकाव्य

की रचना की गई है, इसमें भारवि की भांति वर्णनों का विस्तार है। महाकाव्य के लिए अपेक्षित सभी सामग्री इसमें उपलब्ध हैं, इसमें लम्बे-लम्बे राजनैतिक व्याख्यान भी है और रम्य प्रकृति चित्रण भी, अलंकारों एवं कल्पनाओं का प्राचुर्य भी है। स्थान-स्थान पर श्लेष, यमक आदि का प्रयत्नसाध्य प्रयोग माघ की अलंकार प्रियता का द्योतक है।

## महाकवि माघ

शिशुपालवध के अंत में महाकवि माघ ने अपना संक्षिप्त वंश परिचय दिया है। इनका जन्मस्थल भीमाल था, वर्तमान में भीममाल राजस्थान के सिरोही जिले के अन्तर्गत एक तहसील है। प्राचीनकाल में यह अनेक विद्वानों की जन्मस्थली रही है। इनके पितामह सुप्रभदेव थे ये राजा श्रीवर्मल के धर्मसचिव थे राजा श्री विर्मल इनके उपदेशों को बड़ी श्रद्धा के साथ मानते थे। सुप्रभदेव के दत्तक नामक अत्यन्त उदार, क्षमाशील, धर्मपरायण और सबके आश्रय दाता पुत्र थे इस कारण इनका नाम सर्वाश्रय पड़ गया।

माघ के रचना काल के विषय में प्रमाण काव्यशास्त्र के ग्रन्थों में प्राप्त उनके उद्धरण तथा काव्यों में उनके उल्लेख हैं। वामन ने अपने काव्यालंकारसूत्र तथा आनन्दवर्धन ने ध्वन्यालोक (850 ई.) में उनके महाकाव्य से कतिपय पद्य उद्धृत किए हैं। वामन के समय (नवीं शताब्दी) के प्रथम चरण तक शिशुपालवध महाकाव्य सारे देश में प्रतिष्ठित हो चुका था। राजा अमोघवर्ष (814 ई.) के आश्रित कवि नृपतुंग ने अपने कन्नड़ ग्रन्थ कविराज मार्ग में माघ को कालिदास के समकक्ष माना है। इसके अतिरिक्त माघ के पितामह सुप्रभदेव के आश्रयदाता श्रीवर्मल का 625 ई. का एक शिलालेख उपलब्ध हुआ है। इन सभी प्रमाणों से विदित होता है कि महाकवि माघ का स्थितिकाल 650-700 ई. के मध्य हुआ था। वे भट्टी कवि से लगभग 50 वर्ष बाद 675 ई. में हुए थे, ऐसा अनुमान लगाया जाता है।

यद्यपि माघ ने भरवि का अनुकरण किया है फिर भी भारवि की अपेक्षा माघ का कवित्व श्रेष्ठ है, आलोचकों एवं सुक्तिकारों ने भी

भारवि की अपेक्षा माघ को ही श्रेष्ठ बतलाया है। निम्नलिखित उक्तियाँ साक्षी हैं-

**तावद्भा भारवेर्भाति, यावन्माघस्य नोदयः**

**माघे सन्ति त्रयोगुणाः** अर्थात् माघ में उपमा का वैशिष्ट्य, पदलालित्य तथा अर्थगौरव ये तीनों ही उत्कृष्ट गुण पाये जाते हैं। भले ही माघ में कालिदास जैसी प्रासादिकता एवं अभिव्यजनाशक्ति न हो पर पदलालित्य एवं अर्थगौरव की दृष्टि से माघ का स्थान बृहत्त्रयी में सर्वश्रेष्ठ है।

माघ की सबसे बड़ी विशेषता उनके अगाध पाण्डित्य में तथा उनकी बहुज्ञता में है। एक नहीं अनेक शास्त्रों का माघ को ज्ञान है और इसका स्थान-स्थान पर उनके काव्य में परिचय मिलता है। शास्त्रज्ञता एवं दार्शनिकता के क्षेत्र में कवि माघ का स्थान सर्वोत्तम है, माघ वेद-वेदांग के ज्ञाता तथा उच्च कोटि के वैयाकरण हैं, भाषा पर इनका अटूट अधिकार है। यद्यपि सांख्य योग आदि दर्शनों के कुछ पारिभाषिक शब्दों के प्रयोग से तथा अनेक पौराणिक संकेतों से और पाणिनी व्याकरण परिनिष्ठित क्लिष्ट शब्दों के प्रयोग से इनका काव्य कुछ कठिन अवश्य हो गया है, तथापि यह सब उनके अगाध पाण्डित्य के परिचायक हैं। सारांश यह कि नीतिशास्त्र तथा कामशास्त्र, ज्योतिष एवं आयुर्वेद आदि सभी के ज्ञान की परिचय हमें माघ काव्य में मिलता है, पर माघ की विशेषता पद-लालित्य एवं अर्थ-गौरव में सबसे बढ़कर है, माघ में उपमा का प्रयोग तो कहीं-कहीं अति उत्तम बन पड़ा है।

इसी प्रकार माघ के सम्वादों में अपूर्व ओजस्विता है। उनकी अलंकारों की चित्रशाला भी बड़ी ही आकर्षक है, ऐसा प्रतीत होता है कि माघ की दृष्टि में उत्तम काव्य का आदर्श है- चित्रमयता, शाब्दिक एवं अर्थप्रधान चमत्कारोत्पादक अलंकारों से सुसज्जित पद-विन्यास और इसका उन्होंने सफलतापूर्वक पालन भी किया है। माघ का प्रिय छन्द मालिनी है, यद्यपि उनके काव्य में विविध छन्दों का प्रयोग है। इसीलिए माघ-विषयक यह कथन सत्य प्रतीत होता है-

**नवसर्गे गते माघे नवशब्दो न विद्यते।**

बृहत्त्रयी में जो माघ को सर्वोत्कृष्ट स्थान प्राप्त हुआ है इसका कारण वस्तुतः उनका वैदुष्य है, उनके गम्भीर पाण्डित्य एवं उनकी बहुज्ञता को समझने के लिए पाठक को उसके सतत अध्ययन एवं मनन की आवश्यकता है, क्योंकि माघ का काव्य एक अगाध रत्नाकर है। इसमें जो जितनी गहराई में उतर सकेगा। उसे उतने ही रत्न प्राप्त हो सकेंगे। रसास्वादन वही कर सकता है जो चिरकाल तक इसका अध्ययन और मनन करने की क्षमता रखता हो, सम्भवतः इसी विचार से माघ काव्य की प्रशंसा में यह उक्ति प्रचलित है "मेघे माघे गतं वयः।"

## शिशुपालवध में ज्योतिषतत्त्व

वैदिक ऋषियों, महाऋषियों तथा तत्त्ववेत्ता मनिषि आचार्यों ने मानव जीवन की व्यवस्था और मनुष्य की क्षमता को ध्यान में रखकर एक ऐसे शास्त्र का आविष्कार एवं विकास किया है जिसमें काल (समय) का स्वरूप, उसके अवयव, उसके गुणधर्म और मानवीय गतिविधियों पर उसके प्रभाव तथा जीवन के घटना चक्र के साथ उसके सूक्ष्म एवं सतत् सम्बन्ध का सांगोपांग विचार कर उसको जानने एवं पहचानने के सामान्य नियमों, सिद्धान्तों तथा प्रविधियों का प्रतिपादन करता है। ऐसे लौकिक एवं जीवनोपयोगी शास्त्र का नाम ज्योतिषशास्त्र है। यह एक ऐसी विद्या है, जिससे व्यक्ति, चराचर जगत एवं ब्रह्माण्ड के जीवन में कब-कब, कहाँ-कहाँ और क्या-क्या घटित होने वाला है? इन सबको भली-भाँति जाना जा सकता है। इस शास्त्र का मानव जीवन के सभी पहलुओं का सभी पक्षों का विचार कर स्पष्ट एवं पर्याप्त जानकारी पूर्व में ही देकर हमारी सर्वाधिक सहायता करता है, इसलिए कहा जा सकता है कि ज्योतिष रहित ज्ञान उसी प्रकार अपूर्ण कहा जायेगा जैसे नेत्र विहीन मनुष्य का व्यक्तित्व अपूर्णता का द्योतक है।

ज्योतिषशास्त्र को **कालाश्रितज्ञानं** कहा गया है। राशिचक्र में मेष आदि द्वादश राशियों में सूर्य आदि नव ग्रहों की गतिविधियों को काल कहते हैं। जिस प्रकार घड़ी में एक ड़ायल और उस पर चलने वाली

घण्टा, मिनट एवं सैकण्ड की तीन सूईयों के माध्यम से काल की ठीक जानकारी प्राप्त होती है। ठीक उसी प्रकार से 12 भावों में राशिचक्र की बारह राशियों में सूर्य आदि ग्रहों के परिभ्रमण से हमें, वर्ष, मास एवं दिन के माध्यम से काल की जानकारी प्राप्त होती है और विविध राशियों तथा भाव आदि में उनकी स्थिति के अनुसार काल के गुणधर्मों की जानकारी होती है। ज्योतिषशास्त्र में काल के गुण धर्मो को आसानी से हृदयंगम करने के लिए उसका ग्यारह अवयवों में विभाजन किया गया है। यथा 1. वर्ष, 2. अयन, 3. ऋतु, 4. मास, 5. पक्ष, 6. वार, 7. तिथि, 8. नक्षत्र, 9. योग, 10. करण एवं 11 लग्न। जैसे शरीर के अवयवों को **पाँच कर्मेन्द्रियाँ** (हाथ, पैर, वाणी, लिंग एवं गुदा), **पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ** (आँख, कान, नाक, जिह्वा एवं त्वचा) तथा ग्यारहवाँ **मन** मुख्य होते हैं। उसी प्रकार काल के उक्त ग्यारह अवयव किसी भी कार्य की प्रक्रिया और उसके परिणाम को कभी-कभी प्रत्यक्ष रूप में, कभी-कभी परोक्ष रूप से प्रभावित करते हैं।

ज्योतिषशास्त्र कर्मवाद, पुनर्जन्मवाद, कार्यकारणवाद एवं सत्कार्यवाद जैसे दार्शनिक सिद्धान्तों की कसौटी पर गणित, वेध, सर्वेक्षण तथा परीक्षण जैसी वैज्ञानिक विधियों द्वारा मानव चराचर जगत एवं ब्रह्माण्ड के जीवन के घटनाचक्र को जांच एवं परखकर निरूपित करता है। इसीलिए इस शास्त्र का जन-जीवन पर तथा अन्य शास्त्रों के सहायक के रूप में हमेशा से महत्त्व था, महत्त्व है और महत्व रहेगा।

भारतीय ऋषियों तथा ज्योतिष के प्रणेताओं ने ज्योतिषशास्त्र को मुख्य तीन भागों में विभक्त किया है। यथा 1. सिद्धान्त स्कन्ध, 2. संहिता स्कन्ध तथा 3. होरा शास्त्र। **सिद्धान्त स्कन्ध** में ग्रहगणित के आधारभूत नियमों, वेध विधियों, यन्त्रों एवं पंचाग निर्माण की प्रक्रिया का विवेचन किया जाता है। इसके अन्तर्गत त्रुटि से लेकर कल्पकाल तक की कालगणना, सौर, चान्द्र मासों का प्रतिपादन, ग्रहगतियों का निरूपण, व्यक्त-अव्यक्त गणित का प्रयोजन, विविधा प्रश्नोत्तर विधि, ग्रह, नक्षत्र की स्थिति, नाना प्रकार के तुरीय, नलिका इत्यादि यन्त्रों की निर्माण

विधि, दिक्, देश, काल ज्ञान के अन्यतम उपयोगी अंग, अक्षक्षेत्र सम्बन्धी अक्षज्या, लम्बज्या, द्युज्या, कुज्या, तद्धृति, समशंकु इत्यादि का आनयन रहता है। मुख्य रुप से सिद्धान्त स्कन्ध में सिद्धान्त, तन्त्र तथा करण का समावेश होता है।

**होरा स्कन्ध** में जन्मकालीन ग्रहों की स्थिति के अनुसार व्यक्ति का जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त मानव जीवन में घटित होने वाली घटनाओं और उनके शुभ-अशुभत्व का विचार किया जाता है। मानव जीवन के सुख, दु:ख, ईष्ट, अनिष्ट, उन्नति, अवनति, भाग्योदय आदि समस्त शुभ-अशुभों का वर्णन इसी शास्त्र में रहता है। होरा शास्त्र में तीन विधाएँ है 1. जातक, 2. ताजिक तथा 3. प्रश्न।

**संहिता स्कन्ध** में ब्रह्माण्ड में घटित होने वाले समस्त घटनाक्रम का ग्रहचार, सप्तऋषिचार, मेदिनी, सामुद्रिक शास्त्र, वास्तुशास्त्र, स्वरविज्ञान, शकुनशास्त्र, पर्जन्यविद्या, मुहूर्तशास्त्र, धार्मिक अनुष्ठान, संस्कार एवं लक्षण आदि के मध्यम से निरूपण होता है।

महाकवि माघ अन्य शास्त्रों की भांति ज्योतिषशास्त्र के भी मर्मज्ञ थे। माघ द्वारा अपने महाकाव्य में ज्योतिषशास्त्र की विभिन्न विधाओं का बड़ा ही सरल, सटिक एवं सरस वर्णनं किया है महाकवि माघ ने शिशुपाल वध में सूर्य, चन्द्र आदि ग्रहचार, ऋतुवर्णन, सामुद्रिक शास्त्र, वास्तुशास्त्र, स्वर विज्ञान, **शकुन शास्त्र,** मुहूर्त शास्त्र धार्मिक अनुष्ठान आदि समस्त ज्योतिषीय विधाओं का बहुत सुन्दर तरीके से विषयवस्तु में नाना प्रकार से एवं बहुत प्रभावी तरीके से उपयोग किया है।

ज्योतिषशास्त्र के ज्ञाता महाकवि माघ ने सूर्यादि नवग्रहों का, ग्रहण का, राशियों का नक्षत्रों का, दिशाओं का, योगों का, ऋतुओं का, वृक्षायुर्वेद का वास्तुशास्त्र का, शकुनशास्त्र का, रत्नशास्त्र तथा अन्य ज्योतिषीय तत्त्वों का ओजपूर्ण वर्णन किया है।

महाकवि माघ ने प्रत्येक सर्ग में सूर्य का विशद् वर्णन किया है। सूर्य को तेज पुञ्ज तथा ऋतुओं का कारक बताया है, सूर्य की गति का वर्णन भी किया है, सूर्योदय तथा सूर्यास्त का वर्णन अत्यन्त सुन्दर तथा

कलात्मक रूप से किया गया है। सूर्य को नेत्रों का कारक, रोशनी का कारक, सूर्य के सातों घोड़ों का वर्णन सूर्य किरणों द्वारा रोगों का शमन, सूर्य को रोगों के दोषों का नाश करने वाला कहा है तथा बल प्रदान करने वाला कहा है, जल सोख कर वर्षा करने वाला तथा आकाश की शोभा बढ़ाने वाला कहा गया है। अरूण द्वारा अन्धकार का दमन, प्रभात कालीन संध्या का वर्णन, सूर्यमण्डल में स्थिर रहने का वर्णन भी प्राप्त होता है, सूर्य मण्डल का वामन द्वारा चर्चा का वर्णन, सूर्य किरणों को तांबे के समान लाल रंग का तथा सूर्य को तेजस्विता का द्योतक कहा गया, सूर्यग्रहण का भी वर्णन प्राप्त होता है। चन्द्रमा का काव्य में वर्णन अतिशोभा पाता है। प्राय: सभी कवि चन्द्रमा की उपमा के बिना रह नहीं सकते इसी क्रम में माघ ने भी अपने महाकाव्य में प्रत्येक सर्ग में चन्द्रमा का वर्णन विशद् रूप से किया है। शरद ऋतु के चन्द्रमा का वर्णन विशेष रूप से प्रदर्शित किया है। चन्द्र की 16 कलाओं का कलात्मक वर्णन भी खुलकर किया गया है, राहु द्वारा चन्द्र का ग्रास, पुष्य नक्षत्र में चन्द्र को ईष्टसिद्धि दायक कहा है, चन्द्रोदय का वर्णन तथा दिशाओं का प्रकटिकरण चन्द्रास्त का वर्णन भी कवि ने कलात्मक ढंग से किया है। चन्द्र को रात का देवता भी कहा है, चन्द्र को औषधि का कारक तथा औषधिपति भी कहा गया है चन्द्र को प्रभु के नेत्र तथा नेत्र का कारक भी बताया गया है। माघ ने मंगल की भी चर्चा पन्द्रहवें सर्ग में की है तथा गुरु और शुक्र का वर्णन द्वितीय सर्ग में किया है, तथा राहु का भी विशद् वर्णन माघ ने किया है। कभी चन्द्र के ग्रास का वर्णन, कहीं सूर्य ग्रास कर ग्रहण की चर्चा तथा राहु द्वारा देव पंक्ति में खड़े होकर अमृत पान की भी चर्चा माघ ने अपने महाकाव्य में किया है। इस प्रकार ग्रहों का वर्णन माघ ने अपने काव्य में प्रत्येक सर्ग में विस्तृत रूप से किया है। ग्रहों के अलावा पौराणिक 12 महीनों की चर्चा विशेषकर अग्रहन मास की चर्चा की गई है। नक्षत्रों की चर्चा विशेष कर पुष्य, हस्त नक्षत्र सप्तऋषि मण्डल तथा ध्रुव नक्षत्र वर्णन तथा विशाल नक्षत्र छत्र तथा मण्डल का वर्णन भी कई संदर्भो में किया है। दिशाओं का वर्णन तथा अपनों का वर्णन भी कुछ जगहों पर आया है। ऋतुओं का वर्णन

तो विशेष रूप से माघ ने किया है। षष्ठ सर्ग में ऋतुओं का विशद् वर्णन किया है, ऋतुओं में प्राप्त होने वाली फल-फूल पेड़ पौधों का वर्णन बहुत सुन्दरता से किया है। कौन-कौन सी ऋतुओं में कौन-कौन से पुष्प खिलते हैं, कौन-कौन से पेड़ पौधे पल्लवित होते हैं तथा कौन-कौन से फल प्राप्त होते हैं, इन सब का विशद् वर्णन प्राप्त होता है। नक्षत्रों तथा ग्रहों से बनने वाले योगों का भी वर्णन माघ ने अपने महाकाव्य में किए हैं।

### वास्तुशास्त्र

शिशुपालवध के तृतीय सर्ग में 33 से 63 श्लोक तक द्वारका नगरीय वस्तु तथा तेरहवें सर्ग में 28 से 50 वें श्लोक तक इन्द्रप्रस्थ नगरी के वस्तु का वर्णन प्राप्त होता है। वास्तुशास्त्र का प्रथम नियम है कि जहाँ विहार करने में आपको आनन्द अनुभव हो, खुशी मिले रहने का वातावरण सुन्दर हो तो उस स्थान की वास्तु उत्तम होती है। दोनों ही नगरियों (द्वारका, इन्द्रप्रस्थ) में निवास करने वाले जन खुश थे दोनों नगरियों में सम्पन्नता थी तथा आनन्द का, उल्लास का, उत्सव का सा वातावरण रहता था। अतः दोनों नगरियों का वास्तु उत्तम था। जिस प्रकार से महाकवि माघ ने द्वारका नगरी के वातावरण का वर्णन किया है उसके अनुसार शिशुपालवध में द्वारका पुरी का वर्णन करते हुए कहा है कि समुद्र के बीच सुवर्णमय परकोटे की कान्ति से दिशाओं को पिंगलवर्ण करती हुई, जल को भेदकर बड़वाग्नि की ज्वाला के समान शोभित होती है।[1] ब्रह्मा द्वारा प्राप्त शिल्प-विज्ञान कला का यह अद्वितीय रूप है।[2] द्वारकापुरी चारों ओर समुद्र से घिरी है तथा तटों पर शंख समूहों की कान्ति नक्षत्रमण्डल के समान दृश्यमान होती है।[3] यह उत्तम वास्तु का रूप है जहाँ शंक मोती आदि रत्नों का भण्डार हो ऐसी वास्तु उत्तम मानी गई है। द्वारका के परकोटे इतने विस्तृत तथा ऊँचे हैं कि बादल

1. शिशुपालवध, 3/33
2. वही, 3/35
3. वही, 3/37

भी चार दिवारी से टकरा कर बाहर ही वर्षा करते हैं। अर्थात् सुरक्षा की दृष्टि से द्वारका नगरी उत्तम है,[1] जिसमें प्रथम वह समुद्र के मध्यम में द्वैत या दूसरा चारों ओर चार दीवारी से घिरी है, यह भी उत्तम वास्तु का प्रमाण है। महलों की दीवारों रत्नों से सजी हुई थी। फर्श, चन्द्रकान्त मणियों वाले हैं, तथा छतों पर से वर्षा आदि का जल के निकास हेतु नालियों की व्यवस्था थी।[2] गृहस्तम्भ सोने के बने हुए हैं। महलों की देहलियों तोते के शरीर के समान मरकत मणियों से बनी हुई थी।[3] द्वारकापुरी बड़ी तुलाओं खम्भों के ऊपर रखे जाने वाले काष्ठों (मंथला) वाले होने पर भी अनुपम थी, विद्वानों के समूहों से युक्त समस्त पदार्थों से परिपूर्ण थी, चित्रों से हानि होते हुए भी सम्पूर्ण और विशाल शालाओं (कमरों) वाले गृहों से शोभा पाती थी, महलों की ऊंचाई नक्षत्र मार्ग तक बताई जाती है।[4]

इन्द्रप्रस्थ नगरी का निर्माण असुर शिल्पराज मयासुर द्वारा किया गया था।[5] मयासुर ने इन्द्रप्रस्थ नगरी के नौ द्वार बनाए थे तथा सभी द्वार बड़े सुन्दर राजमार्ग से जुड़े हुए थे। मयासुर वास्तु के महान मर्मज्ञ थे, उन्होंने वर्ष पर्वा के सुन्दर मणिमय काष्ठ को बिन्दु सरोवर (हिमाचल) से लोकर सभा को रचा था। आकाश स्पर्शी चाँदी के समान चट्टानों से महलों का निर्माण हुआ है। फर्श को इन्द्रनीलमणि, हरित वर्ण वाली पद्यराग मणियों से निर्मित किया है।[6]

भवन का निर्माण इतने उत्कृष्टता से बनाया गया था कि दीवारें अदृश्य थीं, दीवारों को स्पर्श करने पर ही यह प्रतीत होता था कि दीवार है। दीवारें स्फटिक मणियों से बनी थी चित्रकारी ऐसी थी कि सजीव सी

---

1. शिशुपालवध, 3/40-41
2. वही, 3/44
3. वही, 3/47-48
4. वही, 3/52
5. वही, 13/50
6. वही, 13/53-54

प्रतीत होती थी। सभाभवनों के समूह मरकत मणियों तथा पन्ना मणियों से बने हुए थे। सभा भवनों के निकट वृक्ष उपवन तथा बड़े बड़े पानी के सरोवरों का भी निर्माण किया गया था।[1]

मयासुर द्वारा इस प्रकार पानी के नालिकाएँ (कुण्ड सदृश) बनाई गई थी जो स्थल की तरह आभासित होती थी। तथा सभा में फर्श इस तरह बनाए थे जो जल के कुण्ड सदृश दिखाई पड़ते थे,[2] फर्श तलवार की कान्ति वाली इन्द्रिनीलमणि से बनाए गए थे। सोने की ईटों से महलों का निर्माण किया गया था।[3] तथा देवभवनों से भी ऊँची आकाश स्पर्शी मणियों की किरणों से आभासित थे। दीवारें रत्नमयी स्फटिक आदि मणियों से बनी थी। इस प्रकार महाकवि माघ द्वारा दोनों नगरीयों की वास्तु का वर्णन उनकी विद्वता का परिचय स्वयं परिलक्षित करता है।

## रत्नशास्त्र

माघ ने महाकाव्य में जिस प्रकार अलंकृत किया है। उस अलंकरण में रत्नों का अपना विशेष स्थान है। महाकवि ने स्त्रियों के अलंकारों में, भवनों के निर्माण में, राजाओं के मुकुट आदि में, मालाओं में, बाजूबंध आदि प्रत्येक जगह में रत्नों की उपस्थिति को बहुत ही सुन्दर ढंग से वर्णित किया है। प्रवाल, स्फटिक, महानीलमणि, मरकतमणि, पद्मराग मणि, मुक्तामणि, मुक्ता की माला, कौस्तुभ मणि, इन्द्रनीलमणि, वैदूर्यमणि, मोतीयों की माला, चन्द्रकान्तमणि, वज्र, सूर्यकान्त मणि आदि असंख्य मणियों, मालाओं, बाजूबंधों का वर्णन अत्यन्त आकर्षक ढंग से किया है।

प्रथम सर्ग में प्रवाल, स्फटिक, नीलमणि के वर्णन के साथ-साथ रत्नों से जड़ित मुकुट आदि का वर्णन प्राप्त होता है। द्वितीय सर्ग में भी रत्नों का वर्णन आम है, तृतीय सर्ग में रत्नों के वर्णन मरकत मणि का

1. शिशुपालवध, 13/56-57
2. वही, 13/59
3. वही, 13/60

पद्मराग मणि, मुक्ता की माला, कौस्तुभमणि मोतियों की माला, इन्द्रनील मणि, स्फटिक, चन्द्रकान्त मणियों वैदूर्यमणि, रत्नों की दीवारों, स्फटिक, मरकत मणि, हीरा तथा मोतियों का वर्णन प्राप्त होता है। चतुर्थ सर्ग में इन्द्रनीलमणि, मरकत मणि, सूर्यकान्त मणि, रत्नों का विशेष वर्णन प्राप्त होता है। मरकत मणि, चन्द्रकान्त मणि तथा सूर्यकान्त मणि का भी वर्णन है। पंचम सर्ग में मोती, नीलमणि आदि का वर्णन मिलता है। अष्टम सर्ग में मोती, मुक्तामणि आदि, नवें सर्ग में पद्मराग मणि, चन्द्रकान्तमणि, स्फटिक। 10वें सर्ग में मुक्ताद्वार, मोतियों की माला, बाजूबंधों का वर्णन, एकादश सर्ग में पद्मरागमणियों का वर्णन है। तेरहवें सर्ग में मोतियों के गुछों का वर्णन, स्फटिक मणियां, नीलमणियों, पद्मराग मणियों का वर्णन, 17वें सर्ग में पद्मराग मणियों, योगियों की माला कौस्तुभ सर्ग का वर्णन प्राप्त होता है। इस प्रकार अधिकांश सभी सर्गों में रत्नों की उपस्थिति प्राप्त होती है।

## शकुनशास्त्र

ज्योतिषशास्त्र के अन्तर्गत ही शकुनशास्त्र भी आता है। महाकवि माघ ने पन्द्रहवें सर्ग के 81 से 96 श्लोकों के मध्य युद्ध से पूर्व शिशुपाल पक्ष की सैनिकों की रमणियों द्वारा विलाप की चर्चा में अपशकुन का वर्णन किया है। राजमहर्षी के शिथिल हाथों से प्याला नीचे गिरना प्रियतम के भावी विरह की चिन्ता से अंगों में शिथिलता, आंखों में लालिमा, टुटे-फूटे वाक्य निकलना तथा आसुओं की धारा अपशकुन की सूचना देता है।[1] शोक से भुजा से कंकण धरती पर गिरना, गमन के समय बच्चे का पिता को पीछे से टोकना अर्थात् पिता जी कहाँ जा रहे हो?[2] प्रयाण के पूर्व किसी वस्तु का गिरना या स्वयं गिरना तथा आगे किसी गर्भवती का उपस्थित होना एवं आओ बैठो आगे आदि शब्द राजाओं की यात्रा के प्रसंग में निषिद्ध माने गए हैं। पति को ईर्ष्या वश

---

1. शिशुपालवध, 15/81
2. वही, 15/86-87

यह कहना कि तुम स्वर्ग की अप्सराओं को भोग विलास करने की इच्छा रखते हो। इसीलिए लड़ाई में जाने से प्रसन्न हो यह उक्ति भी भावी अमंगल की सूचना देती है।[1]

कुछ स्त्रियाँ दिशाओं की भांति शोभाविहिन होकर उद्भ्रान्त चित्त बन गयी थीं और उनके हृदय में जलन हो रही थी। कुछ अन्य स्त्रियाँ बंवडर की भांति प्रत्येक दिशा में घूम रही थी और कुछ दूसरी रमणियाँ धरती के समान काँप रही थी। इस प्रकार शिशुपाल पक्षीय राजाओं के युद्ध में पर्याण के अवसर पर उनकी स्त्रियाँ भावी अमंगल की सूचना दे रही थीं।[2]

इस प्रकार शिशुपालवध में महाकवि माघ ने अपने ज्योतिषीय ज्ञान के भण्डार को अत्यन्त सुन्दरता से उपयोग कर इस महाकाव्य की शोभा को उत्कृष्टता की ऊंचाई पर सुशोभित कर दिया है तथा उनके ज्योतिषीय ज्ञान का वर्णन उनकी विद्वता का द्योतक है।

---

1. शिशुपालवध, 15/88
2. वही, 15/91-93

# शिशुपालवध महाकाव्य में रसविचार

-डॉ. राजकुमार वर्मा*

संस्कृत साहित्य में अनेकों महाकवियों के ग्रंथरत्न विद्यमान हैं, तथापि विद्वानों के मतानुसार काव्यकारों में महाकवि माघ का महत्त्वपूर्ण स्थान है। उनके द्वारा विरचित शिशुपालवध महाकाव्य को संस्कृतसाहित्य की बृहत्त्रयी में विशिष्ट स्थान मिला है। हर्षवर्धन के उपरान्त संस्कृत साहित्य के ह्रासोन्मुख काल में माघ का कवित्व सर्वोत्तम निर्धारित किया जा सकता है। शिशुपालवध महाकाव्य किसी न किसी रूप में परवर्ती काव्यों का पथ प्रदर्शक अवश्य रहा है।

**शिशुपालवध ग्रन्थ का परिचय-**

शिशुपालवध महाकाव्य महाकवि माघ की एकमात्र रचना है। भारवि के महाकाव्य किरातार्जुनीयम् की भाँति शिशुपालवध महाकाव्य की कथावस्तु भी महाभारत से ली गई है। यद्यपि विष्णुपुराण, ब्रह्मवैवर्तपुराण, अग्निपुराण, श्रीमद्भागवत आदि ग्रन्थों में भी शिशुपाल की कथा प्राप्त होती है। परन्तु महाभारत के सभापर्व में उक्त का विस्तार से वर्णन मिलता है। इसमें द्वारिकानाथ कृष्ण तथा चेदिराज शिशुपाल के वैर तथा युद्ध में श्रीकृष्ण के द्वारा शिशुपाल का वध किए जाने की कथा वर्णित है। इस काव्य में 20 सर्ग तथा 1650 श्लोक हैं। कथा में शिशुपाल को हिरण्यकश्यप तथा रावण का अवतार माना गया है। देवर्षि नारद इन्द्र की ओर से श्रीकृष्ण को देवताओं के विरोधी शिशुपाल का नाश करने के लिए प्रेरित करते हैं। बलराम तुरन्त युद्ध करने का परामर्श देते हैं और

---

* अध्यापक, राजकीय प्रवेशिका संस्कृत विद्यालय-लाड़पुर, कोटकासिम जिला अलवर (राजस्थान)

उद्धव युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में जाने का परामर्श देते हैं। श्रीकृष्ण अपनी सेना के साथ इन्द्रप्रस्थ पहूँचते हैं। युधिष्ठिर उनकी अग्रिम पूजा करके सम्मानित करते हैं। शिशुपाल इसका विरोध करता है। तथा युद्ध के लिए सेना तैयार करता है तथा अपने दूत द्वारा दर्पपूर्ण सन्देश भेजकर युद्ध को अवश्यम्भावी बना देता है। दोनों सेनाओं में युद्ध होता है। अन्त में श्रीकृष्ण सुदर्शन चक्र से शिशुपाल का सिर काट देते हैं और इसका तेज उनमें लीन हो जाता है।

## शिशुपालवध में रस विचार–

शिशुपालवध महाकाव्य में प्रधान (अङ्गी) रस वीर है।[1] शृङ्गार-रौद्रादि रस इसमें अङ्गरूप बनकर आये हैं। अंगरसों में शृङ्गार रस प्रमुख रूप से इस महाकाव्य में मिला है। इस महाकाव्य के वीररसपूर्ण इतिवृत्त में शृङ्गार लीलाओं के पूरे 6 सर्गों में विस्तृत वर्णन से ऐसा लगता है कि मानो यह महाकाव्य शृङ्गार-रस प्रधान है। परन्तु फिर भी महाकवि माघ वीररस के सफल चित्रकार ज्ञात होते हैं।

## वीर-रस[2] –

शिशुपालवध महाकाव्य में वीररस की अनुपम छटा प्रथम सर्ग में ही दिखाई देती है। शिशुपाल के पूर्वजन्म के वृत्तान्त को सुनाते हुए

---

1. नेताऽस्मिन् यदुनन्दनः स भगवान् वीर प्रधानो रसः
शृङ्गारादिभिरङ्गवान् विजयते पूर्णा पुनर्वर्णना॥
इन्द्रप्रस्थगमायुपायविषयश्चैधावसादःफलं
धन्यो माघकविर्वयं तु कृतिनस्तत्सूक्तिः संसेवनात्॥ मल्लिनाथ॥

2. उत्तमप्रकृर्तिवीर उत्साहस्थायिभावकः
महेन्द्रदैवतो हेमवर्णोऽयं समुदाहृतः॥
आलम्बनविभावास्तु विजेतव्यादयो मताः।
विजेतव्यादिचेष्टायास्तस्योद्दीपनरूपिणः॥
अनुभावस्तु तत्र स्युः सहायान्वेषणादयः।
सञ्चारिणस्तु धृतिमतिगर्वस्मृतितर्क-रोमाञ्चाः।
स च दान-धर्मयुद्धैर्दयया च समन्वितश्चतुर्धा स्यात्॥ सा.द.-3/232-234

नारदजी श्रीकृष्ण से कहते हैं- हे नृसिंह! (पुरूषोत्तम तथा सिंह रूपधारी श्रीकृष्ण) विशाल सिंह-शरीर को धारण करते हुए (अतएव) गर्दन के बालों के समूह से बादलों को छिन्न भिन्न करने वाले अपने उस हिरण्यकशिपु को नव रमणी के स्तनों के सम्पर्क से भी टेढ़े हो जाने वाले (अत्यन्त कोमल) नखों से पेट फाड़कर मार डाला।[1]

इस उदाहरण में हिरण्यकशिपु आलम्बन है उसका औद्धत्य, कृष्ण द्वारा उनका वध करना अनुभाव तथा संचारी भाव मति-स्मृति-गर्व आदी है।

द्वितीय सर्ग में यथा- एक शत्रु रहना भी हानिकारक है। यह बलराम जी कहते हैं जब तक एक भी शत्रु जीवित रहता है तब तक सुख कहाँ से हो सकता है? (अर्थात् नहीं हो सकता है) क्योंकि देवताओं के सामने भी राहू चन्द्रमा को (तथा सूर्य को भी) कष्ट देता है।[2]

यहाँ बलराम कृष्ण को उत्तेजित करने के लिए उक्त कथन कहते हैं। तथा अन्यत्र शिशुपाल की वीरता का भी वर्णन करते हैं। यथा- शिशुपाल एक ही आक्रमण में शत्रुओं को उसी तरह मार डालता है जैसे एक हि सुबन्त या तिङ्त रूप पद में उदात्त स्वर अन्य अनुदात्तादी स्वरों को मारता है अर्थात् बाधित करता है।[3]

महाकवि माघ द्वारा महाकाव्य में नायक की वीरता का भी यथोचित प्रयोग किया गया है। जैसे- शिशुपाल के कठोर कोपयुक्त

---

1. सटाच्छटाभिन्नघने न बिभ्रतां नृसिंह! सैंहीमतनुं तनुं त्वया।
   स मुग्धकान्तास्तनसंगभंगुरैरुरोविदारं प्रतिचस्करे नखैः॥ शिशुपालवध- 1/47
2. ध्रियते यावदेकोऽपि रिपुस्तावत् कुतः सुखम्।
   पुरः क्लिश्नाति सोमं हि सैंहिकेयोऽसुरद्रुहाम्॥ वही- 2/34
3. तदीशितारं चेदीनां भवाँस्तमवमंस्त मा।
   निहन्त्यरीनेकपदे य उदात्तः स्वरानिव॥ वही- 2/95

कथन को सुनकर भी श्रीकृष्ण क्षुब्ध नहीं हुए[1]। सात्यकि के शिशुपाल के दूत को दिये गये उत्तर में वीररस के स्थायी उत्साह की सुन्दर व्यञ्जना की गई। सात्यकि कहता है कि वह चेदीराज (शिशुपाल) नरकान्तक (श्रीकृष्ण) को जिस विधि से (मित्ररूप में या शत्रुरूप में) देखने के लिए आना चाहता है, उसके योग्य उत्तर दिया जायेगा (यदि मित्र बनकर वह आयेगा तो मित्रभाव से और यदि शत्रु बनकर आयेगा तो शत्रु-भाव से व्यवहार किया जायेगा) वह यथाशीघ्र ही आये।[2]

सोलहवें सर्ग में दूत के मुख प्रतिनायक के पराक्रम का वर्णन किया गया है जो प्रतिनायक गत वीर-रस के पोशण में सहायक सिद्ध हआ है।[3] घमण्ड से परिपूर्ण जो राजा शिशुपाल के चरणों में नहीं झुकता है तो यह शिशुपाल ही उस राजा के मस्तक पर अपने चरण रख देता है।[4]

इस उदाहरण में शत्रु आलम्बन है उसकी चेष्टाएँ उद्दीपन हैं, शिशुपाल द्वारा उसको हराना उसके मस्तक पर चरण रखना अनुभाव, मति और गर्व संचारी भाव है।

सत्तरहवें सर्ग में वीर रस के संचारी भावों की सुन्दर प्रतिपुष्टि हुई है। यथा- यशस्वी राजाओं के युद्ध होने की चर्चा सुनने के कारण श्रीकृष्ण के सैनिकों के शीघ्र वृद्धि को धारण किये हुए शरीर के भीतर दूसरे लोगों से क्षणमात्र भी कठिनाई से वहन करने योग्य प्रसन्नता नहीं समा सकी।[5]

श्रीकृष्ण ने शत्रु पर किस प्रकार आक्रमण किया इसका विस्तार से वर्णन भी किया गया है।[6] श्रीकृष्ण की वीरता अद्भुत् है, उन्होंने

1. शिशुपालवध, 15/40
2. वही, 16/33
3. शिशुपालवध, 16/62, 63,65,67,69,83 आदि।
4. वही, 16/68
5. वही, 17/22
6. वही, 19/83-87

दिगन्त तक व्याप्त तीक्ष्ण ध्वनि करते हुए तथा मर्मस्थल को विदीर्ण करने वाले बाणों को तथा शत्रुओं को एक क्षण में ही निरस्त कर दिया।[1]

नायक की वीरता का सांगोपांग चित्रण यथा- श्रीकृष्ण ने पयोधर तुल्य गजकुम्भों को भिगोंने वाले, हृदय के विदीर्ण होने से उत्पन्न शत्रुओं के रक्त से तथा उनकी सुन्दरियों के अश्रुओं से नदियों को बहवा दिया।[2]

शिशुपाल तथा श्रीकृष्ण के युद्ध के वर्णन में नायक यथा प्रतिनायक गत वीररस की सुन्दर विवेचना हुई है। शिशुपाल के धनुष से लगातार गिरने वाले, लक्ष्य को भेदने की क्षमता वाले, लौह शुद्धि युक्त पंख सहित बाण उसी प्रकार निकलने लगे जिस प्रकार वादी के मुख से निरन्तर निकलने वाले वाचकता शक्ति को धारण करते हुए शुद्ध (शास्त्र-सम्मत) पक्षों को ग्रहण करते हुए शब्द निकलते हैं।[3] उधर श्रीकृष्ण ने शिशुपाल द्वारा की गई बाणों की वर्षा को अपने बाणों से उसी प्रकार खण्डित कर दिया जिस प्रकार प्रतिवादी-वादी के प्रमाण को अन्य प्रमाणों से खण्डित कर देता है।[4]

## वीर-रसाभास

माघ का अष्टादश सर्ग युद्ध-वर्णनों के पूर्वरंग साज सज्जा सेनाओं के चलने तलवारों के चमकने हाथियों के चिंघाडने आदी रसाभास के अन्तर्गत आता है। यथा- निरन्तर वेगपूर्वक दौड़ती हुई एवं विपक्षी राजाओं की सेनाओं का बड़े-बड़े तरंगों वाली श्रीकृष्ण की सेनाओं के साथ युद्ध होने लगा जिस प्रकार वेगपूर्वक आगे बढ़ती हुई नदियों का समुद्र के बड़े-बड़े तरंगों वाले प्रवाहों से गंभीर ध्वनि के साथ संघात

---

1. शिशुपालवध, 19/85
2. वही, 19/115
3. वही, 20/11
4. वही, 20/18

(टक्कर) होता है।[1] इस उदाहरण में आलम्बन का चित्रण प्राप्त होता है।

## शृङ्गार-रस

शिशुपालवध महाकाव्य में वीर रस के समान शृङ्गार रस के वर्णन में भी निपुणता प्राप्त हुई है। चतुर्थ सर्ग से एकादश सर्ग तक शृङ्गार रस प्रचुरता से मिलता है। लेकिन माघ द्वारा सम्भोग-शृङ्गार का ही अधिक वर्णन किया गया है। संभोग- शृङ्गार में रति के आलम्बन नायक नायिकाएं हैं। चन्द्रदर्शन, सन्ध्या आदि उद्दीपन हैं। भ्रूविक्षेप कटाक्ष आदि अनुभाव तथा रति स्थायी भाव है।[2] उनके षड्ऋतु वर्णन वनविहार, मद्यपान, जलक्रीड़ा आदि सम्भोग-शृङ्गार पदों की स्निग्धता मुग्ध करने वाली है, जिस-जिस प्रिया को श्रीकृष्ण ने देखा उस-उस ने लज्जा से मुख नीचा कर लिया। इस पर दूसरी युवतियाँ उस प्रियत्तम कृष्ण पर ईर्ष्यावश निर्भय होकर एक साथ अपने कटाक्षों से प्रहार करने लगी।[3]

---

1. आयन्तीनामविरतरयं राजकानीकिनीना-
   मित्थं सैन्यैः सममलघुभिः श्रीपतेरूर्मिमद्भिः।
   आसीदोघैर्मुहुरिव महद्वारिधेरापगानां
   दोलायुद्धं कृतगुरुतरध्वानमौद्धत्यभाजाम्। शिशुपालवध, 18/80
2. शृङ्गार हि मन्मधोद्भेदस्तदागभनहेतुकः।
   उत्तमप्रकृतिप्रायो रसः शृङ्गार इष्यते॥
   परोढां वर्धयित्वा तु वेश्यां चाननुरागिणीम्।
   आलम्बनं नायिकाः स्युर्दक्षिणायाश्च नायकाः॥
   चन्द्रचन्दनरोलम्बरुताद्युद्दीपनं मतम्।
   भ्रूविक्षेपकटाक्षादिरनुभावः प्रकीर्तितः॥
   त्यक्त्वोग्र्यमरणालस्यजुगुप्सा व्यभिचारिणः।
   स्थायिभावो रतिः श्यामवर्णोऽयं विष्णुदैवतः॥
   विप्रलम्भोऽथ संभोगः इत्येष द्विविधो मतः।
   यत्र तु रति प्रकृष्टा नाभीष्टमुपैति विप्रलम्भौऽसौ॥ सा.द.-तृ.प.-183-186
3. यां यां प्रियः प्रैक्षत कातराक्षी सा सा ह्रिया नम्रमुखी बभूव॥
   निःशङ्कमन्याः सममाहितेर्ष्यास्तत्रान्तरे जघ्नुरमुं कटाक्षैः॥ शिशुपालवध, 3/16

माघ ने अपने काव्य में अनेक प्रकार की नायिकाओं के विविध प्रकार के चित्र अंकित किये हैं। उनकी शृङ्गारिक प्रवृत्तियों, उनकी दूतियों के अनेक प्रियत्तमों के पास जाकर संदेश निवेदन करने का, सखियों द्वारा नायिकाओं के समझाये जाने का अति सुन्दर वर्णन किया है।

चतुर्थ सर्ग में रैवतक पर्वत के वर्णन प्रसंग में संभोग-शृङ्गार का उदाहरण यथा- इस रैवतक पर्वत पर घोड़े के समान मुख वाला किन्नर विम्बफल के समान ओष्ठवाली अपनी प्रिया के मुख को चूमते हुए (अश्व के समान धड़ तथा मनुष्य के समान मुख वाले) किन्नर को श्रेष्ठ समझता है तथा दूसरा (घोड़े के समान धड़ तथा मनुष्य के समान मुख वाला किन्नर) ऊँचे-ऊँचे स्तनों के भार से युक्त कटिवाली अर्थात् घट स्तनी एवं कृशकटि वाली अपनी स्त्री का आलिंगन करते हुए उसको (घोड़े के समान मुख तथा मनुष्य के समान धड़ वाले किन्नर को) श्रेष्ठ मानता है।[1] रैवतक पर्वत पर काम सन्ताप युक्त प्रियत्तमाओं की संभोग विषयक इच्छाओं का अनेक बार वर्णन किया गया है।[2] अन्यत्र भी[3] रैवतक पर्वत पर खिले हुए कमलों से युक्त जल वाले तटों के दोनों ओर से धारण करने वाले नदों के द्वारा जिनकी थकान को दूर कर दिया है तथा सुवर्ण के आभूषणों से अलंकृत लोक स्वादिष्ट गन्ने के रस से बनी हुई शराब को पीकर सम्भोग के लिए एकान्त में अपनी

---

1. बिम्बोष्ठं बहु मनुते तुरङ्गवक्त्रश्चुम्बन्तं मुखमिह किन्नरं प्रियायाः।
   श्लिष्यन्तं मुहुरितरोऽपि तं निजस्त्रीमुत्तुङ्गस्तनभरभंगभीरुमध्याम्॥
   शिशुपालवध, 4/38
2. वर्जयन्त्या जनैः संगमेकान्ततस्तर्कयन्त्या सुखं संगमे कान्ततः।
   योषयैव स्मरासन्नतापाङ्गया सेव्यतेऽनेकया सन्नतापाङ्गया॥ वही, 4/42
3. या न ययौ प्रियमन्यवधूभ्यः सारतरागमना यतमानम्।
   तेन सहेह बिभर्ति रहः स्त्री सा रतरागमनायतमानम्॥ वही, 4/45
   अन्यत्र भी श्लोक-संख्या- 4/51-66, 67

प्रियतमाओं के वस्त्रों को हटाया करते हैं।[1] यहाँ आलम्बन प्रियत्तमाएँ मद्यपान, एकान्त आदी उद्दीपन, वस्त्रों का हटाया जाना अनुभव, औत्सुक्य एवं हर्ष आदि संचारी भावों से रति भाव प्रकट हुआ है। अन्यत्र पंचम, षष्ठ तथा सप्तम सर्ग में भी रमणियों के विभिन्न चित्र प्राप्त होते हैं।[2]

## रौद्र-रस

शिशुपालवध में रौद्र रस[3] का भी सुन्दर प्रयोग हुआ है। रौद्र रस के स्थायी भाव क्रोध का चित्रण करते हुए कवि कहता है कि- श्रीकृष्ण पर पहले से ही वैर-युक्त शिशुपाल को युधिष्ठिरकृत श्रीकृष्ण की पूजा से अधिक प्रज्ज्वलित क्रोध का उसी प्रकार परिणाम हुआ जिस प्रकार अपच-सेवन तथा भाग्य के प्रभाव से बढ़ा हुआ ज्वर मनुष्य को प्रभावित करता है।[4] तदनन्तर क्रोधित शिशुपाल के कोप के अनुभावों का अति सुन्दर निबन्धन हुआ है।[5] शिशुपाल द्वारा युधिष्ठिर, भीम व श्रीकृष्ण के

---

1. दधद्भिरभितस्तटौ विकचवारिजाम्बूनदै-
   र्विनोदितदिनक्लमाः कृतरुचश्च जाम्बूनदैः।
   निषेव्य मधुमाधवाः सरसमत्र कादम्बरं
   हरन्ति रतये रहः प्रियमाङ्गकादम्बरम्॥ शिशुपालवध, 4/66
2. वही, 5/23, 27, 6/8, 13,37,38,55,7/14,44,45,53-66-55-52-56 आदि।
3. रौद्रः क्रौधस्थायिभावो रक्तो रूद्गाधिदैवतः।
   आलम्बनमरिस्तस्य तच्चेटोद्दीपनं मतम्॥
   मुष्टिप्रहारपातनविकृतच्छेदावदारणैश्चैव
   संग्रामसंभ्रमाद्यैरस्योद्दीप्तिर्भवेत् प्रौढा।
   भ्रूविभङ्गौष्ठनिर्देशबाहुस्फोटनतर्जनाः॥
   आत्मावदानकथनमायधोत्क्षेपणानि च॥
   अनुभावास्तथाक्षेपक्रूरसंदर्शनादयः
   उग्रतावेगरोमांचस्वेदवेपथवो मदः॥
   मोहामर्षादयस्तत्र भावाः स्युर्व्यभिचारिणः॥ सा.द./तृ.प./227-230
4. शिशुपालवध, 15/2
5. वही, 15/3-10

प्रति उपालम्भ-पूर्ण क्रोधपूर्वक वचन कहने[1], युधिष्ठिर को फटकारने[2] आदी में रौद्र रस का सम्यक् चित्रण प्राप्त होता है। इन प्रसंगों में क्रोध के अनुभावों का अवसर तथा पात्र भेद से अनेकों बार वर्णन हुआ है। विंश-सर्ग में शिशुपाल के क्रोध के वर्णन प्रसंग में कवि कहता है- इस प्रकार युद्ध में श्रीकृष्ण के पराक्रम को सहन नहीं करते हुए, अत एव क्रोधजन्य सिकुड़ने से तीन रेखाओं वाले तथा चढ़ी हुई भ्रकुटि से विकराल मुख को धारण करते हुए निर्भीक शिशुपाल ने श्रीकृष्ण को युद्ध के लिए ललकारा।[3] यहाँ श्रीकृष्ण आलम्बन उनकी चेष्टाएँ उद्दीपन शिशुपाल के मुख का भ्रूभाग के टेड़ा होना आदी अनुभाव तथा गर्व, अमर्ष आदी संचारी भाव हैं।

## भयानक रस

माघ के काव्य में भयानक रस[4] की भी प्रतिपुष्टि होती है। युद्ध करते हुए कुछ लोगों के मैदान छोड़कर भागने का वर्णन करते हुए कवि कहता है- वृक्ष की दाढ़ी के समान आचरण करते हुए मधुमक्खी के छत्ते के कपोल रगड़ते हुए हाथी के द्वारा हिलाये जाने पर बड़ी-बड़ी मधुमक्खियों से काटे जाते हुए लोग व्याकुलता पूर्वक भागने लगे।[5] यहाँ

---

1. शिशुपालवध, 15/12-33
2. वही, 15/15, 34-35, 46,40,54,56,57,63,67,65 आदि
3. वही, 20/9
4. भयानकौ भयस्थायिभावो भूताधिदैवतः।
   स्त्रीनीचप्रकृतिः कृष्णो मतस्तत्त्वविशारदैः॥
   यस्मादुत्पद्यते भीतिस्तदत्रालम्बनं मतम्।
   चेष्टा घोरतरास्तस्य भवेदुद्दीपनं पुनः॥
   अनुभावोऽत्र वैवर्ण्यगद्‌गदस्वरभाषणम्।
   प्रलयस्वेदरोमाञ्चकम्पादिक्प्रेक्षणादयः॥
   जुगुप्सावेगसंमोहसंत्रासम्लानिदीनताः।
   शङ्कापस्मारसम्भ्रान्तिमृत्वाद्या व्यभिचारिणः॥ सा.द./तृ.प./235-239
5. शिशुपालवध, 12/54

हाथी आलम्बन है, उसकी चेष्टा तथा लोगों का मधुमक्खियों द्वारा काटा जाना उद्दीपन, पलायन अनुभाव, त्रास श्रम आदी संचारी भाव है। अन्यत्र- शत्रू के बाण से कटी हुई गर्दन वाले अतः एव आकाश की ओर अत्यन्त ऊँचे उछले हुए राहू के समान भयंकर आकार वाले किसी शूरवीर के मुख से अप्सराओं का मुख रूपी चन्द्रमा भयभीत हो गया।[1] यत्र-तत्र भयानक-रसाभास भी दिखाई देता है।[2]

## वीभत्स-रस

शिशुपालवध महाकाव्य में वीभत्स रस[3] का भी युद्ध-प्रसंग में यत्र-तत्र वर्णन हुआ है। यथा- युद्ध भूमि के लघुत्तम गर्त में एकत्रित, अस्त्र-शस्त्रों से कटे हुए लोगों का रक्त जो शोभित हो रहा था वह यमराज की रमणियों के दुपट्टे को रंगने के लिए रखा हुआ कुसुम पुष्पों का पानी था क्या? माँस के लिए मरे हुए लोगों के ऊपर आकाश में घूमते हुए पक्षी ऐसे लगते ये मानों इस समय भी भयंकर शस्त्रों से शरीर को छोड़े हुए शूरवीरों के मूर्तिमान प्राण ही उड़ रहे हों। जलती हुई जीभ वाली स्यारिन ने युद्ध में मरे हुए तेजस्वियों के शरीर के साथ जो तेज खाया, भीतर गये उस तेज को मानों ज्वाला के छल से वमन करती हुई स्यारिन उच्च स्वर में चिल्लाने लगी।[4] इन उदाहरणों में क्रमशः एक पक्षी, शिवा रूप आलम्बन का स्वरूप चित्रण किया गया है।

---

1. शिशुपालवध, 18/59
2. वही, 1/46,53 आदि।
3. जुगुप्सास्थायिभावस्तु बीभत्सकथ्यते रसः।
   नीलवर्णो महाकालदैवतोऽयमुदाहृतः॥
   दुर्गन्धमांसरुधिरमेदास्यालम्बनं मतम्।
   तत्रैव कृमिपाताद्युद्दीपनमुदाहृतम्॥
   निष्ठीवनास्यवलननेत्रसंकोचनादयः
   अनुभावस्तत्रमतास्तथास्युर्व्यभिचारिणः॥
   मोहोऽपस्मार आवेगो व्याधिश्च मरणादयः॥ सा.द./तृ.पृ. 239-242
4. शिशुपालवध, 18/96, 73, 75 आदि।

## हास्य रस

माघ के काव्य में हास्य रस[1] का प्रयोग भी यत्र-तत्र हुआ है। यथा- हथिनी से भयभीत तथा सब लोगों को हँसाने वाला गर्दभ तब तक उछलता रहा, जब तक सरके हुए आसन से निवस्त्र नितम्बों वाली अन्तःपुर की दासी गिर नहीं पड़ी।[2]

यहाँ पर खर-स्थित अन्तपुरवधू आलम्बन तथा उसके नितम्बों का वस्त्रहीन होना तथा उस वधू का गधे से गिरना आलम्बन है। अतः हास्य रस है।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि शिशुपालवध का अंगीरस वीर है जिसका प्रचूरता से प्रयोग हुआ है तथा अंगरसों में शृङ्गार रस का प्रमुख स्थान है। प्रथम सर्ग में नारद द्वारा शिशुपाल के पूर्वजन्मों तथा उसके अभद्र व्यवहार कथन तथा श्रीकृष्ण को ऐसे अत्याचारी के वध के लिए उद्यत करना, द्वितीय सर्ग बलराम का शिशुपाल के शीघ्र वध के लिए श्रीकृष्ण को सलाह देना, तृतीय सर्ग में श्रीकृष्ण का द्वारिका से इन्द्रप्रस्थ प्रस्थान करना, पन्द्रहवें सर्ग में शिशुपाल का क्रोधित होना तथा

---

1. विकृताकार वाक्चेष्टं यमालोक्य हसेज्जनः।
तमत्रालम्बनं प्राहुस्तच्चेष्टोद्दीपनं मतम्।
अनुभावोऽक्षिसंकोचवदनस्मेरतादयः॥
निद्रालस्याहित्थाद्या अत्र स्युर्व्यभिचारिणः।
ज्येष्ठानां स्मिहसिते मध्यानां विहासितावहासिते च।
नीचानामपहसितं तथातिहसितं तदेष षड्भेदः॥
ईषद्विकासिनयनं स्मितं स्याद् स्पन्दिताधरम्।
किंचिल्लक्ष्यद्विजं तत्र हसितं कथितं बुधैः॥
मधुरस्वरं विहसितं सांसशिरःकम्पमवहसितम्।
अपहसितं सास्राक्षं विक्षिप्ताङ्गं च भवत्यतिहसितम्॥ सा.द./तृ.प. 214-219
2. त्रस्तः समस्तजनहासकरः करेणोस्तावत्खरः प्रखरमुल्लयाञ्चकार।
यावच्चलासनविलोलनितम्बबिम्बविस्रस्तवस्त्रमवरोधवधूः पपात॥
शिशुपालवध, 5/7 अन्यत्र, 13/32 आदि।

उसके पक्ष के राजाओं का युद्धार्थ तैयार होना, सत्रहवें सर्ग में श्रीकृष्ण की सेना की तैयारी तथा उसका प्रस्थान (युद्ध के लिए) करना, अठारहवें सर्ग में दोनों सेनाओं का साक्षात्कार और घोर युद्ध का वर्णन आदी में वीर रस का अद्भुत् वर्णन हुआ है।

तत्पश्चात् षष्ठ सर्ग में षड् ऋतुओं का वर्णन, सप्तम सर्ग में वन विहार, अष्टम सर्ग में जलक्रीड़ा वर्णन, नवम सर्ग में सायंकाल, चन्द्रोदय श्रृंगार विधानादी का विस्तृत वर्णन, दशम तथा एकादश सर्ग में पानगोष्ठी वर्णन, रतिक्रीडा वर्णन, त्रयोदश सर्ग में प्रियत्तमाओं की विलासपूर्ण चेष्टाएँ आदी में शृंगार रस का पोषण दिखलाई देता है। यद्यपि शृंगार रस बहुत समय तक चलता है, परन्तु यह अंगीरस के पोषण में बाधक नहीं है। यत्र-तत्र रौद्र-भयानक-हास्यादी रसों का भी प्रयोग इस महाकाव्य में दिखाई देता है।

# शिशुपालवध में काव्य शैली

-डॉ. शीला नायक*

महाकवि माघ की एकमात्र कृति शिशुपालवध उपलब्ध है। यह एक उच्चकोटि का महाकाव्य है। इसकी गणना संस्कृत साहित्य के महाकाव्यों बृहत्त्रयी में की जाती है। माघ द्वारा विरचित शिशुपालवध का आधार महाभारत के सभापर्व तथा श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध में वर्णित है। पद्मपुराण के 252 वें अध्याय में शिशुपालवध की कथा का उल्लेख है। अग्निपुराण तथा विष्णुपुराण में भी यह कथा कुछ व्युत्क्रम रूप में प्राप्त होती है। विद्वत् परंपरा के अनुसार शिशुपालवध काव्य के कथानक का आधार महाभारत को ही माना जाता है। कवि ने उक्त कथानक को अपनी प्रतिभा कल्पना और मौलिक उद्भावना के सहारे संवर्धित एवं परिवर्तित करके उसे काव्यानुरूप बनाया है। आवश्यतानुसार कवि ने काल्पनिक परिस्थितियों और सरस वर्णनों के द्वारा कथानक एवं काव्य को अलंकृत किया है।

काव्य-युग धर्म की सहज अनुभूति की सहज अभिव्यक्ति होते हुये भी कवि के व्यक्तित्व और प्रतिभा की छाप उस पर अवश्य होती है। किसी भी कवि के काव्य में काव्यत्व और उसके व्यक्तित्व गुणों का समन्वय होता है। संस्कृत साहित्य में महाकवि माघ एक ऐसे कवि है जिनके काव्य में उनकी बहुमुखी प्रतिभा मुखरित हुई है। वे काव्य प्रतिभा के धनी थे, व्याकरण के पंडित थे, दर्शन के विद्वान् थे, अलंकारशास्त्र में पारंगत थे, आयुर्वेद, ज्योतिष तथा संगीत शास्त्र के ज्ञाता

---

* विभागाध्यक्ष (संस्कृत विभाग), शासकीय महाराजा महाविद्यालय, छतरपुर (म.प्र.)

थे। उनको राजनीति शास्त्र का अच्छा ज्ञान था। उनके इस बहुमुखी प्रतिभा का ज्ञान उनके काव्य के आलोचन से होता है।

संस्कृत कवियों में महाकवि माघ की काव्यशैली अपनी साख रखती है। वे जिस शैली का प्रतिनिधित्व करते हैं उसका श्रीगणेश किसी ने किया हो, परन्तु उस शैली की प्रौढ़ता और भाषा की प्राञ्जलता माघ में ही देखने को मिलती है। वस्तुतः भाषा और शैली परस्पर सापेक्ष शब्द हैं। भाषा के अर्थ आधार पर ही उसमें निहित गुण, रीति आदि का भी विवेचन किया जाता है। अतः भाषा की रचना, गुण, रीति आदि को शैली से अभिहित किया जाता है।

माघ का संस्कृत भाषा पर पूर्ण अधिकार था। वे व्याकरण में पंडित माने जाते हैं। माघ की शब्दयोजना, प्रसङ्गानुकूल है। माघ ने व्याकरण सम्मत नवीन शब्दों का बाहुल्येन प्रयोग किया है। जैसे- विभराम्बभूवे, पारेसमुद्रग, मध्येजलम, वैरायितारः, अघटते, निषेदिवान् तथा न्यद्यापिषाताभ आदि प्रयोग इसके निदर्शन है। समविहार में लोट् तथा स्मरणार्थक धातुओं से लङ् के स्थान पर लृट् लकार के प्रयोग भी उपलब्ध होते हैं।

नवीन शब्दों के प्रयोग में माघ दक्ष हैं। भाषा और व्याकरण पर पूर्ण अधिकार होने के कारण यथावसर शब्दों का तुरंत निर्माण कर लेते थे। उन्नीसवें सर्ग की चित्रात्मक रचना भी इसी का परिणाम है। अतएव माघ के संबंध में प्रशस्ति है- **"नवसर्गगते माघे नवशब्दो न विद्यते।"** यह उक्ति अक्षरक्षः सत्य भले हो न हो परन्तु यह तो मानना ही पड़ेगा कि माघ के काव्य में शब्दों का दारिद्र्य नहीं है। माघ का विशेष झुकाव समासान्त पदविन्यास की ओर रहता है। कहीं कहीं पर अत्यधिक लम्बे समासों के प्रयोग से उनके काव्य का प्रसाद गुण समाप्त हो जाता है। माघ की समस्त पदावली का प्रयोग द्रष्टव्य है:-

**निजसौरभभ्रमितभृङ्गपक्षतिव्यजनानिलक्षयतिधर्मवारिणा।**[1]

---

1. शिशु. 13.47

माघ की भाषा समासों की बहुलता, विकटवर्णों की उदात्ता तथा गाढ़बन्धता की मनोहरता से व्याप्त है।

माघ का पदविन्यास संस्कृत कवियों में अपना सानी नहीं रखता। वे जहाँ एक ओर प्रकृति-वर्णन आदि कोमल प्रसंगों में कोमलकांत पदावली का प्रयोग करते हैं, वहीं दूसी ओर युद्धनीति के वर्णन में कठोर और समासान्त पदावलियों का प्रयोग करते हैं। उनकी अलंकार प्रियता के कारण उनके शब्द सौष्ठव के सन्निवेश में कोई अंतर नहीं आया है। प्रकृति-वर्णन का एक उदाहरण देखिये-

**मधुरया मधुबोधितमाधवीमधुसमृद्धिसमेधितमेधया।**
**मधुकाङ्गनया मुहुरुन्मदध्वनिभृता निभृताक्षरमुज्जगे।।**[1]

युद्ध के वर्णन में माघ की भाषा ओजस्विनी हो जाती है-

**भित्वा घोणामायसेनाधिवक्षस्थूरीपृष्ठो गार्ध्रपक्षेण विद्धः।**[2]

डॉ. व्यास कहते हैं कि "माघ के पदविन्यास में गौड़ी की निकटबन्धता होते हुये भी एक आकर्षण है। माघ के पश्चात् के कई कवि उनकी वर्ण्य शैली एवं पदविन्यास से प्रभावित हुये हैं।" माघ का पदविन्यास इतना सुंदर और संश्लिष्ट है कि कोई भी शब्द अपने स्थान से हटाया नहीं जा सकता है। कहीं-कहीं पर माघ की भाषा व्यंजना प्रधान भी हो गई है। नारद जी शिशुपाल का वध करने के लिये कृष्ण से कहते हैं-

**विधेहि की नाषनिकेतनातिथिम्।**

अर्थात् शिशुपाल को यमराज के घर का अतिथि बनाईये।

इस प्रकार माघ की भाषा व्याकरणोन्मुखी, प्राञ्जल, समासयुक्त एवं सर्वथा प्रसङ्गानुकूल कही जा सकती है।

माघ को शैली की दृष्टि से अलंकृत शैली का कवि कहा जा सकता है। वस्तुतः शैली काव्य प्रस्तुतीकरण का वह माध्यम है जिसमें

1. शिशु. 6.20
2. वही, 18.22

किसी एक सामान्य संप्रदाय के होते हुये भी कवि का व्यक्तित्व प्रतिबिम्बित होता है। अलंकृत शैली के कवियों में माघ अतुलनीय हैं। कालिदास की शैली सरल, स्वाभाविक और कोमल है। माघ की शैली धीर गंभीर है। डॉ. व्यास के अनुसार माघ का समासान्त-पदविन्यास उनकी शैली को गंभीरता और उदात्ता प्रदान करता है। कालिदास की शैली मालव की समतल भूमियों की याद दिलाती है जहाँ पाठक को उतार-चढ़ाव के साथ नहीं चलना पड़ता। माघ की शैली अरावली पर्वतमाला की याद दिलाती है, जहाँ सघन निकुंज उज्ज्वल अधित्यकायें, सुंदर उपत्यकायें विशाल चोटियाँ और कोमल शिलायें हैं। माघ की शैली में इसी कोटि का आनंद है। कालिदास की शैली में कोकिल की काकली है पर माघ 'प' को छोड़कर 'ध' पर बढ़ गये मामुल देते हैं। उनका संगीत पञ्चम की कोमलता की अपेक्षा धैवत की गंभीर धीरता को व्यक्त करता है।

**श्रुतिसमधिकमुच्चैः पञ्चमं पीडयन्तः**
**सततमृषभहीनं भिन्नकीकृत्य षड्जम्।**
**प्रणिजगदुरकाकुश्रावकस्निग्धकण्ठाः**
**परिणतिमिति रात्रेर्मागधा माधवाय॥**[1]

कालिदास द्वारा प्रवर्तित रसप्रधान शैली का स्थान भारवि द्वारा प्रवर्तित अलंकृत शैली ने ले लिया था और उसी अलंकृत शैली में माघ ने अपने काव्य की रचना की है, जिसमें कृत्रिमता और पांडित्य प्रदर्शन को प्रधानता दी है। माघ ने काव्य रचना में हृदय और मस्तिष्क दोनों का ही उपयोग किया है। केवल हृदयपटल से स्रवित रसवन्ती कविता की सार्थकता को ही महत्त्व नहीं दिया है।

माघ के काव्य में मुख्य रूप से गौड़ी की विकटबन्धता प्राप्त होती है, परन्तु कोई भी कवि कुछ नाम्ना-निर्दिष्ट रीतियों में ही बंधकर काव्य की रचना नहीं कर सकता है। इसी प्रकार माघ के काव्य में गौड़ी के अतिरिक्त वैदर्भी आदि रीतियों का भी दर्शन होता है। यह आवश्यक

1. शिशु. 11.1

है कि माघ के पदविन्यास में गौड़ी की विकटबन्धता होते हुये भी एक प्रकार का आकर्षण है। डॉ. व्यास कहते हैं कि माघ की शैली में एक क्षणिक नशा है जो नये अभ्यासशील व्यक्ति को अपनी ओर आकृष्ट कर लेता है।

माघ अलंकृत शैली के उच्चकोटि के कवि हैं। वैदर्भी रीति की प्रधानता है, ओज गुण प्रमुख है। डॉ. भोलाशंकर व्यास के शब्दों में "कालिदास का काव्य शेक्सपियर की भांति भाव प्रधान है, माघ का काव्य मिल्टन की भांति अत्यधिक अलंकृत है। जिसे हम अलंकृत शब्दों का उद्भावक कह सकते हैं।"

भारतीय परंपरा में महाकवि माघ पंडित कवि के रूप में माने जाते हैं। उन्होंने कवित्व-कौषल के साथ ही पाण्डित्य-प्रदर्शन के अवसर को भी नहीं छोड़ा है। उनका काव्य व्याकरण के दुरूह प्रयोगों से भरपूर है। पाण्डित्य-प्रदर्शन की भावना का जन्म सम्भवतः भारवि से प्रारंभ हुआ जिसकी चरमसीमा भट्टिकाव्य में देखी जा सकती है, परंतु माघ भी इसमें पीछे नहीं रहते हैं। व्याकरण के विशिष्ट प्रयोगों की दृष्टि से माघ का निम्न श्लोक द्रष्टव्य है-

**पुरी भवस्कन्द लुनीहि नन्दनं**
**मुषाण रत्नानि हराभराङ्गनाः।**
**विगृह्य चक्रे नमुचिद्विषा बली**
**य इत्थमस्वास्थ्यमहर्दिवं दिवः॥**[1]

महाकवि माघ एक प्रतिभाशाली कवि थे। उनकी प्रतिभा चतुर्मुखी थी, वे बहुश्रुत विद्वान् थे, उनका वैदुष्य एकांगी न होकर सर्वाङ्गीण था। वे विनोदप्रिय थे, वाणी उनकी वशवर्तिनी थी, उनके काव्य में कला-कल्पना और प्रतिभा का उच्चकोटि का समन्वय है। वस्तुओं को देखने की उनकी सूक्ष्म दृष्टि तथा भावों की ऊँची उड़ान, भावों में अनुभूति का समन्वय तथा विचारों में चिंतन का आधार प्राप्त होता है। कहीं-कहीं पर भावगाम्भीर्य के कारण अर्थ में दुर्बोधता तथा शास्त्रीय उपमानों के कारण

1. शिशु. 1/51

दुरूहता अवश्य अनुभव की जाती है। उन्होंने यथावसर प्रकृति का सुंदर एवं मनोहारी चित्रण किया है। प्रबंधकाव्य के कारण शिशुपालवध में सामाजिक परिवेश की भी झलक मिलती है। अर्थगौरव तथा भावप्रवहणता शिशुपालवध में पदे-पदे उपलब्ध होती है।

माघ की भावाभिव्यक्ति अत्यन्त सजीव तथा मनोहारी है। उनके वर्णन में विविधता, सूक्ष्मता, नवीनता तथा काव्य-कुशलता के दर्शन होते हैं।

कितनी सुंदरता के साथ मनुष्य के उत्थान-पतन के कारण का निर्देश करते हुये माघ कहते हैं-

**समय एव करोति बलाबलं**
**प्रणिगदन्त इतीव शरीरिणाम्।**
**शरदि हंसरवाः परुषीकृत-**
**स्वरमयूरमयूरमणीयताम्।।**[1]

"अर्थात् समय ही मनुष्य के उत्थान-पतन का कारण है। शरद ऋतु का समय है। अब हंसों की ध्वनि के सामने मयूरों की केका (ध्वनि) भी कठोर प्रतीत हो रही है।"

भाग्य की विचित्रता का वर्णन करते हुये माघ कहते हैं-

**कुमुदवनमपश्रि श्रीमदम्भोजषण्डं**
**त्यजति मुदमुलूकः प्रीतिमांश्चक्रवाकः।**
**उदयमहिमरश्मिर्याति शीतांशुरस्तं**
**हतविधिलसितानां ही विचित्रो विपाकः।।**[2]

"क्या ही विचित्र भाग्य की गति है? रात्रि के समाप्त होते ही चन्द्र अस्त हो रहा है, सूर्य उदित हो रहा है, कुमुद वन निस्तेज हो रहा है और कोमल वन रसीक हो रहा है। उल्लू खिन्न हो रहे हैं और चक्रवाक प्रसन्न हो रहे हैं।"

---

1. शिशु. 6/44॥
2. वही, 11/64

**चयस्त्विषामित्यवधारितं पुरा**
**ततः शरीरीति विभाविताकृतिम्।**
**विभुर्विभक्तावयवं पुमानिति**
**क्रमादमुं नारद इत्यवोधि सः।।**[1]

"नारद को आकाश में उतरते हुये पहले तेज:पुञ्ज के रूप में, शरीरधारी के रूप में, पुनः पुरुष के रूप में और अंत में अति समीप आ जाने पर नारद के रूप में देखा गया।"

कवि ने नगरों का वर्णन भी अत्यंत सजीव तथा आकर्षक ढ़ंग से किया है। जिस प्रकार कालिदास ने उज्जयिनी की समृद्धि का वर्णन करते हुये सागरों को जलमात्र शेष कहा है उसी प्रकार माघ ने भी द्वारिकापुरी की संपन्नता के कारण उसको रत्नाकर करने में संकोच नहीं किया है-

**वणिक्पथे पूगकृतानि यत्र**
**भ्रमागतैरम्बुभिरम्बुराशिः।**
**लोलैरलोलद्युतिभाञ्जि मुष्णन्**
**रत्नानि रत्नाकरतामवाप।।**[2]

माघ ने वन-विहार, जल-विहार, मद्यपान तथा रतिक्रीड़ा आदि का भी बड़े ही विस्तार एवं सूक्ष्मता के साथ वर्णन किया है। कहीं-कहीं भावों की और कल्पनाओं की इतनी गहरायी है कि एक ही प्रसंग के वर्णन में पूरा-पूरा सर्ग समाप्त हो जाता है। चतुर्थ सर्ग में रैवतक पर्वत, षष्ठ सर्ग में छः ऋतुओं का, अष्टम सर्ग में जल-क्रीड़ा का, एकादश सर्ग में प्रभात का तथा अठारह से बीस सर्ग में युद्ध का वर्णन उनकी भावाभिव्यक्ति, सूक्ष्मता तथा कल्पना की नवीनता के परिचायक हैं।

काव्यशास्त्रीय दृष्टि से प्रकृति-चित्रण महाकाव्य का एक अनिवार्य अंग है। बहुमुखी प्रतिभा वाले कलावादी माघ ऐसी स्थिति में प्रकृति

---

1. शिशु.1/3
2. वही, 3/38

चित्रण की उपेक्षा नहीं कर सकते थे। कालिदास और भवभूति जैसी गहनता माघ के प्रकृति-चित्रण में भले ही न हो, परंतु उनके प्राकृतिक चित्रण में वह स्वाभाविकता, यथार्थता, मनोहरता एवं बिम्बात्मकता निहित है जो पाठक को तन्मय कर देने में पूर्ण समर्थ है। माघ के काव्य का कथानक ऐसा है जिसमें प्रकृति-चित्रण का अधिक अवसर नहीं है, तथापि अवसर मिलते ही कवि प्राकृतिक दृश्यों में खो जाता है और पाठक को तल्लीन कर देता है। वस्तुतः श्रीकृष्ण की यात्रा के प्रसङ्ग में रैवतक पर्वत पर सेना के पड़ाव डालने का भी यही रहस्य है कि कथानक की धारा को रोक कर अपनी प्रकृति चित्रण की पिपासा शांत करना चाहता है। माघ की प्रकृति-चित्रण श्रृंगारमय है, उसमें भी संयोगपक्ष की प्रधानता है। कवि ने अलंकृत शैली के अन्य कवियों के समान ही प्रकृति के उद्दीपन रूप पर विशेष ध्यान दिया है। यत्र-तत्र अलंकार विधान के लिये भी प्राकृतिक दृश्यों की योजना की है। कुछ स्थलों पर विशेषकर बारहवें सर्ग में प्रकृति को आलम्बन के रूप में चित्रित किया है।

माघ ने वन, उपवन, सरिता, सरोवर, लता, पादप, वृक्ष, पर्वत, प्रातः, संध्या, अंधकार, प्रकाश तथा ऋतु आदि प्रकृति के विभिन्न रूपों का बड़ा ही हृदयग्राही एवं सजीव वर्णन किया है।

ग्यारहवें सर्ग में समुद्र तल से उगते हुये प्रातःकालीन सूर्य कितना भव्य दृश्य प्रस्तुत किया गया है-

**विततपृथुवरत्रातुल्यरूपैर्मयूखैः**
**कलश इव गरीयान् दिग्भिराकृष्यमाणः।**
**कृतचपलविहंगालापकोलाहलाभि-**
**र्जलनिधिजलमध्यादेष उत्तार्यतेऽर्कः॥**[1]

शिशुपालवध के छठे सर्ग का प्रकृति वर्णन मनोहर है। उसमें रैवतक पर्वत के वर्णन के साथ-साथ यमक, अनुप्रयास आदि अलंकारों से युक्त षड्ऋतुओं तथा अन्य वन्य सम्पत् एवं प्राकृतिक दृश्यों का

1. शिशु. 11/44

वर्णन किया गया है। कहीं-कहीं पर शब्द योजना इतनी मधुर एवं आकर्षक है कि पाठक सुनते ही आत्मविभोर हो जाता है।

माघ के प्रकृति चित्रण में यमक के साथ नाद का कितना सुंदर प्रयोग है कि उसी से वर्ण्य की प्रतीति होने लगती है और पाठक तन्मय हो जाता है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है-

**नवपलाशपलाशवनं पुरः**
**स्फुटपरागपरागतपंकजम्।**
**मृदुलतान्तलतान्तमलोकयत्**
**स सुरभिं सुरभिं सुमनोभरैः॥**[1]

प्रकृति में मानवीय आरोप करना संस्कृत श्रृंगारी कवियों की एक विशेषता रही है। इस परंपरा में माघ भी पीछे नहीं हैं। अनेक स्थलों पर उनका प्रकृति चित्रण मानवीय चेष्टाओं से परिपूर्ण है। कमलिनी में नायिका और सूर्य में नायक का आरोप है।

**अभितिग्मरश्मि चिरमाविरमादवधादखिन्नमनिमेषतया।**
**विगलन्मधुव्रतकुलाश्रुजलं न्यमिमीलदब्जनयनं नलिनी॥**[2]

कवि ने प्रकृति चित्रण के माध्यम से शिक्षाप्रद तथ्यों को भी उद्घाषित किया है। प्रातः काल का वर्णन करते हुये कवि ने जीवन में आने वाले सुखदुःखों की ओर संकेत किया है-

**कुमुदवनमपश्रि श्रीभदम्भोजषण्डं..... विपाकः॥**[3]

माघ के प्रकृति चित्रण के संबंध में कहा जा सकता है कि उनका प्राकृतिक वर्णन प्रायः उद्दीपन अलंकार विधान तथा अप्रस्तुत योजना के रूप में ही अधिक है।

शिशुपालवध एक घटना प्रधान महाकाव्य है। इसमें पात्रों की अपेक्षा घटना पर विशेष बल दिया गया है। माघ ने पात्रों का जो भी चित्र उपस्थित किया है, उसके आधार पर भारतीय साहित्यिक परंपरा के अनुरूप आदर्शवादी दृष्टिकोण ही प्रतिबिम्बित होता है यथार्थवादी नहीं।

1. शिशु. 6/2
2. वही 9/11
3. वही 11/64

कृष्ण द्वारा शिशुपाल का वध कराने में असत् पर सत् की विजय ही प्रदर्शित की गई है। भगवान् कृष्ण शिशुपालवध के विपुल कथा-विस्तार में सदैव साथ रहते हैं। इस काव्य में वे लोकरक्षक एवं सत्यप्रति पालक के रूप में प्रतिष्ठित हैं। वे प्रधान नायक हैं, वे दैवी चरित्र से युक्त होते हुये भी मानवीय विशेषताओं से युक्त हैं, परन्तु मानवीय दुर्बलताओं का उनमें सर्वथा अभाव दिखायी देता है। वसुदेव के घर में रहने वाले कृष्ण का संसार को नियंत्रित करना, दुष्टों का दमन तथा सज्जनों की सुरक्षा ही प्रमुख कार्य है-

**श्रियः पतिः श्रीमती शासितुं जग-**
**ज्जगन्निवासो वसुदेवसद्मनि।**[1]

आकाश मार्ग से अवतरित देवर्षि नारद का कृष्ण के द्वारा किया स्वागत सत्कार प्रशसंनीय है। उनकी विनम्रता, शिष्टाचार और वाणीकौशल कितना उच्च है:-

**गतस्पृहोऽप्यागमनप्रयोजनं वदेति वक्तुं व्यवसीयते यया।**
**तनोति नस्तामुदितात्मगौरवो गुरुस्तवैवागम एष धृष्टताम्।।**[2]

उनमें आदर्श और लोकपालन की भावना इतनी अधिक है कि वे शिशुपाल के वध के लिये तुरंत उद्धत हो जाते हैं। उन्हें अपने साथ किये गये अपराध का दु:ख नहीं है अपितु वह संसार को पीड़ित कर रहा है इससे दु:खी हैं। माघ के कृष्ण धैर्यशाली, विचारवान्, मितभाषी, उत्कृष्ट योद्धा, सम्पत्तिपालक, जगन्नियन्ता तथा अलौकिक व्यक्तित्व संपन्न है।

काव्यशास्त्रीय दृष्टि से माघ को रसवादी कवि कहा जा सकता है। यह बात अवश्य है कि वे रसवादी कवि होते हुये भी मुख्य रूप से विद्वत् समाज के कवि माने जा सकते हैं। उनके काव्य के पढ़ने से उनके रसवादी होने की अवधारणा स्थिर हो जाती है। उनकी दृष्टि में रससिद्ध कवि ओज, प्रसाद आदि गुणो के पीछे नहीं भागता है, अपितु ये गुण कवि की वाणी का स्वतः अनुगमन करते हैं। शिशुपालवध में

1. शिशु. 1/1
2. वही, 1/30

वीर श्रृंगार तथा अन्य अभीष्ट रसों का उन्होंने हृदयग्राही वर्णन किया है। शिशुपालवध का प्रधान रस वीर है। वे जिस समय जिस रस का वर्णन कर रहे होते हैं उस समय पाठक को उस रस का पूर्ण आस्वाद कराते हैं।

महाकवि माघ के काव्य की शैली व्याकरणोन्मुखी, प्राञ्जल, समासयुक्त एवं सर्वथा प्रसङ्गानुकूल कही जा सकती है।

माघ के काव्य के अध्ययन से माघ को अर्थगौरव संबंधी कतिपय विशेषतायें पाठक को भावों की कल्पना और चिंतन में डुबो देती है। कहीं पर विविध शास्त्रीय ज्ञानमूलक सूक्तियों और सुभाषितों के प्रयोग से कहीं पर भावों की काल्पनिक सूक्ष्मता से और कहीं पर विविध भावों के अद्भुत चमत्कारपूर्ण वर्णन से माघ का अर्थगाम्भीर्य विशेष रूप से प्रशंसनीय है।

कोई भी कवि अपने काव्य की रचना तत्कालीन साहित्यिक एवं सामाजिक परिप्रेक्ष्य में ही करता है। उन्हीं संदर्भो में उसके काव्य का मूल्यांकन किया जाना भी उचित होता है।

# शिशुपालवध में वर्णित दर्शनशास्त्र एवं पशुशास्त्र : एक अध्ययन

- **श्री प्रभात कुमार***

संसार में प्रत्येक मनुष्य सुख-समृद्धि चाहता है और उसके हेतु वह सतत प्रयत्नशील रहता है। यद्यपि शास्त्रकारों ने योगाभ्यास, तपस्या आदि सुख प्राप्ति के अनेक साधन बतलाये हैं। तथापि गम्भीरतापूर्वक विचार करने पर काव्य की सर्वसुख साधक सिद्ध होता है। शास्त्रों के गहन अनुशीलन से यह सिद्ध होता है कि महाकवि माघ ने अपने इसी मनोवृत्ति से संपृक्त होकर महाकवि कालिदास, भारवि और श्रीहर्ष को पीछे छोड़ दिया था।

भारतीय परम्परा में महाकवि माघ एक ऐसे व्यक्ति हैं जिनमें कवित्व तथा पाण्डित्य का पूर्ण समन्वय पाया जाता है। वे कवि के रूप में जितने प्रसिद्ध हैं उससे भी अधिक उनकी ख्याति पाण्डित्य के लिए है। संस्कृत साहित्य में उनके समान उच्चकोटि का विद्वान् बिरला ही मिलेगा। उनके महाकाव्य के अध्ययन से उनके सर्वतोमुखी पाण्डित्य का भली-भाँति पता चलता है। वेद, व्याकरण, राजनीति, धर्म, दर्शन, अलंकारशास्त्र आदि विविध विषयों में वे पारंगत थे। उनका काव्य इतना पाण्डित्यपूर्ण है कि उसके पठनानन्तर किंचित् भी शेष नहीं रह जाता है। अतः पण्डितों में ऐसी प्रसिद्धि है कि **'मेघे माघे वयो गतम्' 'नवसर्गगते माघे नवशब्दो न विद्यते'**।

महाकवि माघ का दर्शन के विभिन्न अंगों में प्रवेश था। उनके सिद्धान्तों का शिशुपालवध में विशद् रूप से प्रतिपादन किया गया है।

---

* पूर्व शोधच्छात्र, संस्कृत विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

**सांख्य दर्शन** के तत्त्वों का उल्लेख कई स्थलों पर उपलब्ध होता है। प्रथम सर्ग में नारद द्वारा भगवान् श्रीकृष्ण की स्तुति में सांख्य शास्त्र वर्णित पुरुष के लक्षण का उनके साथ तादात्म्य प्रदर्शित किया है–

**उदासितारं निगृहीतमानसैर्गृहीतमध्यात्मदृशा कथञ्चन।**
**बहिर्विकारं प्रकृतेः पृथग्विदुः पुरातनं त्वां पुरुषं पुराविदः।।**[1]

अर्थात् योगी चित्तवृत्तियों को अन्तर्मुखी करके अध्यात्म-दृष्टि से किसी प्रकार आपका साक्षात्कार करते हैं। वे आपको उदासीन, महदादि विकारों से पृथक्, त्रिगुणात्मिका प्रकृति से भिन्न, विज्ञानधन अनादि पुरुष के रूप में जानते हैं।

**सांख्यदर्शन का मत है कि** आत्मा स्वयं पुण्यपापादि कर्म नहीं करता किन्तु बुद्धि ही करती है और उसकी प्राप्ति होने से आत्मा ही उन कार्यों का कर्त्ता माना जाता है, इसका विवेचन श्लोकों के माध्यम से इस प्रकार है–

**तस्य सांख्यपुरुषेण तुल्यतां बिभ्रतः स्वयमकुर्वतः क्रियाः।**
**कर्तृता तदुपलम्भतोऽभवद् वृत्तिभाजि करणे यथर्त्विजि।।**[2]

अर्थात् होमादि क्रियाओं (पुण्य-पाप कर्मो) को स्वयं न करते हुए (उदासीन रहते हुए) आत्मा की समानता धारण करने वाले राजा युधिष्ठिर को, अन्तःकरण अर्थात् बुद्धि के समान, हवनादि यज्ञ कर्म कराते हुए, पुरोहितों द्वारा यह मेरा ज्ञान हो रहा है। इस प्रकार की भावना से कर्त्तापन की प्राप्ति हुयी। आगे इस तथ्य को दूसरे श्लोक में इस प्रकार कहा गया है–

**विजयस्त्वयि सेनायाः साक्षिमात्रेऽपदिश्यताम्।**
**फलभाजि समीक्ष्योक्ते बुद्धेर्भोग इवात्मनि।।**[3]

अर्थात् **सांख्यमतानुसार** जिस प्रकार आत्मा साक्षी रहकर फल

---

1. शिशुपालवध, 1.33
2. वही, 14.19
3. वही, 2.59

का भागी होता है और बुद्धि सुखदु:खादि का भोग करती है, उसी प्रकार तुम साक्षी मात्र बने रहकर फल के भागी बनोगे और यादवों की सेना विजय लाभ करेगी। तुम उद्घोषणा मात्र कर दो।

**महाकवि माघ को योगदर्शन के सिद्धान्तों** का भी अच्छा ज्ञान था। निम्न दृष्टान्त उनके अगाध ज्ञान का द्योतक है–

**मैत्र्यादिचित्तपरिकर्मविदो विधाय**
**क्लेशप्रहाणमिह लब्धसबीजयोगाः।**
**ख्यातिं च सत्त्वपुरुषान्यतयाऽधिगम्य**
**वाञ्छन्ति तामपि समाधिभृतो निरोद्धुम्।।**[1]

यहाँ पर समाधि शब्द से योग के यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि इन आठों योगाङ्गो को समझना चाहिए। मैत्री, करुण, मुदिता और उपेक्षा ये चार चित्त को शोधक वृत्तियां हैं, जिसमें पुण्यकर्त्ताओं के लिए मैत्री, दु:खियों के लिए करुणा, सुखियों के लिए मुदिता अर्थात् अनुमोदन तथा पापियों के लिए उपेक्षा वृत्ति है। अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश ये पाँच क्लेश हैं। इन पाँचों क्लेश से मुक्त हो जाने पर सबीज समाधि की प्राप्ति कर योगी, प्रकृति और पुरुष के भेद को भी दूर करना चाहते है। इसके अतिरिक्त 14वें सर्ग में इस सिद्धान्त का प्रतिपादन भीष्म के मुँख से भी करवाया गया है–

**सर्ववेदिनमनादिमास्थितं देहिनामनुजिघृक्षया वपुः।**
**क्लेशकर्मफलभोगवर्जितं पुंविशेषममुमीश्वरं विदुः।।**[2]

अर्थात् पण्डित लोग भगवान् श्रीकृष्ण को जन्म और मृत्यु रहित, प्राणियों पर अनुग्रह करने की इच्छा से मनुष्य शरीर धारण करने वाले हैं। पाँचों क्लेशों तथा पाप-पुण्य के फलों से रहित, ईश्वर एवं परम पुरुष बतलाते हैं।

---

1. शिशुपालवध, 4.55
2. वही, 14.62

**मीमांश दर्शन** का परिचय हमें शिशुपालवध में यज्ञ के अवसर पर मिलता है। वहाँ कहा गया है कि मीमांसा शास्त्र के ज्ञाता ऋत्विज लोगों ने अनुवाक्या (मंत्रविशेष) से उच्चस्वरोच्चारण पूर्वक देवोद्देश्य से पदार्थों को याज्या से अग्नि छोड़ा अर्थात् वे ऋत्विज् तत्तद् देवताओं के आह्वाहन से मन्त्रों का उच्च स्वर से उच्चारण कर उन-उन देवताओं के उद्देश्य से हवन करने लगे।

**शब्दितामनपशब्दमुच्चकैर्वाक्यलक्षणविदोऽनुवाक्यया।**
**याज्यया यजनकर्मिणोऽत्यजन्द्रव्यजातमपदिश्य देवताम्॥**[1]

यज्ञ के मंत्रों के उच्चारण में विशेष निपुणता होनी चाहिए अन्यथा अनर्थ की आशंका रहती है। आचार्य पाणिनी ने मन्त्रों के उच्चारण के सम्बन्ध में कड़ी चेतावनी देते हुए कहा है-

**मन्त्रो हीनः स्वरतो वर्णतो व**
**मिथ्या प्रयुक्तो न तमर्थमाह।**
**स वाग्वजो यजमानं हिनस्ति**
**यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपराधात्॥**[2]

अर्थात् स्वर या वर्ण के उच्चारण-दोष के कारण मन्त्र अपने वास्तविक अर्थ को नहीं प्रकट करता और इस प्रकार वह वाग्वज्र बनकर उसी प्रकार यजमान का सत्यानाश करता है, जैसे वृत्रासुर का वध हुआ था।

**अद्वैतवेदान्त के तत्त्वों का प्रतिपादन** तो शिशुपालवध में अनेकों स्थलों पर हुआ है। संसार को मिथ्या मानकर ब्रह्म अथवा परमात्मा को ही एकमात्र सत्य मानने की चर्चा तथा केवल ब्रह्म-ज्ञान-प्राप्ति की साधना एवं मोक्ष प्राप्ति की आकांक्षा को कवि ने अनेक स्थलों पर प्रकट किया है। इस सम्बन्ध में एक प्रसंग उद्धृत कर देना पर्याप्त है-

---

1. शिशुपालवध, 14.20
2. पाणिनीय शिक्षा।

**ग्राम्यभावमपहातुमिच्छवो योगमार्गपतितेन चेतसा।**
**दुर्गमेकमपुनर्निवृत्तये यं विशन्ति वशिनं मुमुक्षवः।।**[1]

अर्थात् मोक्ष की आकांक्षा करने वाले अपने अज्ञान को नष्ट करने की इच्छा से, योगाराधन से चित्त लगाकर दुर्ज्ञेय एवं अद्वितीय परमेश्वर में प्रवेश कर जाते हैं।

महाकवि माघ का न्यायदर्शन में भी विशेषाधिकार था, जो दूसरे सर्ग के निम्नांकित श्लोकों से स्पष्ट होता है। वे कहते हैं कि स्वयं निष्क्रिय होते हुए भी अपनी महिमा से शत्रुओं द्वारा की गयी कार्यों की सिद्धि को उसी प्रकार अपना गुण बना लेते हैं, जिस प्रकार शंख, भेरी आदि के शब्दों को आकाश शब्द बना लेता है–

**अप्यनारभमाणस्य विभोरुत्पादिताः परैः।**
**व्रजन्ति गुणतामर्थाः शब्दा इव विहायसः।।**[2]

आस्तिक दर्शनों की भाँति ही नास्तिक दर्शनों की चर्चा कवि ने अनेक स्थलों पर की है। उन्होंने जैन एवं बौद्ध दर्शन का पूर्ण अध्ययन किया था। कवि ने महावीर स्वामी के प्रति भी एक स्थान पर आदर व्यक्त किया है। यहाँ यह विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि कवि ने पुराणवादियों की भाँति महावी स्वामी को भी भगवान् विष्णु का एक अवतार स्वीकार किया है–

**सर्वकार्यशरीरेषु मुक्त्वाङ्गस्कन्धपञ्चकम्।**
**सौगतानामिवात्माऽन्यो नास्ति मन्त्रो महीभृताम्।।**[3]

अर्थात् जैसे बौद्धों के अनुसार पांच स्कन्धों के अतिरिक्त आत्मा का पृथक् अस्तित्व नहीं है, उसी प्रकार पांच अंगों के अतिरिक्त राजाओं का अस्तित्व नहीं है, **रूप, वेदना, विज्ञान, संज्ञा और संस्कार व शरीर के पांच स्कन्ध हैं। सहाय, साधनोपाय, देशकालविभाग, विपत्तिप्रतिकार, तथा सिद्धि ये पांच अंग हैं।**

1. शिशुपालवध, 14.64
2. वही, 2.91
3. वही, 2.38

**पशुशास्त्र**– महाकवि माघ पशुविद्या में भी निष्णात थे। उन्होंने अपने महाकाव्य में हाथी, घोड़े, ऊँट, खच्चर आदि पशुओं का यथोचित वर्णन किया है। सत्रहवें सर्ग में गजविधा का वर्णन है। इसमें हाथी के सात स्थानों से मद गिराने का वर्णन है–

**मदाम्भसा परिगलितेन सप्तधा**
**गजाञ्जनः शमितरजश्चयानधः**
**उपर्यवस्थितघनपांशुमण्डला–**
**नलोकयत्ततपटमण्डपानिव।।**[1]

अर्थात् हाथी दोनों नेत्रों, दोनों कपोलों, सूँड, मूत्रेन्द्रिय तथा मलेन्द्रित से मद बहाते है। ये गजराज इन मदों से अपने नीचे की धूलि–राशि को तो शान्त किये हुए हैं, किन्तु ऊपर की धूलि जाल तो यथापूर्व बनी ही रह गयी। उस समय धूलि–जाल ऐसी मालूम पड़ती थी कि मानों उनके ऊपर कपड़े के तम्बू तान दिये गये हैं। महावत का गज पर चढ़ने का एक दृश्य प्रस्तुत किया गया है–

**उत्क्षिप्तगात्रः स्म विडम्बयन्नभः समुत्पतिष्यन्तमृगेन्द्रमुच्चकैः।**
**आकुञ्चितप्रोहनिरूपितक्रमं करेणुरारोहयते निषादिनम्।।**[2]

अर्थात् शरीर के अग्र भाग को ऊपर करके मानों आकाश को लाँघने का इच्छुक एवं विशाल पर्वत का अनुकरण करने वाला विशाल गजराज अपने पिछले पैरों को झुकाकर अपने ऊपर उसी के सहारे चढ़ने वाले महावत को चढ़ाने लगा। हाथियों का ऐसा विशद् एवं अपूर्व वर्णन अन्यत्र दुर्लभ है।

हाथियों के वर्णन के पश्चात् ऐसा नहीं है कि अश्वों के विविध चेष्टाओं से अछूते थे।

**तेजोनिरोधसमतावहितेन यन्त्रा**
**सम्यक्कशात्रयविचारवता नियुक्तः।**

---

1. शिशुपालवध, 17.68
2. वही, 12.5

**आरट्टजश्चटुलनिष्ठुरपातमुच्चैः**
**चित्रं चकार पदमर्धपुलायितेन॥[1]**

इस श्लोक में घोड़े की गति एवं चाबुक के लक्षणों का शास्त्रीय ज्ञान वर्णित है। इसके अतिरिक्त महाकवि माघ ने लगाम का कुशल प्रयोग, घुड़दौड़ का वर्णन, अश्वारोहण की विधि आदि का अत्यन्त आकर्षण वर्णन किया है। इन वर्णनों से अनुमान लगाया जा सकता है कि वे एक कुशल अश्वारोही थे। अश्वारोहरण का एक दृष्टान्त–

**स्वैरं कृतास्फालनलालितान्पुरः**
**स्फुरत्तनून्दर्शितलाघवक्रियाः।**
**वङ्कावलग्नैकसवल्गपाणयः**
**तुरङ्गमानारुरुहुस्तुरङ्गिणः॥[2]**

अर्थात् अश्वारोही पहले धीरे से प्यार के साथ अश्वों की गर्दनों पर अपने हाथ फेर दिये और तब अश्वों ने भी पूरे शरीर को हिलाकर अपनी त्वरा प्रकट की। तदनन्तर हाथ में लगाम लेकर और उसे काठी पर रखकर शीघ्रता एवं चतुरता के साथ अश्वों की पीठ पर चढ़ गये।

घोड़ों के वर्णनों के पश्चात् माघ ने भार वही बैलों का वर्णन बड़ी ही चतुरता एवं गम्भीरता के साथ किया जो अत्यन्त मनोरम है–

**उत्तीर्णभारलघुनाप्यलघूलापौघ-**
**सौहित्यनिःसहतरेण तरोरधस्तात्।**
**रोमन्थमन्थरचलद्गुरुसास्नमासां**
**चक्रे निमीलदलसेक्षणमौक्षकेण॥[3]**

अर्थात् पीठ पर से भार उतार देने से हल्के किन्तु बड़ी–बड़ी घासों को खाने से जिनका पेट भर गया था और जो भारी शरीर वाले अर्थात् आलस्य युक्त हो गये थे, ऐसे बैलों के समूह वृक्ष के नीचे

---

1. शिशुपालवध, 5.10
2. वही, 12.6
3. वही, 5.62

धीरे-धीरे जुगाली करते हुए बैठे थे और उससे उनका विस्तृत गलकम्बल धीरे-धीरे हिल रहा था तथा दोनों आँखें आलस्य से भरकर अधमुँदी हो रही थीं। तदनन्तर ऊँटों के प्रसंग में माघ कहते हैं कि बोझ लादते समय वह शब्द करता है, जिससे उसका नाम रवण रखा गया।

**उत्थातुमिच्छन्विधृतः पुरो बला-**
**न्निधीयमाने भरभाजि यन्त्रके।**
**अर्धोज्झितोद्‌गारविझर्झरस्वरः**
**स्वनाम निन्ये रवणः स्फुटार्थताम्।।**[1]

अर्थात् अधिक रोने वाला रवण अर्थात् ऊँट भारी बोझ से युक्त काठी के पीठ पर रखे जाने के समय बलपूर्वक उठकर जब चलने लगता है तब ऊँटहारे उसकी नकेल से उसके मुख को दृढ़तापूर्वक खींच लेते हैं। ऐसा करने पर ऊँट ने मुख में आधी चबाई नीम आदि की पत्तियों के रस को बाहर बहाने के साथ-साथ जोर-जोर से बलबलाने से अपने 'रवण' नाम को चरितार्थ किया। इसमें कवि ने ऊँटों की वृत्तियों और कार्यों का वर्णन कर अपने सूक्ष्म पर्यवेक्षण की जानकारी दी है।

इसके अनन्तर महाकवि माघ 12वें सर्ग में दुहाती हुई गायों का वर्णन अत्यन्त मोहकता के साथ करते हैं-

**प्रीत्या नियुक्तांल्लिहती स्तनन्धया-**
**न्निगृह्य पारीमुभयेन जानुनोः।**
**वर्धिष्णुधाराध्वनि रोहिणीः पयः**
**चिरं निदध्यौ दुहतः स गोदुहः।।**[2]

अर्थात् अपने ही बाँये पैर में बँधे हुये स्तन-पान करने वाले छोटे-छोटे बछड़ों को प्रेम के साथ जीभ से चाटती हुयी गौओं तथा अपने दोनों घुटनों के मध्यभाग में दोहनी रखकर, घर-घर की मधुर ध्वनि में

---

1. शिशुपालवध, 12.9
2. वही, 12.40

दूध को बढ़ाने वाली धारा के साथ गौओं को दुहते हुए गोपालों को श्रीकृष्ण ने देखा। इसके अतिरिक्त तोते एवं मृग किस प्रकार आकर्षण का केन्द्र बन जाते हैं, उसका बड़ी ही चतुरता के साथ माघ ने दिग्दर्शन कराया है-

**स व्रीहिणां यावदपासितुं गताः**
**शुकान्मृगैस्तावदुपद्रुतश्रियाम्।**
**कैदारिकाणामभितः समाकुलाः**
**सहासमालोकयति स्म गोपिकाः॥**[1]

अर्थात् धान की खेतों की रखवाली करने वाली स्त्रियाँ जब तक एक कोने में लगे हुए तोतों के समूह को उड़ाने के लिए जाती थीं तब तक उस धान को दूसरे कोने में मृगों के समूह आकर चरने लगते थे। इस प्रकार चारों ओर से व्याकुल हुयी धान की रखवाली करने वाली स्त्रियों को श्रीकृष्ण ने देखा।

महाकवि माघ की दृष्टि से मधुमक्खियाँ भी न बच सकीं। हाथी द्वारा हिलाये जाने पर छत्तों से निकल कर बड़ी-बड़ी मधुमक्खियों से काटे जाते हुए लोग व्याकुलता से इधर-उधर भागने लगे। यह चित्रण भी अतीव सुन्दर है-

**श्मश्रूयमाणे मधुजालके तरोर्गजेन गण्डं कषता विधूनिते।**
**क्षुद्राभिरक्षुद्रतराभिराकुलं विदश्यमानेन जनेन दुद्रुवे॥**[2]

अतः कह सकते हैं कि महाकवि माघ केवल सिद्धहस्त कवि ही नहीं थे, प्रत्युत् वे सर्वशास्त्रतत्त्वज्ञ प्रकाण्ड पण्डित भी थे। उनकी जैसी बहुज्ञता तथा बहुश्रुतता अन्य संस्कृत कवियों में कम दिखती है। भिन्न-भिन्न शास्त्रों की छोटी से छोटी बातों का जिस निपुणता एवं सुन्दरता के साथ उन्होंने वर्णन किया है, उससे ज्ञात होता है कि उन सब पर उनका असाधारण अधिकार था। संस्कृत साहित्य के किसी अन्य

---

1. शिशुपालवध, 12.42
2. वही, 12.54

काव्य–ग्रन्थ में विविध शास्त्रीय लौकिक विषयों पर इस प्रकार साधिकार रचना करने की सफलता अकेले माघ को ही मिलती है। दर्शन, राजनीति, कूटनीति, सामाजिक–जीवन, धर्मशास्त्र, सेना, गज एवं अश्व शास्त्र, युद्धविज्ञान, मन्त्र, पुराण, वर्णाश्रम–मर्यादा, अलंकार इन सब पर उनका यथेष्ट अधिकार था। यद्यपि वे सनातन धर्मानुयायी थे, किन्तु नास्तिका दर्शनों की सूक्ष्म से सूक्ष्म बातों को भी उन्हों अच्छी जानकारी थी। वेदों से लेकर पुराणों एवं स्मृतियों तक पर उनकी पूर्ण सहानुभूति थी, साथ ही महाकवि माघ पशुविधा के ज्ञान से अछूते नहीं रहे। वे गज, अश्व, बैल, गाय, ऊँट इत्यादि पशुओं के वृत्तियों एवं कार्यों का वर्णन कर अपने सूक्ष्म पर्यवेक्षण की जानकारी देते हैं इससे यह भी सिद्ध होता है कि वे प्रकृति के अंचल के काफी करीब रहे होंगे, तभी तो इस तरह का दिग्दर्शन कोई करा सकता है।

# शिशुपालवध महाकाव्य में आश्रम व्यवस्था

- **श्री अंकित कुमार***

संस्कृत साहित्य में जिन काव्य रत्नों की गणना सर्वोपरि की जाती है वह केवल छः हैं। इनमें तीन लघुत्रयी (रघुवंशम्, कुमारसम्भवम्, मेघदूतम्) महाकवि कालिदास द्वारा प्रणीत है तथा शेष तीन बृहत्त्रयी के नाम से विख्यात हैं, जिसमें भारविकृत किरातार्जुनीयम्, माघकृत शिशुपालवधम् तथा श्रीहर्षकृत नैषधीयचरितम् हैं। महाकवि माघकृत शिशुपालवध महाकाव्य 20 सर्गों में निबद्ध है। इस एक रचना के द्वारा महाकवि माघ अमर हो गये, उन्होंने अपने इस अनुपम कृति में सभी प्रकार के काव्य गुणों की अपूर्व छटा की स्थान-स्थान पर छहरी दिखाई है, विद्वत् समाज में एक सूक्ति अति प्रचलित है-

**उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थगौरवम्।**
**नैषधे (दण्डिनः) पदलालित्यं माघे सन्ति त्रयो गुणाः॥**

अर्थात् कालिदास की उपमा, भारवि का अर्थगौरव, नैषध या दण्डी का पदलालित्य प्रशंसनीय है किन्तु, माघ कवि में ये तीनों गुण पाये जाते हैं। महाकवि माघ ने अपने महाकाव्य शिशुपालवधम् में क्या अलङ्कारों की छटा, क्या अर्थ और भाव की गम्भीरता, क्या अन्य लौकिक विषयों का अगाध ज्ञान गौरव, क्या पदों की मनोहारिता तथा वर्ण्य विषय एवं भाषा पर असीम अधिकार। महाकवि के विषय में अनेक प्रशस्तियाँ प्रचलित हैं- 'माघेनेव च माघेन कम्पः कस्य न

---

* पूर्व शोधच्छात्र, संस्कृत विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

जायते।'[1] तथा 'काव्येषु माघः'[2]। महाकवि माघ की एक विशेषता की ओर उनका ध्यान बरवस ही चला जाता है, वह है उनकी शब्दयोजना या पद योजना। न केवल शब्दों तथा पदों के ललित विन्यास में ही माघ निपुण थे प्रत्युत् नवीन-नूतन श्रुतिमधुर शब्दावली के मानो वे शिल्पी थे कहा यह जाता है कि कविता के क्षेत्र में माघ ने जितने नूतन शब्दों का प्रयोग किया उतना किसी अन्य कवि ने नहीं किया। महाकवि माघ के विषय में कहा जाता है कि 'नवसर्गगते माघे नवशब्दो न विद्यते' अर्थात् माघकृत शिशुपालवध महाकाव्य का नवसर्ग समाप्त होने पर ऐसा नया शब्द नहीं रह जाता जिसका प्रयोग कविता के क्षेत्र में अन्यत्र हुआ हो।

'आश्रम' शब्द संस्कृत की 'श्रम' धातु में घञ् प्रत्यय से बना है। जिसका अर्थ- श्रम करना, पर्णशाला, कुटिया, अवस्था आदि (ब्राह्मण के धार्मिक जीवन की 4 अवस्थाएँ)। आश्रम का अर्थ जीवन का वह विभाग है जिसमें मनुष्य प्रयास करता है साहित्यिक दृष्टि से 'आश्रम' शब्द विश्राम-स्थल या पड़ाव को सूचित करता है आश्रम-व्यवस्था हिन्दू जीवन का वह क्रमबद्ध इतिहास है जिसका उद्देश्य जीवन यात्रा को विभिन्न स्तरों में बाँटकर प्रत्येक स्तर पर मनुष्य को कुछ समय तक रखकर उसे इस भाँति तैयार करना है कि जगत् की वास्तविकताओं और प्रयासमय क्रियात्मक जीवन की अनिवार्यताओं से गुजरता हुआ अन्तिम लक्ष्य ब्रह्म या मोक्ष को प्राप्त कर सके, जो मानवजीवन का परम लक्ष्य है। शतपथ ब्राह्मण में आश्रमों का क्रम इस प्रकार निर्धारित किया गया है-

**ब्रह्मचर्याश्रमं समाप्य गृही भवेत्।**
**गृही भूत्वा वनी भवेत् वनी भूत्वा प्रव्रजेत।।**[3]

---

1. कृत्स्नप्रबोधकृत् वाणी भारवेरिव भारवेः।
   माघेनेव च माघेन कम्पः कस्य न जायते॥ (राजशेखर)
2. पुष्पेषु जाती, नगरीषु काञ्ची, नारीषु रम्भा, पुरुषेषु विष्णुः।
   नदीषु गङ्गा, व नृपतौ च रमाः, काव्येषु माघः कविकालिदासः॥
3. शतपथ ब्राह्मण

इस प्रकार चारों आश्रमों के नाम हैं- (1) ब्रह्मचर्य, (2) गृहस्थ, (3) वानप्रस्थ, (4) संन्यास।

ब्रह्मचर्य-आश्रम के शूद्र को छोड़कर सभी वर्ण अधिकारी थे। गृहस्थ आश्रम चारों वर्णों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र) के लिए था तथा वानप्रस्थ-आश्रम ब्राह्मण और क्षत्रिय के लिए था संन्यास आश्रम केवल ब्राह्मणों के लिए था। जिस प्रकार वर्ण-व्यवस्था का आधार कर्म विभाजन था उसी प्रकार जीवन व्यवस्था का आधार 'आश्रम' विभाग था। ब्रह्मचर्यावस्था में अच्छे गृहस्थ होने की शिक्षा लेना अनिवार्य था, प्रत्येक वर्ण का व्यक्ति जीविका की आवश्यक शिक्षा इसी अवस्था में लेता था। ब्राह्मण-वेदादिशास्त्र की, क्षत्रिय-वेदादिशास्त्र के साथ शस्त्रास्त्र और प्रशासन की, वैश्य-पशुपालन कृषि एवं कारीगरी की तथा शूद्र-जीविका के अनुरूप गुणों का अभ्यास करता था साथ ही सबको चरित्र की शिक्षा दी जाती थी इस आश्रम में कर्म विभाग पर ध्यान दिया जाता था। गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने पर मनुष्य अपने भिन्न-भिन्न कर्म करता था, वानप्रस्थ-आश्रम तपस्या का था, भोग-विलास का नहीं। संन्यास-आश्रम में तपस्या ही थी। ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ और संन्यास आश्रम के व्यक्ति भोजनादि के लिए गृहस्थ पर आश्रित थे।

### ब्रह्मचर्य-आश्रम

ब्रह्मचर्य-आश्रम सामाजिक जीवन का आधार है, यह साधना का आश्रम है, यहाँ पर शिष्य अपने भावी जीवन का पथ प्रशस्त करते हैं, आश्रम में उनका चारित्रिक विकास किया जाता है। आश्रम का वातावरण पवित्र होता है, यहाँ पर उनको इस प्रकार बना दिया जाता है कि यहाँ से निकलने के पश्चात् वे अन्य आश्रमों में अपने रहन-सहन, आचार-विचार एवं शुचिता (पवित्रता) का ध्यान रख सके।

ब्रह्मचर्याश्रम में उपनयन संस्कार के बाद ही प्रवेश मिलता है, शिष्य गुरु के आदेशानुसार ही कार्य करता है, वह सदाचार एवं श्रद्धापूर्वक वेदों का अध्ययन करता है। गुरु के आदेशों का भलीभाँति पालन करना ही उनका पुनीत कर्तव्य होता है। यही बात हमें श्रीमद्भागवत

महापुराण के 7/12/1,2,3 श्लोकों में भी प्राप्त होती है।[1]

महाकवि माघ नारद के स्वरूप वर्णन में 'उपनयन संस्कार' के समग्र तत्त्वों का उल्लेख करते हैं। श्रीमद्भागवत महापुराण के 7/12/4 में भी बताया गया है कि 'ब्रह्मचारी शास्त्र की आज्ञा के अनुसार मेखला, मृगचर्म, वस्त्र, जटा, दण्ड, कमण्डलु, यज्ञोपवीत तथा हाथ में कुश धारण करें।'[2]

शिशुपालवध (1/6)[3] में मूँज की मेखला (1/7)[4] में यज्ञोपवीत एवं दण्ड तथा मृगचर्म का उल्लेख प्राप्त होता है इस आधार पर उनके महाकाव्य में धर्मशास्त्रीय सभी तत्त्व समाहित हैं। धर्मग्रन्थों में भी ब्रह्मचर्याश्रम में प्रवेश उपनयन संस्कार के बाद ही होता है। शिशुपालवध (1/28)[5] में सम्पूर्ण वेदों के पढ़ने का उल्लेख प्राप्त होता है, इस प्रकार वेदों के अध्ययन अध्यापन की बात माघ करते हैं। साथ ही साथ (1/12)[6] में शिष्टलोकव्यवहार की बात करते हैं।

---

1. ब्रह्मचारी गुरुकुले वसन्दान्तो गुरोर्हितम्।
   आचरन्दासवन्नीचो गुरौ सुदृढसौहृदः। श्रीमद्भागवत, 7/12/1
   सायं प्रातरूपासीत गुर्वग्न्यकर्मसुरोन्तमान्।
   उभे सन्ध्ये च यतवाग् जपन्ब्रह्म समाहितः॥ वही, 7/12/2
   छन्दांस्यधीयीत गुरोराहूतश्चेत् सुयन्त्रितः।
   उपक्रमेऽवसाने च चरणौ शिरसा नमेत्। वही, 7/12/3
2. मेखलाजिनवासांसि जटादण्डकमण्डलून्।
   विभूयादुपवीतं च दर्भपाणिर्यथोदितम्। वही, 7/12/3
3. पिशङ्गमौञ्जीयुजमर्जुनच्छविं वसानमेणाजिनमञ्जनद्युति।
   सुवर्णसूत्राकलिताधराम्बरां विडम्बयन्तं शितिवाससस्तनुम्॥ शिशु. 1/6
4. विहङ्गराजाङ्गरुहैरिवायतैर्हिरण्मयोर्वीरुहवल्लितन्तुभिः।
   कृतोपवीतं हिमशुभ्रमुच्चकैर्घनं घनान्ते तडितां गणैरिव॥ शिशु. 1/7
5. कृतः प्रजाक्षेमकृता प्रजासृता सूपात्रनिक्षेपनिराकुलात्मना।
   सदोपयोगेऽपि गुरुस्त्वमक्षयो निधिः श्रुतीनां धनसंपदामिव॥ शिशु. 1/28
6. पतत्पतङ्गप्रतिमस्तपोनिधिः पुरोऽस्य यावन्न भुवि व्यलीयत।
   गिरेस्तडित्वानिव तावदुच्चकैर्जवेन पीडादुदतिष्ठदच्युतः॥ शिशु. 1/12

**गृहस्थ-आश्रम**

पुराणों में गृहस्थों के कर्तव्यों का उल्लेख प्राप्त होता है जिसमें शास्त्रविधि से पत्नी ग्रहण करना, अतिथि-सत्कार यज्ञ, श्राद्धकर्म, संतानोत्पत्ति करना और अग्नि आदि सङ्केत के रखने को अनिवार्य कर्तव्य (कर्म) बताया गया है। वायु पुराण में गृहस्थाश्रम को सभी आश्रमों की प्रतिष्ठा रखने वाला बताया गया है-

**चातुर्वर्णात्मकः पूर्वं गृहस्थश्चाश्रमः स्मृतः।**
**त्रयाणामाश्रमाणाञ्च प्रतिष्ठा योनिरेव च॥**[1]

वस्तुतः गृह में रहने वाला ही गृहस्थ नहीं होता था बल्कि उसमें दया और क्षमा आदि भावों का होना भी आवश्यक है क्योंकि सामाजिक जीवन का वह प्रमुख अङ्ग है-

**विभागशीलः सततं क्षमायुक्तो दयालुकः।**
**गृहस्थस्तु समाख्यातो न गृहेण गृही भवेत्॥**[2]

सामाजिक दृष्टिकोण से सभी आश्रमों में गृहस्थाश्रम का सर्वप्रमुख स्थान है। गृहस्थाश्रम में अतिथिसत्कार का महत्त्वपूर्ण स्थान है महाकवि माघ प्रथम सर्ग में अतिथि सत्कार का कितना सुन्दर समन्वय किया है। देवर्षि नारद के पृथ्वी पर पैर रखने से पहले भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा उनका सम्मान करना,[3] बाद में अर्घ्यपाद्य आदि के द्वारा उनकी पूजा करना[4] यहाँ पर श्रीकृष्ण भगवान् का विनयपूर्ण सेवाभव ही माघ के 'अतिथि देवो भव' की भावना को व्यक्त कर रहा है।

---

1. वायु. भाग-1, पृ. 132
2. पद्मपुराण, भाग 2, गृह, पृ. 91
3. अथ प्रयत्नोन्नमितानमत्फणैर्धृते कथञ्चित्फणिनां गणैद्यः।
   न्यधायिषातामभिदेवकीसुतं सुतेन धातुश्चरणौ भुवस्तले॥- शिशु. 1/13
4. तमर्घ्यमर्घ्यादिकयादिपूरुषः सपर्यया साधु स पर्यपूपुजत्।
   गृहानुपैतुं प्रणयादभीप्सवो भवन्ति नापुण्यकृतां मनीषिणः॥- शिशु. 1/14

माघ का दृष्टिकोण व्यापक दिखाई देता है 'अवर्णसङ्करैः'[1] से उनका तात्पर्य सत्कुलोत्पन्न से है। अर्थात् ऐसा परिवार जहाँ पर वैदिक रीति-रिवाज से शादी होती है वही व्यक्ति पवित्र और सदाचारी हो सकता है। महाकवि माघ 'विवाह संस्कार' के सन्दर्भ में सीधे उल्लेख नहीं करते हैं, लेकिन अवान्तर रूप में जो उनके इस सन्दर्भ में प्रसङ्ग मिलते हैं उसका उद्देश्य यही रहा होगा। महाकवि माघ भी गृहस्थाश्रम को सभी आश्रमों का नियन्ता मानते हैं, माघ का यह तथ्य भी अवान्तर रूप से अधोलिखित पद्य के द्वारा व्यक्त हो रहा है- राजा युधिष्ठिर एक गृहस्थ हैं और उन्हें ब्रह्मचर्यादि आश्रमों का नियन्ता बताते हैं। इससे सिद्ध होता है कि गृहस्थाश्रम से ही सभी आश्रम का पालन-पोषण आदि होता है। यथा-

**तत्प्रतीतमनसामुपेयुषां द्रष्टुमाहवनमग्रजन्मनाम्।**
**आतिथेयमनिवारितातिथिः कर्तुमाश्रमगुरुः स नाश्रमत्॥**[2]

इस प्रकार माघ विवाह, अतिथिसत्कारादि का निरूपण करते हैं जो गृहस्थाश्रम की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है।

वानप्रस्थी के लिए यह अनिवार्य था कि वह भौतिक सम्पदाओं से अपने को अलग रखे, गृह त्यागकर जङ्गल जाने का अभिप्राय यही था गृहस्थाश्रम से वह केवल पत्नी को ले जा सकता है। यह भी उभयपक्ष की सहमत की स्थिति में। वानप्रस्थ कामोपभोग आदि से मुक्त होने का प्रयास है उसे वन्यफल या साधारण भोजन का विधान है, यह कठोर नियम इसलिए लगाया गया है कि वह भोगैश्वर्य की ओर पुनः उन्मुख होकर आश्रम से पतित न हो जाये। पतित वानप्रस्थी को समाज से वहिष्कृत करने का विधान है, क्योंकि ऐसा न करने पर आश्रम की उच्चता ही समाप्त हो जायेगी, फिर समाज के लिए आदर्श ही क्या रह जायेगा?

---

1. शुद्धमश्रुतिविरोधि बिभ्रतं शास्त्रमुज्ज्वलमवर्णसङ्करैः।
   पुस्तकैः सममसौ गणं मुहुर्वाच्यमानमशृणोद्द्विजन्मनाम्॥- शिशु. 14/37
2. शिशु. 14/38

श्रीमद्भागवत महापुराण के अनुसार– 'वानप्रस्थ आश्रमी को जोती हुई भूमि में उत्पन्न होने वाले चावल, गेहूँ आदि अन्न नहीं खाने चाहिए, बिना जोते पैदा हुआ अन्न भी यदि असमय में पका हो तो उसे भी न खाना चाहिए, आग से पकाया या कच्चा अन्न भी न खाये। केवल सूर्य के ताप से पके हुए कन्द, मूल, फल आदि ही सेवन करें।[1]' वानप्रस्थी सिर पर जटा धारण करें, केश, रोम नख एवं दाढ़ी–मूँछ न कटवाये तथा मैल को शरीर से अलग न रखें। कमण्डलु, मृगचर्म, दण्ड, वल्कल वस्त्र और अग्निहोत्र की सामग्रियों को अपने पास रखे।

महाकवि माघ का वानप्रस्थाश्रम की दृष्टि से–

**कृत्वा पुंवत्पातमुच्चैर्भृगुभ्यो**
**मूर्ध्नि ग्राव्णां जर्जरा निर्झरौघाः।**
**कुर्वन्ति द्यामुत्पतन्तः स्मरार्त-**
**स्वर्लोकस्त्रीगात्र निर्वाणमत्र।।[2]**

अर्थात् इस रैवतक पर्वत पर झरनों के प्रवाह पुरुषों के समान, ऊँचे तट विहीन शिखरों से बड़ी–बड़ी शिलाओं के ऊपर गिरकर जर्जरित अर्थात् छिन्न–भिन्न अङ्गों वाले हो जाते हैं, इस प्रकार ऊपर की ओर उछलकर कामार्त्त आकाशगामी अप्सराओं के अङ्गों की शान्ति करते हैं।

संन्यास–आश्रम में सांसारिकता का सर्वतोभावेन त्यागकर दिया जाता है, संन्यासी को एकाकी जीवन व्यतीत करना पड़ता है। मनुस्मृति में संन्यासियों के लिए रात में किसी गाँव में प्रवेश न करने और दिन में भिक्षाटन के लिए किसी गाँव में एक से अधिक बार न जाने का विधान किया गया है।[3] महाकवि माघ रैवतक पर्वत को संन्यासियों या योगियों के लिए निर्जीव समाधि का स्थल बताते हैं। मैत्री, करुणा, मुद्रिता

---

1. न कृष्टपच्यमश्नीयादकृष्टं चाप्यकालतः।
   अग्निपक्वमथामं वा अर्कपक्वमुताहरेत्॥ श्रीमद्भागवत, 7/12/18
2. शिशु. 4/23
3. मनुस्मृति, 6/43

और उपेक्षा नामक चित्त की शोधक वृत्तियों और पञ्चक्लेशों से अवगत कराना चाहते हैं-

**मैत्र्यादिचित्तपरिकर्मविदो विधाय**
**क्लेशप्रहाणमिह लब्धसबीजयोगाः।**
**ख्यातिं च सत्त्वपुरुषान्यतयाधिगम्य**
**वाञ्छन्ति तामपि समाधिभृतो निरोद्धुम्॥**[1]

यहाँ पर माघ का आशय 'अविद्यास्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः पञ्च क्लेशाः।' (यो.सू. 2/3), अनित्याशुचिदुःखानात्मसुनित्यशुचिसुखात्मख्यातिरविद्या (यो.सू. 2/5), 'दृग्दर्शनशक्त्योरेकात्मतैवास्मिता' (यो.सू. 2/6), सुखानुशयी रागः (यो.सू. 2/7), दुःखानुशायी द्वेषः (यो.सू. 2/8) तथा यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽष्टावङ्गानि (यो.सू. 2/29) से है।

इस प्रकार अनित्य वस्तुओं में नित्यता का बोध अविद्या है, जैसे नश्वर शरीर में आत्मबुद्धि का भान। अहङ्कार का नाम अस्मिता है, अभिमत विषयों में अभिलाषा राग है, अनभिमत विषयों में क्रोध द्वेष है, कार्य तथा अकार्य में आग्रह है। ये पाँच क्लेश के कारण है, प्रकृति तथा आत्मा के विवेक को न जानने से संसार में भटकना पड़ता है। इस प्रकार पञ्चक्लेशों तथा पाप-पुण्यों से रहित को ईश्वर या परम पुरुष बताया गया है, इसलिए मुमुक्षु संन्यासी या योगी उन्हीं का ध्यान करते हैं-

**ग्राम्यभावमपहातुमिच्छवो योगमार्गपतितेन चेतसा।**
**दुर्गमेकमपुनर्निवृत्तये यं विशन्ति वशिनं मुमुक्षवः॥**[2]

अर्थात् मोह को त्यागने के इच्छुक मुमुक्ष लोग इस संसार में पुनः आगमन से छुटकारा पाने के लिए योगमार्ग में चित्त लगाकर इन्हीं अद्वितीय, दुष्प्राप्य एवं स्वतन्त्र भगवान् का ध्यान करते हैं।

---

1. शिशु. 4/55
2. वही, 14/64

निष्कर्षत**:** हम यह कह सकते हैं कि– भारतीय समाज मानव के 100 वर्ष (शतायु) जीवन का कल्पना कर, उन 100 वर्षों को 4 आश्रमों में विभक्त कर अपने जीवन का निर्वाह करते हुए अपने परम पद को प्राप्त करते थे ब्रह्मचर्य जहाँ व्यक्ति को सीखने तथा एक आदर्श चरित्र निर्वाह करने की नीव है, तो गृहस्थ आश्रम जीवन का सार है जहाँ अपने कर्त्तव्यों का पालन करते हुए अन्य आश्रमों के लिए मार्ग प्रशस्थ करता है। जीवन के उन सभी लिप्सा को जिसे वह गृहस्थ आश्रम में प्राप्त किया था वानप्रस्थ के द्वारा उनका इन्द्रियनिग्रह ही है तथा संन्यास आश्रम पर परम पुरुष परमात्मा का ध्यान करते हुए मोक्ष की प्राप्ति कराता है। इस प्रकार महाकवि माघ का शिशुपालवध विद्वत् जनों के उस उक्ति– **मेघे माघे गतं वयः** को निश्चित ही फलितार्थ करता है।

# शिशुपालवध महाकाव्य में भ्वादिगणीय धातुओं का अनुप्रयोग

**-श्री विजय यादव***

महाकवि माघप्रणीत शिशुपालवध अपनी विशिष्ट शैली के कारण बृहत्त्रयी महाकाव्यों में अद्वितीय स्थान रखता है। भारवि की प्रतिभा-प्रभा माघ के उदय के साथ ही मन्द पड़ गई- "तावत् भा भारवेर्भाति यावन्नमाघस्य नोदयः।" कालिदास जैसी उपमा भारवि जैसा अर्थगौरव तथा दण्डी जैसा पदलालित्य ये तीनों गुण माघ के महाकाव्य में एक साथ विद्यमान दिखायी पड़ता है।

**उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थगौरवम्।**
**दण्डिनः पदलालित्यं माघे सन्ति त्रयो गुणाः॥**

माघ की महनीयता विद्वत्ता प्रौढ़ता का सामर्थ्य इसी से स्वतः प्रमाणित होता है कि नवसर्ग तक महाकाव्य में कोई शब्द दुबारा नहीं कहा गया है। कहा भी जाता है कि- "नवसर्गे गते माघे नवशब्दो न विद्यते।"

माघ के सम्बन्ध में संस्कृत ग्रन्थों में अनेक प्रकार की प्रशस्तियाँ प्राप्त होती हैं। स्वयं महाकवि माघ ने ही शिशुपालवधम् के बीसवें सर्ग के अन्तिम पाँच श्लोकों में अपने वंश का वर्णन किया है। जिसके अनुसार उनके पितामह का नाम सुप्रभदेव था और वे श्रीबर्मल नामक किसी राजा के प्रधानमंत्री थे। सुप्रभदेव के पुत्र का नाम दत्त या दत्तक था जो अत्यन्त गुणवान् थे और इनके पुत्र महाकवि माघ हुए जिनकी माता का नाम ब्राम्ही था।

---

* पूर्व शोधछात्र, केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय, गंगानाथ झा परिसर, प्रयागराज

माघ का जन्म राजस्थान की इतिहास प्रसिद्ध नगरी भीनमाल या श्रीमाला नामक स्थान पर हुआ था इस स्थान का उल्लेख शिशुपालवध की कतिपय प्राचीन प्रतियों में मिलता है। यह स्थान पहले गुजरात प्रान्त में था। प्रभावकचरित्र के आधार पर श्रीमाल के राजा नाम वर्मलाट और मंत्री का नाम सुप्रभदेव प्राप्त होता है। माघ ने जिस रैवतक पर्वत का वर्णन अपने महाकाव्य में किया है वह राजस्थान में ही है। इन प्रमाणों के आधार पर विद्वानों ने माघ को राजस्थानी श्रीमाली ब्राह्मण कहा है।

माघ पर भट्टि व्याकरण का प्रभाव रहा है, जिससे यह साबित हो जाता है कि माघ स्वयं महावैयाकरण थे। इसका प्रमाण काव्य में यत्र-तत्र अंकित व्याकरण के सूक्ष्म नियमों को देखने से मिल जाता है। उनके महाकाव्य को व्याकरण की दृष्टि से देखा जाय तो भ्वादिगण की धातुओं का बृहद समन्वय दिखायी पड़ता है। यद्यपि भ्वादिगण की धातुओं की संख्या लगभग 1000 के करीब हैं फिर भी माघ ने अपने महाकाव्य में कुछ प्रसिद्ध धातुओं का प्रयोग किया है जो निम्न प्रकार से हैं-

भवादिगणीय धातुएँ जिनमें शप् (अ) विकरण प्राप्त होता है उनका प्रयोग महाकाव्य में जानने से पहले कुछ धातु रूपों को जानना आवश्यक है जो निम्न हैं–

**रूपमाला ( भू धातु )**

| | **लट् लकार** | | **लोट् लकार** |
|---|---|---|---|
| प्र. | भवति भवत: भवन्ति | प्र. | भवतु भवताम् भवन्तु |
| म. | भवसि भवथ: भवथ | म. | भव भवतम् भवत |
| उ. | भवामि भवाव: भवाम: | उ. | भवानि भवाव भवाम |
| | **लङ् लकार** | | **विधिलिंङ्** |
| प्र. | अभवत् अभवताम् अभवन् | प्र. | भवेत् भवेताम् भवेयु: |
| म. | अभव: अभवतम् अभवत | म. | भवे: भवतम् भवेत |
| उ. | अभवम् अभवाव अभवाम | उ. | भवेयम् भवेव भवेम |

**शिशुपाल महाकाव्य में भवादिगण की धातुएँ**

**1. भू धातु (होना) का प्रयोग**

I. भवति- भू+लट्-तिप्

**सम्पदा सुस्थितं मन्यो भवति स्वल्पयाऽपि यः॥2/32॥**

**भवति लघीयसां धार्ष्ट्यम्॥8/60॥**

**भ्रान्तिभाति भवति क्व विवेकः॥10/5॥**

**न क्षमं भवति तत्वविचारे मत्सरेण हतवृत्तिचेतः॥10/35॥**

**उद्धृतौ भवति कस्य वा भूवः श्रीवराहमपहाय योग्यता॥14/14॥**

II. भवन्ति-भू+लट्-झि

**गृहानुपैतुं प्रणयादभीप्सवो**
**भवन्ति ना पुण्यकृतां मनीषिणः॥1/14॥**

**आरभन्तेऽल्पमेवाज्ञाः कामं व्यग्रा भवन्ति च॥2/79॥**

**भवन्ति नोद्दामगिरां कवीना-**
**मुच्छ्रायसौन्दर्यगुणा मृषोद्याः॥4/10॥**

**किमु चोदिताः प्रियहितार्थकृतः-**
**कृतिनो भवन्ति सुहृतः सुहृदाम्॥9/57॥**

III. भवतु-भू+लोट-तिप्

**भवत्वसुहृज्जनः सकामः॥7/9॥**

**व्रज विटपममुं ददस्व तस्ये**
**भवतु यतः सदृशोश्चिराय योगः॥7/53॥**

IV. भव-भू लोट्-सिप्

**प्रणयिनी यदि न प्रसादबुद्धि-**
**र्भव मम मानिनि जीविते दयालुः॥7/10॥**

**सुचिरं सह सर्वसात्वतैर्भव**
**विश्वस्तविलासिनीजनः॥16/14॥**

V. भवन्तु-भू लोट्-झि

**सुविस्तरतरा वाचो भाष्यभूता भवन्तु मे॥2/25॥**

**नगरेषु भवन्तु वीथयः परिकीर्णा**
**वनजैर्मृगादिभिः॥16/10॥**

VI. अभवत्-भू लङ्-तिप्

**तपसि मन्दगभस्तिरमीषुमान्**
**नहि महाहिमहानिकरोऽभवत्॥6/63॥**

**अभवद्गतः परिणतिं शिथिलः**
**परिमन्दसूर्यनयनो दिवसः॥9/3॥**

**स्पष्टमेव दलतः प्रतिनार्या-**
**स्तन्मयत्वमभवद्धृदयस्य॥10/46॥**

**श्लोकैरिव महाकाव्यं व्यूहैरतदभवद्बलम्॥19/41॥**

**सुतरामभवद्दुरीक्ष्यबिम्बस्तपनस्ततत्किरणैरिवाऽत्मदर्शः॥20/55॥**

VII. अभवन्-भू लङ्-झि

**दूरेऽभवन्भोजबलस्य गच्छतः**
**शैलोपमाऽतीतगजस्य निम्नगाः॥12/61॥**

**अभवन्यदङ्गणभुवः समुच्छ्वसन्न-**
**ववालवायजमणिस्थलाऽङ्कुराः॥13/58॥**

**गुम्फिताः शिरसि वेणयोऽभवन्**
**न प्रफुल्लसुरपादपस्त्रजः॥14/30॥**

**क्षयितापदि जाग्रतोऽपि नित्यं**
**ननु तत्रैव हितेऽभवन्निषण्णाः॥20/34॥**

**2. गम् धातु-(जाना) का प्रयोग**

I. गच्छति-गम्+लट्-पित्

**बृहत्सहायः कार्यान्तं क्षोदीयानपि गच्छति॥2/100॥**

II. गच्छतः- गम्+लट्-तस्

**गच्छतः स्म मधुकैटभौ विभो**
**र्यस्य नैन्द्रसुखविघ्नतां क्षणम्॥14/68॥**

III. अगच्छत-गम्+लङ्-तिप्

**बहुशः सह शक्रदन्तिना स**
**चतुर्दन्तमगच्छदाहवम्॥16/69॥**

**3. घ्रा धातु-(सूँघना) का प्रयोग**

जिघ्रति- घ्रा+लट्-तिप्

**शिरसि स्म जिघ्रति सुरारिबन्धने-**
**छलवामनं विनयवामनं तदा॥13/12॥**

**4. चर् धातु-(चलना) का प्रयोग**

चरन्ति-चर्+लट्-झि

**तीव्रमहाव्रतमिवात्र चरन्ति वप्राः॥4/58॥**

**5. गल् धातु-(खाना, गलना) का प्रयोग**

अगलत्-गल्+लङ्-तिप्

**सौवर्णवलयमगलत्कराग्रात्॥8/34॥**
**ध्रियमाणमप्यगलदश्रु चलति दयिते नतभ्रुवः॥15/89॥**

**6. ग्रह् धातु-(लेना, पकड़ना) का प्रयोग**

अग्रहीत्-ग्रह्+लङ्-तिप्

**द्युतिमग्रहीद्ग्रहगणो लघवः**
**प्रकटीभवन्ति मलिनाश्रयतः॥9/23॥**

**7. जीव् धातु-(जीना) का प्रयोग**

जीवति-जि+लट्-तिप्

**माजीवन् यः परावज्ञादुःखदग्धोऽपि जीवति॥2/45॥**

**8. त्यज् धातु-( छोड़ना ) का प्रयोग**

त्यजति-त्यज्+लट्-तिप्

**त्यजति कष्टमसावचिरादसून्**
**विरहवेदनयेत्यघशङ्किभिः॥6/18॥**

**त्यजति मुदमुलूकः प्रीतिमांश्चक्रवाकः॥11/64॥**

**9. तृ धातु-( तैरना ) का प्रयोग**

अतरत्-तृ+लङ्-तिप्

**अतरत्स्वभुजौजसा मुहुर्महतः संगसागरानसौ॥16/67॥**

**10. दह् धातु-( जलाना ) का प्रयोग**

दहन्ति-दह्+रुलट्-झि

**अमृत स्त्रुतोऽपि विरहाद्भवतो**
**यदमूं दहन्ति हिमरश्मिरुचः॥9/68॥**

**11. दृश् धातु-( देखना ) का प्रयोग**

I. पश्यति-दृश+लट्-तिप्

**धरणीधरेन्द्रदुहितुर्भयादसौ**
**विषमेक्षणः स्फुच्यमूर्न पश्यति॥13/39॥**

**विगततिमिरपङ्कं पश्यति व्योम॥11/26॥**

**श्रियमलिकुलगीतैर्लालितां पङ्कजान्त-**
**र्भवनमधिशयानामादरात्यपश्यतीव॥11/61॥**

II. पश्यन्ति-दृश+लट्-झि

**पश्यन्ति शान्तमलसान्द्रतरांशुजालम्॥4/22॥**

**न तदद्भुतमस्य यन्मुखं युधि-**
**पश्यन्ति भिया न शत्रवः॥16/60॥**

**12. धेट् धातु-(पीना) का प्रयोग**

अधयत्-धेट्+लङ्-तिप्

**वदनं प्रियः प्रियायाः यदधयद्॥7/45॥**

**13. ध्वन् धातु-(शब्द करना) का प्रयोग**

ध्वनति स्म-घ्वन्+लट्-तिप्-स्म

**ध्वनति स्म धनुर्घनान्तमत्तप्रचुर-**
**क्रौञ्चस्वानुकारमुच्चैः॥20/19॥**

**14. पा धातु-(पीना) का प्रयोग**

पिवतु-पा+लोट्-तिप्

**तीक्ष्णविशिखमुखपीतमसृक्पततां**
**गणैः पिबतु सार्धमुर्वरा॥15/66॥**

**15. पत् धातु-(गिरना) का प्रयोग**

I. पतति-पत्+लट्-तिप्

**विष्वक्तटेषु पततिस्फुटमन्तरीक्षम्॥4/25॥**

**पतत्यधो धाम विसारि सर्वतः**
**किमेतदित्याकुलमीक्षितं जनैः॥1/2॥**

II. पतेताम्-पत्+विधिलिङ्-तस्

**उभौयदि व्योम्नि पृथक् प्रवाहा-**
**वाकाशगङ्गापयसः पतेताम्॥3/8॥**

III. आपतत्-पत्+लङ्-तिप्

**निर्घात् इव निर्घोषभीमस्तस्याऽपतद्रथः॥19/4॥**

**16. पठ् धातु-(पढ़ना) का प्रयोग**

पठन्ति-पठ्+लट्-झि

**गुणान्समुद्दिश्य पठन्ति वन्दिनः॥12/35॥**

**17. लग् धातु-( लगना ) का प्रयोग**

लगन्ति-लग्+लट्-झि

**विदितेङ्गिते हि पुर एव जने**
**सपदीरिताः खलु लगन्ति गिरः॥9/69॥**

**18. लोल् धातु-( लहराना, हिलना ) का प्रयोग**

I. लोलति-लोल्+लट्-तिप्

**आर्द्रतां हृदयमाप च रोषो**
**लोलति स्म बचनेषु वधूनाम्॥10/36॥**

II. लोडयन्ति-लोड्+लट्-झि

**कलशिमुदधिगुर्वी बल्लवा लोडयन्ति॥11/8॥**

**19. ब्रज् धातु- ( जाना ) का प्रयोग**

I. ब्रजति-ब्रज्+लट्-तिप्

**धीराणां ब्रजति हि सर्व एव...॥8/58॥**

**ब्रजति रजनिरेषा तन्मयूखाङ्गरागैः॥11/21॥**

**कामिनीनां मन्डनश्रीः ब्रजति**
**हि सफलत्वं वल्लभालोकनेन॥11/33॥**

**व्रजति नियमभाजां मुग्धमुक्तापुटस्य॥11।42॥**

**न विवेद यः सततमेनमीक्षते**
**न वितृष्णतां व्रजति खल्वसावपि॥13/46॥**

**बह्वपि प्रियमयं तव ब्रुवन्न**
**व्रजत्यनृतवादितां जनः॥14/4॥**

II. ब्रजन्ति ब्रज्+लट्-झि

**व्रजन्ति गुणतामर्थाः शब्दा इव विहायसः॥2/91॥**

III. व्रज् धातु–व्रज्+लोट–सिप्

**व्रज विटपममुं ददस्व तस्यै**
**भवतु यतः सदृशोश्चिराय योगः॥7/53॥**

**20. लभ् धातु (पाना) का प्रयोग**

लभ्यते–लभ्+लट्–त

**लभ्यते स्म परिरक्ततयाऽत्मा**
**यावकेन वियतापि युवत्याः॥10/9॥**

**21. स्मृ धातु-(स्मरण करना) का प्रयोग**

I. स्मरन्ति–स्मृ+लट्–तिप्

**स्मरत्यदो दाशरथिर्भवन् भवान्॥1/68॥**

II. अस्मरत्–स्मृ+लङ्–तिप्

**प्रतिघातसमर्थमस्त्रमग्नेरथ मेघं करमस्मरन्मुरारिः॥20/65॥**

**22. हस् धातु-(हँसना) का प्रयोग**

I. हसति–हस्+लट्–तिप्

**दशाननादीनभिराद्धदेवता**
**वितीर्णवीर्यातिशयान् हसत्यसौ॥1/71॥**

II. अहसत्–हस्+लङ्–तिप्

**स्फुटमिति प्रसवेन पुरोऽहसत्सपदि**
**कुन्दलता दलतालिनः॥6/66॥**

III. अहसन्–हस्+लङ्–झि

**विनिष्पतन्मृगपतिभिर्गुहामुखैर्गताः**
**परां मुदमहसन्निवाद्रयः॥17/32॥**

उक्त विवरण के आधार पर यह कहा जा सकता है कि महाकवि माघ ने भ्वादिगण की धातुओं का प्रयोग लगभग सभी सर्गों में किया है जिससे यह समझा जा सकता है कि माघ एक मूर्धन्य वैयाकरणिक विद्वान् थे। जिन्हें व्याकरण के सूक्ष्म नियमों का पूर्ण ज्ञान था, जिसकी जानकारी महाकाव्य के अध्ययन से प्राप्त होती है जो शिशुपालवध महाकाव्य के माध्यम से विद्वत समाज में एक अलग पहचान बनाने में सफल हुए।

# शिशुपालवधमहाकाव्य में रसविचार

-डॉ. बुद्धिबल्लभ देवराड़ी*

**भूमिका-**

श्रीहर्ष का नैषधीयचरित एवं भारवि का किरातार्जुनीय महाकाव्य के साथ-साथ माघ का शिशुपालवध संस्कृत महाकाव्यों में बृहत्त्रयी के रूप में परिगणित है। भारवि ने संस्कृत महाकाव्य के क्षेत्र में जिस विचित्रमार्ग का संधान किया और माघ ने उसको नई ऊँचाइयाँ दी।

शिशुपालवध महाकाव्य के अन्त में माघ ने अपना संक्षिप्त वंशपरिचय दिया है, इसके अनुसार उनका जन्मस्थान भीनमाल था, वर्तमान में भीनमाल राजस्थान के सिरोही जिले में एक तहसील है और प्राचीनकाल में यह अनेक विद्वानों की जन्म-स्थली रही है। ज्योतिष के प्रख्यात् आचार्य ब्रह्मगुप्त ने 625 ई. के लगभग इसी नगर में "ब्रह्मगुप्तसिद्धान्त" नामक ग्रन्थ की रचना की थी। इनके पितामह का नाम सुप्रभदेव था। ये राजा श्रीवर्मल के सर्वाधिकारी थे, माघ ने इसकी प्रशंसा करते हुए लिखा है कि वे अनासक्त चित्तवाले विरागी स्वभाव के देवतातुल्य पुरुष थे। जैसे शिशुपालवध में कविवंशवर्णन प्रसङ्ग में कहा है-

**सर्वाधिकारी सुकृताधिकारः श्रीवर्मलाख्यस्य बभूव राज्ञः।**
**असक्तदृष्टिर्विरजाः सदैव देवोऽपरः सुप्रभदेवनामा।।**[1]

---

* पूर्व शोधच्छात्र (साहित्यविभाग), श्री.ला.ब.शा.रा. संस्कृत विश्वविद्यालय, नई दिल्ली-16

1. शिशुपालवधे कविवंशवर्णने, 1/पृ.939

सुप्रभदेव के दत्तम नामक अत्यन्त उदार, क्षमाशील, धर्मपरायण और मृदुस्वभाव के पुत्र हुए। इनका नाम सबको आश्रय देने के कारण सर्वाश्रय पड़ गया था और इन्हीं दत्तक के पुत्र माघ थे। कुछ विद्वानों के अनुसार माघ का समय 675 ई. के आस-पास माना गया है। गुर्जरदेश के समृद्धिमान नगर श्रीमाल के राजा वर्मलात के मन्त्री का नाम सुप्रभदेव था, उनके दो पुत्र हुए- दत्त और शुभंकर, दत्त के पुत्र माघ थे। बचपन से विद्वान् राजा भोज उनके मित्र थे। माघ के चाचा शुभंकर बड़े दानी हुए, उनके पुत्र का नाम सिद्धनायक था। उन्होंने बाद में जैनध र्म में दीक्षित होकर उपमिति भवप्रपंचक कथा नामक ग्रन्थ की रचना की।

माघ के काल निर्णय के विषय में शिशुपालवध के द्वितीय सर्ग में 112 वें श्लोक में वृत्ति और काशिका का उल्लेख भी महत्त्वपूर्ण माना जाता है। काशिकावृत्ति का रचनाकाल 650 ई. है और माघ के इस ग्रन्थ पर लिखी गयी टीका है। ऐसी स्थिति में माघ का समय काशिकावृत्ति की रचना के आसपास माना जा सकता है।[1]

## शिशुपालवध महाकाव्य की विषयवस्तु-

इस महाकाव्य में बीस सर्ग तथा कुल 1650 श्लोकों में श्रीकृष्ण के द्वारा शिशुपाल नामक दुराचारी राजा के वध करने की कथा निरूपित की गयी है।

- प्रथम सर्ग में नारद द्वारका में आते हैं और श्रीकृष्ण को शिशुपाल के संहार के लिए प्रेरित करते हैं।
- दूसरे सर्ग में श्रीकृष्ण को युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ का समाचार मिलता है और वे इस विषय में बलराम तथा उद्धव से परामर्श करते हैं कि पहले शिशुपाल का वध करने के लिए प्रस्थान करें या राजसूय यज्ञ में जायें। फिर वे, उद्धव के परामर्श को स्वीकार करके, पहले युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में जाते हैं।

---

1. संस्कृत साहित्य का अभिनव इतिहास, पृ.248

- तीसरे सर्ग से लेकर तेरहवें सर्ग में श्रीकृष्ण का द्वारका से प्रस्थान, मार्ग में रैवतक पर्वत (गिरनार पर्वत) पर उनकी सेना का पड़ाव रैवतक पर्वत पर विहार करते हुए षड्ऋतु का वर्णन करते हुए, महाकवि मन्थर गति से श्रीकृष्ण की यात्रा को आगे बढ़ाते हैं। और यमुना पार कर श्रीकृष्ण इन्द्रप्रस्थ नगर पहुँचते हैं तथा पाण्डवों का श्रीकृष्ण से मिलन वर्णित है। चौदहवें सर्ग में श्रीकृष्ण राजसूय यज्ञ में सेवाकार्य करने का संकल्प व्यक्त करते हैं और युधिष्ठिर उन्हें अपने यज्ञ का रक्षक बना लेते हैं।
- पन्द्रहवें सर्ग में शिशुपाल श्रीकृष्ण के सम्मान को सह नहीं पाता, और राजाओं को उनका अपमान करने के लिए भड़काता, फिर वे अपने शिविर में जाकर आक्रमण की योजना बनाने लगते हैं।
- सोलहवें सर्ग में शिशुपाल का दूत श्रीकृष्ण के पास आता है और उन्हें चुनौती देता है। श्रीकृष्ण की सेना भी युद्ध के लिए तैयार होने लगती है।
- अठारहवें और उन्नीसवें सर्ग में दोनों सेनाओं की विकल भिड़त का वर्णन है। और अन्त में बीसवें सर्ग में श्रीकृष्ण के द्वारा शिशुपाल के वध का वर्णन है। शिशुपालवध महाकाव्य में महाकाव्य का लक्षण पूर्ण रूप से घटित होता है।

**महाकाव्य के लक्षणों की अन्विति-**

टीकाकार मल्लिनाथ ने शिशुपालवध में महाकव्य के लक्षणों की अन्विति दिखाते हुए कहा है-

> **नेतास्मिन् यदुनन्दनः स भगवान् वीरप्रधानो रसः**
> **शृङ्गारादिभिरङ्गवान् विजयते पूर्णा पुनर्वर्णना।**
> **इन्द्रप्रस्थागमाद्युपायविषयश्चैद्यावसादः फलं**
> **धन्यो माघकविर्वयं तु कृतिनस्तदुक्तिसंसेवनात्॥**

## चरित्र चित्रण-

शिशुपालवध में नायक श्रीकृष्ण विष्णु के अवतार तथा समग्र विभूतियों से युक्त हैं, पर वे आदर्श मानव के रूप में भी अपने श्रेष्ठ गुणों से प्रदर्शन करते हैं। राजसूय यज्ञ में सेवक की भाँति कार्य करने को तत्पर रहते हैं। अपने फुफेरे भाई और बड़े होने के कारण युधिष्ठिर को मान देते हुए वे पहले रथ से उतर कर उनका सम्मान करते हैं।

## रसविचार-

शिशुपालवध महाकाव्य वीर रस प्रधान है। और माघ ने अपने आराध्य तथा महाकाव्य के नायक श्रीकृष्ण को शौर्य, धैर्य, गांभीर्य के प्रतिमान के रूप में प्रस्तुत किया है, जिस प्रकार भारवि ने अपने महाकाव्य में अर्जुन के चरित्र के द्वारा एक आदर्श वीर का चरित्र-चित्रण निरूपित किया है, उसी प्रकार शिशुपालवध में नायक श्रीकृष्ण के चरित्र के द्वारा कवि ने वीर पुरुष की अपनी परिकल्पना को साकार किया है।

वस्तुतः महाकवि माघ के महाकाव्य में काव्यशास्त्रीय सभी तत्त्वो के साथ-साथ, रसतत्त्व का भी अलौकिक सन्निवेश है। अतः रसौचित्य पूर्ण रूप से देखा जा सकता है।

रसवादी आचार्यों ने जहाँ रसतत्त्व को आत्मतत्त्व के रूप स्वीकार किया है। वह विचार माघ के महाकाव्य में भी पूर्णरूप से घटित होता है। रस के विषय में सर्वप्रथम भरतमुनि ने अपने नाट्यशास्त्र में रससूत्र प्रतिपादित किया है। रससूत्र के आचार्यों ने अनेक व्याख्याएँ की हैं। वह रससूत्र इस प्रकार है-

**विभावानुभावव्यभिचारिभावसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः।**[1]

अर्थात् आलम्बन और उद्दीपन विभाव एवं कटाक्षभूजाक्षेप आदि अनुभावों और निर्वेदादि, व्यभिचारी-भावों के संयोग से रस की उत्पत्ति अथवा निष्पत्ति होती है।

---

1. नाट्यशास्त्र, 6/34

अत: रससूत्र की व्याख्या के रूप में अनेक वाद हैं। जिसमें से चार वाद प्रसिद्ध हैं। जैसे–

1. भट्टलोलट का उत्पत्तिवाद, 2. श्रीशङ्कुक का अन्वितिवाद, 3. भट्टनायक का भुक्तिवाद, 4. अभिनवगुप्तपादाचार्य का अभिव्यक्तिवाद। इसमें से सबसे अधिक प्रमाणिक अभिनवगुप्त के अभिव्यक्तिवाद को माना गया है।

माघ के महाकाव्य के अंतिम चार सर्गों में युद्ध का वर्णन जितना ओजस्वी तथा प्रभावपूर्ण है उतना ही चमत्कारमय भी है। छठे से ग्यारहवें सर्ग तक के वर्णनों में शृंगार रस को ही मुख्यता मिली है। छटे सर्ग में फिर प्रकृति को उन्होंने प्रेम के रंग में रंगकर प्रस्तुत किया है, तो सातवें सर्ग में शृंगारिक अनुभवों का ही चित्रण किया है। नवम सर्ग में तो श्रीकृष्ण की सेना के लोगों के विलास और विहार में शृंगार की अखण्ड धारा दी है।

संस्कृत महाकवियों के बीच माघ की एक दुर्लभ विशेषता उनकी विनोदप्रियता तथा शिष्टहास्य की प्रवृत्ति है। शृंगार और वीर रस के साथ हास्य ने अंग के रूप में उनके महाकाव्य में जितनी छटाएँ विखेरी हैं, उतनी अन्य किसी संस्कृत महाकाव्य में कदाचित् न मिलेंगी। जैसे शृंगार रस के उदाहरण के रूप में–

**अभिवीक्ष्य सामिकृतमण्डनं यतीः**
**कररुद्धनीविगलदंशुकाः स्त्रियः।**
**दधिरेऽधिभित्ति पटहप्रतिस्वनैः**
**स्फुटमट्टहासमिव सौधपङ्क्तयः॥**[1]

इस पद्य में महाकवि माघ के शृंगार रस का अत्यधिक चमत्कारिक प्रयोग को देखा जा सकता है। रसतत्त्व का अलौकिक प्रयोग के कारण काव्यशास्त्रीय आचार्यों ने भी माघ के माव्य की प्रसंशा स्वीकार की।

1. शिशुपालवध, 13/31

काव्यमीमांसाकार राजशेखर के मतानुसार रससिद्धान्त के प्रवर्त्तक नन्दिकेश्वर हैं। जैसे उन्होंने अपने काव्यमीमांसा में कहा है- "रसाधिकारिकं नन्दिकेश्वर:" परन्तु नन्दिकेश्वर का वर्तमान में कोई ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है। अत: भरतमुनि ही रससम्प्रदाय के आद्यप्रवर्तक हैं। रस के स्वरूप का निरूपण जैसे नाट्यशास्त्र में कहा गया है- "रस इति क: पदार्थ:? उच्यते- आस्वाद्यमानत्वात् कथमास्वाद्यते रस:"[1]।

अर्थात् रस क्या है कौन सा पदार्थ है, आस्वाद्य योग्य है, तो फिर कैसे आस्वाद्य किया जाता है? भरतमुनि कहते हैं- जैसे नाना प्रकार की सामग्री मिलाकर, भोजन का आस्वादन किया जाता है उसी प्रकार रस का भी स्वसामग्री के संयोग से आस्वादन किया जाता है। पुन: मम्मटाचार्य ने भी अपने काव्यप्रकाश ग्रन्थ में रससूत्र व्याख्या प्रसङ्ग में प्रमाणिक व्याख्या की है। जैसे-

**कारणान्यथ कार्याणि सहकारीणि यानि च**
**रत्यादेः स्थायिनो लोके तानि चेन्नाट्यकाव्ययोः।**
**विभावानुभावास्तत् कथ्यन्ते व्यभिचारिणः**
**व्यक्तः स तैर्विभावाद्यैः स्थायी भावो रसः स्मृतः॥**[2]

अर्थात् विभाव-अनुभाव और संचारीभाव मिलकर स्थायिभाव को रस के रूप में परिणित करके रस रूप में व्यक्त करता है अथवा आस्वाद्ययोग्य बनाते हैं। उसे ही रस कहा जाता है। और इसी प्रकार रस के स्वरूप को धनिक और धनञ्जय भी स्वीकार करते हैं। परन्तु वे रससामग्री के रूप में सात्त्विकभाव को भी जोड़कर रससूत्र की व्याख्या करते हैं। जैसे दशरूपक में-

**विभावैरनुभावैश्च सात्त्विकैर्व्यभिचारिभिः।**
**आनीयमानः स्वाद्यत्वं स्थायी भावो रसः स्मृतः॥**[3]

अतः स्वसामग्री वशात् स्थायीभाव ही रस के रूप में अभिव्यक्त

---

1. नाट्यशास्त्र, 6/8
2. काव्यप्रकाश, 4/43/27/28
3. दशरूपक, 4/1

होता है। माघ के महाकाव्य में भी पूर्ण रूप से रसानुभूति होती है। जैसे-

**रभसेन हारपददत्तकाञ्चयः प्रतिमूर्धजं निहितकर्णपूरकाः।**
**परिवर्तिताम्बरयुगाः समापतन्वलयीकृतश्रवणपूरकाः स्त्रियः।।**[1]

श्रृङ्गारिक, वर्णन में भी महाकवि माघ की छटा, अलौकिक आनन्द को प्रदान करने में समर्थ दिखती है। तथा श्रीकृष्ण की आकर्षण शक्ति प्रदर्शित होती है और कवि की सार्थकता सिद्ध होती है।

वस्तुतः महाकवि माघ ने, वीर रस के चमत्कार के साथ-साथ श्रृंगार रस का भी अनुपम वर्णन किया है। जैसे-

**कदलीप्रकाण्डरुचिरोरुतरौ जघनस्थलीपरिसरे महति।**
**रशनाकलापकगुणेन वधूर्मकरध्वजद्विरदमाकलयत्।।**[2]

अर्थात् करधनी पहनने से उस रमणी का जघन-प्रदेश अतिशय कामवर्धक हो गया, ये कवि की रसाभिव्यक्ति का कौशल लक्षित होता है। माघ के महाकाव्य में वीररस का अद्भुत वर्णन मिलता है। जैसे-

**रामेण त्रिःसप्तकृत्वो ह्रदानां**
**चित्रं चक्रे पञ्चकं क्षत्रियास्त्रैः।**
**रक्ताम्भोभिस्तत्क्षणादेव**
**तस्मिन्संख्येऽसंख्याः प्रावहन्द्वीपवत्यः।।**[3]

अतः वीरता का वर्णन करते हुए कहते हैं कि युद्ध में क्षणमात्र में ही रक्तरूप जल से असंख्य नदियाँ बहने लगी। माघ के द्वारा अनेक शैली का सन्निवेश, काव्यजगत में देखने को मिलता है। जैसे वीर रस को द्वयक्षर में प्रस्तुत किया-

**भूरिभिर्भारिभिर्भीरैर्भू भारैरभिरेभिरे।**
**भेरीरेभिभिरभ्राभैरभीरुभिरिभैरिभाः।।**[4]

---

1. शिशुपालवध, 13/32
2. वही, 9/45
3. वही, 18/70
4. वही, 19/66

पुनः द्वयक्षर के चमत्कार से वीरता का वर्णन जैसे–

**वररोऽविवरो वैरिविवारी वारिरारवः।**
**विववार वरो वैरं वीरो रविरिवौर्वरः।।[1]**

अर्थात् भक्तों को वर देने वाले शत्रुओं को रोकने वाले मेघ के समान गम्भीर ध्वनि वाले श्रेष्ठ शूरवीर श्रीकृष्ण ने पृथ्वी में उत्पन्न, सूर्य के समान वैरि–समूह को विदीर्ण कर दिया–

**परिवेष्टितमूर्तयश्च मूलादुरगैराशिरसः सरत्नपुष्पैः।**
**दधुरायतवल्लिवेष्टितानामुपमानं मनुजा महीरुहाणाम्।।[2]**

पैर से लेकर शिर तक रत्नमय पुष्पों वाले सर्पों से लिपटे हुए शरीर वाले सैनिक लम्बी लता से लिपटे हुए वृक्षों के समान मालूम पड़ने लगे। संस्कृत महाकवियों के बीच माघ की एक दुर्लभ विशेषता उनकी विनोदप्रियता तथा शिष्टहास्य की प्रवृत्ति है। शृङ्गार और वीररसों के साथ हास्य ने अंग के रूप में उनके महाकाव्य में जितनी छटाएँ बिखेरी हैं। उतनी अन्य किसी संस्कृत महाकाव्य में न मिलेगी। हास्य रस का अंग के रूप में चमत्कार जैसे–

**त्रस्तः समस्तजनहासकरः करेणो–**
**स्तावत्खरः प्रखरमुल्ललयाञ्चकार।**
**यावच्चलासनविलोलनितम्बबिम्ब–**
**विस्रस्तवस्त्रमवरोधवधूः पपात।।[3]**

अर्थात् हाथी से डर कर गधा उलार भरता है, तो उसकी पीठ पर बैठी अवरोधवधू गिर पड़ती है, उससे श्रीकृष्ण की सेना में हँसी का फव्वारा फूट पड़ता है। शृङ्गार, वीर, हास्य रसों के साथ–साथ वात्सल्य रस का अंग के रूप में सुमधुर परिपोष माघ ने अपनी कविता में किया है। जिससे उनके स्नेह से छलकते मन की छलक मिलती है। युद्ध के

1. शिशुपालवध, 19/100
2. वही, 20/49
3. वही, 5/7

लिए अपने परिवार से विदा लेते सैनिकों का वर्णन अत्यन्त हृदयद्रावक है। करुणरस का इस रूप में परिपोष अन्य किसी महाकाव्य में न मिलेगा। इसी प्रसंग में माघ ने अपने पिता से लिपटते एक शिशु के चित्रण में तो करुण और वात्सल्य का अनूठा समागम रच दिया है-

**व्रजतः क्व तात वजसीति परिचयगतार्थमस्फुटम्।**
**धैर्यमभिनदुदितं शिशुना जननीनिर्भर्त्सनविवृद्धमन्युना।।**[1]

जाते हुए पिता से अपनी अस्पष्ट तोतली वाणी में शिशु ने पूछा कि कहाँ जा रहे हो, तो उसके प्रश्न को केवल उसके माता-पिता ही समझ सके तो बच्चे का इस तरह पूछना पिता के धैर्य को तोड़ दिया।

उक्त कतिपय उद्धरणों से स्पष्ट होता है कि शिशुपालवध महाकाव्य में महाकवि माघ ने विभिन्न रसों का सुन्दर प्रयोग किया है।

---

1. शिशुपालवध. 15/87

# महाकवि माघ का पाण्डित्य

-श्री हरिकेश कुमार त्रिपाठी*

महाकवि माघ ने अपने महाकाव्य के अन्त में अपने वंश का परिचय दिया है। माघ के पितामह सुप्रभदेव श्रीवर्मल नामक किसी राजा के महामन्त्री थे। सुप्रभदेव का राजसभा में बहुत सम्मान था और राजा पर भी उनका प्रभाव था। राजा उनके परिमित सत्य एवं हितकारी वचनों को उसी प्रकार सुनता था और तदनुकूल ही कार्य करता था, जैसे लोग भगवान् बुद्ध के उपदेश सुनते थे। इन्हीं सुप्रभेदव का 'दत्तक' नामक पुत्र हुआ जो गुणवान्, उदार, क्षमाशील, मृदुभाषी, कोमल स्वभाव एवं धर्मपरायण था। उनके गुणों से सन्तुष्ट हुये लोगों ने उनकी दीन-दु:खियों को आश्रय देने की प्रकृति के कारण, उनको 'सर्वाश्रय' की उपाधि से भूषित किया था। इन्हीं दत्तक के पुत्र माघ महाकवि थे। जिन्होंने 'शिशुपालवध' नामक महाकाव्य का प्रणयन किया।

महाकवि माघ की केवल एक ही कृति शिशुपालवध उपलब्ध है। शिशुपालवध की कथा श्रीमद्भागवतपुराण, विष्णुपुराण, ब्रह्मवैवर्तपुराण, अग्निपुराण आदि में वर्णित है, किन्तु महाभारत में इसका सविस्तार वर्णन है। उसके 'सभापर्व' में यह कथा तैंतीस से पैंतालिस अध्यायों तक वर्णित है।

'शिशुपालवध' के कथानक का स्रोत महाभारत ही है। महाकवि माघ ने छोटी-सी कथा में परिवर्तन एवं परिवर्धन करके एक अभिराम रूप प्रदान किया है।

---

* पूर्व शोधच्छात्र, संस्कृत विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

महाभारत की कथा के अनुसार एक बार महर्षि नारद विचरण करते हुए पाण्डवों की सभा में पहुँचे। उन्होंने उनका उचित सत्कार किया, संतुष्ट होने के अनन्तर उन्होंने युधिष्ठिर को राजसूय यज्ञ करने के लिये कहा। नारद जी के चले जाने पर युधिष्ठिर ने अपने भाइयों से विचार करके भगवान् श्रीकृष्ण को बुलाने के लिए दूत भेजा। दूत ने श्रीकृष्ण को महाराज युधिष्ठिर का सन्देश दिया। भीमसेन के द्वारा जरासन्ध का वध कर देने के पश्चात् राजसूय यज्ञ का आयोजन किया गया। यज्ञ में ब्राह्मणों के चरण धोने का कार्य भगवान् ने स्वयं स्वीकार किया। यज्ञ में प्रथम अर्घ्य सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति को दिया जाना था। भीष्म-पितामह के परामर्शानुसार उसके लिये भगवान् श्रीकृष्ण सर्वोपयुक्त व्यक्ति निर्धारित किये गये, इससे शिशुपाल अत्यधिक क्रुद्ध हुआ और उनके प्रति अपशब्दों का प्रयोग करने लगा। भगवान् श्रीकृष्ण उसके अपराधों को गिनते रहे और जैसे ही उसके सौ अपराध पूरे हुए, उन्होंने अपने सुदर्शनचक्र से समस्त राज-समाज के देखते-देखते उसका सिर काट दिया।

महाभारत की इस मूल कथा में अनेक परिवर्तन करके अपनी नवीन कल्पनाशक्ति से महाकवि माघ ने 20 सर्गों में इसका विस्तार कर दिया है। यथा-

1. महाभारत में नारद जी पाण्डवों की सभा में पहुँचते हैं, परन्तु 'शिशुपालवध' में वे इन्द्र का सन्देश लेकर भगवान् श्रीकृष्ण के पास आते हैं और उन्हें शिशुपाल के वध के लिये प्रेरित करते हैं।

2. दूसरे सर्ग में कवि ने भगवान् कृष्ण, बलराम और उद्धव के बीच में जाकर राजनीतिक विचार-विमर्श कराया है, वह सर्वथा नवीन योजना है।

3. तीसरे सर्ग से लेकर बारहवें सर्ग तक जो नगर, ऋतु, सूर्यास्त, चन्द्रोदय, मधुपान, सुरत, प्रभात, सेनाप्रयाण आदि का वर्णन है। यह सब कवि की स्वयं की कल्पना है।

4. तेरहवें सर्ग में भगवान् श्रीकृष्ण के इन्द्रप्रस्थ-गमन के समय पाण्डवों के द्वारा उनके स्वागत के वर्णन के प्रसंग में नर-नारियों द्वारा उन्हें देखने की उत्सुकता का अत्यन्त सुन्दर वर्णन नवीन उद्भावना है।

5. चौदहवें सर्ग में राजसूय यज्ञ के वर्णन में दार्शनिकता का विशिष्ट परिचय भी एकदम मौलिक है।

6. पन्द्रहवें से बीसवें सर्ग की कथा में महाभारत से पर्याप्त अन्तर है। महाभारत-कथा में शिशुपाल भगवान् श्रीकृष्ण को अपमानित करता है और वे उसका वध कर डालते हैं। पर 'शिशुपालवध' के कथानक में इन सर्गों में एक नवीन उद्भावना है।

पन्द्रहवें सर्ग में सर्वप्रथम श्रीकृष्ण की पूजा को देखकर और अपने को इससे अपमानित समझकर शिशुपाल राजसभा से उठकर चला जाता है और युधिष्ठिर, भीष्म तथा श्रीकृष्ण की निन्दा करता है। सोलहवें सर्ग में पाण्डवों और शिशुपाल के शान्तिमय वचनों को वह अस्वीकार कर श्रीकृष्ण के पास अपना दर्पपूर्ण सन्देश भेजता है। सत्रहवें सर्ग में शिशुपाल के दूत के सन्देश को सुनकर अति क्षुब्ध होकर यदुवंशी युद्ध के लिये प्रस्तुत होते हैं। वे उनके आह्वान के उत्तर में युद्ध के लिये तैयार हो जाते हैं। अट्ठारहवें सर्ग में दोनों पक्षों की सेनाओं के एकत्र होने पर दोनों ओर से तुमुल संग्राम आरम्भ हो जाता है। उन्नीसवें सर्ग में श्रीकृष्ण और शिशुपाल के बीच युद्ध होता है और बीसवें सर्ग में श्रीकृष्ण द्वारा शिशुपाल का वध कर दिया जाता है। यह सब इन सर्गों का कथानक माघ का अपना है- महाभारत की कथा से इसका पार्थक्य है।

**काव्य के सम्बन्ध में माघ की धारणा**-

शिशुपालवध महाकाव्य के दूसरे सर्ग में उद्धव जी श्रीकृष्ण को महाराज युधिष्ठिर के यज्ञ में जाने की मंत्रणा देते हैं। उनके द्वारा राजनीतिविषयक वर्णनक्रम में चार श्लोकों (74, 83, 86, 87) में माघ

का काव्यसम्बन्धी मत स्पष्ट हो जाता है। जिस प्रकार सत्कवि[1] शब्द और अर्थ दोनों की अपेक्षा करता है उसी प्रकार विद्वान् भी भाग्य और पुरुषार्थ दोनों की अपेक्षा करता है। इससे स्पष्ट है कि माघ कविता के लिए शब्द और अर्थ दोनों की महत्ता स्वीकार करते है। 87वें श्लोक[2] द्वारा वे काव्य में रस की अवस्थिति आवश्यक मानते हैं। 83वें श्लोक[3] में वे कहते हैं कि रसभावादि के ज्ञाता कवि केवल ओज या प्रसाद गुण का ही अनुसरण नहीं करते किन्तु दोनों की यथावसर अपेक्षा रखते हैं। 74वें श्लोक[4] के अनुसार माघ का कथन है कि कुशल कवि कोमल कान्त पदावली को भी अर्थगौरवयुक्त प्रसाद, माधुर्य, ओज आदि गुणों से निर्मित वैचित्र्ययुक्त बना देते हैं। इन विवेचनों से स्पष्ट है कि महाकवि माघ काव्य में रस, गुण, अलंकार आदि सभी को आवश्यक मानते हैं। उनकी दृष्टि में रस, गुण, अलंकार आदि सभी को आवश्यक मानते हैं। उनकी दृष्टि में सरस, गुणयुक्त, दोषरहित तथा सालंकार रचना ही काव्य है।

**माघ का पाण्डित्य-**

सर्वतन्त्र स्वतन्त्र पाण्डित्य लेकर उपस्थित होते हैं। व्याकरण, राजनीति, सांख्य, योग, बौद्ध, दर्शन, वेद-पुराण, अलंकारशास्त्र, कामशास्त्र, संगीत और यही नहीं अश्वविद्या एवं हस्तविद्या के भी अच्छे जानकार है। इतनी विविध का पाण्डित्य किसी अन्य संस्कृत कवि में नहीं मिलता। कतिपय उद्धरणों से उनके व्यापक पाण्डित्य का परिचय निम्न प्रकार दिया जा सकता है-

---

1. नालम्बते दैष्टिकतां न निषीदति पौरुषे।
   शब्दार्थौ सत्कविरिव द्वयं विद्वानपेक्षते॥ शिशु. 2/87
2. स्थायिनोऽर्थे प्रवर्तन्ते भावाः संचारिणो यथा।
   रसस्यैकस्य भूयासस्तथानेतुर्महीभुजः॥ वही, 2/87
3. नैकमोजः प्रसादो वा रसभावविदः कवेः। वही, 2/83
4. म्रदीयसीमपि घनामनल्पगुणकल्पिताम्।
   प्रसारयन्ति कुशलाश्चित्रां वाचं पटीमिव॥ वही, 2/74

**वेद-विषयक ज्ञान**

माघ वैदिक विज्ञान में सिद्धहस्त थे। चतुर्दश सर्ग में उन्होंने यज्ञ के प्रसंग में वैदिक काण्ड का बहुत ही शास्त्रसम्मत निरूपण किया है। वैदिक पारिभाषिक शब्दावली अनायास ही श्लोकों में प्रयुक्त चली गई है। जैसे-

**शाब्दितामनपशब्दमुच्चकैर्वाक्यलक्षणविदोऽनुवाक्यया।**
**याज्यया यजनकर्मिणोऽत्यजन्द्रव्यजातमपदिश्य देवताम्।।**
**सप्तभेदकरकल्पितस्वरं साम सामविदसमुज्जगौ।**[1]
**तत्र सुनृतगिरश्च सूरयः पुण्यमृग्यजुषमध्यगीषत।।**

**पुराण-**

भाव ने पुराणों का प्रगाढ़ अनुशीलन किया था। उन्होंने ऐसे अनेक शब्दों का प्रयोग किया है, जो किसी न किसी पौराणिक आख्यान की ओर संकेत करते हैं। उदाहरणार्थ - नारद के लिए 'चिरन्तनो मुनिः', 'हिरण्यगर्भाभू, बलराम के लिए 'सरिपाणि', 'रेवतीजानि', 'मुसलपाणिं', सूर्य के लिए 'अनुरुंसारथि', श्रीकृष्ण के लिए 'मुरद्विष्' आदि शब्दों का प्रयोग है।

**व्याकरण-**

माघ बहुत बड़े वैयाकरण थे। उन्होंने उपमा देते हुए कहा है कि शिशुपाल की आज्ञा यद्यपि भले ही छोटी हो, परन्तु उसका कोई प्रतिरोध नहीं कर सकता, जैसे व्याकरणशास्त्र की परिभाषाएँ संक्षिप्त होने पर सर्वत्र प्रतिष्ठित और मान्य है-

**परितः प्रमिताक्षरापि सर्वं**
**विषयं व्याप्तवती गता प्रतिष्ठाम्।**
**न खलु प्रतिहन्यते कुतश्चित्-**
**परिभाषेव गरीयसी यदाज्ञा।।**[2]

---

1. शिशु. 14/20, 21
2. वही, 16/80

चतुर्दश सर्ग में श्रीकृष्ण के महत्त्व को बतलाते हुए कवि ने धातुओं के कर्तृवाच्य और कर्मवाच्यत्व का सुन्दर ढंग से वर्णन किया है। भगवान् श्रीकृष्ण के सम्बन्ध में सृज् विसर्गे, संहारार्थक सम्+हृ धातु, तथा शासु अनुशिष्टों धातु कर्तृवाच्य में ही प्रयुक्त होती है। अर्थात् 'हरी सृजति, हरिः संहरति, हरिः शास्ति' इस प्रकार से तीनों धातु श्रीकृष्ण के सम्बन्ध में सदा कर्तृवाच्य प्रत्यय से ही संयुक्त रहती हैं, कभी कर्मवाचक प्रत्यय के साथ प्रयुक्त नहीं होती अर्थात् 'हरीं सृजति, हरिं संहरति, हरिं शास्ति' ऐसा प्रयोग कभी नहीं होता, क्योंकि श्रीकृष्ण ही जगत्कर्ता, जगन्नियन्ता और जगत्संहर्ता है। परन्तु 'ष्टुञ् स्तुतौ' धातु सदा इसके विपरीत प्रयुक्त होती है। अर्थात् श्रीकृष्ण के सम्बन्ध में वह कर्मवाच्य में कर्मवाचक प्रत्ययों से ही युक्त होती है। अर्थात् 'हरिं स्तौति' यही प्रयोग होता है, 'हरिः स्तौति' नहीं, क्योंकि सभी सुरासुर भगवान् की स्तुति करते हैं, भगवान् किसी की स्तुति नहीं करते-

**केवलं दधति कर्तृवाचिनः प्रत्ययानिह न जातु कर्मणि।**
**धातवः सृजतिसंहृशास्तयः स्तौतिरत्र विपरीतकारकः॥**[1]

'पा रक्षणे' और 'पा पाने' धातुओं के क्रमशः रक्षा करना और पीना अर्थ है। कवि ने बतलाया है कि भगवान् श्रीकृष्ण का बाण एक ही साथ, एक ही काल में दोनों धातुओं का अर्थ प्रकट करता है। वह जगत् की तो रक्षा करता है और शत्रुओं के रक्त का पान भी करता है-

**उद्धतान्द्विषतस्तस्य निघ्नतो द्वितयं ययुः।**
**पानार्थे रुधिरं धातौ रक्षार्थे भुवनं शराः॥**[2]

**साहित्य-**

महाकवि माघ भट्टि की भाँति केवल वैयाकरण ही नहीं थे, अपितु काव्यशास्त्र के सिद्धान्तों के पूर्ण ज्ञाता थे। 'शब्दार्थौ काव्यम्' इस सिद्धान्त का उन्होंने निर्देश किया है। रस और भाव-वेत्ता कवि के लिए

1. शिशु. 14/66
2. वही, 19/103

ओज या प्रसाद में ही रचना करना अनिवार्य नहीं है। स्थायी भाव के लिए संचारी भाव उपकारक होते हैं। इस सिद्धान्त का भी उन्होंने संकेत किया है।

उन्होंने न केवल श्रव्य-काव्य अपितु नाट्यशास्त्र विषयक सिद्धान्तों का भी बड़ी सुन्दरता से उल्लेख किया है। मुख में मोटे और क्रमशः पुच्छ भाग में पतले होते हुए सर्प मुख-सन्धि में विस्तृत एवं प्रतिमुख आदि सन्धियों में गोपुच्छ के समान संक्षिप्त होते हुए, नाट्यशास्त्र के ज्ञाता कवियों में रचे गये काव्य में ग्रथित अंकों वाले नाटकों के विस्तार के समान सुशोभित हुए-

**दधतस्तनिमानमानुपूर्व्या बभुरक्षिश्रवसो मुखे विशालाः।**
**भरतज्ञकविप्रणीतकाव्यग्रथिताङ्का इव नाटकप्रपञ्चाः॥**[1]

**संगीत**-

महाकवि माघ संगीतशास्त्र के भी पण्डित थे। गायन, वाद्य, ताल, लय, स्वर आदि संगीत के पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग उनके संगीतशास्त्र के सूक्ष्म ज्ञान का परिचायक है। उन्होंने अनेक स्थलों पर संगीतशास्त्र के सिद्धान्तों का दिग्दर्शन किया है। जैसे-

**रणद्भिराघट्टनया नभस्वतः**
**पृथग्विभिन्नश्रुतिमण्डलैः स्वरैः।**
**स्फुटीभवद्ग्रामविशेषमूर्छना-**
**मवेक्षमाणं महतीं मुहुर्मुहुः॥**[2]

उन्होंने किस समय कौन-सा स्वर उपयुक्त रहता है- इसका संकेत भी किया है। प्रातःकाल में पंचम, षड्ज तथा ऋषभ से गायन का निषेध किया गया है। अतः बन्दियों ने भगवान् श्रीकृष्ण को इनसे रहित संगीत द्वारा जगाने का उपक्रम किया-

---

1. शिशु. 20/44
2. वही, 1/10

**श्रुतिसमधिकमुच्चैः पञ्चमं पीडयन्तः**
**सततमृषभहीनं भिन्नकीकृत्य षड्जम्।**
**प्रणिजगदुरकाकुश्रावकस्निग्धकण्ठाः**
**परिणतिमिति रात्रेर्मागधा माधवाय।।**[1]

**राजनीति-**

माघ राजनीतिशास्त्र के प्रकाण्ड पण्डित थे। सम्पूर्ण द्वितीय सर्ग में राजनीति का ही वर्णन है। षड्गुणा, शक्तित्रय, अंगपंचम, विजिगीषु द्वादशः, राजमण्डल आदि पारिभाषिक शब्दों का उन्होंने बहुत सावधानी से प्रयोग किया है। नीति का चरम लक्ष्य उन्होंने अपने उत्कर्ष एवं शत्रु की हानि को बताया है- "आत्मोदयः परज्यानिर्द्वयं नतिरितीमती।" उपकार करने वाले शत्रु के साथ ही सन्धि कर लेनी चाहिए, किन्तु अपकार करने वाले मित्र के साथ नहीं- **उपकर्त्रारिणा सन्धिर्न मित्रेणापकारिणा। उपकारापकारौ हि लक्ष्यं लक्षणमेतयोः।** जो व्यक्ति अमर्षी शत्रु से वैर करके उदासीन हो जाता है, वह घास के ढ़ेर में चिनगारी फैंक कर हवा की ओर मुँह करके सोता है। अपमान सहकर भी जिसमें कोई प्रतिक्रिया नहीं होती ऐसे व्यक्ति से तो वह धूल ही अच्छी है, जो ठोकर मारने पर प्रतीकार की बुद्धि से सिर पर चढ़ जाती है-

**पादाहतं यदुत्थाय मूर्धानमधिरोहति।**
**स्वस्थादेवापमानेऽपि देहिनस्तद्वरं रजः।**[2]

इसी प्रकार अनेक उदाहरण उनके काव्य में द्रष्टव्य हैं।

**आयुर्वेद-**

महाकवि माघ आयुर्वेद के भी ज्ञाता थे। उन्होंने आयुर्वेद शास्त्र के विभिन्न अंगों का अध्ययन किया था। कहीं-कहीं तो वे स्वयं को एक वैद्य के रूप में प्रस्तुत करते हैं-

---

1. शिशु. 11/1
2. वही, 2/46

**स्वेद्यमामज्वरं प्राज्ञः कोऽम्भसा परिषिञ्चति?**

कौन ऐसा व्यक्ति होगा, जो पसीने से शान्त होने वाले आमज्वर को जल से सींचेगा? तात्पर्य यह है कि ज्वर पसीने से शान्त होता है। यदि उसे जल से स्नान करा दिया जाय तो वह और बढ़ जाता है।

राजयक्ष्मा रोग को रोगों का राजा बताते हुए कवि कहते हैं-

**राजयक्ष्मेव रोगाणां समूहः स महीभृताम्।**

इसके अतिरिक्त रसयन सेवन की विधि, व्यायाम की उपयोगिता, किस रोग में उपवास करना अभीष्ट है? आदि विषयों का भी यथास्थान विवेचन किया गया है।

**ज्योतिषशास्त्र-**

अन्यान्य शास्त्रों की भाँति ज्योतिष पर भी महाकवि माघ का पर्याप्त अधिकार था। इस शास्त्र के अनुसार नक्षत्रों में पुष्य नक्षत्र को सर्वसिद्धिकारक माना गया है। उसी का उल्लेख करने के लिए कवि ने 'पुष्यरथ' की उपमा 'पुष्य नक्षत्र' से दी है। पुष्प नक्षत्र की ही भाँति पुष्यरथ सर्व-सिद्धि कारक है। उन्होंने प्रथम सर्ग में ज्योतिषशास्त्र सम्मत केतु के उदय का दुष्परिणाम बताया है-

**व्योम्नीव भ्रकुटिच्छलेन वदने केतुश्चकारास्पदम्।**[1]

**पशुविज्ञान-**

माघ को पशुविद्या का भी ज्ञान था। अतएव उन्होंने हाथी, घोड़े, ऊँट, खच्चर आदि पशुओं की प्रकृति का बहुत सुन्दर चित्रण किया है। सत्रहवें सर्ग में उन्होंने गजविद्या का विस्तार से वर्णन किया है। हाथी दोनों नेत्र, दोनों कपोल, सूंड, मलेन्द्रिय और मूत्रेन्द्रि इन सात स्थानों से मद गिराते हैं। हाथियों को वश में करने के उपाय तथा गम्भीर वेदी गज का लक्षण भी उन्होंने अपने काव्य में किया है-

**प्रत्यन्यनागं चलितस्त्वरावता निरस्य कुण्ठं दधतान्यमङ्कुशम्।**
**मूर्धानमूर्ध्वायतदन्तमण्डलं धुवन्नरोधि द्विरदो निषादिना।।**[2]

---

1. शिशु. 1/75
2. वही, 12/12

शालिहोज के अनुसार माघ को अश्वविद्या का सूक्ष्म ज्ञान था। उनके अनुसार घोड़े को उत्तम, मध्यम और अधम आदि तीनों प्रकार के चाबुकों से चलाया जाता था। घोड़े तदनुसार गति से ही गमन करते थे, वे क्रमशः तेज, मध्य और मन्दगति चलते थे-

**तेजोनिरोधसमतावहितेन यन्त्रा**
**सम्यक्कशात्रयविचारवता नियुक्तः।**
**आरट्टजश्चटुलनिष्ठुरपातमुच्चै-**
**श्चित्रं चकार पदमर्धपुलायितेन॥**[1]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि माघ का पाण्डित्य सर्वातिशायी था।

**सन्दर्भ ग्रन्थ-**


1. शिशुपालवधम्, हिन्दी व्याख्याकार- डॉ. केशवराव मुसलगाँवकर, प्रकाशक- चौखम्बा संस्कृत भवन, वाराणसी, संस्करण-द्वितीय, 2013
2. मनुस्मृति, व्याख्याकार- स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती, प्रकाशक-पुस्तक मन्दिर, मथुरा।
3. 108 उपनिषद्, पं. श्रीराम शर्मा आचार्य, प्रकाशक- संस्कृति संस्थान, बरेली, 2007
4. प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, जयशंकर मिश्र, प्रकाशक- बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना, षष्ठ संस्करण, 1999
5. प्राचीन भारतीय शासन पद्धति, प्रो. अनन्त सदाशिव अलतेकर, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, संस्करण, 2001
6. महाभारतकालीन समाज, सुखमय भट्टाचार्य, अनुवादिका, पुष्पा जैन, प्रकाशक लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, 1966


1. शिशु. 5/10

7. नीतिशास्त्र का सर्वेक्षण–संगमलाल पाण्डेय, प्रकाशक–सेण्ट्रल पब्लिशिंग हाऊस, सप्तम संशोधित संस्करण।

8. भारत का सामाजिक सांस्कृतिक और आर्थिक इतिहास–पी.एन. चोपड़ा, बी.एन. पुरी, एम.एन. दास, प्रकाशक–मैकमिलन इण्डिया लिमिटेड, दिल्ली, 1975

9. संस्कृत के चार अध्याय– रामधारी सिंह 'दिनकर', प्रकाशक–राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, 1956।

# ‘शिशुपालवध’ महाकाव्य में प्राकृतिक वर्णन कौशल

- श्री दुर्गा उपाध्याय*

संस्कृत वाङ्मय की अनेक विद्याओं में संस्कृत काव्यशास्त्र का विशिष्ट स्थान है। कवि का कर्म काव्य है, सामान्य रूप में हम कह सकते हैं कि सार्थक शब्द समूह के द्वारा किसी विषय का सरलता, स्पष्टा एवं सुन्दरतापूर्वक चित्रण करना ही काव्य है। उसी काव्य के गूढ़ तत्वों को प्रतिपादित करने वाला अथवा काव्यसौन्दर्य की परख करने वाला ग्रन्थ काव्यशास्त्र है। काव्य की सभी विधाओं में वर्णन दृष्टिगोचर होता है, परन्तु महाकाव्य में वर्णन विशेष अनिवार्य तत्व है। जिसका उल्लेख अनेक साहित्याचार्यो ने किया है। किसी वस्तु के रंग-रूप आकार-प्रकार आदि की यथातथ्य अभिव्यक्ति ‘वर्णन’ है और उसी की रमणीय अभिव्यक्ति वर्णन कौशल है।

संस्कृत साहित्य में बृहत्यत्री एवं पञ्चमहाकाव्यों में विशिष्ट स्थान रखने वाला एवं वीर रस प्रधान ‘शिशुपालवध’ महाकाव्य अलंकार शैली प्रधान एवं कलापक्षीय प्रकर्षता के समावेश से युक्त महाकाव्य है। कलापक्ष के मूर्धन्य एवं मर्मज्ञ विद्वान् महाकवि माघ ने प्राकृतिक वर्णनों को अत्यन्त कृत्रिमता तथा अद्धुद् कलावादिता के द्वारा अपने महाकाव्य में स्थान दिया है।

किसी भी वस्तु के रंग-रूप आकार प्रकार का यथा तथ्य अभिव्यक्ति ‘वर्णन’ है उसी की सुन्दर अभिव्यक्ति वर्णन कौशल,

---

* पूर्व शोधच्छात्र, एस.एस. जीना परिसर अलमोड़ा, कु.वि.वि. नैनीताल, उत्तराखण्ड- 262532

प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन में अनेक प्रकार के दृश्यों एवं वस्तुओं को देखता है। मनोरम दृश्यों को देखकर साधारण मानव का हृदय भी मचलता है, फिर भावुकहृदय कवि का कहना ही क्या? साधारण मानव की यह सौन्दर्यानुभूति सीमित रहती है, कुछ मानव अनुभूति तो करते हैं लेकिन उसे अभिव्यक्त करना वे नहीं जानते, इसके विपरीत काव्य में कवि की लेखनी तथा चित्र में चित्रकार की तूलिया वस्तु के सौन्दर्य को भावुकता तथा कल्पना के मनोरम सामञ्जस्य से कलात्मक रूप में प्रतिबिम्बित करती है, कवि वस्तु अथवा दृश्य के सौन्दर्याभिव्यक्ति के साथ ही उसके क्रिया कलापों को भी काव्य में सरस शब्दों के माध्यम से प्रस्तुत करता है, "किसी भी वस्तु का वर्णन प्रस्तुत करने में कवि का लक्ष्य बिम्ब ग्रहण कराने से होता है, बिम्ब ग्रहण कराने का तात्पर्य संश्लिष्ट चित्रण द्वारा पाठक अथवा श्रोता को वस्तु स्थिति का मार्मिक प्रत्यक्षीकरण कराना है, न कि किसी वस्तु का क्रमवद्ध वर्णन करना"[1]

काव्य की सभी विधाओं में दृश्य तथा श्रव्य में वर्णन दृष्टिगोचर होता है, महाकाव्य में वर्णन विशेष अनिवार्य तत्व है। जिसका वर्णन विश्वनाथ, भामह, दण्डी आदि साहित्याचार्यों ने महाकाव्य के स्वरूप निर्धारण में किया है, यद्यपि वर्ण्य वस्तुओं की कोई सीमा नहीं है तथापि महाकाव्य में उद्यान, वन, पर्वत, समुद्र, सूर्योदय, चन्द्रोदय, षड्ऋतु प्रातः, मध्याह्न, सन्ध्या, दिवस, वासर, नगर, देश, दीप इत्यादि का वर्णन आवश्यक है एवं कवि का निरक्षण जितना सूक्ष्म होगा वर्णन उतना ही सजीव एवं स्वाभविक होगा, काव्य में वर्णन के सरस रोचक एवं कलात्मक होना भी आवश्यक है। दण्डी ने काव्य में वर्णनों में मौलिकता की अपेक्षा स्वाभाविकता को अधिक महत्त्व दिया है। काव्यप्रकाश में आचार्य मम्मट ने "लोकोत्तरवर्णनानिपुणकविकर्म काव्यम्" कहकर काव्य में वर्णनों के महत्त्व को प्रतिपादित किया है।

---

1. रामेश्वर लाल कविता में प्रकृति चित्रण, पृष्ठ संख्या 18

**प्राकृतिक वर्णन-**

प्रकृति शब्द 'प्र' उपसर्ग पूर्वक कृ धातु से क्तिन् प्रत्यय के योग से बना है, सरल शब्दों में यह कहा जा सकता है कि सृष्टि के मध्य जिस किसी भी वस्तु के निर्माण में मानव का हाथ नहीं है। सामान्यतः प्राकृतिक शब्द दो अर्थो में व्यवहृत किया जाता है- प्रकृति अर्थात् मानव स्वभाव इसे अन्तः प्रकृति नाम से अभिहित किया जाता है। मानव हृदय में विद्यमान दयालुता, उग्रता, सौम्यता, विनम्रता, क्षमाशीलता, मधुरता इत्यादि सात्विक गुण, क्रूरता आता स्वार्थ शोषण की भावना इत्यादि तामसिक गुण अन्तः प्रकृति के भिन्न रूप हैं। इस पृथ्वी पर अनेक ऐसी विशाल भव्य वस्तुऐं दृष्टिगत होती हैं जिनका निर्माण मनुष्य द्वारा सम्भव नहीं है। सूर्य, चन्द्र, नदी पर्वत समुद्र पशु पक्षी आदि इनकी रचना ईश्वर द्वारा ही सम्भव है, प्रकृति का मानव से घनिष्ट संबन्ध है, प्रकृति मानव के समक्ष विभिन्न रूपों को प्रदर्शित करती है।

कभी सुख-दुःख में साथ देनेवाली स्नेहमयी माता के समान प्रतीत होती है तो कभी निश्छल प्यार प्रदान करने वाली पत्नी के समान दिखाई देती है। कभी पुष्प-वृक्षादि के माध्यम से संसार की क्षण भंगुरता का समाज को उपदेश देती है। प्रत्येक प्रातःकाल मानव के हृदय में नयी आशा का संचार होता है, प्रातःकाल मनुष्य सूर्य के उदय होते ही अपनी नयी दिनचयर्या की शुरुआत करता है, उसके हृदय में नयी आशाओं का संचार होता है। चन्द्रमा रात को उदित होकर शालीनता एवं अपने कर्म में निरन्तर लगे रहने की प्रेरणा देता है, विपत्ती के समय में मनुष्य सूर्य के उदय तथा अस्त होने की प्रक्रिया को देखकर धैर्यधारण करता है। जिस प्रकार दिन में सूर्य रात्री में चन्द्रमा आता है, उसी प्रकार प्रत्येक दुःख के बाद सुख की आशा लेकर मनुष्य निरन्तर अपने कार्य में लगा रहता है।

प्रकृति और मानव के सम्बन्ध के विषय में महादेवी वर्मा ने लिखा है-

"दृश्य प्रकृति मानव जीवन को अथ से इति तक चक्रवात की

तरह घेरे रखती है। प्रकृति के विविध कोमल सुन्दर स्वरूप व्यक्त रहस्यमय रूपों के आकर्षण ने मानव की बुद्धि और हृदय को कितना परिष्कार और विस्तार दिया है, इसका लेखा-जोखा करने पर मनुष्य प्रकृति का सबसे अधिक ऋणी है। वस्तुतः संस्कार क्रम में मानव जाती का भाव-जगत ही नहीं उसके चिन्तन की दिशाएं भी प्रकृति से विविध रूपों तक परिचय द्वारा तथा उससे उत्पन्न अनुभूतियों से प्रभावित हैं। यों तो धर्म, दर्शन साहित्य और कला इन सभी के प्रकृति चिन्तन को स्थान मिला है, किन्तु काव्यों में इसे सर्वाधिक महत्त्व प्राप्त हुआ है। इसका मुख्य कारण यह है कि काव्य का रचयिता कवि मानव की अपेक्षा अधिक संवेदनशील होता है और वह प्रकृति का विभिन्न दृश्यों से बहुत शीघ्र और अधिक अभिभूत होता है।"

आधुनिक युग में मानव को शहरों में निवास करना अधिक रुचिकर लगता है, शहरों में रेडियों, सिनेमा, टेलीविजन, इण्टरनैट उपलब्ध हैं। ये मनोरजन के अनेकों साधन मानव को उपलब्ध तो हो जाते हैं, परन्तु यहाँ पर प्रकृति की नैसर्गिक आभा का अभाव है। शहरों में मनुष्य को इन सभी प्रकार के साधनों के उपलब्ध होने पर भी प्रकृति की गोद की रहते हुए भी सुखानुभूति नहीं होती, वह शहरों में भी प्रकृति की इस नैसर्गिक आभा को पाने के लिए गुलदस्ते सजाना, पशु पक्षीओं को पालना गमलों, बगीचों में पुष्पों आदि को लगाना थकान दूर करने के लिए दूब पर लेटना, मन बहलाने के लिए उद्यानों में जाना, यह सब प्रकार के कार्य मानव के प्रकृति प्रेमी हृदय को प्रदर्शित करते हैं। इसके विपरीत गाँवों में पूरे दिन भर अर्थात् सुदीर्घ दिवस में अथक परिश्रम से क्लान्त श्रमी सांयकालीन शीतल वायु के स्पर्श से थकान को भूलकर आनन्दित हो उठता है, स्वास्थ्य वातावरण के साथ में स्वस्थ जीवन यापन करता है। इस प्रकार प्रकृति का मानव जीवन से घनिष्ठ सम्बन्ध है।

कवि तथा काव्य का सम्बन्ध प्रकृति का काव्य से विशेष सम्बन्ध है, क्योंकि चरम साधन हृदयाह्लादकता अर्थात् आनन्द की प्राप्ति कराता है, कवि काव्य में अन्तः प्रकृति तथा बाह्य प्रकृति का सामञ्जस्य

स्थापित करता है, कवि बाह्य प्रकृति से विश्वप्रेम तथा मानव प्रेम की भावना को ग्रहण करके काव्य के माध्यम से अन्तः प्रकृति की विकृतियों को दूर करने का प्रयास करता है। कवि या मानव के हृदय में प्रकृति का चिरस्थायी प्रभाव पड़ता है। रंगिबिरंगे फूल-फल किसे आकर्षित नहीं करते नदियों की चंचल लहरें, वर्षा काल में मयूरों का नृत्य सभी को उल्लासित करता है। सावन-भादो के काले बादल वसन्त ऋतु की रीतिमा को देखकर स्वाभाविक हृदय आनन्दित हो उठता है, परन्तु कवि की वाणी काव्य में अपनी सरस भाषा के माध्यम से प्रकृति की मनोहर तथा रमणीय सुषमा को प्रकट भी कर देती है।

वैदिक काल से लेकर आधुनिक काल तक सभी कवियों ने अपने काव्य में प्रकृति की नैसर्गिक सुषमा का मनोरम चित्रण किया है। ऋग्वेद के इन्द्र वरुण पर्जन्य, सविता, उषा आदि सूक्त इसके उदाहरण हैं। वहीं दूसरी ओर कालीदास, भवभूति, माघ, बाण, श्रीहर्ष आदि महाकवियों ने अपने काव्यों में प्रकृति की नैसर्गिक सुषमा का मनोरम चित्रण किया है। माघ का प्रकृति वर्णन कौशल अद्‌भुत है। माघ रचित 'शिशुपालवध' महाकाव्य के लक्षणों को सर्वाधिक ग्रहण करने वाला महाकाव्य है। कहा भी गया है "काव्येषु माघः कविकालिदासः" अर्थात् कवि की दृष्टि से कालिदास श्रेष्ठ हैं, किन्तु काव्य के लेखन में माघ उत्कृष्ट हैं। उन्होंने कथानक की रोचकता में वृद्धि करने के लिए प्रकृति की सरसता तथा सुन्दरता का मनोरम चित्रण किया है। शिशुपालवध के यद्यपि सभी वर्णन उत्कृष्ट हैं, किन्तु चतुर्थ सर्ग में पर्वत, षष्ठ सर्ग में आवर्जक है। इसे अतिरिक्त महाकाव्य में समुद्र, नदी, सूर्य, चन्द्र इत्यादि का भी वर्णन मिलता है। महाकाव्य में वर्णित दृष्यों तथा वस्तुओं का विवेचन इस प्रकार है-

**पर्वत वर्णन-**

आकाश को स्पर्श करने को आतुर ऊंची ऊंची पर्वत श्रेणियाँ अपने में अनोखा आकर्षण रखती हैं, प्रकृति का जैसा मनमोहक तथा निश्छल सौन्दर्य पर्वतों के अंचलो में छिपा है वैसा अन्यत्र दुर्लभ है।

अतुल सौन्दर्य राशी को अपने में समाहित किये हुए ये पर्वत सजग प्रहरी के समान निश्चल खड़े रहते हैं, पर्वतों की गहन कन्दराओं में भयावहता के दर्शन होते हैं तो झरनों की ध्वनि मधुर संगीत उत्पन्न करती है, बालसूर्य की किरणें सर्वप्रथम पर्वतों की गोद में क्रीडा करती हैं। सौन्दर्य प्रेम कवि पर्वतों की सुन्दरता को चित्रित करने में सर्वत्र ही आगे रहें हैं। महाकवि माघ ने शिशुपालवध महाकाव्य में पर्वतीय सौन्दर्य का ऐसा अद्‌भुत वर्णन किया है जिसके कारण माघ जगत् प्रसिद्ध हैं। पर्वत वर्णन महाकाव्य में उस स्थल में वर्णित जब श्रीकृष्ण अपनी राजतरङ्गिणी सेना के साथ प्रस्थान कर रहे होते हैं तब वह मार्ग में विविध प्रकार के धातुओं से युक्त बृहदारकार वाली पाषाण चट्टानों के ऊपर चारों ओर से उठते हुए मेघों से सूर्य के मार्ग को रोकने के लिए पुनः तत्पर ऐसा विशाल पर्वत को देखते हैं। उस भव्य विशाल पर्वत को देखकर उत्कण्ठित श्रीकृष्ण का सारथी दारुक है उस रैवतक पर्वत का वर्णन करते हुऐ कहता है।

बहुमूल्य रत्नों से भरे हुए इस पर्वत के शिखर इतने ऊंचे हैं कि वे सूर्य के समीपवर्ती दिखाई देते हैं–

**उदयति विततोर्ध्वरश्मिरज्जाव-**
**हिमरुचौ हिमधाम्नि याति चास्तम्।**
**वहति गिरिरयं विलम्बिघण्टाद्वय-**
**परिवारितवारणेन्द्रलीलाम्।।**[1]

अर्थात् रैवतक पर्वत पर सूर्योदय का दृश्य का वर्णन करता हुआ कहता है लम्बी लम्बी और ऊपर की ओर रस्सी के समान फैली हुई किरणों वाले सूर्य के उदय एवं चन्द्रमा के अस्त होने के समय यह पर्वत लटकने वाले दो घटाओं से युक्त (स्वर्ण एवं रजत) गजराज के सदृश सुशोभित हो रहा है।

अन्यत्र श्रीकृष्ण से पर्वत की समानता करते हुए दारुक कहता है कि दूर्वाओं से आच्छादित स्वर्णमयी भूमिवाला यह पर्वत हरताल के

1. शिशुपालवध, 4/20

सदृश पीतवर्ण के नवीन वस्त्रवाले आपकी तरह शोभा दे रहा है। कठोर होने पर भी पर्वत की कोमलता का वर्णन कवि ने इस प्रकार किया है-

**अपशङ्कमङ्कपरिवर्तनोचिता-**
**श्चलिताः पुरः पतिमुपेतुमात्मजाः।**
**अनुरोदितीव करुणेन पत्त्रिणां**
**विरूतेन वत्सलतयैष निम्नगाः॥**[1]

अर्थात् रौवतक पर्वत से निकलकर समुद्र तक जाने वाले नदियाँ मानो पिता की गोद में निःशङ्कक्रीडा करने वाली पुत्रीयाँ अपने पति के घर जा रही है पिता (रैवतक) पक्षियों के कलरव के माध्यम से रो रहे हैं। पिता का हृदय पुत्री को पतिघर भेजते समय पिघल ही जाया करता है वह चाहे कितना ही कठोर क्यों न हो। अन्यत्र रैवतक पर्वत का भोग-भूमि के अतिरिक्त मोक्ष भूमि के रूप में भी वर्णन किया है। यथा-

**मैत्र्यादिचित्तपरिकर्मविदो विधाय**
**क्लेशप्रहाणमिह लब्धसबीजयोगाः।**
**ख्यातिं च सत्त्वपुरुषान्यतयाधिगम्य**
**वाञ्छन्ति तामपि समाधिभृतो निरोद्धुम्॥**[2]

अर्थात् जहाँ एक ओर यह पर्वतीय प्रदेश भोगभूमि है वहीं दूसरी ओर समाधि लगाए हुए सिद्ध पुरुषों का निवास स्थान होने से यह सिद्ध भूमि भी है। इस प्रकार कवि ने पर्वत की सुषमा का वर्णन करते हुए उसकी श्रेष्ठता तथा गरिमा का चतुर्थ सर्ग में भव्य वर्णन किया है।

**ऋतु वर्णन-**

ऋतु वर्णन काव्य को रमणीयता प्रदान करता है, रसों को उदीप्त करने के लिये ऋतु वर्णन अपेक्षित होता है। पृथ्वी नित्य नवीनता को धारण करती है, कभी रंग बिरंगे पुष्पों का परिधान पहन कर नव वधू के समान रमणीय तथा मनोहर प्रतीत होती है तो कभी सूर्य के तीव्र ताप

1. शिशुपालवध, 4/47
2. तदेव 4/55

द्वारा संतप्त पथिक तथा पशु-पक्षी शीतल छाया का आश्रय लेते हैं। कभी वसुन्धरा नवीन दुर्वांकुरों से व्याप्त हो जाती है, कभी वातावरण सुहावना तथा मनमोहक हो जाता है तो कभी नदियाँ तीव्र वेग से प्रवाहित होती हैं, चन्द्रमा की निर्मल चांदनी के प्रसार वाला तारांकित स्वच्छ नीलाकाश अपूर्व शोभा को धारण करके सबके मनों को प्रसन्न करता है तो कभी सरोवरों में कमल आदि पुष्प मुरझा जाते हैं। हिमाच्छादित पर्वतशिखर किसके मन की शोभा किसको प्रसन्नता नहीं करती, इस प्रकार क्रमशः ग्रीष्म, वसन्त, वर्षा, शरद, हेमन्त तथा शिशिर षड्ऋतुओं का क्रम चलता है। षड्ऋतु वर्णन को लक्षणकर्ताओं ने महाकाव्य के लिए आवश्यक बताया है। शिशुपालवध महाकाव्य में श्रीकृष्ण भगवान् की रैवतक पर्वत पर रुकने की इच्छा जानकर उनकी सेवा के लिए षड्ऋतुओं का एक साथ वहां प्रादुर्भाव हुआ काव्य के आधार पर ऋतु वर्णन प्रस्तुत है।

'वसन्तऋतु के आगमन पर विभिन्न वृक्षों तथा लताओं ने नवपल्लवों से सुसज्जित होकर सुरभित पुष्पों को धारण कर लिया, शीतल मन्द और सुवासित समीर बहने लगता है। वसन्त काल में मधुकर गुञ्जन का वर्णन कवि ने इस प्रकार किया है-'

**मधुरया मधुवोधितमाधवी मधुसमृद्धिसमेधितमेधया।**
**मधुकराङ्गनया मुहुरुन्मद ध्वनिभृता निभृताक्षरमुज्जगे।।**[1]

वसन्त ऋतु के वर्णन के पश्चात् कवि ग्रीष्म ऋतु का वर्णन करते हुए कहते हैं कि ग्रीष्म ऋतु के आने पर शिरीष तथा नवमल्लिका के पुष्प विकसित हो उठे। अन्यत्र वर्षा ऋतु का वर्णन करते हुए कहते हैं कि "वर्षा ऋतु में चमकती हुई विद्युत का तथा गर्जन करने वाले मेघों से भी भय-भीत होती हुई कामार्ता रमणियां अपने प्रियतमों के पास जाने लगीं बादलों से बरसे हुए जल को प्राप्तकर मयूरवृन्द एकाएक आनन्द से भर गये नदियां बह निकली और भ्रमरियां सायंकाल के दीपक की भांति लालरंग के कन्दली के फलों पर भ्रमरों के साथ रमण करने लगीं" शरद का वर्णन करते हुऐ माघ एक सामान्य उक्ति भी दे देते हैं

1. शिशुपालवध, 6/20

कि समय किसी को दुर्बल या प्रबल बनाता है। शरद ऋतु में मयूर की ध्वनि कठोर हो गयी जबकि वर्षा में वही मधुर थी, हंस की ध्वनि जो वर्षा ऋतु में कर्कश रहती है अब रमणीय हो गयी है–

**समय एव करोति बलाबलं प्रणिगदन्त इतीव शरीरिणाम्।**
**शरदि हंसरवाः परुषीकृतस्वरमयूरमयूरमणीयताम्॥**[1]

हेमन्त का वर्णन करते हुए कहते हैं– "हेमन्त के आगमन पर जलाशयों का जल जम जाने के कारण कम हो गया कामी जन विविध प्रकार की सुरतक्रीडा में प्रवृत्त हो उठे" "शिशिर ऋतु के आने पर सूर्य किरणों का तेज मन्द पड़ गया, रमणियां प्रियतमों का आलिंगन कर पयोधरस्थ अपनी उष्णता को सार्थक करने लगी" इस प्रकार महाकवि माघ ने षष्ठ सर्ग में समस्त ऋतुओं का भव्य आकर्षक वर्णन करके काव्य में चार चाँद ला दिये हैं।

**प्रभातवर्णन–**

प्रभात वर्णन यह प्रभात की ही महिमा है जब मनुष्य अपने नित्य नये कार्यों को करने लगता है, एकादश सर्ग कवि माघ की काव्य कुशलता को प्रस्तुत करता है, प्रभात वर्णन का प्रयोग कृष्ण को जगाने के लिए गाये जाने प्रभातगीत के रूप में हुआ है। माघ के प्रभात वर्णन का उदाहरण द्रष्टव्य है–

**प्रहरकमपनीय स्वं निदिद्रासतोच्चैः**
**प्रतिपदमुपहूतः केनचिज्जागृहीति।**
**मुहुरविशदवर्णां निद्रया शून्यशून्यां**
**दददपि गिरियन्तर्बुध्यते नो मनुष्यः॥**[2]

अर्थात् एक पहरेदार ने अपना पहरा पूरा कर दिया है, वह अब सोना चाहता है। इसलिए दूसरे पहरेदार को जिसकी बारी आयी है उसको बार बार जगा रहा है– "उठो जागो" किन्तु दूसरा व्यक्ति नींद

1. शिशुपालवध, 6/44
2. वही, 11/4

में अस्पष्ट स्वर में उत्तर तो दे रहा है, पर भीतर से जागता नहीं था। इसी प्रकार अन्यत्र प्रभात में प्रसन्न और दुःखी होने वाले प्राकृतिक पदार्थों का वर्णन कवि ने किया है। यथा–

**कुमुदवनमपश्रि श्रीमदम्भोजषण्डं**
**त्यजति मुदमुलूकः प्रीतिमांश्चक्रवाकः।**
**उदयकहिमरश्मिर्याति शीतांशुरस्तं**
**हत-विधिलसितानां ही विचित्रो विपाकः।।**[1]

अर्थात् प्रभात होने से कुमुद-वन इस समय श्रीहीन हो गया है, कमल समूह शोभामह बन गया गचा है। उल्लू का आनन्द समाप्त हो रहा है, किन्तु चक्रवाक (अपने प्रिया के समागम से) प्रसन्न हो रहा है, सूर्य का उदय और चन्द्रमा का अस्ताचल गमन साथ साथ हो रहा है। दुष्ट (हत) विधाता की चेष्टाओं का विचित्र परिणाम है, आश्चर्य की बात है।

## समुद्रवर्णन-

मुक्ता मणि सीपी शैवान आदि के आगार गहराई वाले अथाह जलाराशी के स्वामी रत्नाकार का उल्लेख महाकाव्य के तृतीय सर्ग में है। उस समय हुआ जब श्रीकृष्ण द्वारकापुरी से प्रस्थान करते हैं, वह द्वारकापुरी समुद्र के मध्य में अपनी सुवर्णमयी चहारदीवरी की शोभा से अलंकृत थी उसका प्रतिविम्ब समुद्र के जल में स्वर्ग की छाया के तुल्य परिलक्षित हो रहा था।

## नदी वर्णन-

रमणीय धरातल की आभूषणस्वरूप पुण्य सलिल सरिताएँ काव्य में अपना विशिष्ट स्थान रखती है। प्रसंग किसी नगर की सुन्दरता समृद्धता का हो अथवा किसी दुर्गम पर्वत का या हरी भरी घाटियों का पर्वतों के अंचलों से उद्भूत नदियों का उल्लेख काव्य में हो जाता है,

1. शिशुपालवध, 11/64

महाकवि माघ ने द्वादश सर्ग में यमुना नदी को पार करने का सुन्दर वर्णन किया है। इसके अतिरिक्त कवि ने महाकाव्य में जल विहार संध्या चन्द्रोदय रात्री विहार का भी वर्णन किया है।

संस्कृत साहित्य में एकमात्र माघ ही ऐसे कवि हैं जिन्होंने अपने काल तक विकसित महाकाव्यों के सभी उत्कृष्ट गुणों का समावेस अपनी रचना में किया है। शिशुपालवध महाकाव्य के लक्षणों को सर्वाधिक ग्रहण करने वाला महाकाव्य है, इसीलिए कहा जाता है "काव्येषु माघः कवि कालिदासः" महाकवि माघ के महाकाव्य में प्राकृतिक वर्णन के अन्तर्गत जो रमणीय दर्शन होते हैं एवं सर्वत्र स्वाभाविकता दृष्टिगोचर होती है, ऐसा लगता मानो कवि स्वयं प्रकृति के निकट सम्पर्क में रहा हो एक-एक प्रकृति वर्णन उनका स्वयं का भोगा हुआ सा प्रतीत होता है। अतः माघ ही एक मात्र ऐसे कवि हैं जो उपमा अर्थगौरव और पदलालित्य की त्रिवेणी में एक साथ सर्वथा स्नात हैं। माघ का प्राकृतिक वर्णन कौशल उद्भूत है, उनको पड़कर हमारे नेत्रों के समक्ष चित्र सा अंकित हो जाता है।

# शिशुपालवध में अन्तनिर्हित नैतिक विचार

**-डॉ. सौम्या कृष्ण***

पाश्चात्य संस्कृति मूलतः भौतिकवादी संस्कृति की पोषक है जो वस्तुनिष्ठता को महत्त्व देती है। इसका प्रभाव भारतीय जनमानस पर पड़ा जिसके फलस्वरूप मूल्यों पर आधारित भारतीय संस्कृति पर भौतिकता का रंग चढ़ा और मानवीय मूल्यों की अवहेलना का दौर प्रारम्भ हुआ। भारतीय संस्कृति में अभ्युदय एवं निःश्रेयस दोनों का समन्वय परिलक्षित होता है। यह अत्यन्त क्रियाशील, आध्यात्मिक, नौतिक तथा सामाजिक मूल्यों पर आधृत है। संस्कृत साहित्य के कथानक भी मानव जीवन एवं समाज से उद्धृत होते हैं तथा उनमें समाज के विविध वर्गों की गतिविधियाँ सन्निहित रहती हैं। समाज को गति एवं दिशा देने वाले संस्कृत साहित्य के कथानक ऐतिहासिक एवं प्रसिद्ध पुरुषों से सम्बद्ध होते हैं जिसका प्रमुख कारण जीवन के उस विस्तृत फलक को चित्रित करना है, जिसके अन्तर्गत समाज का प्रत्येक वर्ग अन्तर्भूत हो और आगे आने वाले प्रत्येक समाज का प्रत्येक वर्ग एवं प्रत्येक मनुष्य उस साहित्य में अपने को ढूंढ सके तथा उससे दिशा एवं गति प्राप्त कर सके। साहित्यदर्पणकार आचार्य विश्वनाथ ने भी कर्तव्यकर्मों में प्रवृत्ति और अकर्तव्य कर्मों से निवृत्ति के द्वारा काव्य से चतुवर्गफल-धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष प्राप्ति की अनुशंसा की है। वह साहित्य ही क्या जिसमें कलात्मक आनन्द के अतिरिक्त मनुष्य के लिए जीवनोपयोगी कुछ मिल न सके। महाकवि माघ की लेखनी भी इस युग निर्माण चेतना से अछूती नहीं रही है। माघ ने महाभारत के कथांशों का युग चेतना के

* पूर्व शोधच्छात्रा, संस्कृत विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

अनुरूप ढ़ालकर तत्कालीन समाज के लिए प्रासंगिक बना डाला और मानवीय कर्तव्याकर्तव्य अन्तर्द्वन्दों की सफल अभिव्यक्ति की।

'नैतिक' शब्द से तात्पर्य नीति सम्बन्धी विचार है। देवधर्म के संस्थापक 'देवात्मा' के अनुसार जो कुछ भी कृत्य मानव को मनुष्यत्व से च्युत करता है वह अनैतिक है, इसके विपरीत जो व्यक्तित्व को समुन्नत करता है, वह नैतिक है।[2] मनुष्य द्वारा किये जाने वाले कर्मों को किन परिस्थितियों में शुभ-अशुभ अथवा नैतिक-अनैतिक कहा जाता है। इसका सम्पूर्ण विवेचन नीतिशास्त्र का विषय है। विभिन्न विद्वानों ने नीतिशास्त्र को अपने-अपने ढंग से परिभाषित करने का प्रयास किया, किसी ने नीतिशास्त्र को न्याय का विवेचन, तो किसी ने कर्तव्य का, तो कुछ ने सत्-असत् अथवा शुभ-अशुभ का विवेचन स्वीकार किया है। तात्पर्य यह है कि विषयवस्तु की व्यापकता के कारण नीतिशास्त्र की एक सर्वमान्य परिभाषा स्थापित नहीं हो सकी। अतः नीतिशास्त्र की विषय वस्तु के सम्यक् ज्ञान के लिए इन परिभाषाओं के अध्ययन के साथ-साथ भारतीय ग्रन्थों के आलोक में वर्णित नीति तत्त्वों का अध्ययन कर लेना समीचीन प्रतीत होता है। सामान्यतया नैतिकता नीति के बृहद्तम अर्थों में सन्दर्भित होती है, जिसका उद्देश्य मानवीय चरित्र का निर्माण है।[3] शुक्रनीति में भी कहा गया कि "जो कुमार्ग से सन्मार्ग की ओर व्यक्ति तथा समाज को प्रवृत्त करे वह नीति है- न्यनान्नीति रूच्यते।[4] नीति शब्द की व्युत्पत्ति नी धातु में क्तिन् प्रत्यय से हुई जिसका अर्थ प्रापण कराना, नेतृत्व करना" है। नीति शब्द का ठीक-ठीक अर्थ अंग्रेजी के Ethics (एथिक्स) से स्पष्ट होता है। 'एथिक्स' यूनानी भाषा के 'ता' व 'इथिका' में व्युत्पन्न है, जिसका अर्थ क्रमशः चरित्र और प्रथा-परम्परा तथा आदत है। अतः नीति का सम्बन्ध मानवीय आचरण से है जो कि

---

1. संस्कृत साहित्य में यथार्थ- डॉ. कमलेश कुमार, पृ. 458
2. नैतिक चिन्तन के आयाम- डॉ. छाया राय, पृ. 146
3. आन द मीनिंग ऑफ महाभारत- वी.एस. सुकंठकर, पृ. 80
4. शुक्रनीति, 1.56

मनुष्य के शुभाशुभ प्रवृत्तियों एवं कृत्यों का अवलोकन करता है। पाश्चात्य विद्वान जे.एस. मैकेन्जी का भी मानना है कि "मानवीय चरित्र तथा आदतन कार्य सिद्धान्तों और उन सिद्धान्तों के उचित-अनुचित तथा शुभाशुभ कार्यों की मीमांसा करना ही नीति है।[1]" बी.एल. आत्रेय के अनुसार मानव व्यवहार का उचित और न्यायसंगत होने के अर्थ में नीति के पर्याय के रूप में 'धर्म' और 'आचार' का प्रयोग भी किया गया है।[2] वेदों में नीति का विवेचन प्राप्त है, वहाँ नीति को 'ऋतु' की संज्ञा से अभिहित किया गया है, जिसका अर्थ 'नियम' अथवा 'व्यवस्था' है।[2] कलान्तर में नीति का सम्बन्ध त्रिवर्ग, चतुवर्ग के रूप में और अन्तत: जीवन मूल्यों से जुड़कर साधन के रूप में दृष्टिगत होने लगा। जिसका परिणाम यह हुआ कि कौटिल्य ने इसे अर्थनीति के रूप में, राजनीतिज्ञों से 'राजनीति' के रूप में तो स्मृतिकारों ने इसे 'धर्म' के रूप में परिणत किया। हितोपदेश में भी कहा गया कि 'नीति के भंग होने पर सम्पूर्ण जगत नष्ट हो जाता है।'[4] माघ के अनुसार शास्त्र का अनुकरण ही नीति है। माघ के बलराम और उद्धव शुक्रनीति एवं कामन्दकीय नीतिसार के परिभाषिक ग्रन्थों को परिशीलित किया जान पड़ते हैं। उद्धव के वचनों को नीतिमार्ग का अनुसरण करने वाला तथा दुर्नीति को रोकने वाला कहा गया।[5] शिशुपालवध में श्रीकृष्ण को नीतिवेत्ता के रूप में स्वीकार किया गया है। उद्धव का कथन है कि हे नीतिशास्त्र के विशेषज्ञ! आपके आगे नीति विषय पर कुछ कहना आपके तत्त्वबोध के लिए न होकर, मेरे ही नीतिविषयक अभ्यास बढ़ाने के लिये है, न कि वैदुष्य प्रकट करने के लिये-

---

1. ए मैनुअल ऑफ एथिक्स- जे.एस. मैकेन्जी, पृ. 11
2. भारतीय नीतिशास्त्र का इतिहास, बी.ए. आत्रेय, पृ.-9
3. आउट लाइन्स ऑफ इण्डिन, फिलासफी- एम हिरियन्ना, पृ. 3
4. हितोपदेश- नारायणपण्डित, 2.75
5. शिशुपालवध 2.118 (अनुगतनयमार्गामर्गलां दुर्नयस्य)

**विशेषविदुषः शास्त्रं यत्तवोद्ग्राह्यते पुरः।**
**हेतुः परिचयस्थैर्ये वक्तुर्गुणनिकैव सा।।**[1]

द्याद्विवेद ने नीतिशास्त्र की परिभाषा देते हुए कहा है कि "एवं कर्तव्यमेवं न कर्तव्यमित्यात्मको यो धर्मः सा नीति" अर्थात् यह कर्तव्य है, वह कर्तव्य नहीं इस प्रकार जो धर्मशास्त्र व्यवस्था करता है वही नीतिशास्त्र है।[2] यह परिभाषा 'शिशुपालवध' के परिप्रेक्ष्य में प्रासंगिक दिखाई पड़ती है। बलराम श्रीकृष्ण से कहते हैं कि कर्तव्य और अकर्तव्य को न जानने वाले वक्ता की बातें निष्फल सी होती हैं, जैसे लक्ष्य से भ्रष्ट हुये बाण वाले धनुर्धारी की बड़ी-चढ़ी बातें हैं।[3] वे श्रीकृष्ण को कर्तव्य मार्ग का उपदेश देते हुये कहते हैं कि राजाओं को कभी भी अभ्युदय में संतोष नहीं करना चाहिये।[4] जो राजा अल्प सम्पत्ति से अपने को सुस्थिर मानता है तो कृतकृत्य दैव भी उसकी सम्पत्ति को नहीं बढ़ाता है।[5] वस्तुतः कर्तव्य भी दो प्रकार के हो सकते हैं, कुछ कर्तव्य तो सामाजिकों के लिए एक जैसे होते हैं, जैसे हमें सत्य बोलना चाहिये गुरु का सम्मान करना चाहिये, हिंसा नहीं करनी चाहिये इत्यादि बहुधा कर्तव्य हो सकते हैं, परन्तु कुछ कर्तव्य देशकाल की परिस्थिति के अनुसार सहज या स्वभाविक होते हैं जिनका भिन्न प्रकार से मनुष्यों द्वारा आचरण किया जाता है। जैसे कि कुछ राजनीतिज्ञ (कामन्दकसार प्रभृत) अपनी शक्ति के बढ़ने पर शत्रु पर चढ़ाई करना उचित बताते हैं तथा शक्ति सम्पन्न शत्रु पर आक्रमण करना श्रेष्ठ मानते हैं-

**यदा क्षमस्तु प्रसभं निहन्तुं पराक्रमादूर्जितमप्यमित्रम्।**
**तदा हियायादहितानि कुर्वन्परस्य वा कर्षणपीडनानि।।**[6]

---

1. शिशुपालवध, 2.75
2. नीतिमंजरी-द्याद्विवेद
3. शिशुपालवध, 2.28
4. वही, 2.31
5. वही, 2.32
6. कामन्दक नीतिसार, 15.3

जबकि मनु इत्यादि राजनीतिज्ञों का विचार है कि जब शत्रु विपत्ति में हो, तब उस पर आक्रमण करना चाहिये–

**तदा यायाद्‌िब गृह्यैव व्यसने चोत्थिते रिपोः।**[1]

यद्यपि बलराम विपत्तिग्रस्त शत्रु पर चढ़ाई को निन्दनीय मानते हैं[2], फिर भी श्रीकृष्ण को राजसूय यज्ञ के निमित्त हस्तिनापुर की यात्रा को रोककर चेदि नरेश शिशुपाल पर आक्रमण करने का निर्देश देते हैं।[3] क्योंकि शत्रु का समूल नाश किये बिना प्रतिष्ठा नहीं मिलती–

**विपक्षमखिलीकृत्य प्रतिष्ठा खलु दुर्लभा।**[4]

अतः जो मानवीय विचार व्यक्ति के आचरण और तत्परिणामस्वरूप उसके चरित्र का निर्माण करते हैं, वे नैतिक विचार हैं। चूंकि वैयक्तिक आचरणों का मूल उद्देश्य 'व्यक्ति को मानव' की सामाजिकता तक पहुँचाना होता है और इस प्रकार से अप्रत्यक्ष रूप से एक अच्छे समाज का निर्माण करना है। अतः वे सभी विचार जो व्यक्ति के वैयक्तिक स्वेच्छाचारिता को नियंत्रित कर उसके व्यक्तित्व में सामाजिकता का विचार करते हैं नैतिक विचारों की श्रेणी में रखे जा सकते हैं।[5] जर्मन दार्शनिक हीगल का मानना है कि मनुष्य के नैतिक आचरण के विकास में परिवार, समाज एवं राज्य का विशेष महत्त्व है। परिवार के सभी सदस्यों में नैसर्गिक स्नेह से उत्पन्न आन्तरिक एकता होती है। जबकि समाज एक बड़ी इकाई है, जिसमें बाह्य एकता होती है, जिसे प्रशासन, कानून, न्याय प्रणाली, श्रमविभाजन, दण्डविधान आदि द्वारा स्थापित किया जाता है।[6] वस्तुतः महाकवि माघ ने भी समाज की भावनाओं को समझकर काव्य में अपने युग के धर्म, समाज, राजनीति आदि विविध

---

1. मनुस्मृति, 7/183
2. शिशुपालवध, 2.61
3. वही, 2.63
4. वही, 2.34
5. इनसाइक्लोपीडिया ऑफ रीलीजन एण्ड एथिक्स, जिल्द– 5, पृ. 41
6. नीतिशास्त्र के मूल सिद्धान्त– डॉ. वेद प्रकाश शर्मा, पृ. 160

क्षेत्रों का व्यापक चित्रण किया है। जिसमें नैतिकता अनुस्युत है।

सामाजिक संस्थाओं के औचित्य अथवा अनौचित्य के विषय में निर्णय देना नीतिशास्त्र का कार्य है। नैतिक नियमों, सद्गुणों, कर्तव्यों तथा आदर्शों की सार्थकता इसलिये है कि मनुष्य समाज में रहता है और उसके अधिकतर कार्य किसी न किसी रूप में अन्य व्यक्तियों को प्रभावित करते हैं तथा उनसे प्रभावित होते हैं।[1] जैसा श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि हे पार्थ! मेरे लिए तीनों लोकों में न तो कुछ कर्तव्य है और न कोई भी प्राप्त करने योग्य वस्तु अप्राप्य है।[2] मुझ अधिष्ठाता के सप्रकाश से प्रकृति चराचरसहित सर्वजगत को रचती है।[3] फिर भी मैं कर्म में सावधानी बरतता हूँ, क्योंकि मैं कर्म न करूं तो ये सब मनुष्य नष्ट-भ्रष्ट हो जायेगें।[4] श्रीकृष्ण कहते हैं कि श्रेष्ठ पुरुष जैसा आचरण करता है, अन्य भी वैसा ही अनुसरण करते हैं।[5] हीगल का भी मानना है कि व्यक्ति व समाज में घनिष्ठ सम्बन्ध है। उन्होंने मनुष्य के स्वतन्त्र व्यक्तित्व के विकास का पूर्ण निषेध तो नहीं किया परन्तु वे मनुष्य के व्यक्तिगत हित की अपेक्षा सामाजिक कल्याण को अधिक महत्वपूर्ण मानते हैं, क्योंकि उनका मानना है कि सामाजिक जीवन व्यतीत करने से मनुष्य में नैतिकता का विकास होता है।[6] शिशुपालवध में इसी सामाजिक नैतिकता के सन्दर्भ में नारद श्रीकृष्ण से कहते हैं कि हे प्रभु! आप अपने तेज से संसार में द्रोहियों का नाश करने के लिए पृथ्वी पर अवतीर्ण हुये हैं-

**निजौजसोज्जासयितुं जगद्द्रुहामुपाजिहीथा न महीतलं यदि।**[7]

---

1. नीतिशास्त्र के मूल सिद्धान्त- डॉ. वेद प्रकाश शर्मा, पृ. 26
2. गीता, 3/22
3. वही, 9/10
4. वही, 3.24
5. वही, 3.21
6. नीतिशास्त्र के मूलसिद्धान्त-डॉ. वेदप्रकाश शर्मा, पृ. 158
7. शिशुपालवध, 1.37

चौदहवें सर्ग में श्रीकृष्ण स्वयं युधिष्ठिर से यज्ञ के पूर्व कहते हैं कि हे युधिष्ठिर! अत्यन्त दुष्कर शासन में भी तत्पर मुझे आप इच्छानुसार करणीय कार्यों में नियुक्त कीजिये[1] तथा यज्ञ में जो राजा भृत्य की तरह काम नहीं करेगा, उसके शरीर को मेरा यह सुदर्शन कबन्ध बना देना।[2] इसके अतिरिक्त शिशुपाल द्वारा निरन्तर श्रीकृष्ण को अपशब्द बोलने पर यदुवंशी राजा क्रुद्ध नहीं हुये क्योंकि वे लोग अपने स्वामी श्रीकृष्ण की चित्तवृत्ति का ही अनुसरण कर रहे थे।[3] श्रीकृष्ण स्वयं उसके कठोर वचनों से क्षुब्ध नहीं हुये–

**कटुनापि चैद्यवचनेन विकृतिमगमन्न माधवः।**
**सत्यनियतवचसं वचसा सुजनं जनाश्चलयितुं क ईशते।।**[4]

शिशुपालवध में न केवल श्रीकृष्ण अपितु माघ का प्रत्येक पात्र अपनी कर्त्तव्यपरायणता एवं नैतिक जिम्मेदारियों के प्रति सजग है। राजसूय यज्ञ में पूजनीयों को अर्घ्य देने के अवसर पर युधिष्ठिर स्वयं निर्णय लेने में सक्षम हैं, किन्तु अपनी नैतिक जिम्मेदारी तथा सदाचार परम्परा के पालनार्थ ही वे अपने गुरुजन भीष्म पितामह से "प्रथम अर्घ्य किसके लिए देना चाहिये" इस भांति पूछना उचित समझते हैं।[5] इस पर भीष्म कहते हैं कि युधिष्ठिर स्वयं समस्त गुण–दोष के ज्ञाता, कर्तव्य कार्यों के विषय में जानते हो, फिर भी गुरुजनों से पूछते हो, उसमें सदाचार की यह परम्परा ही कारण है।[6] भीष्म भी एक कुशल नीतिज्ञ है। वे अर्घ्य की योग्यता का निर्धारण करते हुये कहते हैं कि स्नातक, गुरु, इष्ट, बन्धु, ऋत्विज, जामाता और राजा ये छः पूजा के योग्य हैं, ऐसा ज्ञानी वृद्धजन कहते हैं और ये सभी तुम्हारी सभा में साथ उपस्थित

---

1. शिशुपालवध, 14.15
2. वही, 14.16
3. वही, 15.41
4. वही, 15.40
5. संस्कृत के पौराणिक महाकाव्य – डॉ. राजेश कुमारी मिश्र, पृ. 299
6. शिशुपालवध 14.54

है। अतः उक्त गुणवानों में से अधिक गुणवान् व्यक्ति की पूजा की जानी चाहिये।[1] माघ ने भीष्म की इस उक्ति से यह स्पष्ट कर दिया कि श्रीकृष्ण को प्रथम अर्घ्य देने में किसी प्रकार का पक्षपात नहीं हो रहा है।[2]

शिशुपालवध में माघ ने न केवल समाज के प्रति नैतिक दृष्टिकोण रखने का निर्देश दिया, अपितु कुटुम्ब के प्रति भी वे सदैव आदर्शवादी, शिष्ट एवं नैतिकता का मार्ग प्रशस्त करते हैं। इसका सर्वोत्कृष्ट उदाहरण श्रीकृष्ण है। शिशुपाल द्वारा निरन्तर अपमानित होने पर भी वे शान्तचित्त रहते हैं तथा शिशुपाल की माता से शिशुपाल के सौ अपराधों को क्षमा करने की प्रतिज्ञा के कारण अलंघनीय वचन में बंधे हुये सहस्त्रों अपराध करने वाले उस शिशुपाल के सभा में किये गये अपराध को पहला अपराध माना क्योंकि सज्जन पुरुष परिचितों के गुणों को स्मरण करते हैं, दोषों को नहीं।[3] धर्मराज युधिष्ठिर भी शिष्टाचार एवं आदर्श की प्रतिमूर्ति हैं। वे स्वभावतः ही दूसरों की इच्छा के अनुकूल व्यवहार करनेवाले तथा क्षमा से श्रेष्ठचित्त वाले, अपने घर आये हुये मौसी के पुत्र शिशुपाल के प्रति उसके द्वारा अक्षम्य अपराध किये जाने पर क्रुद्ध नहीं हुये।[4] स्मृतियों में भी कहा गया है कि अतिथि का यथाविधि सत्कार करें अन्यथा चाहे शिलोच्छवृत्ति से जीविका चलाने वाला हो या नित्य पञ्चाग्नियों में होम करने वाला हो, उसके यहाँ आया हुआ, बिना सत्कार प्राप्त अतिथि, उसके सभी पुण्य हर लेता है।[5] उद्धव भी श्रीकृष्ण से मित्र के प्रति नैतिक कर्तव्यों का उपदेश करते हैं कि हे कृष्ण्! युधिष्ठिर के यज्ञ भार को वहन करना आपका कर्त्तव्य है क्योंकि बलवान् व्यक्ति शत्रु पर आक्रमण कुछ विलम्ब से भी करे तो कोई हानि

---

1. शिशुपालवध, 14.55
2. बृहत्रयी का तुलनात्मक अध्ययन- सुषमा कुलश्रेष्ठ, पृ. 71
3. शिशुपालवध, 15/42-43
4. वही, 15.68
5. मनुस्मृति, 3.100

नहीं है परन्तु मित्रों की भग्न प्रीति पुनः प्राप्त करना सर्वथा कठिन है-

**चिरादपि बलात्कारो बलिनः सिद्धयेऽरिषु।**
**छन्दानुवृत्तिदुःसाध्या सुहृदो विमनीकृताः।।**[1]

शिशुपालवध के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि माघ ने वर्णाश्रम व्यवस्था पर भी विशेष ध्यान दिया है, क्योंकि वर्णाश्रम के आधार पर आचार व्यवहार से समाज में समांजस्य बना रहता है और किसी भी प्रकार से विरोधाभास अथवा व्यभिचार की स्थिति नहीं उत्पन्न होती है। तत्कालीन समाज में ब्राह्मणों को सर्वोपरि स्थान प्राप्त था, उन्हें ब्रह्म के मुख से उत्पन्न माना गया है- त्वन्मखं मुखभुवः स्वयम्भुवो।[2] ब्राह्मणों में भी पंक्ति पावन ब्राह्मणों को श्रेष्ठ माना गया है-

**दक्षिणीयमवगम्य पङ्क्तिशः पंक्तिपावनमथ द्विजव्रजम्।।**[3]

अतः द्रष्टव्य है कि तत्कालीन समाज में ब्राह्मणों को सम्मान प्राप्त था, क्षत्रिय युद्ध में उत्साहपूर्वक भाग लेते थे किन्तु विलासी समाज में सेवक वर्ग की स्थिति अच्छी नहीं कही जा सकती है।[4] समाज में वर्णशंकर को अच्छी दृष्टि से नहीं देखा जाता था, वर्णसंकर को सत्कुलोत्पन्न नहीं माना गया था।[5]

शिशुपालवध में न केवल सात्विक मूल्यों अपितु अनैतिक पक्ष को भी उभारने का प्रयास किया गया है। अतः माघ ने समाज के अभिजात वर्ग का विलासी जीवन, राजाओं के पारस्परिक कलह का कहीं अधिक स्पष्ट वर्णन किया। माघ के समाज का विलासी जीवन भारवि के अभिजात वर्ग के विलास से दो कदम आगे प्रतीत होता है। शिशुपालवध के पंचम सर्ग में योद्धाओं के विलासी जीवन का वर्णन

---

1. शिशुपालवध, 2.105
2. वही, 14.56
3. वही, 14.33
4. संस्कृत साहित्य में यथार्थ- डॉ. कमलेश कुमार, पृ. 349
5. शिशुपालवध, 14.37

प्राप्य है-

**यानाज्जनः परिजनैरवरोप्यमाणा**
**राज्ञीनरापनयनाकुलसौविदल्लाः।**
**स्त्रस्तावगुण्ठनपटक्षणलक्ष्यमाण-**
**वक्त्रश्रियः सभयकौतुकमीक्षते स्म॥**[1]

इस वासनामयी श्रृंगार वर्णन से ज्ञात होता है कि स्त्रियों के प्रति समाज की दृष्टि भोगवादी थी। द्वितीय सर्ग में बलराम श्रीकृष्ण एवं शिशुपाल के मध्य संघर्ष का कारण रुक्मिणी को ही मानते हैं-

**त्वया विप्रकृतश्चैद्यो रूक्मिणीं हरता हरे!**
**बद्धमूलस्य मूलं हि महद्वैरतरोः स्त्रियः॥**[2]

समाज में वैश्यावृत्ति एवं मद्यपान प्रचलित था। धन लेकर वैश्याएं देहव्यापार करती थी तथा स्त्री पुरुष के अनैतिक सम्बन्धों का भी उल्लेख मिलता है-

**क्षणमतुहिनधाम्नि प्रोष्य भूयः पुरस्ता-**
**दुपगतवति पाणिग्राहवद्दिग्वधूनाम्।**
**द्रुततरमुपयाति स्त्रंसमानांशुकोऽसा-**
**वुपपतिरिव नीचैः पश्चिमाऽन्तेन चन्द्रः॥**[3]

अतः सामाजिक परिप्रेक्ष्य में नैतिक विचार वे हैं जो सामाजिक स्थायित्व और गतिशीलता से सम्बन्धित हो, क्यों ही न उनकी व्यवस्था अपवाद स्वरूप आपद्धर्म के रूप में करनी पड़ी हो।[4]

महाकवि माघ राजनीति के धुरन्धर विद्धान् हैं। उनके काव्य के राजनीतिक पक्ष को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने कौटिल्य के अर्थशास्त्र का आमूल अध्ययन किया था, किन्तु माघ ने राजनीति में

---

1. शिशुपालवध, 5.17
2. वही, 2.38
3. वही, 11.65
4. मार्डन पोलिटिकल थाट-डब्ल्यू. अवेंस्टे, पृ. 636

कूटनीति के साथ ही साथ नैतिकता को पर्याप्त महत्त्व दिया है। आचार्य कौटिल्य ने कहा है- "नीतिज्ञो देशकालौ परीक्षेत"[1] अर्थात् नीतिज्ञ व्यक्ति को चाहिये कि वह देशकाल का भलीभांति विचार कर ले। तदनुसार उद्धव श्रीकृष्ण से कहते हैं कि एक राजा को परिस्थित्यानुकूल व्यवहार करना चाहिये-

**तेजः क्षमा वा नैकान्तात् कालज्ञस्य महीपतेः।**
**नैकमोजः प्रसादो वा रसभावविदः कवेः॥**[2]

वस्तुतः राजनीतिशास्त्र के साथ नीतिशास्त्र का घनिष्ठ सम्बन्ध है; दोनों के ही अध्ययन का विषय मानव कल्याण के लिए व्यक्ति के व्यवहार को नियन्त्रित करने से सम्बद्ध है। राजनैतिक संगठन का प्रमुख उद्देश्य मनुष्य की समाजविरोधी इच्छाओं तथा स्वार्थमूलक प्रवृत्तियों को नियंत्रित करके समाज में समुचित व्यवस्था, सुरक्षा एवं शान्ति बनाये रखना है। यदि समाज में सर्वत्र अव्यवस्था, असुरक्षा तथा अशान्ति व्याप्त है तो व्यक्ति के लिए नैतिक नियमों एवं आदर्शों के अनुसार आचरण करना निश्चय ही बहुत कठिन हो जाता। अतः राजनैतिक व्यवस्था मनुष्य के नैतिक जीवन के लिए अत्यन्त आवश्यक है। वहीं नीतिशास्त्र राजनैतिक नियमों तथा संस्थाओं के औचित्य के सम्बन्ध में नैतिक आदर्शों के आधार पर निर्णय देकर उनका मूल्यांकन करता है। यह हमें बताता है कि मानव कल्याण की दृष्टि से कौन सी राजनैतिक संस्थाएँ शुभ अथवा अशुभ है और राज्य द्वारा निर्मित कौन से नियम उचित या अनुचित हैं।[3] जैसा कि द्वितीय सर्ग में बलराम श्रीकृष्ण को शिशुपाल पर आक्रमण करने के लिए प्रेरित करते हुये कहते हैं कि साधारण अवस्था में क्षमा पुरुषों का भूषण है किन्तु पराभव के अवसर पर पराक्रम ही उनका आभूषण है-

---

1. अर्थशास्त्र, 85
2. शिशुपालवध, 2.85
3. नीतिशास्त्र के मूल सिद्धान्त- वेद प्रकाश शर्मा, पृ.27

**अन्यदा भूषणं पुसः शमो लज्जेव योषितः।**
**पराक्रमः परिभवे वैयात्यं सुरतेष्विव।।**[1]

अपमानित होकर भी क्षमा की प्रवृत्ति की वे निन्दा करते हुये कहते हैं कि अपमानित होकर भी शान्त रहने वाले व्यक्ति से श्रेष्ठ अचेतन धूल है जो पैर से ताड़ित होने पर आहतकर्ता के मस्तक पर चढ़ जाती है।[2] क्योंकि शत्रुओं के उन्नत मस्तक पर अवज्ञापूर्वक पैर रक्खे बिना निराधार कीर्ति प्राप्त नहीं होती–

**अकृत्वा हेलया पादमुच्चैर्मूर्धसु विद्विषाम्।**
**कथंकारमनालम्बा कीर्तिर्द्यामधिरोहति।।**[3]

जबकि उद्धव का मानना है कि शत्रु द्वारा अपकृत होने पर भी व्यथित हुये अपने हृदस्थ भाव को न प्रकट कर, अवसर की प्रतीक्षा करता हुआ शान्तचित्त बुद्धिमान् पुरुष अवसर पाकर कुपित होता है।[4] इस प्रकार क्षमाशील राजा अवसरानुसार अपनी शक्ति से सन्ध्यादि षड्गुणों का प्रयोग करे, तो राज्य की वृद्धि होगी किन्तु, यदि वह अपने बल को समझे बिना षड्गुणों का प्रयोग करता है तो राज्य का क्षय होगा।[5] अतः बलराम उद्धव एवं श्रीकृष्ण की विचारगोष्ठी के माध्यम से माघ ने राजनीति और व्यवहारिक पक्ष के समांजस्य की अनेक उक्तियाँ कही हैं, जो नीति और कूटनीति दोनों में आती हैं। माघ के शिशुपालवध में भारवि कृत किरातार्जुनीयम् से कहीं अधिक राजनीतिक पाण्डित्य परिलक्षित है। माघ ने राजनीतिक वाद-विवादों में शास्त्र प्रमाणों को अधिक महत्त्व दिया। डॉ. भोलाशंकर व्यास के अनुसार शिशुपालवध में जब उद्धव एवं बलराम परस्पर बातें करते हैं तो ऐसा प्रतीत होता है कि

---

1. शिशुपालवध, 2.44
2. वही, 2.46
3. वही, 2.56
4. वही, 2.86
5. वही, 2.94

जैसे दो राजनीति के प्रोफेसर बात कर रहे हैं।[1] वस्तुतः राज्य में ही समस्त सामाजिक तथा नैतिक मूल्य निहित होते हैं। हीगल ने भी मनुष्य में नैतिकता के विकास में राज्य को सर्वाधिक महत्त्व दिया है, उनका मानना है कि व्यक्ति और राज्य की इच्छा में विरोध हो तो व्यक्ति को अपनी इच्छा का परित्याग करके राज्य की इच्छा के अनुसार ही आचरण करना चाहिये।[2]

माघ के पात्रों में न केवल श्रीकृष्ण, बलराम, उद्धव, युधिष्ठिर एवं भीष्म नीति निपुण हैं अपितु शिशुपाल द्वारा प्रेषित दूत भी नीतिज्ञ प्रतीत होता है, जो अवसरोचित प्रत्युत्तर देने में समर्थ, प्रगल्भ बुद्धिवाला एवं द्वयर्थक वचनों को बोलने वाला है। मनुस्मृति में भी दूत के विषय में कहा गया है कि गुणसम्पन्न दूत के माध्यम से प्रतिपक्षी राजा के मन के भावों को तत्त्वतः समझ कर ऐसा प्रयत्न करें, जिससे उसके ऊपर कोई संकट न आये।[3] अतः उस दूत ने ऐसे कथन कहे जिससे उसके राजा का अभीष्ट भी सिद्ध हो जाय तथा प्रतिपक्षी राजा भी कुपित न हो–

**जनतां भयशून्यधीः परैरभिभूतामवलम्बसे यतः।**
**तव कृष्ण गुणास्ततो नरैरसमानस्य दधत्यगण्यताम्।।**[4]

सत्यकि का भी दूत के प्रति कथन है कि हे दूत! तुम बड़े ही निपुण हो, तुमने बाहर से प्रिय तथा भीतर से अप्रिय वचनों को इस प्रकार कहा कि यदि उनके तात्पर्य को सम्यक् रूप से समझा जाय तो वे भीतर से प्रिय तथा बाहर से अप्रिय प्रतीत होते हैं।[5] वह दूत राजा युधिष्ठिर द्वारा चेदिनरेश शिशुपाल के पूजित न होने पर भी उसे महान बताता है–

---

1. संस्कृत कवि दर्शन– डॉ. भोलाशंकर व्यास, पृ. 138
2. नीतिशास्त्र के मूल सिद्धान्त– वेद प्रकाश शर्मा, पृ. 160
3. मनुस्मृति, 7.68
4. शिशुपालवध, 16.6
5. वही, 16/17

**त्वयि भक्तिमता न सत्कृताः कुरुराजा गुरुरेव चेदिपः।**
**प्रियमांसमृगाधियोज्झितः किमवद्यः करिकुम्भजो मणिः।।**[1]

महाकाव्य के अट्ठारहवें व उन्नीसवें सर्ग में युद्ध का वीभत्स्य वर्णन प्राप्य है-

**रोषावेशादाभिमुख्येन कौचित्पाणिग्राहं रंहसैवोपयातौ।**
**हित्वा हेतीर्मल्लवन्मुष्टिघातं घ्नन्तौ बाहूबाहवि व्यासृजेताम्।।**[2]

वस्तुतः अवेंस्टे का मानना है कि राजनैतिक परिप्रेक्ष्य में नैतिक विचार वे हैं, जिनसे राज्य के बृहत्तर हितों और उद्देश्यों की पूर्ति की संभावनायें हों, क्यों ही न वे छल, छद्म, हिंसा और रक्तपातादि अमानवीय कृत्यों से परिपूर्ण हो।[3]

शिशुपालवध में धार्मिक एवं दार्शनिक सिद्धान्तों का विवेचन भी किया गया है किन्तु, यथार्थ रूप में वहाँ धर्म का मुख्य उद्देश्य मनुष्य को अपने कर्तव्य का ज्ञान कराना है। जैसा कि वैशेषिक दर्शन में धर्म वह है जिससे मनुष्य की भौतिक एवं पारमार्थिक उपलब्धि हो-

**यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः।।**[4]

इसी स्वकल्याण की भावना से उद्धव श्रीकृष्ण से कहते हैं कि हे कृष्ण! यदि आप शिशुपाल का वध कर देवों को प्रसन्न करना चाहते हैं तो यज्ञ करना श्रेष्ठ है, क्योंकि देवता हविर्भोज से प्रसन्न होते हैं-

**मन्यसेऽरिवधः श्रेयान्प्रीतये नाकिनामिति।**
**पुरोडाशभुजामिष्टमिष्टं कर्तुमलन्तराम्।।**[5]

मनुस्मृति में धर्म को परिभाषत करते हुये कहा गया कि वेद में प्रतिपादित, स्मृतियों द्वारा समर्थित, साधु पुरुषों द्वारा आचरित तथा अपने प्रियकर ये चार साक्षात् धर्म हैं-

1. शिशुपालवध, 16/45
2. वही, 18/12
3. मार्डन पोलिटिकल थाट, पृ. 636
4. वैशेषिक दर्शन, 1/1/2
5. शिशुपालवध, 2/106

**वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियतात्मनः।**
**एतच्चतुर्विधं प्राहु साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम्।।**[1]

अतः श्रुतियों तथा स्मृतियों में विवक्षित धर्म का अनुसरण ही नैतिकता है, जिससे मनुष्य इस लोक में यश प्राप्त करता है। माघ भी इस मत को स्वीकार करते हैं। राजसूय यज्ञ से पूर्व युधिष्ठिर श्रीकृष्ण से कहते हैं कि हे प्रभो! जिस धन को धर्मपूर्वक, शास्त्रोक्तरीति से प्राप्त करके, उसकी रक्षा की तथा उसकी वृद्धि की, उस धन को मैं शास्त्रोक्तविधि से ब्राह्मणों के अधीन करूंगा तथा अग्नि में हवन करूंगा, आप उसका सेवन करें-

**स्वापतेयमधिगम्य धर्मतः पर्यपालयमवीवृधं च यत्।**
**तीर्थगामि करवै विधानतस्तज्जुषस्व जुहवानि चाऽनले।।**[2]

महाभारत के शान्तिपर्व में सनातन धर्म का लक्षण करते हुये भीष्म ने कहा-

**अहिंसा सत्यमक्रोधो दानं दमोभमतिः।**
**अनसूयाप्यमात्सर्यमनीर्ष्याशी लभेव च।।**

**एषः धर्म कुरुश्रेष्ठ कथितः परमेष्ठिना।**
**ब्राह्मण देवदेवेन अयं चैव सनातनः।।**

**अस्मिन् धर्मे स्थितो राजन् नरो भद्रावि पश्यति।**[3]

अर्थात् अहिंसा, सत्य, अक्रोध, तपस्या, दान, मन और इन्द्रियों का संयम, विशुद्ध बुद्धि, किसी में दोष न देखना, किसी से ईष्या और जलन न रखना तथा उत्तमशील स्वभाव को देवाधिदेव परमेष्ठि ब्रह्म जी ने सनातन धर्म बताया है, जो मनुष्य इस सनातन धर्म में स्थित होता है, उसे ही कल्याण का दर्शन होता है। माघ ने भी अपने प्रबन्ध में नीतिपरक सूक्तियों के माध्यम से इन सत्प्रवृत्तियों का निर्देशन किया है।

---

1. मनुस्मृति, 2/12
2. शिशुपालवध, 14/9
3. महाभारत शान्तिपर्व, 119/12

सोलहवें सर्ग में सज्जन पुरुष की महिमामण्डन करते हुये सत्यकि कहते हैं कि सज्जन पुरुष स्वभाव से सर्वदा दूसरों पर उपकार करने वाले होते हैं तथा दूसरों की उन्नति से सन्तप्त नहीं होते हैं।[1] बुद्धिमान लोग अपने क्रोध के वेग को जीत लेते हैं। उत्तम हृदय के लोग दूसरे के दोषों को छिपाते हैं तथा अपने गुणों का भी बखान नहीं करते–

**प्रकटान्यपि नैपुणं महत्परवाच्यानि चिराय गोपितुम्।**
**विवरीतुमथात्मनो गुणान्भृशमाकौशलमार्यचेतसाम्।।**[2]

अतः धार्मिक परिप्रेक्ष्य में धर्मकृत उच्च स्तरीय सदाचरण का व्यवहार ही नैतिक विचार है। धर्म व्यक्ति के चारित्रिक उत्थान पर बल देता है तथा मानव के हित एवं कल्याण की ओर प्रेरित कर इहलोक और परलोक का मार्ग सुगम करता है।

इस तरह हम देखते हैं कि शिशुपालवध नैतिक विचारों से परिपूर्ण है। शिशुपालवध के नायक श्रीकृष्ण नीति विशारद हैं। अन्य पात्रों में उद्धव नीतिमार्ग के अनुसरणकर्ता तथा दुर्नीति को रोकने वाले हैं। भीष्म भी एक कुशल नीतिज्ञ हैं, साथ ही युधिष्ठिर एवं बलराम भी नीति एवं सदाचार के पक्षधर हैं। शिशुपाल जो काव्य का निकृष्ट प्रतिनायक है वह भी स्थान–स्थान पर नीतिविषयक सिद्धान्तों का पक्षधर है। उदाहरणार्थ पन्द्रहवें सर्ग में भीष्म को उलाहना देते हुये शिशुपाल का पृथापुत्रों के प्रति कथन है कि तुम लोग धर्म को नहीं जानते हो और ऐसे अवसर (श्रीकृष्ण पूजन) पर वृद्ध भीष्म ने भी तुम लोगों को शिष्टाचार की शिक्षा नहीं दी, यह आश्चर्य है। सोलहवें सर्ग में शिशुपाल का दूत भी अपनी नीतिज्ञता का प्रदर्शन कर रहा है। वह भी अवसरोचित प्रत्युत्तर देने में समर्थ, प्रगल्भबुद्धिवाला एवं द्वयर्थक वचनों को बोलने वाला है। शिशुपालवध में कर्तव्य–अकर्तव्य, शिष्ट आचरण, वचनबद्धता तथा वर्णाश्रम व्यवस्था के नियमानुसार पालन की व्यवस्था सम्यक् रूप से प्रदर्शित की गई है। साथ ही अनैतिक कर्मों के प्रति घृणा व्यक्त कर

1. शिशुपालवध, 16/22–23
2. वही, 16/30

नैतिक कर्मो में प्रवृत्त करने की अनुशंसा की गयी है। वहाँ शुभ एवं अशुभ की मीमांसा करते हुये राजनीति विषयक नैतिक नियमों को भी अवधारित किया गया है। शिशुपालवध में व्यक्तिगत हितों से ऊपर राज्यहित को माना गया है, साथ ही स्वामी के प्रति ईमानदार होने की भी अनुशंसा की गयी है। वहाँ सहिष्णुता, मानव कल्याण की भावना, शास्त्रोक्तविधि का पालन एवं सत्यवचन आदि सद्‌गुणों के अनुसरण की भी प्रेरणा दी गयी है। जिनके माध्यम से एक नवीन, विसंगति रहित एवं आदर्शवादी समाज की सर्जना का सफल प्रयास किया गया है, जहाँ पारस्परिक सम्बन्धों में स्वार्थपरायणता एवं राजनीतिक विरोध के स्थान पर वैचारिक समन्वय एवं धार्मिक सहिष्णुता तथा राष्ट्रोन्नयन की प्रतिष्ठा में नैतिक विचारों की अनिवार्यता स्वीकार की गयी है।

# आस्तिक-नास्तिक दर्शनों में महाकवि माघ की अबाधगति

**- श्री अभिनेश्वर सिंह***

**'माघे सन्ति त्रयो गुणाः'** इस उक्ति द्वारा संस्कृत साहित्य के विद्वज्जन माघ को तीन गुणों तक सीमित करने की चेष्टा करते हैं जो वास्तव में उनकी प्रतिभा एवं पाण्डित्य के साथ न्याय नहीं है, जबकि माघ **'माघे सन्ति बहुः गुणाः'** के हकदार हैं। उनका एकमात्र महाकाव्य 'शिशुपालवध' इस कथन की पुष्टि करने के लिये पर्याप्त प्रमाण प्रस्तुत करता है। माघ की ख्याति न केवल उपमादि गुणों के कारण है, अपितु दर्शन, व्याकरण, तर्कशास्त्र, कर्मकाण्ड आदि विषयों के ज्ञान से भी उनकी कीर्ति में चार-चाँद लगा है। दार्शनिक विषयों के वर्णन के समय माघ की शैली साहित्यिक शैली से इतर हो जाती है। उस समय उनकी शैली एवं प्रवाह को देखकर नहीं कहा जा सकता कि माघ मूलरूप से साहित्यकार हैं। वे कर्मकाण्ड के वर्णन के समय कर्मकाण्डी, दार्शनिक विषयों के वर्णन के समय दार्शनिक एवं साहित्यक विषयों के वर्णन के समय साहित्यकार बन जाते हैं। दर्शन हो या साहित्य उनकी भाषा-शैली सरल एवं सुबोध बनी रहती है। यही कारण है कि उनके कथन आज समाज में सूक्ति के रूप में उद्धृत किये जाते हैं।

दर्शन और साहित्य में प्रायः भेद किया जाता है। दर्शन को निरस एवं साहित्य को सरस तथा दार्शनिक को आध्यात्कि एवं साहित्यकार को भौतिक समझने की प्रवृत्ति भी देखी जाती है, किन्तु संस्कृत साहित्य के महाकवियों ने दार्शनिक ज्ञान को जिस बुद्धिमत्ता के साथ प्रस्तुत किया

---

* केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय, नई दिल्ली।

है, उसके आधार पर पूर्व प्रवृत्ति उपहास मात्र है। संस्कृत साहित्यकारों के साहित्यिक ग्रन्थों में दर्शन का विवेचन पाण्डित्य की परम्परा का पर्याय माना जाता है। इसी के परिणामस्वरूप श्रीहर्ष, भारवि, माघ जैसे कवियों एवं उनके ग्रन्थों का प्रादुर्भाव हुआ। इन्होंने अपनी प्रतिभा से दर्शन जैसे गम्भीर विषयों का सरल, सरस एवं साहित्यिक भाषा में प्रतिपादन किया।

माघ के शिशुपालवध में प्रायः सभी अस्तिक एवं नास्तिक दर्शनों का सम्यक् विवेचन प्राप्त होता है। सम्पूर्ण महाकाव्य में यत्र-तत्र, व्यवस्थित अव्यवस्थित रूप में सभी दर्शनों का परिचय प्राप्त होता है। कुछ प्रमुख दर्शनों एवं तत्स्थानों का विवरण द्रष्टव्य है-

**सांख्य-दर्शन-**

शिशुपालवध में ग्रन्थारम्भ से ही सांख्य-दर्शन के विषयों का प्रतिपादन किया गया है। प्रथम सर्ग में कवि ने नारद द्वारा भगवान् विष्णु की स्तुति में सांख्य शास्त्र की पद्धति का आश्रय लिया है, जहाँ पर पुरुष, प्रकृति एवं विकृति प्रदर्शित है-

**उदासितारं निगृहीतमानसैः**
**गृहीतमध्यात्मदृशा कथञ्चन।**
**बहिर्विकारं प्रकृतेः पृथग्विदुः**
**पुरातनं त्वां पुरुषं पुराविदः।।**[1]

सांख्यमतानुसार श्रीकृष्ण क्रियाशून्य एवं मुक्ति हेतु साक्षात्कार के योग्य हैं। सांख्यमत में ईश्वर क्रियारहित, साक्षिमात्र, दुर्ज्ञेय, विकाररहित, सत्त्वादि गुणों से पृथक है, अतएव साक्षात्कार के योग्य हैं।

दूसरे सर्ग में सांख्य-दर्शन का अत्यन्त सुन्दर उदाहरण द्रष्टव्य है-

---

1. शिशुपालवध (1/33)

**विजयस्त्वयि सेनायाः साक्षिमात्रेऽपदिश्यताम्।**
**फलभाजि समीक्ष्योक्ते बुद्धेर्भोग इवात्मनि।।**[1]

सांख्यदर्शन में पुरुष के संयोग से ही मूल-प्रकृति के साधक-हेतु बुद्धि आदि अचेतन तत्त्व भी चेतन की तरह प्रतीत होते हैं-

**तस्मात्तत्संयोगादचेतनं चेतनावदिवलिंगम्।**
**गुणकर्तृत्वेऽपि यथा कर्तेव भवत्युदासीनः।।**[2]

सांख्यदर्शन में प्रकृति-पुरुष विवेक से मुक्ति कही गई है। अविवेक से फिर-फिर जन्मना और मरना होता है। इसी भाव को माघ ने अपने ग्रन्थ में इस प्रकार प्रस्तुत किया है-

**प्रकृतिपुरुषयोर्विवेकाग्रहणात् संसारः विवेकग्रहणान्मुक्तिरिति।**[3]

इसी प्रकार के विचार का समर्थन करते हुए कवि रैवतक पर्वतस्थ तपस्यारत योगियों का वर्णन इस प्रकार किया है-

**तत्रस्थाः योगिनः प्रकृतिपुरुषयोर्पार्थक्यं**
**ज्ञात्वा स्वयं प्रकाशभावेन संस्थिताः सन्ति।।**[4]

**योगदर्शन-**

माघ के शिशुपालवध में योगदर्शन का भी सम्यक् रूप से प्रतिपादन किया गया है। योगदर्शन के अनुसार शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वरप्रणिधान ये पाँच नियम हैं-

**शौचसंतोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः।**[5]

इस संदर्भ में महाकवि माघ वर्णन करते हैं-

---

1. शिशुपालवध (2/59)
2. सांख्यकारिका (20)
3. शिशुपालवध, मल्लिनाथ टीका (4/55)
4. तदेव (4/55)
5. योगसूत्र (2/32)

**श्रीकृष्णमुभयतः भीमार्जुनौ संस्थितौ। तयोः श्रीकृष्णः एवं शुशुभे यथा कोऽपि मतिः यमनियमाभ्यां सुशोभते।।**[1]

योगसूत्र में उल्लिखित अविद्या, अहंकार, राग, द्वेष और अभिनिवेश इन पाँच क्लेशों के पुण्य-पाप कर्मों के भोग से रहित ईश्वर है-

**क्लेशकर्मविपाकैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः।**[2]

योगसूत्र के इस कथन को स्वीकार कर महाकवि माघ ने श्रीकृष्ण को कर्मों के बन्धन से रहित ईश्वर के रूप में प्रतिस्थापित किया है। श्रीकृष्ण सर्वज्ञ, आदि-मध्य-अन्त रहित भू-भार हरण के लिये शरीर धारण किये हैं। वे पंच क्लेश-रहित, कर्मफलभोग-रहित ईश्वर संज्ञक पुरुष विशेष हैं।

योगशास्त्र के महत्त्वपूर्ण तत्त्व ईश्वर की चर्चा करते हुए वे कहते हैं-

**सर्ववेदिनमनादिमास्थितं**
**देहिनामनुजिघृक्षया वपुः।**
**क्लेशकर्मफलभोगवर्जितं**
**पुंविशेषममुमीश्वरं विदुः।।**[3]

**न्यायवैशेषिक-**

शिशुपालवध में न्यायवैशेषिक दर्शन के सिद्धान्तों का भी प्रतिपादन किया गया है। वहाँ आकाश का लक्षण प्रतिपादित करते हुए कहा गया है- "शब्दगुणकमाकाशम्"।

इसका उल्लेख करते हुए माघ लिखते हैं-

**अप्यनारभमाणस्य विभोरुत्पादिताः परैः।**
**व्रजन्ति गुणतामर्थाः शब्दा इव विहायसः।।**[4]

---

1. शिशुपालवध, मल्लिनाथटीका (13/23)
2. योगसूत्र (1/24)
3. शिशुपालवध (14/62)
4. तदेव (2/91)

अर्थात् जैसे समर्थ राजा निष्क्रिय होते हुए भी दूसरे द्वारा साधित कार्य को करता है, उसी प्रकार व्यापक आकाश निष्क्रिय भी भेर्यादि से उत्पन्न शब्द को अपने गुणानुरूप करता है।

**मीमांसा-**

शिशुपालवध एक साहित्यिक ग्रन्थ होते हुए भी धर्मशास्त्र की भूमिका निभाता है। इसमें मनुष्य जीवन में क्रियमाण सभी धार्मिक एवं सामाजिक कृत्यों का विस्तार पूर्वक वर्णन किया गया है। यही कारण है कि इस ग्रंथ के उद्धरण लोक-व्यवहार में भी प्रयुक्त किये जाते हैं।

शिशुपालवध महाकाव्य में यज्ञादि के अवसर पर मीमांसा दर्शन का प्रत्यक्ष प्रभाव परिलक्षित होता है। जिन श्लोकों में राजसूय यज्ञादि का वर्णन है उनमें मीमांसा सम्मत विधि-विधान के अतिरिक्त योगशास्त्र के पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग सम्यक् रूप से प्राप्त होता है। प्रथम सर्ग में मुमुक्षु महापुरुषों के लिये नारद कृत स्तुति द्रष्टव्य है-

**उदीर्णरागप्रतिरोधकं जनै-**
**रभीक्ष्णमक्षुण्णतयाऽतिदुर्गमम्।**
**उपेयुषो मोक्षपथं मनस्विनस्-**
**त्वमग्रभूमिर्निरपायसंश्रया॥**[1]

शिशुपालवध महाकाव्य के राजसूय यज्ञ प्रकरण में मीमांसा-दर्शन का सर्वाधिक उल्लेख प्राप्त होता है। चौदहवें सर्ग में व्याकरण, वेद, कर्मकाण्ड, दानादि विषयों का सम्यक् निरूपण हुआ है। यज्ञ वर्णन से प्रतीत होता है कि महाकवि माघ स्वयं महायज्ञ सम्पन्न किये हों। यज्ञ में दान-प्रसंग के वर्णन में महाकवि की उदार प्रवृत्ति एवं दानशीलता प्रकट होती है। यज्ञ के अवसर पर मीमांसकों का बड़े सम्मान के साथ उल्लेख किया गया है- **"मीमांसकाः ऋत्विजः।"**

---

1. शिशुपालवध (1/32)

**अद्वैतवेदान्त-**

शिशुपालवध में अद्वैतवेदान्त दर्शन का प्रतिपादन अनेक स्थलों पर किया गया है। संसार मिथ्या है, परमतत्त्व ब्रट्ठाट्ठा है, माया ही संसार है, ब्रट्ठाट्ठा श्रीकृष्ण है, आत्मा-परमात्मा अंशांशि है, जीव संसार में बँधा हुआ है इत्यादि अद्वैतवेदान्त स्वीकृत सिद्धान्तों का माघ ने बड़े ही सुन्दर ढंग से प्रतिपादन किया है। संसार के मिथ्यात्व, परम् तत्त्व के यथार्थत्व, ब्रट्ठाट्ठाज्ञान के महत्त्व एवं मोक्षादि विषयों का अनेक श्लोकों में वर्णन है। यथा-

**ग्राम्यभावम्..................मुमुक्षवा।।**[1]

निर्गुण ब्रट्ठाट्ठा के प्रतिपादन में कवि ने श्रीकृष्ण को ही मोक्ष का स्थान कहा है।[2]

**वेदविषयक ज्ञान-**

वैदिकज्ञान एवं कर्मकाण्ड प्रक्रिया में माघ सिद्धहस्त हैं। महाकाव्य के चौदहवें सर्ग में वैदिक कर्मकाण्ड का अत्यन्त शास्त्रसम्मत निरूपण प्राप्त होता है-

**शब्दितामनपशब्दमुच्चकैः**
**वाक्यलक्षणविदोऽनुवाक्या।**
**याज्यया यजनकर्मिणोऽत्यजन्-**
**द्रव्यजातमपदिश्य देवताम्।।**[3]

**बौद्धदर्शन-**

आस्तिक दर्शनों की भाँति शिशुपालवध में नास्तिक दर्शनों का भी वर्णन है। रैवतक पर्वत के वर्णन के समय अनेक समाधिस्थ महात्माओं का वर्णन है, वहीं पर बौद्धदर्शन के अनेक पारिभाषिक शब्दों का भी

---

1. शिशुपालवध (14/64)
2. तदेव (14/21)
3. तदेव (14/20)

उल्लेख है-

**मैत्र्यादिचित्तपरिकर्मविदो विधाय**
**क्लेशप्रहाणमिह लब्धसबीजयोगाः।।**

**ख्यातिं च सत्त्वपुरुषान्यतयाधिगम्य**
**वाञ्छन्ति तामपि समाधिभृतो न रोद्धुम्।।**[1]

महाकवि माघ कहते हैं कि बुद्धि ही बद्ध या मुक्त होती है, वही सब कुछ अनुभव करती है। आत्मा न बद्ध होती है न मुक्त होती है, न ही किसी का अनुभव करती है, तथापि पुरुष बद्ध या मुक्त आत्मा के सुख-दुःख का अनुभव करता है।

शिशुपालवध के उपर्युक्त दार्शनिक स्थलों के विवेचन से स्पष्ट होता है कि माघ का ज्ञान केवल साहित्यिक विषयों- उपमा, अर्थगौरव, पदलालित्य तक सीमित नहीं है, उनके ग्रन्थ में दर्शन, व्याकरण, तर्क, राजनीति, समाजनीति, धर्मनीति इत्यादि विषयों का भी सम्यक् प्रतिपादन किया गया है। इनके महाकाव्य के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि ये सभी आस्तिक एवं नास्तिक दर्शनों के महापण्डित थे। इनका ग्रन्थ सभी विद्याओं का संगम है।

---

1. शिशुपालवध (4/55)

# शिशुपालवध महाकाव्य में दार्शनिक विचार

- **श्री प्रदीप दुबे***

महाकवियों की परम्परा में महाकवि माघ का स्थान अत्यन्त उच्च है, माघ की कीर्तिलता एक ही महाकाव्य पर अवलंबित है, वह काव्य **"शिशुपालवधम्"** अथवा **"माघकाव्य"** कहलाता है। महाकवि माघ के काव्य के बारे में प्रायः संस्कृत के आचार्यों का मत है–

**काव्येषु माघः राजसु रामः, नगरीषु लङ्का,**
**पुरुषेषु विष्णुः, कविषु कालिदासः।**

अर्थात्– माघ का शिशुपालवध श्रेष्ठ काव्य माना गया है। आचार्य दण्डी के काव्यादर्श में महाकाव्य के जो-जो लक्षण दिए हैं वे सभी इस महाकाव्य में विद्यमान हैं, इस महाकाव्य की कथावस्तु महाभारत से ली गई है और सम्पूर्ण कथानक तो महाभारत से है, परन्तु कवि ने अपनी प्रतिभा द्वारा उसमें सुन्दर कथोपकथनों का निर्माण करके महाकाव्य में उत्कृष्टता उत्पन्न कर दी है।

माघ की कवित्त्व शैली अनुपम है, उसमें कृत्रिमता; समासों की बहुलता, विकट वर्णों की उदारता, प्रगाढ़ बंधों की मनोहरता आदि अपने भव्य रूप में विद्यमान है। प्राकृतिक एवं मानवीय जीवन के वर्णनों की छटा भी अद्भुत है। प्रकृति-चित्रणों में स्वाभाविकता के साथ-साथ प्रकृति पर्यवेक्षण शक्ति भी पर्याप्त मात्रा में मिलती है। रैवतक पर्वत, ऋतु, जलक्रीड़ा, चन्द्रोदय आदि का वर्णन परम्परागत होते हुए भी अद्भुत है।

---

* पूर्व शोधच्छात्र, संस्कृत विभाग, डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर (मध्य प्रदेश)

माघ का शब्द भण्डार अत्यन्त बृहद् है। संस्कृत भाषा पर उनका पूर्ण अधिकार है। उनके काव्य में नवीन शब्दावली सर्वत्र उपलब्ध होती है-

**नवसर्गगते माघे नवशब्दो न विद्यते**[1]

अर्थात्- माघ के नवसर्गों को पढ़ने के बाद और कोई नया शब्द नहीं मिलता। यह मत संस्कृत के प्राचीन विद्वानों का है, जो माघ की भाषा-सम्बन्धी अलौकिक जानकारी का द्योतक है।

माघ केवल कवि ही नहीं थे, प्रत्युत एक प्रचण्ड सर्वशास्त्र, तत्वज्ञ विद्वान् भी थे। विभिन्न शास्त्रों का अध्ययन तथा उनका प्रतिपादन जितना माघ ने किया है, वह दुर्लभ है। भारवि में राजनीतिपटुता अवश्य दीख पड़ती है, श्रीहर्ष में दार्शनिक उद्भटता अवश्य उपलब्ध होती है, परन्तु माघ में सर्वशास्त्र का जो परिनिष्ठत ज्ञान दृष्टिगोचर होता है, वह दोनों स्वरूप कवियों में कहाँ? माघ वेद तथा दर्शनों के विशिष्ट ज्ञाता थे, इनके काव्य में भारतीय दर्शनों का उल्लेख विशिष्ट रूप में प्राप्त होता है। वे भारतीय दर्शन के रूप में सांख्य-योग के साथ वेदान्त दर्शन की गहन मीमांसा प्रस्तुत करते हैं तथा बौद्ध दर्शन को भी सहज रूप से स्पष्ट करने का प्रयास करते हैं, जिनका वर्णन निम्नलिखित प्रकार से है-

**1. सांख्य-दर्शन-** भारतीय दर्शन में प्राचीन सांख्य दर्शन के माघ पूर्ण ज्ञाता थे। अपने काव्य "शिशुपालवध" में माघ ने सांख्य के तत्त्वों का उल्लेख किया है। प्रथम सर्ग में नारद मुनि जब श्रीकृष्ण की स्तुति करते हुए कहते हैं कि पुराविद् कपिल आदि आपको चित्त की वृत्तियों को रोककर समाधि द्वारा अन्तर्मन से किसी तरह देखे गए, उदासीन, विकार से बहिर्भूत, मूल प्रकृति से पृथक् अनादि और परमपुरुष मानते हैं-

**उदासीतारं निगृहीतमानसैर्गृहीतमध्यात्मदृशा कथञ्चन।**
**बहिर्विकारं प्रकृतेः पृथग्विदुः पुरातनं त्वां पुरुषं पुराविदः॥**[2]

---

1. माघ प्रशस्ति
2. शिशुपालवधम्, 1/33

इस श्लोक में महाकवि माघ सांख्यकारिका की तृतीय कारिका का भाव समाविष्ट किया गया है-

**मूलप्रकृतिरविकृतिर्महदाद्याः प्रकृतिविकृतयः सप्त।**
**षोडशकस्तु विकारो न प्रकृतिर्न विकृतिः पुरुषः॥**[1]

अर्थात् - सांख्य मत में एक सूक्ष्म प्रकृति तथा महदादि सप्त प्रकृति-विकृति और सोलह विकृति (विकार) तथा एक पुरुष मात्र न प्रकृति न विकृति है और इसी पुरुष चैतन्य को माघ परमपुरुष कृष्ण कह रहे हैं। द्वितीय सर्ग में पुनः सांख्य दर्शन का परिचय देते हुए महाकवि कहते हैं- बलराम जी श्रीकृष्ण के प्रति शत्रु सेना पर आक्रमण करने के प्रसंग में कहते हैं-

**विजयस्त्वयि सेनायाः साक्षिमात्रेऽपदिश्यताम्।**
**फलभाजि समीक्ष्योक्ते बुद्धेर्भोग इवात्मनि॥**[2]

अर्थात् - सांख्य दर्शन के अनुसार बुद्धि (महत्तत्व) का सम्पूर्ण प्रपञ्च जैसे पुरुष में समझा जाता है। यद्यपि वह उदासीन रहता है, वह कुछ करता नहीं है, उसी तरह आप भी केवल उदासीन ही रहें, उपस्थित मात्र रहें, विजय तो सेना ही कर लेगी। जैसा कि सांख्यकारिका में कहा गया है-

**गुणकर्तृत्वे च तथा कर्तेव भवत्युदासीनः।**[3]

अर्थात् - प्रकृति में ही वास्तविक कर्तृत्व रहने पर भी प्रकृति-पुरुष के संयोग से पुरुष ही कर्त्ता है, ऐसी प्रतीति उस आत्मा में होने लगती है।

तथा- **सर्वं प्रत्युपभोगं यस्मान् पुरुषस्य साधयति बुद्धिः।**[4]

---

1. सांख्यकारिका, 3
2. शिशुपालवधम्, 2/59
3. सांख्यकारिका, 20
4. वही, 37

बुद्धि ही आत्मा के साक्षात् भोगों का साधन है, क्योंकि उसी के निश्चय के अनुसार आत्मा का भोग होता है। उसी तरह बलराम जी श्रीकृष्ण को केवल युद्ध में उपस्थित होने के लिए कह रहे हैं, विजयश्री तो सेना ही प्राप्त कर लेगी, श्रेय आपका ही रहेगा। सांख्यतत्त्व का उल्लेख चतुर्दश सर्ग में महाकवि माघ ने पुनः किया है। सांख्यकारिका में ईश्वरकृष्ण ने पुरुष का स्वरूप स्पष्ट करते हुए कहा है कि जैसे आत्मा के संयोग से अचेतन लिङ्ग शरीर भी चेतनत्त्व धर्म से विशिष्ट हुआ सा प्रतीत होता है। उसी प्रकार आत्मा के संयोग से सत्त्व-रजस्-तमो गुणों में कर्त्तृत्व स्वभाव सिद्ध है, तथापि बुद्धि में चेतन के प्रतिबिम्ब होने से उदासीन, कृतिरहित होता हुआ भी आत्मा कर्त्ता अर्थात् कृतिमान् सा प्रतीत होता है-

**तस्मात्तत्संयोगादचेतनं चेतनावदिवलिङ्गम्।**
**गुणकर्तृत्वेऽपि तथा कर्तेव भवत्युदासीनः॥**[1]

इस तत्त्व का वर्णन राजा युधिष्ठिर और उनके पुरोहितों के द्वारा किये जाने वाले हवनादि कर्मों के वर्णन में माघ लिखते हैं-

**तस्य साङ्ख्यपुरुषेण तुल्यतां**
**बिभ्रतः स्वयमकुर्वतः क्रियाः।**
**कर्तृता तदुपलम्भतोऽभवद्-**
**वृत्तिभाजि करणे यथर्त्विजि॥**[2]

अर्थात् - होम आदि यज्ञीय क्रियाओं को स्वयं न करते हुए सांख्य शास्त्रोक्त आत्मा की तुल्यता को धारण करने वाले राजा युधिष्ठिर को, अन्तःकरण अर्थात् बुद्धि के समान, हवनादि यज्ञीय कर्म सम्पादन कराते हुए, ऋत्विजों के करते रहने पर, अर्थात् पुरोहितों द्वारा यह मेरा यज्ञ हो रहा है इस प्रकार की भावना से कर्त्तापन कर्त्तत्व की प्राप्ति हुई। इस प्रकार माघ ने सांख्यदर्शन का वर्णन किया है।

---

1. सांख्यकारिका, 20
2. शिशुपालवधम्, 14/19

**2. योगदर्शन**- सांख्य वर्णन के सदृश ही माघ योगदर्शन के ज्ञाता भी थे, उन्होंने आवश्यकतानुसार योग-दर्शन के प्रमुख सिद्धांतों का वर्णन किया है। योगदर्शन में कहा गया है- चित्त की एकाग्रता को 'समाधि' कहा गया है। यह योग का एक साधन है-

**चेतस ऐकाग्र्यं समाधिः, स च योगाङ्गोपलक्षणम्।**[1]

प्रमाण-विपर्यय-विकल्प-निद्रा और स्मृति- ये पाँच चित्तवृत्तियाँ हैं और इन्हीं के निरोध से योग-सिद्धि होती है तथा चित्त-विक्षोभक आठ-तत्त्वों का शोधन मैत्री, करूणा, मुदिता और उपेक्षा इन चार चित्त की वृत्तियों द्वारा होता है, परिणामतः सबीजयोग को प्राप्त करते हुए प्रकृति और पुरुष की भिन्नता का विवेक प्राप्त होने पर मोक्ष की प्राप्ति होती है। इस सिद्धान्त से युक्त पद्य का उल्लेख माघ चतुर्थ सर्ग में करते हैं-

**मैत्र्यादिचित्तपरिकर्मविदो विधाय**
**क्लेशप्रहाणमिह लब्धसबीजयोगाः।**
**ख्यातिं च सत्त्वपुरुषाऽन्यतयाधिगम्य**
**वाञ्छन्ति तामपिसमाधिभृत्तो न रोद्धुम्।।**[2]

अर्थात् - दारूक श्रीकृष्ण से कहता है इस रैवतक पर्वत पर योगीजन मैत्री, करुणा, मुदिता और उपेक्षा आदि चार प्रकार की चित्तवृत्तियों को ज्ञात कर, अर्थात् इन चित्तशोधक वृत्तियों द्वारा चित्त के मलों को दूर क्लेशों को नष्ट कर सबीज-योग को प्राप्त करते हुए तथा प्रकृति और पुरुष के पारस्परिक भिन्न तत्त्व का ज्ञान प्राप्त कर अर्थात् प्रकृति और पुरुष भिन्न है, यह जानकर स्वयं प्रकाश भाव से स्थित होने के लिए इच्छुक होते हैं। पातञ्जलयोग दर्शन के समाधि पाद में कहा गया है कि- अविद्या, अस्मिता, राग-द्वेष तथा अभिनिवेश ये पाँच क्लेश हैं-

---

1. योगसूत्रम्, 2/29
2. शिशुपालवधम्, 4/55

**अविद्याऽस्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः क्लेशाः।**[1]

और इन क्लेश, कर्म, विपाक तथा आशय इन चारों पदार्थों से अपरामृष्ट-असम्बद्ध जो पुरुष विशेष है उसे ईश्वर कहते हैं-

**क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः।**[2]

इस प्रकार के योग दर्शनोक्त ईश्वर का वर्णन महाकवि माघ युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में पधारे श्रीकृष्ण के विषय में भीष्म से कहलवाते हैं-

**सर्ववेदिनमनादिमास्थितं देहिनामनुजिघृक्षया वपुः।**
**क्लेशकर्मफलभोगवर्जितं पुंविशेषममुमीश्वरं विदुः।।**[3]

अर्थात् - नारदादि योगिज-तत्त्वदर्शीजन इन श्रीकृष्ण को सर्वज्ञ, आदि रहित, प्राणियों पर अनुग्रह करने की इच्छा से मनुष्य शरीर पर धारण करने वाले पाँचों क्लेशों तथा पाप-पुण्य कर्मफलों को न भोगने वाले 'ईश्वर' शब्द से कहे जाने वाले पुरुष विशेष कहते हैं।

इस प्रकार 'महाकवि माघ' योगदर्शन का वर्णन 'शिशुपालवध' में करते हैं।

**3. मीमांसा दर्शन**- मीमांसा दर्शन का ज्ञान माघ को अवश्य था, जिसका उद्धरण चतुर्दश सर्ग में राजसूय यज्ञ के वर्णन में उक्त प्रकार से प्राप्त होता है-

**शब्दितामनपशब्दमुच्चकैर्वाक्यलक्षणविदोऽनुवाक्यया।**
**याज्यया यजनकर्मिणोऽत्यजन् द्रव्यजातमपदिश्य देवताम्।।**[4]

अर्थात् - मीमांसा शास्त्र में पारंगत ऋत्विज् लोग अनुवाक्यया (मन्त्र विशेष) से उच्च स्पष्ट स्वर से प्रकाशित (इन्द्रादि) देवता के

---

1. योगसूत्रम्, 2/3
2. वही, 14/20
3. शिशुपालवधम्, 14/62
4. वही, 14/20

उद्देश्य से (पशुप्तपुरोडाशादि हवनीय) पदार्थों की याज्या (यज्ञाङ्ग-साधनभूत मन्त्र विशेष) से (अग्नि में) आहुतियाँ छोड़ने लगे।

**मीमांसा शास्त्र के अनुसार पदार्थों का परिचय स्पष्ट है-**

**अनुवाक्या**- पुरोऽनुवाक्या, अनुवचन आदि पर्याय हैं। यज्ञ में जब अध्वर्युजुहु में हवि लेकर होता को, अनुब्रूहि प्रेषण देता है, उसके समय होता मैत्रावरूण नाम ऋत्विज् अनुवाक्या कहता है इसका देवता स्मरण रूप दृष्ट प्रयोजन है।

**याज्या**- यज्ञ में जिन मंत्रों से देवतोद्देशक याग किया जाता है, उन्हें याज्या कहते हैं। याज्या एवं पुरोऽनुवाक्या के मध्य भाषण निषेध है, उच्चारण से यज्ञ का नैरन्तर्य भङ्ग होता है और यह हवि: समर्पण रूप दृष्ट फल है।

**यजयाचरूचप्रवचर्चश्च।**[1]

उपर्युक्त वर्णन में श्रौतपदार्थों का नाम मात्र से संकीर्तन हुआ है, जिससे महाकवि माघ का चतुरस्त्र पाण्डित्य प्रकाशित होता है।

**4. वेदान्त-दर्शन**- वेदान्त-दर्शन का वर्णन महाकवि माघ इस प्रकार करते हैं-

**भक्तिमन्त इह भक्तवत्सले सन्ततस्मरणरीणकल्मषाः।**
**यान्ति निर्वहणमस्य संसृतिक्लेशनाटकविडम्बनाविधेः॥**[2]

अर्थात् - भक्तवत्सल कृष्ण में भक्ति करने वाले लोग निरन्तर इनका स्मरण करने से क्षीण पाप होकर इन श्रीकृष्ण के रचित संसार के क्लेश रूपी नाटक में अभिनय करने के व्यापार से मुक्त हो जाते हैं। इस पद्य में कवि ने श्वेताश्वतरोपनिषद् के भाव को रखा है जिसमें कहा गया है कि जो साधक अपने हृदय में स्थित इन अन्तर्यामी परमात्मा को उनके गुण, प्रभाव का श्रवण करके भक्तिभाव से द्रवित हृदय के द्वारा

---

1. मीमांसा शास्त्र, 7/3/66
2. शिशुपालवधम्, 14/63

निरन्तर उनका स्मरण करके उन्हें जान लेते हैं, वे अमृत हो जाते हैं, सदा के लिए जन्म-मरण से छूट जाते हैं।

**हृदा हृदिस्थं मनसा च एनमेवं विदुरमृतास्ते भवन्ति।**[1]

तैत्तिरीयोपनिषद् में कहा गया है कि ये प्रत्यक्ष दिखाई देने वाले प्राणी जिनसे उत्पन्न होते हैं, अर्थात् श्रीकृष्ण परमेश्वर से ही उत्पन्न होते हैं और महाप्रलय के समय जिनमें विलीन हो जाते हैं-

**यतो व इमानि भूतानि जायन्ते।**
**येन जातानि जीवन्ति, यत्प्रयन्त्यभिसंदिशन्ति।।**[2]

इस वेदान्त वचन को माघ इस प्रकार वर्णित करते हैं-

**आदितामजननाय देहिनामन्ततां च दधतेऽनपायिने।**
**बिभ्रते भुवमधः सदाऽऽथ च ब्रह्मणोऽप्युपरितिष्ठते नमः।।**[3]

अर्थात् - भीष्म जी श्रीकृष्ण को नमस्कार करते हुए कहते हैं कि प्राणियों के कारणतत्त्व, अर्थात् उनकी उत्पत्ति के आदि कारण एवं उनके संहार के हेतु को धारण करते हुए स्वयं जन्म और नाश से रहित, सदा पाताल में स्थित होकर पृथ्वी को धारण करते हुए, ब्रह्मा से भी ऊपर रहते हुए श्रीकृष्ण को नमस्कार है।

इस प्रकार माघ का वेदान्त ज्ञान परिलक्षित होता है।

अवैदिक दर्शनों का उल्लेख भी महाकवि माघ ने अपने महाकाव्य में किया है, जो द्रष्टव्य है-

**5. बौद्ध-दर्शन-** कवि माघ ने बौद्ध-दर्शन का अच्छा अध्ययन किया था। बौद्ध-दर्शन शरीर में आत्मा नाम की कोई वस्तु स्वीकार नहीं करता। वह शरीर में पांच स्कन्धों की स्थिति मानता है, वे स्कन्ध ये हैं- 1. रूप स्कन्ध, 2. वेदना स्कन्ध, 3. विज्ञान स्कन्ध, 4. संज्ञा स्कन्ध और 5. संस्कार स्कन्ध। इस जगत् में दृश्यमान सभी वस्तुओं का आकार रूप

---

1. श्वेताश्वतरोपनिषद्, 5/4
2. तैत्तिरीयोपनिषद्, 3/1
3. शिशुपालवधम्, 14/65

स्कन्ध है, धारा प्रवाह ज्ञान विज्ञान स्कन्ध है, चैतन्य अथवा वस्तु समूह का नाम संज्ञा स्कन्ध है। चित्त पर पड़ी हुई छाया का नाम संस्कार स्कन्ध है, इत्यादि स्कन्धों के अतिरिक्त जिस प्रकार शरीर में आत्मा नाम की कोई वस्तु बौद्धों के लिए नहीं है, उसी प्रकार राजाओं के लिए पञ्चाङ्गयुक्त मन्त्र के अतिरिक्त किसी भी कार्य में कोई अन्यत्र मन्त्र नहीं है, ऐसा माघ कवि उक्त श्लोक में कहते हैं-

**सर्वकार्यशरीरेषु मुक्त्वाऽङ्गस्कन्धपञ्चकम्।**
**सौगतानामिवात्माऽन्यो नास्ति मन्त्रो महीभृताम्॥**[1]

अर्थात् - जिस प्रकार बौद्धों के यहाँ रूपादि पाँच स्कन्धों के अतिरिक्त आत्मा कोई वस्तु नहीं है, उसी प्रकार राजाओं के यहाँ भी पाँच अङ्गों के अतिरिक्त मन्त्र नाम की कोई अन्य वस्तु नहीं है। आचार्य कामन्दक के अनुसार पञ्चाङ्ग मन्त्र है-

**सहायाः साधनोपाया विभागो देशकालयोः।**
**विपत्तेश्च प्रतीकारः सिद्धि पञ्चाङ्गमिष्यते॥**[2]

इस प्रकार माघ ने अपने महाकाव्य में प्रायः सभी दर्शनों के सिद्धांतों का वर्णन प्रसंगानुसार किया है।

माघ की अद्वितीय प्रतिभा एवं अध्ययन-शीलता का पूर्ण परिचायक 'शिशुपालवध' संस्कृत-साहित्य का उत्कृष्ट महाकाव्य है। इसी काव्य द्वारा माघ ने उच्च कोटि की ख्याति प्राप्त की है। इस कारण यह है कि माघ ने अपने युग की प्रचलित समस्त प्रणालियों को अपनाया है। तत्कालीन कविता-लेखन पद्धति को मान्यता दी है और कथानक की अपेक्षा काव्य की बाह्य सज्जा में अधिक समय दिया है, इसके साथ ही घटनाओं के चित्रण की अपेक्षा विवरण भी अधिक दिए हैं, पाण्डित्य एवं प्रतिभा में माघ अद्वितीय कवि हैं। यह काव्य-शैली का विस्तार तथा विचारों की उच्चता, कल्पना की उड़ान तथा दूरारूढ़ भावना सम्पन्न कविता का समर्थक काव्य है।

---

1. शिशुपालवध, 2/28
2. कामन्दक नीति, 11/56

# दार्शनिक के रूप में महाकवि 'माघ'

- **श्री श्याम शंकर***

संस्कृत काव्य जगत् में अगाध पाण्डित्य के धनी महाकवि माघ जिन्होंने अपनी एकमात्र रचना 'शिशुपालवध' महाकाव्य के माध्यम से कवियों, विद्वज्जनों, रसज्ञों एवं सुहृदजनों को अपनी काव्य प्रतिभा से मन्त्रमुग्ध कर दिया। कालचक्र अपनी स्वाभाविक गति से आगे बढ़ता रहा किन्तु माघ के काव्यत्व एवं पाण्डित्य की प्रासङ्गिकता आज भी विश्व साहित्य जगत् में 'भूतो न भविष्यति' की भाँति अपने देदीप्यमान स्वरूप को यथावत् धारण किये हुए हैं। भारतीय परम्परा में महाकवि माघ एक ऐसे व्यक्ति हैं जिनमें कवित्व एवं पाण्डित्य का पूर्ण समन्वय दृष्टिगोचर होता है। वे कवि के रूप में जितने प्रसिद्ध हैं उससे कहीं अधिक उनकी ख्याति पाण्डित्य के लिए है। संस्कृत साहित्य में महाकवि के समान उच्चकोटि का विद्वान् विरला ही होगा जो काव्य रसास्वादन के साथ ही साथ विभिन्न जटिल शास्त्रीय विषयों का ज्ञान सुगमता से करा देने में सक्षम हो। इन्होंने 'शिशुपालवध' में कालिदास के काव्यसौन्दर्य, भारवि के अर्थगौरव, दण्डी का पदलालित्य[1] एवं भट्टि के व्याकरण पाटव का उत्कृष्ट मणिकाञ्चन समन्वय किया है। इनके महाकाव्य में जहाँ एक ओर काव्य निपुणता का परिचय मिलता है वहीं दूसरी ओर व्याकरण पटुता का, एक ओर कला पक्ष की प्रचुरता है तो दूसरी ओर भाव पक्ष की, एक ओर वीर रस का निरूपण है तो दूसरी ओर श्रृंगार का, एक ओर राजनीति का उपदेश है तो दूसरी ओर

---

* पूर्व शोधच्छात्र, संस्कृत विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

1. उपमा कालिदासस्य भारवेऽर्थगौरवम्।
   दण्डिनः पदलालित्यं माघे सन्ति त्रयो गुणाः॥

दर्शन-दिग्दर्शन का, एक और अर्थालङ्कारों की सुन्दर छटा है, तो दूसरी ओर चित्रालङ्कारों की सप्तरङ्गी प्रभा। उनका काव्य इतना पाण्डित्यपूर्ण है कि उसके पठनान्तर किञ्चित् भी शेष नहीं रह जाता। अतः माघ के इस महाकाव्य को संस्कृत का विश्वकोष कहा जाता है।

विद्वज्जनों में ऐसी प्रसिद्धि है कि- **मेघे माघे वयो गतम्। नवसर्गगते माघे नवशब्दो न विद्यते।**

एक दार्शनिक के रूप में महाकवि माघ का ज्ञान 'शिशुपालवध' के अनुशीलन से हमें व्यापक रूप से प्राप्त होता है। इन्होंने अपने महाकाव्य के विभिन्न सर्गों में प्रसंगानुकूल सांख्य-योग, मीमांसा, बौद्ध, न्याय एवं गीता में अन्तर्निहित सूक्ष्म सिद्धान्तों का बड़ी सहजता के साथ वर्णन किया है। यथा प्रथम सर्ग के 33वें श्लोक में[1] देवर्षि नारद जी द्वारा भगवान् श्रीकृष्ण को अन्तर्दृष्टि से किसी प्रकार साक्षात्करणीय, उदासीन विकारों से परे प्रकृति से पृथक् अनादि और परम् पुरुष कहा गया है। यह कथन सांख्यदर्शन के पुरुष स्वरूप[2] के अनुसार ही है। सांख्यदर्शन में भी पुरुष को क्रिया रहित, साक्षिमात्र, दुर्ज्ञेय, विकारहीन तथा सत्वरजस्तमोरूप त्रिगुणात्मिका प्रकृति से भिन्न बताया गया है।[3]

सांख्य दर्शनानुसार बुद्धि ही तत्तद् इन्द्रियों के द्वारा पुरुष के उपभोग की सामग्री जुटाती है तथा वही प्रकृति और पुरुष के अत्यन्त सूक्ष्मभेद को भी प्रकट कर देती है, अतः वही प्रधान है।[4] महाकवि माघ कहते हैं यद्यपि बुद्धि ही बद्ध होती है, मुक्त होती है, सब कुछ अनुभव

---

1. उदासितारं निगृहीतमानसैर्गृहीतमध्यात्मदृशा कथञ्चन।
   बहिर्विकारं प्रकृतेः पृथग्विदुः पुरातनं त्वां पुरुषं पुराविदः॥
   -शिशुपालवध, 1.33
2. न प्रकृतिर्न विकृतिः पुरुषः। सांख्यकारिका, 3
3. तस्माच्च विपर्यासात्सिद्धं साक्षित्वमस्य पुरुषस्य।
   कैवल्यम्माध्यस्थं -द्रष्ट्त्वमकर्तृभावश्च॥ वही, 19
4. सर्वं प्रत्युपभोगं यस्मात्पुरुषस्य साधयति बुद्धिः।
   सैव च विशिनष्टि पुनः प्रधानपुरुषान्तरं सूक्ष्मम्॥ वही, 37

करती है तथा आत्मा न तो बद्ध होता है और न मुक्त होता है, न तो कुछ अनुभव ही करता है, तथापि पुरुष बद्ध हुआ मुक्त हुआ- आत्मा को सुख या दुःख हो रहा है, इस प्रकार बुद्धि का भोग दृष्टमात्र आत्मा को कहा गया है। इन्होंने भगवान् श्रीकृष्ण को आत्मा का स्वरूप प्रदान कर केवल युद्ध में उपस्थिति की बात कही और सेना को बुद्धि का स्वरूप बतलाकर श्रीकृष्ण की उत्कृष्टता ठीक उसी प्रकार से प्रदर्शित किया जिस प्रकार से बुद्धि के द्वारा किये गये भोग को आत्मा का भोग मान लिया जाता है। इसे सांख्य दर्शन के तत्त्व का स्वरूप समझकर इन्होंने सेना द्वारा किये गये कार्यों से प्राप्त विजय श्रीकृष्ण की विजय माना गया है।[1] एक अन्य प्रसंग में इसी सिद्धान्त का निदर्शन हमें युधिष्ठिर के यज्ञ कर्म के समय प्राप्त होता है जहाँ राजा युधिष्ठिर यज्ञ में स्वयं हवनादि कार्य नहीं करते थे। ये कार्य तो ऋत्विज लोग ही करते थे, फिर भी उसका फल युधिष्ठिर को प्राप्त होने से युधिष्ठिर स्वयं को उन कर्मों का कर्त्ता मानते थे।[2] जैसा कि सांख्य शास्त्रानुसार पुरुष के संयोग से ही मूल प्रकृति के साधक हेतु बुद्धि आदि- अचेतन तत्त्व भी चेतन की तरह प्रतीत होते हैं तथा कर्त्तव्य के बुद्धि आदि रूप में परिणत सत्व, रज, तम गुणों में निहित रहने पर भी उसके सन्निधानवश उदासीन पुरुष ही कर्ता की तरह सक्रिय प्रतीत होता है।[3]

---

1. (i) विजस्त्वयि सेनायाः साक्षिमात्रेऽपदिश्यताम्।
   फलभाजि समीक्ष्योक्ते बुद्धेर्भोग इवात्मनि॥ शिशुपालवध, 2/59
   (ii) उपकारकस्य दधतोऽपि बहुगुणतया प्रधानताम्।
   दुःखमयमनिशमाप्तवतो न परस्य किंचिदुपकर्तुमिच्छति॥ वही, 15/7
   (iii) स्वयमक्रियः कुटिमेष तृणमपि विधातुमक्षमः।
   भोक्तुमविरतमलज्जतया फलमीहते परकृतस्य कर्मणः॥ वही, 15/8
2. तस्य सांख्यपुरुषेण तुल्यतां बिभ्रतः स्वयमकुर्वतः क्रियाः।
   कर्तृता तदुपलम्भतोऽभवद्वृत्तिभाजि करणे यथार्त्विजि॥ वही, 14/19
3. तस्मात्तत्संयोगाचेतनं चेतनावदिव लिङ्गम्।
   गुणकर्तृत्वे च तथा कर्तेव भवत्युदासीनः॥ सांख्यकारिका 20

प्रकृति और पुरुष के विवेक का ग्रहण नहीं करने से संसार में आवागमन तथा विवेक का ग्रहण करने से मुक्ति होती है तथा प्रकृति के उपरत होने पर मुक्ति होती है। ऐसा सांख्य का सिद्धान्त है।[1] इसी सिद्धान्त का समर्तन महाकवि माघ रैवतक पर्वत का वर्णन करते हुये कहते हैं कि समाधि धारण करने वाले योगी प्रकृति और पुरुष के परस्पर पार्थक्य की ख्याति को प्राप्त कर अर्थात् प्रकृति और पुरुष भिन्न है, यह जानकर स्वयं प्रकाश भाव से स्थित होने की अभिलाषा करते हैं।[2] अर्थात् प्रकृति और पुरुष के विवेक को न जानने से संसार में भटकना पड़ता है और जो इनके पार्थक्य को जान लेते हैं उन्हें कैवल्य (मोक्ष) की प्राप्ति हो जाती है।

सांख्यशास्त्रानुसार प्रकृति की विकार रहित अवस्था मूल प्रकृति है। महत् आदि सात तत्त्व प्रकृति एवं विकृति दोनों होते हैं, केवल विकृतियाँ सोलह होती हैं तथा जो न किसी की प्रकृति है और न विकृति वह तत्त्व एकमात्र (पच्चीसवां) पुरुष है।[3] उक्त विचार को कवि माघ ने श्लेष द्वारा इस प्रकार कहा है– "ये हरि महत् तत्त्व नहीं है और गुणों की समता से प्रधान भी नहीं है और अहंकार शून्यता को धारण करते हुए ये अपने को संसार में लोगों से पृथग्भूत करते हैं, अतएव ये भगवान् श्रीकृष्ण न तो महत् हैं न तो प्रधान हैं, न तो भूत हैं न तन्मात्र हैं और न ही अहङ्कार हैं, अपितु चौबीस तत्त्वों से बहिर्भूत पच्चीसवां तत्त्व पुरुष

---

1. तेन निवृत्तप्रसवामर्थवशात् सप्तरूपविनिवृत्ताम्।
   प्रकृतिं पश्यति पुरुषः प्रेक्षकवदवस्थितं स्वच्छः॥ सांख्यकारिका, 65
   प्राप्ते शरीरभेदे चरितार्थत्वात् प्रधानविनिवृत्तौ।
   ऐकान्तिकमात्यान्तिकमुभयं कैवल्यमाणोति॥ वही, 68
2. मैत्र्यादिचित्तपरिकर्मविदो विधाय क्लेशप्रहाणमिव लब्धसबीजयोगाः।
   ख्यातिं च सत्त्वपुरुषान्यतयाधिगम्य वाञ्छान्तिं तामपि समाधिभृतो निरोद्धुम्॥
   शिशुपालवध, 4/55
3. मूलप्रकृतिरविकृतिर्महदाद्याः प्रकृतिविकृतयः सप्त।
   षोडकस्तु विकारो न प्रकृतिर्न विकृतिः पुरुषः॥ सांख्यकारिका, 3

है।[1]

सांख्य दर्शन कहता है कि त्रिगुण और परिणामी होने से बुद्धि आदि में ही कर्त्तव्य है तथा निर्गुण अपरिणामी होने से पुरुष में कर्तव्य नहीं अपितु दृढ़त्व है।[2] इसी विचार के समर्थन में महाकवि माघ कहते हैं– श्रीकृष्ण न किसी से मारे जाते हैं और न किसी को मारते हैं, न किसी को सन्तप्त करते हैं और न किसी से सन्तप्त होते हैं। क्योंकि मारना आदि तो चंचल प्रकृति के कार्य हैं, परम पुरुष निर्गुण (गुणातीत) होने से उनके विषय में उन कार्यों का कर्त्ता नहीं कहा जा सकता है[3]"

**योग दर्शन–**

महाकवि माघ योग दर्शन के सिद्धान्तों से भलीभांति परिचित थे, जिसका प्रमाण शिशुपालवध के चतुर्थ सर्ग के 55वें और चतुर्दश सर्ग के 62वें पद्यों से मिलता है। चतुर्थ सर्ग में श्रीकृष्ण का सारथि दारुक रैवतक पर्वत का वर्णन करते हुए कहता है कि– इस पर्वत पर समाधि धारण करने वाले योगी जन मैत्री आदि चित्तवृत्तियों को जानकर अर्थात् चित्तशोधक वृत्तियों से अन्तःकरणके मल को दूर कर तथा अविद्या आदि पांच क्लेशों को नष्ट कर सबीज योग लाभ करके प्रकृति तथा पुरुष के परस्पर पार्थक्य की ख्याति को प्राप्त कर स्वयं प्रकाश भाव से स्थित होने की इच्छा करते हैं।[4] चतुर्दश सर्ग में योग के सिद्धान्त को भीष्म पितामह के माध्यम से निरूपित करते हुए कहते हैं– "तत्त्वदर्शी

---

1. न महानयं न च बिभर्ति गुणसमतया प्रधानताम्।
   स्वस्य कथयति चिराय पृथग्जनतां जगत्यनभिमानतां दधत्॥
   –शिशुपालवध, 15/2
2. सांख्यकारिका 20
3. अभिहन्यते यदभिहन्ति परितपति यच्च तप्यते।
   नास्य भवति वचनीयमिदं चपलात्मिका प्रकृतिरेव ही दृशी॥
   –शिशुपालवध, 15/14
4. मैत्र्यादिचित्तपरिकर्मविदो विधाय क्लेशप्रहाणमिह लब्धसबीजयोगाः।
   ख्यातिं च सत्वपुरुषान्यतयाधिगम्य वाञ्छान्तिं तामपि समाधिभृतो न रोद्धुम्॥
   –शिशुपालवध, 4/55

लोग भगवान् श्रीकृष्ण को सर्वज्ञ अनादि होने पर भी प्राणियों को अनुग्रहीत करने की इच्छा से मनुष्य के शरीर को प्राप्त किये हुए अर्थात् प्रारब्ध कर्म को वश से मानव शरीर को नहीं प्राप्त किये हुए अतएव अविद्या, अहङ्कार, राग, द्वेष और अभिनिवेश रूप पांच क्लेशों एवं पाप-पुण्यरूप को कर्मों के फल को नहीं भोगने वाले ईश्वर संज्ञक पुरुष-विशेष परम पुरुष या पुराण पुरुष कहते हैं।[1] योगदर्शन में यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि- इन आठ योगाङ्गों को 'समाधि' कहा जाता है।[2] मैत्री, करुणा मुदिता और उपेक्षा ये चार चित्त की वृत्तियाँ हैं। अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश- ये पाँच क्लेश कहे जाते हैं। प्रकृति तथा पुरुष का विवेकाग्रहण नहीं करने से इस संसार में आवागमन तथा विवेक का ग्रहण करने से मुक्ति होती है। योग दर्शन में ईश्वर का लक्षण है- 'क्लेशकर्म विपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः'। महाकवि माघ ने योग के इन्हीं सिद्धान्तों का प्रतिपादन उक्त पद्यों के माध्यम से कराया है जिससे उनके योगदर्शन के उत्कृष्ट ज्ञान का परिलक्षण प्राप्त होता है।"

शिशुपालवध महाकाव्य में यज्ञयागादि के वर्णन में मीमांसादर्शन का प्रत्यक्ष प्रभाव परिलक्षित होता है। युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ का जिन श्लोकों में कवि ने चित्र अङ्कित किया है उसमें मीमांसा सम्मत विधिविधान के अतिरिक्त कवि ने उक्त शास्त्र के पारिभाषिक वाक्य लक्षणविदों शब्दों का भी प्रयोग किया है, जिसका अर्थ "मीमांसाशास्त्रज्ञाः" मल्लिनाथ ने किया है। महाकवि कहते हैं कि मीमांसाशास्त्र के ज्ञाता ऋत्विज लोगों ने अनुवाक्या (देवताओं का आह्वाहन करने वाले मन्त्र विशेष) से उच्च स्वरोच्चारण पूर्वक प्रकाशित (इन्द्रादि) देवता के उद्देश्य से घृत, पायस आदि हवनीय पदार्थों की याज्या (यज्ञ साधन भूत

---

1. सर्ववेदिनमनादिमास्थितं देहिनामनुजिघृक्षया वपुः।
   क्लेशकर्मफलभोगवर्जितं पुंविशेषममुमीश्वरं विदुः॥ शिशुपालवध, 14/62
2. यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽष्टावङ्गानि।योगसूत्र 2/29

मंत्र विशेष) से अग्नि में छोड़ा अर्थात् वे तत् तत् देवताओं के आह्वाहन के मन्त्रों का उच्च स्वर से उच्चारण कर उन-उन देवताओं के उद्देश्य से हवन करने लगे।[1] देवता का आह्वाहन करने वाले मन्त्र विशेष को 'अनुवाक्या' कहते हैं और यज्ञाङ्ग- साधनभूत मन्त्रविशेष को 'याज्या' कहते हैं। इससे सिद्ध होता है कि महाकवि माघ मीमांसा दर्शन के सूक्ष्म जानकार थे।

शिशुपालवध महाकाव्य में अद्वैतवेदान्त के सिद्धान्तों का कई स्थलों पर प्रतिपादन हुआ है। प्रथम सर्ग में ब्रह्म के निर्गुण स्वरूप का प्रतिपादन करते हुए कहा गया है कि मोक्ष प्राप्त करने के लिए 'मुमुक्षु को भगवान् श्रीकृष्ण की शरण में जाना चाहिए क्योंकि मोक्ष प्राप्ति के वही एकमात्र साधन हैं।[2]' चतुर्दश सर्ग में अद्वैतवेदान्त के प्रतिपादक अनेकों पद्य हैं जिनमें भीष्म पितामह के मुख से भगवान् श्रीकृष्ण को परब्रह्म बताया गया है और कहा गया है कि 'योगी लोग भगवान् श्रीकृष्ण को अद्वितीय एवं सर्वश्रेष्ठ तथा ध्यान के योग्य होने पर भी बुद्धिमार्ग से परे स्थित ज्ञान के अविषय मानते हैं, स्तुति के योग्य होने पर भी वचन से अवर्णनीय एवं मन से अविचारणीय मानते हैं और आदर से उपासना के योग्य होने पर भी अत्यन्त दूरवर्ती अर्थात् अतिमानवीय रूप वाले मानते हैं।[3] ये ही सत्व, रजस् और तमस् इन तीनों गुणों से विष्णु ब्रह्मा और शिव के स्वरूप को धारण करते हैं।[4] भक्तवत्सल इन श्रीकृष्ण भगवान् में भक्ति करने वाले लोग इनका सर्वदा स्मरण करने से क्षीण

---

1. शाब्दितामनपशब्दमुच्चकैर्वाक्यलक्षणविदोऽनुवाक्यया।
   याज्यया यजनकर्मिणोऽत्यजन्द्रव्यजातमपदिश्य देवताम्॥ शिशुपालवध, 14/20
2. उदीर्णरागप्रतिरोधकं जनैरभीक्ष्णमक्षुण्णतयातिदुर्गमम्।
   उपेयुषो मोक्षपथं मनस्विनस्त्वमग्रभूमिर्निरपायसंश्रया॥ वही, 1/32
3. ध्येयमेकमपथे स्थितं धियः स्तुत्यमुत्तममतीतवाक्पथम्।
   आमनन्ति यमुपास्यमादराद्दूरवर्तिनमतीव योगिनः॥ वही, 14/60
4. पद्मभूरिति सृजञ्जगद्रजः सत्त्वमच्युत इति स्थितिं नयन्।
   संहरन्हर इति श्रितस्तमस्त्रैधमेष भजति त्रिभिर्गुणैः॥ वही, 14/61

पाप वाले होकर सांसारिक बन्धनों से मुक्त हो जाते हैं[1] और मूढ़ता का त्याग करने के इच्छुक मुमुक्षु जन इन्हीं का ध्यान करते हैं।[2] इस प्रकार इन श्लोकों के माध्यम से माघ ने भगवान् श्रीकृष्ण की स्तुति के साथ-साथ वेदान्त विषयक अपने उच्च स्तरीय ज्ञान को भी अभिव्यक्त किया है।'

महाकवि माघ ने न्यायदर्शन के सिद्धान्त का उल्लेख द्वितीय सर्ग में किया है। न्यायदर्शन में शब्द को आकाश का गुण माना गया है। इस सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हुए वे कहते हैं- 'सर्वसमर्थ विजिगीषु राजा स्वयं निष्क्रिय होकर भी दूसरों के द्वारा सम्पन्न कार्य को उसी प्रकार अपना गुण बना लेता है, जिस प्रकार व्यापक आकाश स्वयं निष्क्रिय होता हुआ भी दूसरे नगाड़े आदि से उत्पन्न शब्द को अपना गुण बना लेता है।[3] इससे सिद्ध होता है कि महाकवि न्यायदर्शन के भी विद्वान् आचार्य थे।'

उपर्युक्त आस्ति दर्शनों के साथ ही साथ महाकवि माघ बौद्ध और जैन दर्शन जैसे नास्तिक दर्शनों में भी अपना विशिष्ट ज्ञान रखते थे। बौद्धदर्शन सम्बन्धी ज्ञान का प्रमाण हमें द्वितीय सर्ग के 28वें श्लोक से प्राप्त होता है जिसमें कहा गया है कि 'समस्त कार्यों में पाँच अङ्गों के अतिरिक्त राजाओं का उसी प्रकार कोई दूसरा मन्त्र नहीं है जिस प्रकार इस शरीर में पाँच स्कन्धों के अतिरिक्त बौद्धों के मतानुसार दूसरा कोई आत्मा नहीं है।[4] उल्लेखनीय है कि बौद्धों के मत में रूप स्कन्ध,

---

1. भक्तिमन्त इह भक्तवत्सले सन्ततस्मरणरीणकल्मषाः।
   यान्ति निर्वहणमस्य संसृतिक्लेशनाटकविडम्बनाविधेः॥ शिशुवालवध 14/63
2. ग्राम्यभावमपहातुमिच्छवो योगमार्गपतितेन चेतसा।
   दुर्गमेकमपुनर्निवृत्तये यं विशन्तिं वशिनं मुमुक्षवः॥ वही, 64
3. अप्यनारभमाणस्य विभोरूत्पादिताः परैः।
   व्रजन्ति गुणतामर्थाः शब्दा इव विहायसः॥ वही, 2/91
4. सर्वकार्यशरीरेषु मुक्त्वाङ्गस्कन्धपञ्चकम्।
   सौगतानामिवात्मान्यो नास्ति मन्त्रो महीभृताम्॥ वही, 2/28

वेदनास्कन्ध, विज्ञानस्कन्ध, संज्ञानस्कन्ध और संस्कार- ये पाँच स्कन्ध हैं। इसके अतिरिक्त शरीर में आत्मा नाम की कोई वस्तु नहीं है, किन्तु उक्त स्कन्धपञ्चक से परिवर्तन होता हुआ ज्ञान सन्तान ही आत्मा है। महाकवि ने बौद्ध दर्शन के इस सिद्धान्त द्वारा राजनीति शास्त्र से सम्बन्धित सूक्ष्म तथ्य का भी उद्घाटन करके अपने अगाध पाण्डित्य को लक्षित किया है।'

उक्त आस्तिक एवं नास्तिक दर्शनों के साथ-साथ महाकवि माघ ने अपने महाकाव्य में गीता दर्शन के सिद्धान्तों का भी उल्लेख बड़ी सहजता के साथ किया है। यथा- गीता का वचन है कि वह जानने योग्य परमात्मा विष्णु रूप से भूतों को धारण पोषण करने वाला और रुद्र रूप से संहार करने वाला तथा ब्रह्मा रूप से सबको उत्पन्न करने वाला है।[1] कवि माघ गीता के उक्त वचन को भीष्म के शब्दों में इस प्रकार व्यक्त करते हैं- ये श्रीकृष्ण भगवान् रजोगुण का आश्रय लेकर संसार की रचना करते हुए ब्रह्मा, सत्व का आश्रय लेकर संसार को स्थिति पर रखते हुए विष्णु और तमोगुण का आश्रय कर संसार का संहार करते हुए हर कहलाते हैं।[2] गीता में श्रीकृष्ण कहते हैं कि अपनी योगमाया से छिपा हुआ मैं सबके प्रत्यक्ष नहीं होता हूँ। यह अज्ञानी मनुष्य मुझ अविनाशी परमात्मा को तत्त्व से नहीं जानता है।[3] किन्तु जो मुझे अजन्मा, अनादि तथा लोकों का महान् ईश्वर तत्त्व से जानता है, वह पापों से मुक्त हो जाता है।[1] गीता के इस वचन को भीष्म द्वारा इस प्रकार कहलाया गया

---

1. गतिर्भर्ता प्रभुः साक्षी निवासः शरणं सुहृत्।
   प्रभवः प्रलयः स्थानं निधानं बीजमव्ययम्।। गीता 9/18
   अविभक्तं च भूतेषु विभक्तमिव च स्थितम्।
   भूतभर्तृ च तज्ज्ञेयं ग्रसिष्णु प्रभविष्णु च।। वही, 13/16
2. पद्मभूतिरिति सृजञ्जगद्रजः सत्त्वमच्युत इति स्थितिं नयन्।
   संहरन्हर इति श्रितस्तमस्त्रैधमेष भजति त्रिभिर्गुणैः॥ शिशुपालवध, 16/6
3. नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः।
   मूढोऽयं नाभिजानाति लोको मामजमव्ययम्। गीता. 8/25

है- श्रीकृष्ण को लोगों द्वारा सत्य आचरणयुक्त होने पर भी मायावी संसार में वृद्ध, अज होने पर भी जन्म धारण करने वाले और नवीन होने पर भी पुराण पुरुष कहा है।

इस प्रकार 'शिशुपालवध' के अनुशीलन से हमें महाकवि माघ के दर्शन के विविध क्षेत्रों में विशिष्ट ज्ञान का सम्यक् परिचय मिलता है। कवि माघ का किसी एक दार्शनिक सम्प्रदाय के प्रति कोई पूर्वाग्रह नहीं था अपितु ये समग्र आस्तिक एवं नास्तिक दर्शनों के प्रति समान रूप से आदर भाव रखते थे। चाहे फिर वह सांख्य योग, पूर्वमीमांसा-उत्तरमीमांसा (वेदान्त), न्याय-वैशेषिक आस्तिक दर्शनों की बात कर रहे हों या फिर बौद्ध जैसे नास्तिक दर्शन की। इनका तो समान रूप से सभी सम्प्रदाय के शास्त्रीय सिद्धान्तों पर पूर्ण अधिकार प्राप्त था। इनके विषय में यह अतिशयोक्ति न होगी कि भारतीय संस्कृत साहित्याकाश के नक्षत्र मण्डल में वैदुष्यपूर्ण काव्य प्रतिभा से महाकवि माघ का स्थान ध्रुव के समान अद्योपरान्त बना हुआ है। महाभारत के छोटे से प्रसंग को इन्होंने अपनी विलक्षण रचना धार्मिक से महाकाव्य का गौरवपूर्ण रूप प्रदान किया। महाकवि ने अपनी उर्वरा कल्पनाशक्ति एवं वर्णन चातुरी द्वारा मूल स्रोत से प्राप्त कथा में नवीन उद्भावनायें करके बीस सर्गों का बृहत् रूप प्रदान किया। कवि का वर्णन कौशल, शब्द चयन की सावधानी एवं नैपुण्य एवं अगाध पाण्डित्य से प्रत्येक सहृदय आकृष्ट हुए बिना नहीं रह सकता है। इनका महाकाव्य सभी उत्कृष्ट काव्यगुणों से परिपूर्ण है- वस्तु संघटना, सामाजिक चित्रण, नगर वर्णन, यात्रा वर्णन[2], युद्ध वर्णन[3] प्रकृति चित्रण तथा मानव प्रकृति का सूक्ष्म विश्लेषण राजनीति के रहस्यात्मक महत्वपूर्ण तत्त्वों का उद्घाटन[4], अलङ्कारों का

---

1. यो मामजमनादि च वेत्ति लोकमहेश्वरम्। असम्मूढः स मर्त्येषु सर्वपापैः प्रमुच्यते। गीता. 10/3
2. शिशुपालवध, सर्ग 3
3. वही, सर्ग 18, 19, 20
4. वही, सर्ग 2, उद्धव व कृष्ण व बलराम की गुप्तमंत्रणा।

उत्कृष्ट प्रयोग, भाव व्यञ्जना एवं रसाभिव्यक्ति, विभिन्न दार्शनिक विषयों का सरस विवेचन, व्याकरण के क्लिष्ट सिद्धान्तों का रसमय पद्धति से प्रतिपादन, आयुर्वेद, ज्योतिष, संगीत, पशुविद्या आदि विविध विषयों का अगाध पाण्डित्य आदि गुण उनके महाकाव्य में प्रतिपद दृष्टिगोचर होता है। महाकवि का साहित्यिक शास्त्रीय पाण्डित्य जितना ख्यातिलब्ध है उतना ही इनका जीवन दर्शन भी उत्कृष्ट कोटि का था, क्योंकि किसी भी रचनाकार व्यक्ति का व्यक्तित्व उसके साहित्य में अवश्य ही प्रतिबिम्बित होता है। महाकवि एक भगवद् भक्त के रूप में अति प्रसिद्ध थे कहा भी गया है- "मुरारिपदचिन्ता चेत्तदा माघे रतिं कुरू" साथ ही अपने जीवन में निष्काम कर्मयोगी प्रतीत होते हैं। अतिसम्पन्न कुलोत्पन्न होकर भी अपना सर्वस्व दान कर दिया प्रबन्धचिन्तामणि एवं भोजप्रबन्ध के अध्ययन से यह ज्ञात होता है। जिससे इनके जीवन की अति उदार झांकी प्रस्तुत होती है। काव्य रसज्ञों एवं विद्वज्जनों की जो उक्ति है- "काव्येषु माघः"[1] यह अतिशयोक्ति न होकर स्वाभावोक्ति ही है। इनका काव्य महाकाव्यों में सर्वश्रेष्ठ है, क्योंकि इसमें जीवन के सभी पक्षों की शास्त्रिय भव्य झांकी देखी जा सकती है। इनके काव्य में प्रायः काव्यगत सभी विशेषतायें दृष्टिगोचर होती हैं। कालिदास की प्रसिद्धि उनकी उपमाओं से है, भारवि अपने अर्थगौरव के लिए लब्धप्रतिष्ठ हैं और पदलालित्य का आनन्द नैषध अथवा दण्डी की रचनाओं में पाया गया है, जिसके लिए वे जगत् में प्रसिद्ध हैं, परन्तु महाकवि माघ में इन तीनों गुणों का समन्वय है। इन्हीं बातों को ध्यान में रखते हुए कहा गया है-

**उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थगौरवम्।**
**दण्डिनः पदलालित्यं माघे सन्ति त्रयो गुणाः॥**

जो इन्हें सर्वश्रेष्ठ महाकाव्यकार कवि के गौरवपूर्ण स्थान में प्रतिष्ठित करती है।

---

1. पुष्पेषु जाती नगरीषु काञ्ची नारीषु रम्भा पुरुषेषु विष्णुः।
नदीषु गङ्गा नृपतौ च रामः काव्येषु माघः कविकालिदासः॥- माघ विषयक प्रशास्ति।

# शिशुपालवध में वैदिक तत्त्व

-डॉ. प्रज्ञा शुक्ला *

ॐ

**नमोऽस्तु तस्यै श्रुतये यां दुहन्ति पदे-पदे।**
**ऋषयः शास्त्रकाराश्च कवश्यच यथामतिः॥**

**श्रुतीनां साङ्गशाखानामितिहासपुराणयोः।**
**आर्षग्रन्थः कथाभ्यासः कवित्वस्यैकमौषधम्॥**

**वेदार्थस्य निबन्धेन श्लाघ्यन्ते कवयो यथा।**
**स्मृतीनामितिहासस्य पुराणस्य तथा तथा॥**[1]

**'वेदप्राणिहितो धर्मो ह्यधर्मस्तद्विपर्ययः।'**[2] इस प्रकार की उक्तियों से सत्साहित्य के सर्जन में वैदिक तत्त्वों की महत्ता स्वयं सिद्ध है।

महाकवि कालिदास के अनुसार-

**सरस्वती श्रुति महती महीयताम्।**

आचार्य भामह साहित्य में वेदविरोधी तत्त्वों को काव्यदोष मानते हैं-

**आगमो धर्मशास्त्राणि लोकसीमा च तत्कृता।**
**तद्विरोधि तदाचारव्यतिक्रमणतो यथा॥**[3]

---

* पूर्व शोधच्छात्र, वेदविभाग, श्री ला.ब.शा.रा.सं.वि.वि., नई दिल्ली

1. काव्यमीमांसा, अष्टमोध्याय, व्याख्याकार गङ्गासागर राय, चौखम्बा विद्याभवन, तृतीय संस्करण 1982, पृष्ठ 79 एवं 81
2. श्रीमद्भागवदतम्, षष्ठस्कन्ध, अध्याय-1, श्लोक सं. 40
3. काव्यालंकार, 4/48

लौकिक संस्कृत महाकाव्यों में आदि के मङ्गलाचरण एवं भरतवाक्य अधिकांशतः ऋक्संहिता का अनुसरण करते हैं। नाट्यशास्त्र में इस तथ्य को स्वीकार किया गया है–

**जग्राह पाठ्यमृग्वेदात् सामभ्यो गीतमेव च।**
**यजुर्वेदादभिनयान् रसनाथर्वणादपि।।**[1]

महाकाव्य सर्जन की इस ज्योतिर्मया परम्परा में समस्त संस्कृत समाज आदिकाल से महाकवि माघ का प्रशंसक रहा है। माघ का यश उनके एक मात्र उपलब्ध ग्रन्थ 'शिशुपालवध' पर अवलम्बित है। कवि ने अपना सर्वस्व इस कृति को अर्पित किया है।

**नेतास्मिन् यदुनन्दनः स भगवान् वीर प्रधानो रसः।**
**शृङ्गारादिभिरङ्गवान् विजयते पूर्णा पुनर्वर्णना।।**

**इन्द्रप्रस्थगमायुपाय विषयश्चैधावसादः फलम्।**
**धन्यो माघकविर्वयं तु कृतिनः तत्सूक्तिः संवेनात्।।**[2]

कवि की अभिरुचि प्रवृत्ति और प्रकृति काव्य को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करती है। महाकवि माघ वेद, पुराण मीमांसा, व्याकरण, कोष, सांख्य योग, वेदान्त, बौद्ध, दर्शन राजनीति, अलंकार, शास्त्र, कामशास्त्र, संगीत, अश्वविद्या, हस्तिविद्या आदि विषयों के मर्मज्ञ विद्वान् थे।[3]

महाकवि माघ ने अपने ग्रन्थ में वेद एवं वेदाङ्गो के महत्त्वपूर्ण तत्त्वों का समावेश किया है। जो निम्न उदाहरणों से ज्ञात होता है–

मीमांसा शास्त्र में निपुण माघ ने 'एकादश सर्ग' में प्रभात वर्णन में 'अग्निहोत्र' का सुन्दर वर्णन प्रस्तुत किया है–

**प्रतिशरणमशीर्णज्योतिरग्न्याहितानां**
**विधिविहितविरिब्धैः सामधेनीरधीत्य।**

---

1. नाट्यशास्त्र, 1/17
2. संस्कृत साहित्य का आलो. इतिहास, रामजी उपाध्याय, पृष्ठ 274
3. महाकवि माघ, जीवनवृत्त, चण्डिका प्रसाद शुक्ल, पृष्ठ 274

**कृतगुरुदुरितौघध्वंसमध्वर्युवर्यै-**
**र्हुतमयमुपलीढे साधु सान्नाय्यमग्निः॥**[1]

यहाँ विरिब्ध शब्द का अर्थ है- एक श्रुति तथा उदात्त, अनुदात्त, स्वरित ये स्वर। इस उद्धरण में माघ ने बतलाया है कि यज्ञ में 'अध्वर्यु' का कार्य करने वाले ब्राह्मण समिधा छोड़ने के मन्त्रों का स्वर सहित पाठ करके विधिपूर्वक अग्निहोत्र का सम्पादन कर रहे हैं। इस वर्णन से यह स्पष्ट हो जाता है कि माघ को वेद व वैदिक स्वर प्रक्रिया का पूर्ण ज्ञान था।

चौदहवें सर्ग में युधिष्ठिर द्वारा किये जा रहे राजसूय यज्ञ का वर्णन यज्ञीय क्रियाओं में उनकी विशेषज्ञता प्रमाणित कराती है। राजसूय यज्ञ के प्रारम्भ में यजमान द्वारा 'अवभृथ स्नान' का उल्लेख है जो यज्ञ के निर्विघ्न पूर्ण होने के बाद किया जाने वाला स्नान विशेष होता है।

**पूर्वमङ्ग जुहुधि त्वमेव वा स्नातवत्यवभृथे ततस्त्वयि।**
**सोमापायिनि भविष्यते मया वांछितोत्तमवितानयाजिना॥**[2]

यज्ञ के ऋत्विज अनुवाक्या (देवता का आह्वाहन करने वाले मन्त्र विशेष) से उच्च स्वरोच्चारणपूर्वक प्रकाशित इन्द्रादि देवता के उद्देश्य से (घृत, पायस आदि हवनीय) पदार्थो को याज्या (यज्ञाङ्ग साधनभूत मन्त्र विशेष) (अग्नि में छोड़ा) अर्थात् वे तत्तद् देवताओं के आह्वाहन के मन्त्रों का उच्च स्वर से उच्चारण कर उन उन देवताओं के उद्देश्य से हवन करने लगे।

**शाब्दितामनपशब्दमुच्चकैर्वाक्यलक्षणविदोऽनुवाक्यया।**
**याज्यया यजनकर्मिणोऽत्यजन्द्रव्यजातमपदिश्य देवताम्॥**[3]

पाणिनी शिक्षा में वैदिक स्वरोच्चारण के विषय में कहा गया है-

**हस्तहीनं तु योऽधीते स्वरवर्णविवर्जितम्।**
**ऋग्यजुः समाभिर्दग्धो वियोनिमधिगच्छति॥**

---

1. शिशु. 11/41
2. वही, 14/10
3. वही, 14/20

**हस्तेन वेदं योऽधीते स्वरवर्णार्थसंयुतम्।**
**ऋग्यजुः सामाभिः पूतो ब्रह्मलोके महीयते।।**[1]

हस्त सञ्चालन के द्वारा स्वरोच्चारण न करने पर उच्चारण करने वाले का वियोनि में जन्म होता है तथा हस्त सञ्चालन के द्वारा स्वर वर्ण तथा अर्थ के साथ मन्त्रों का उच्चारण करने वाला ऋगादि वेदों से पवित्र होकर ब्रह्मलोक में पूजित होता है।

वेदोच्चारण के ज्ञान के आधार पर ही माघ ने राजसूय यज्ञ में किस प्रकार सामवेत्ता हस्तसंचालन द्वारा सात स्वरों की कल्पना के साथ सामगान करते थे और होता अध्वर्यु आदि ऋक् एवं यजुष् का पाठ करते थे इसका विवेचन निम्न श्लोकों में किया है-

**सप्तभेदकरकल्पितस्वरं साम सामविदसङ्गमुज्जगौ।**
**तत्र सूनृतगिरश्च सूरयः पुण्यमृग्यजुषमध्यगीषत।।**[2]

सामवेद के ज्ञाता हाथ के सञ्चालन विशेष से व्यक्त किये गये निषादादि सात स्वरों वाले सामवेद को स्खलन रहित हुए उच्च स्वर से गाने लगे और सत्य तथा प्रिय बोलने वाले (होता आदि) विद्वान् लोग कल्याणकारक ऋग्वेद और यजुर्वेद पढ़ने लगे।

**लोलहेतिरसनाशतप्रभामण्डलेन लसता हसन्निव।**
**प्राज्यमाज्यमसकृद्वषट्कृतं निर्मलीमसमलीढ पावकः।।**[3]

प्रकाशित होती हुई चञ्चल ज्वाला सैकड़ों जिह्वाओं के प्रभासमूह से मानो हंसते हुए अग्नि में मलिनता रहित अर्थात् शुद्ध और 'वषट्' शब्दोच्चारणपूर्वक छोड़े गये प्रचुर घी का अनेक बार आस्वादन किया अर्थात् 'वषट्' कहकर छोड़े गये घृत को हवनकुण्ड में छोड़ने पर अग्निज्वाला तीव्र हो गयी।

---

1. पाणिनीय शिक्षा, श्लोक 54-55
2. शिशु. 14/21
3. वही, 14/25

अन्य श्लोक में कवि ने वर्णन किया है–

**एक एव सुसखैष सुन्वतां शौरिरित्यभिनयादिवोच्चकैः।**
**यूपरूपकमनीनमद् भुजं भूश्चषालतुलिताङ्गुलीयकम्।।**[1]

यहाँ माघ ने 'चषाल' एवं यूप के बारे में बताया है। 'चषाल' 'यज्ञस्तम्भ के मध्य में गोला वलयाकार बनाया गया चिह्नविशेष' होता है एवं 'यूप' 'यज्ञपशु बांधे जाने वाले स्तम्भ' को कहा जाता है।

राजसूय यज्ञ के अन्त में युधिष्ठिर के द्वारा अर्घ योग्य व्यक्ति के विषय में पूछने पर भीष्म उत्तर देते हैं–

**स्नातकं गुरुमभीष्टमृत्विजं संयुजा च सह मेदिनीपतिम्।**
**अर्घभाज इति कीर्तयन्ति षट् ते च ते युगपदागताः सदः।।**[2]

सदाचारी गृहस्थ विशेष, गुरुजन, इष्टबन्धु, ऋत्विज, जामाता और राजा ये छः अर्घ प्राप्त के योग्य हैं।

इसका सन्दर्भ 'पारस्करगृह्यसूत्र' में प्राप्त होता है

**षडर्घ्या भवन्त्याचार्य ऋत्विग्वै-**
**वाह्यो राजा प्रियः स्नातकः इति।**[3]

प्रातिशाख्य के अनुसार **'अनुदात्तं पदमेकवर्जम्'**[4] से एक पद में होने वाले उदात्त द्वारा अन्य स्वरों से अनुदात्त हो जाते हैं और इस भाँति एक स्वर के उदात्त होने से अन्य स्वर निघात हो जाते हैं। स्वर विषयक इस नियम का महाकवि द्वारा प्रतिपादन उद्धव के मुख से करवाया–

**तदीशितारं चेदीनां भवांस्तमवमंस्त मा।**
**निहन्त्यरीनेकपदे यः उदात्तः स्वरानिव।।**[5]

---

1. शिशु. 14/52
2. वही, 14/55
3. पारस्कर गृह्यसूत्रा, प्रथम खण्ड, तृतीय कण्डिका प्रथम, 1/3/1
4. बाजसनेयी प्रातिशाख्य
5. शिशु. 2/95

जिस प्रकार एक पद में उदात्त स्वर अन्य स्वरों को निघात बना दिया करता है उसी प्रकार जो शिशुपाल शत्रुओं को नष्ट करता है उसकी आप द्वारा उपेक्षा नहीं की जा सकती।

वेदों में सभी विभक्तियों एवं लिङ्गों में तो मन्त्र कहे नहीं गये हैं। उन्हें यज्ञकर्म में प्रयोग करने वाले 'ऊह' कुशल विद्वान् यथोचित् विभाषित एवं लिङ्ग में परिणत कर देते हैं।

**नाञ्जसा निगदितुं विभक्तिभिर्व्यक्तिभिश्च निखिलाभिरागमे।**
**तत्र कर्मणि विपर्यणीनमन् मन्त्रमूहकुशलाः प्रयोगिणः॥**[1]

उस यज्ञ क्रिया में ऊह दूसरे रूप में प्रतिपादित शब्दों का लिङ्ग वचनादि के भेद से परिवर्तन करने में निपुण प्रयोक्ता (ऋत्विज्) लोग शास्त्र में सब विभक्तियों से कहना शक्य नहीं है। (अतएव आवश्यकतानुसार 'उन उन स्थलों में') मन्त्र के विभक्ति वचनों तथा लिङ्गों को परिवर्तित कर देते हैं।

**संशयाय दधतोः सरूपतां दूरभिन्नफलयोः क्रियां प्रति।**
**शब्दशासनविदः समासयोविग्रहं व्यवससुः स्वरेण ते॥**[2]

अर्थात् व्याकरण शास्त्र के ज्ञाता ऋत्विज् सन्देह (उत्पन्न करने) के लिए समान रूप वाले अर्थात् समान रूप होने से सन्देहोत्पादक (किन्तु) कार्य के प्रति भिन्न फल देने वाले दो समासों के विग्रह का स्वर के द्वारा निर्णय करते। इस प्रकार व्याकरण अध्ययन के पांच मुख्य प्रयोजनों का निरूपण करते हुए महाभाष्यकार ने–

**'रक्षोहागमलध्वसन्देहाः प्रयोजनम्'**[3] के अन्तर्गत ऊह असन्देह का व्याख्यान किया है।

माघ ने उपमा के प्रयोग के लिए भी वेदों का आश्रय लिया है। द्वादश सर्ग में सेना की दुर्भेधता को वर्णित करने में सामवेद की कठिनता के साथ उसकी समानता प्रस्तुत की है–

1. शिशु. 14/23
2. वही, 14/24
3. महाभाष्य परस्पशाह्निक

**नानाविधाविष्कृतसामजस्वरः सहस्रवर्त्मा चपलैर्दुरध्ययः।**
**गान्धर्वभूयिष्ठतया समानतां च सामवेदस्य दधौ बलोदधिः।।**[1]

तृतीय सर्ग में स्मृतियों की रचना का उदाहरण लेकर उसे उपमा के रूप में वर्णित किया है–

**आलोकयामास हरिः पतन्तीर्नदीः स्मृतीर्वेदमिवाम्बुराशिम्।**[2]

मुनीश्वरों के द्वारा वेद से अभिप्राय को लेकर रची गयी तथा वेद में ही प्रविष्ट होती हुई स्मृतियों के समान मेघों के द्वारा समुद्र से ही जल को वृष्टि द्वारा तैयार की गयी तथा पुनः समुद्र में प्रवेश करती हुई नदियों को भगवान् श्रीकृष्ण ने देखा।

पञ्चदश सर्ग में शिशुपाल के पीछे जाते राजकुमारों को यज्ञस्थल से स्वतन्त्र जाने वाले यज्ञीय घोड़े के पीछे जाते राजकुमारों की तरह बताया है–

**चलितं ततोऽनभिहतेच्छमवनिपतिं यज्ञभूमितः।**
**तूर्णमथ ययुमिवानुययुर्दमघोषसूनुमवनीशसूनवः।।**[3]

प्रस्तुत उदाहरणों के अतिरिक्त माघ ने अन्यत्र भी वैदिक तत्त्वों का उल्लेख किया है। प्रथम सर्ग में 'यज्वा' शब्द का प्रयोग जिसका अर्थ 'विधिवत् यज्ञ करने वाला' होता है–

**प्रकाममप्रीयत यज्वनां प्रियः।**[4]

द्वितीय सर्ग में 'अग्नित्रय' का विवेचन है–

**व्यद्योतिष्ट सभावेद्यामसौ नरशिखित्रयी।**[5]

अन्य श्लोक में 'पुरोडाश' उल्लेख हैं–

**पुरोडाशभुजामिष्टमिष्टं कर्तुमलन्तराम्।**[6]

---

1. शिशु. 12/11
2. वही, 3/75
3. वही, 15/69
4. वही, 1/17
5. वही, 2/3
6. वही, 2/106

इस प्रकार माघ ने अपने महाकाव्य में वैदिक तत्वों के अत्यन्त वैदुष्यपूर्ण प्रयोग किये हैं। महाकवि के गम्भीर पाण्डित्य एवं बहुज्ञता को समझने के लिए पाठक को बहुज्ञ एवं अनुभवशील होना आवश्यक है जो सतत् अध्ययन से ही प्राप्त हो सकता है, क्योंकि माघ का काव्य वस्तुतः एक अगाध रत्नाकर है।

**संन्दर्भ ग्रंथसूची-**


1. ऋक्प्रातिशाख्य (शौनकविरचित), सम्पादक- डॉ. वीरेन्द्र कुमार वर्मा, 1986, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।
2. ऋग्वेद संहिता, श्रीदामोदरसातवलेकर, चतुर्थ संस्करण, स्वाध्याय मण्डल पारडी, बलसाड।
3. पाणिनीय शिक्षा- श्री गुरुप्रसादशास्त्री, प्रथम संस्करण 2005, भार्गव पुस्तकालय, गायघाट काशी।
4. पारस्कर गृह्यसूत्र, हरिहर भाष्य तथा हिन्दी व्याख्या सहित, सम्पादक- ओम् प्रकाश पाण्डेय, चौखम्बा अमर भारतीय प्रकाशन, वाराणसी।
5. माघकवि-चण्डिका प्रसाद शुक्ला, दिल्ली संस्कृत अकादमी।
6. महाभाष्यपस्पशाह्निक- भगवत् पतञ्जलि विरचित चारुदेव शास्त्री, श्री मोतीलाल बनारसी दास।
7. वाजनसनेयी प्रातिशाख्य- हिन्दी अनुवाद संहिता वी.के.वर्मा, 1888 वाराणसी।
8. वैदिक साहित्य का इतिहास- आचार्य बलदेव उपाध्याय, पुनर्मुद्रण-2001, शारदा निकेतन, वाराणसी।
9. वैदिक व्याकरण, आर्थर एन्थोनी मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी।
10. शिशुपालवधम्- टीकाकार श्री पण्डित हरगोविन्द शास्त्री, पुनर्मुद्रित संस्करण-2000, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।
11. सामवेद संहिता, सं. सातवलेकर, 1939, स्वाध्यायमण्डल पारडी, बलसाड।

# शिशुपालवध महाकाव्य का सामाजिक-विवेचन

-श्रीमती वैदेही तिवारी*

आदिकवि महर्षि वाल्मीकि के रामायण महाकाव्य और महर्षि वेदव्यास द्वारा रचित महाभारत को आदर्श मानकर अनेक परवर्ती संस्कृत कवियों ने अलंकृत शैली में अनेक काव्यों-महाकाव्यों की रचना की। संस्कृत के महाकाव्यों में रघुवंश, कुमारसम्भव, किरातार्जुनीय, शिशुपालवध एवं नैषधीयचरित का श्री प्रभुत्व माना जाता है। जिनमें शिशुपालवध महाकाव्य की गणना कनिष्ठिका पर सर्वोपरि है। माघकाव्य संस्कृत काव्य जगत् का एक विशिष्ट महाकाव्य है और कालिदास की अमर रचनाओं से कुछ ऊँचा ही स्थान पण्डित समाज इसे देता है-

**पुष्पेषु चम्पा, नगरीषु लङ्का**
**काव्येषु माघः, कविः कालिदासः।**

पण्डित समाज ने महाकवि माघ को कवियों में सर्वोच्च पद पर प्रतिष्ठित किया है-

**उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थगौरवम्।**
**दण्डिनः पदलालित्यं माघे सन्ति त्रयो गुणाः॥**

**जीवनवृत्त-**

माघ के जीवन वृत्त के सम्बन्ध में प्रामाणिक और अर्धप्रामाणिक साधनों का अस्तित्व है। प्रामाणिक साधन स्वयं माघ-द्वारा शिशुपालवध

* पूर्व शोधच्छात्रा, साहित्यविभाग, श्री.ला.ब.शा.रा. संस्कृत विश्वविद्यालय, नई दिल्ली-16

के अन्त में दिया गया कवि का स्ववंश-वर्णन है जिसमें पाँच पद्य हैं। अर्ध-प्रामाणिक साधन कुछ कथा-ग्रन्थ हैं जिसमें माघ के विषय में प्रचलित प्राचीन दन्तकथाओं को समाविष्ट किया गया है, बल्लालसेनकृत 'भोजप्रबन्ध' (16 वी. शताब्दी) मेरूतुङ्ग नाम जैन कवि प्रबन्धचिन्तामणि (1360 ई.), प्रभाचन्द्र-कृत प्रभावकचरित (1200 ई.) तथा जैन-ग्रन्थ पुरातन प्रबन्ध संग्रह आदि हैं।

शिशुपालवध के अन्त में स्वयं माघ द्वारा दिये गए वंश-वर्णन के अनुसार इनके पितामह सुप्रभदेव राजा वर्मलात के सर्वाधिकारी (प्रधानमंत्री या दीवान) थे। राजा वर्मलात के एक शिलालेख को **"वसन्तगढ़-शिलालेख"** कहते हैं। इसमें 682 संवत् का उल्लेख है-

**द्विरशीत्यधिके काले षण्णां वर्षशतोत्तरे।**
**जगन्मातुरिकं स्थानं स्थापितं गोष्ठिपुंगवैः॥**

इसे विक्रम संवत् मानकर वर्मलात एवं सुप्रभदेव का काल 625 ई. सिद्ध किया जाता है। इस आधार पर सुप्रभदेव की तीसरी पीढ़ी में होने वाले माघ को 675 ई. के अनन्तर माना जा सकता है। अधिसंख्यक विद्वान् 700 ई. के आसपास ही माघ को स्वीकार करने के पक्षधर हैं।

'श्रियः' इस मङ्गलप्रिय शब्द से आरम्भ होने वाले इस महाकाव्य में वस्तुनिर्देश के रूप में ही उपक्रम हुआ है। इसके नायक श्रीकृष्ण हैं। जो यदुपति तथा विष्णु के अवतार हैं। श्रीकृष्ण आधारित इस महाकाव्य का प्रधान रस वीर है जिसमें शिशुपाल व श्रीकृष्ण के युद्ध का वर्णन किया गया है। अन्य रसों में शृंगार हास्य, अद्भुत, भयानक इत्यादि का स्वाभाविक रूप से निवेश हुआ है।

शिशुपाल जैसे दुष्ट के वध से कृष्ण द्वारा धर्म की स्थापना इस काव्य का सुरम्य फल है। मल्लिनाथ ने इस महाकाव्य की संक्षिप्त विशिष्टता का निरूपण इस प्रकार किया है-

**नेतास्मिन् यदुनन्दनः स भगवान् वीरप्रधानो रसः**
**शृङ्गारादिभिरङ्गवान् विजयते पूर्णा पुनवर्णना।**
**इन्द्रप्रस्थगमाद्युपाय विषयश्चैद्यावसादः फलं**
**धन्यो माघकविर्वयं तु कृतिनस्तत्सूक्तिः संसेवनात्॥**

माघकवि की एकमात्र यह कृति 20 सर्गों के महाकाव्य के रूप में है। देवर्षिनारद के द्वारा इन्द्र का सन्देश द्वारकापुरी में कृष्ण को मिलता है जिसमें शिशुपाल के अत्याचार से जगत् रक्षा की प्रार्थना की है। भगवान् कृष्ण को युधिष्ठिर का इन्द्रप्रस्थ में राजसूययज्ञ के लिए आमन्त्रण प्राप्त होता है। इस कर्तव्य संकट की स्थिति में कृष्ण, बलराम और उद्धव से मन्त्रणा करते हैं। क्रोधित बलराम शिशुपाल पर आक्रमण का प्रस्ताव देते हैं, किन्तु उद्धव अत्यन्त गम्भीर विवेचना से यह स्थापित करते हैं कि युधिष्ठिर का यज्ञ में सेना सहित जाना उचित होगा। तदनुसार कृष्ण इन्द्रप्रस्थ के लिए प्रस्थान करते हैं तथा मार्ग में विविध दृश्यों को देखते हुए वहाँ पहुँचते हैं। यज्ञ में भीष्म द्वारा कृष्ण का सम्मान होने पर शिशुपाल कुपित हो पाता है और उनके प्रति अशिष्ट व्यवहार करता है और कृष्ण उसका वध कर देते हैं। इस मूल कथानक को माघ ने कलात्मकता और विविध-वर्णनों का प्रयोग करके अतुलनीय बना दिया है।

शिशुपालवध महाकाव्य का कथानक अंशतः विष्णुपुराण, श्रीमद्भगवद्गीता और प्रचुर रूप में महाभारताश्रिय है। अतः इसमें किञ्चित् संदेह नहीं है कि इस महाकाव्य की सामाजिक स्थिति विष्णुपुराण श्रीमद्भगवद्गीता महाभारत के समाज से अवश्यमेव समानता रखती है, परन्तु इसके कर्ता का काल सातवीं शताब्दी के लगभग है। अतः इसमें अधिकतया में तत्कालीन समाज का ही चित्रण प्राप्त होगा। अतः इन दोनों कालों को आधार मानकर महाकवि माघ के महाकाव्य 'शिशुपालवध की सामाजिक स्थिति का वर्णन' करने का प्रयास यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है-

माघ ने किसी भी विषय का वर्णन सूक्ष्म-निरीक्षण के साथ किया

है। साथ ही अतिशय गहन विषयों का भी वर्णन इन्होंने ऐसी सरलता से किया है कि विषय दर्पण के समान अभिलक्षित होता है।

**देवतावाद व मूर्तिपूजा-**

तत्कालीन समाज में देवतावाद और मूर्तिपूजा का प्रचलन था, शिव और विष्णु प्रमुख देवता थे। ये दोनों वैदिक देवता समाज में अधिक संपूज्य थे। प्रथम सर्ग में नारदकृत तथा चतुर्दश सर्ग में भीष्मपितामहकृत कृष्णस्तुति से यह स्पष्ट ही है कि महाकवि माघ सनातन वैदिक धर्म के अनुयायी एवं परम्परागत परिपाटी के पोषक थे।

जनता की भक्ति और निष्ठा के कारण महाकवि माघ ने बुद्ध तथा महावीर स्वामी को भी देवत्व की कोटि में रखा है। श्रीकृष्ण को मानवीय सृष्टि के कार्य कलापों का विधाता कर्मनियन्ता और अद्वितीय शक्ति के रूप में माना गया है।

**पुर्नजन्म में विश्वास-**

देवतावाद के साथ पुनर्जन्म में विश्वास भी तत्कालीन समाज में दृष्टिगत होता है। प्रथम सर्ग में ही नारद द्वारा भगवान् श्रीकृष्ण तथा शिशुपाल के पुर्नजन्म के विषय में महाकवि माघ ने संकेत दिए हैं-

**लघूकरिष्यन्नतिभारभमङ्गुराममूं किल त्वं त्रिदिवादवातरः।**
**उदूढलोकत्रितयेन साम्प्रतं गुरुर्धरित्री क्रियतेतरां त्वया।।**[1]

इसी प्रकार नारदमुनि ने शिशुपाल के भी पुर्नजन्म का वर्णन किया है कि प्रथम जन्म में वह हिरण्यकश्यप था उसके बाद 'रावण' और तत्पश्चात् शिशुपाल के रूप में अवतरित हुआ है-

**विनोदमिच्छन्नथ दर्पजन्मनो रणेन कण्ड्वास्त्रिदशैः समं पुनः।**
**स रावणो नाम निकामभीषणं बभूव रक्षः क्षतरक्षणं दिवः।।**[2]

---

1. शिशुपालवध, 1/36
2. वही, 1/48

और भी–

**अधोपपत्तिं छलनापरोऽपरामवाप्य शैलूष इवैष भूमिकाम्।**
**तिरोहितात्मा शिशुपालसंज्ञया प्रतीयते सम्प्रति सोऽप्यसः परैः।।**[1]

## विवाह का विधान–

तत्कालीन समाज जागरूक था क्योंकि तब विवाह बाल्यकाल में नहीं किए जाते थे। पूर्ण वयस अर्थात् युवावस्था प्राप्त होने पर ही स्त्री–पुरुषों के विवाह का विधान था। विजातीय विवाह होते थे। विवाह संस्कार सम्पन्न हो जाने के अनन्तर जब कन्या पतिगृह जाती थी तो ग्राम सीमा या नदी तट तक उसे विदा करने के लिए जाया जाता था। आज की ही भाँति इस दृश्य का माघ ने बड़ा ही सजीव वर्णन शिशुपालवध में किया है–

**अपशङ्कमङ्कपरिर्तनोचिताश्चलिताः पुरः पतिमुपैतुमात्मजाः।**
**अनुरोदतीव करुणेन पत्रिणां विरूतेन वत्सलतयैष निम्नगाः।।**[2]

इस प्रकार का वर्णन हमें अभिज्ञानशाकुन्तलम् के विदाई नामक चतुर्थ अङ्क में भी प्राप्त होता है जब शकुन्तला की विदाई के समय कण्व ऋषि नदी के तट तक जाते हैं।

## शिक्षित समाज–

तत्कालीन समाज शिक्षित समाज की कोटि में आता था। जहाँ पुरुष तो शिक्षित थे ही तथा स्त्रियों की शिक्षा–दीक्षा का भी पर्याप्त प्रचलन था। मर्यादा और शीला रक्षा का मुख्य कर्तव्य था। वे रणांगण में अपने वीर पतियों के साथ युद्ध में भाग लिया करती थीं, इसलिए शास्त्र के साथ शस्त्रशिक्षा की भी उनके लिए व्यवस्था हुआ करती थी। स्त्री पुरुषों को समान अधिकार प्राप्त थे और नृत्य–संगीत आदि कलाओं के सार्वजनिक आयोजनों में भाग लेना उनकी प्रकृत अभिरूचि थी। परन्तु

---

1. शिशुपालवध, 1/69
2. वही, 4/47

तत्कालीन समाज के कुछ वर्गों में पर्दा प्रथा का भी प्रचलन था। इसका संकेत हमें शिशुपालवध के पञ्चम सर्ग में प्राप्त होता है-

**यानाज्जनः परिजनैरवतार्यमाणा**
**राज्ञीनरापनयनाकुलसौविदल्लाः।**
**स्रस्तावगुण्ठर्नपटाः क्षणलक्ष्यमाण-**
**वक्त्रश्रियः स भयकौतुकमीक्षते स्म॥**[1]

**व्यापारिक सम्बन्ध-**

माघ के समय में भारतवर्ष में दूसरे देशों के व्यापारी व्यापार करने के लिए जहाजों द्वारा आया करते थे, इस प्रकार भारतवर्ष की वस्तुओं का दूसरे देशों में निर्यात तथा दूसरे देशों की वस्तुओं का भारतवर्ष में आयात भी विदित होता है। यथा-

**विक्रीय दिश्यानि धनान्युरूणि द्वैप्यानसावुत्तमलाभभाजः।**
**तरीषु तत्रात्यमफल्गुभाण्डं सांयात्रिकानावपतोऽभ्यनन्दत्॥**[2]

तत्कालीन सामाजिक जीवन नगरों और ग्रामों में विभक्त था। ग्रामीण जनता कृषि पशुपालन और घरेलू लघु-उद्योग करती थी। नगरों के लोग व्यापार तथा बड़े उद्योग करते थे। कुछ लोग राज वृत्ति पर निर्भर थे, ग्राम्य-नगर जीवन अत्यंत सुखी और आनंदित था। लोग स्व रूचि और स्थिति के अनुरूप मनोविनोद किया करते थे। नृत्य तथा संगीत गोष्ठियों का अधिक प्रचलन था।

**तत्कालीन वेषभूषा और आभूषण-**

तत्कालीन युग की संस्कृति का सुपरिचय सामाजिक जीवन की वेशभूषा से दृष्टिगत होता है। स्त्री-पुरुषों की वेश-भूषा के सम्बन्ध में माघ ने कतिपय स्थलों पर वर्णन किया है। ऐसा प्रतीत होता है कि विभिन्न प्रकार के आङ्गिक आभूषणों को धारण करने में स्त्रियों की

1. शिशुपालवध, 5/17
2. वही, 3/76

अत्यंत रूचि थी। यथा- कर्णफूल, करधनी, नुपुर-हार और कंगन उस समय के सर्वप्रचलित आभूषण थे। इसी प्रकार साधन के लिए महावर, लालचंदन-आलता और अंजन आदि विभिन्न सौंदर्य-वर्धक रंगों का उपयोग किया जाता था।

स्त्रियाँ वस्त्रों में महीन कपड़ो की साड़ियाँ (कञ्चुकी, लहँगा और ओढ़नी) धारण करती थी।

**रभसेन हारपददत्तकाञ्चयः प्रतिमूर्धजं निहितकर्णपूरकाः।**
**परिवर्तिताम्बरयुगाः समापतन्वलयीकृतश्रवणपूरकाः स्त्रियः।।**[1]

पुरुषों के वस्त्रों में धोती, कंचुक, उष्णीय और उपानय का सामान्य प्रचलन था तथा हार, कुण्डल और कंगन भी धारण करते थे।

**योग तथा समाधि-**

तत्कालीन समाज में जनसामान्य में कुछ जन योग तथा समाधि भी लगाया करते थे। जैसा कि रैवतक पर्वत के वर्णन में हमें प्राप्त होता है। यह पर्वत मात्र भोगभूमि ही नहीं अपितु सिद्धभूमि भी था क्योंकि यहाँ पर मैत्री आदि चारों वृत्तियों के ज्ञाता अविद्या आदि पाँच क्लेशों का त्यागकर सबीज योग को प्राप्त किए हुए ऐसे बहुत से सिद्ध पुरुष निवास करते थे-

**मैत्र्यादिचित्तपरिकर्मविदो विधाय**
**क्लेशप्रहाणमिह लब्धसबीजयोगाः।**
**ख्यातिं च सत्वपुरुषान्यतयाधिगम्य**
**वाञ्छन्ति तामपि समाधिभृतो न रोद्धुम्।।**[2]

अर्थात् इस रैवतक पर्वत पर समाधि धारण करने वाले योगी लोग मैत्री आदि चित्तवृत्तियों को जानकर अर्थात् चित्तशोधक वृत्तियों से अन्तः करण की मलिनता दूर कर तथा अविद्या आदि पाँच क्लेशों को नष्ट कर सबीज योग को प्राप्त करते हैं।

---

1. शिशुपालवध, 13/32
2. वही, 4/55

**स्त्रियों द्वारा मद्यपान-**

पाश्चात्य संस्कृति से प्रेरित अधिकांशतः मद्यपान करने वाली आधुनिक स्त्रियों के समान उस समय की स्त्रियाँ भी मद्यपान करती थीं। जैसा शिशुपालवध के दशम् सर्ग से ज्ञात होता है-

**प्रातिभं त्रिसरकेण गतानां वक्रवाक्यरचनारमणीयः।**
**गूढसूचितरहस्यसहासः सुभ्रुवां प्रववृत्ते परिहासः।।**[1]

अर्थात्- अधिक मद्यपान करने से नशा बढ़ जाने पर रमणियाँ व्यर्थ ही बोलती हुई, काम-सम्बन्धी गुप्त रहस्यों को भी कहती हुई हँस-हँसकर कटाक्ष आदि के साथ चातुर्यपूर्ण बातें कर रही थीं। कोई नवोढ़ा रमणी मद्य के नशे में लज्जारहित हो अर्द्धोन्मीलित नेत्र से पति को देख रही थी। मद्यपान वशात् लाल नेत्रों वाली कोई रमणी पहले छिपायी गई अपनी कामवसना को बाद में वही गोपनीय बात प्रियतम से प्रकाशित करने लगी।

**सम्बन्धों की महत्ता-**

आधुनिक समाज में भले ही प्रत्येक सम्बन्धों को अधिक महत्त्व न दिया जाता हो परन्तु नन्द-नन्दोई बुआ-फूफा आदि को आज भी भारतीय समाज में पूज्य माना जाता है। इस प्रकार के सम्बन्ध को महाकवि के काल में भी महत्ता दी जाती थी जो हमें शिशुपालवध के त्रयोदश सर्ग में दृष्टिगत होता है-

**वपुषा पुराणपुरुषः पुरःक्षितौ**
**परिपुञ्ज्यमानपृथुहारयष्टिना।**
**भुवनैर्नतोऽपि विहितात्मगौरवः**
**प्रणनाम नाम तनयं पितृष्वसुः।।**[2]

जब भगवान् श्रीकृष्ण को दूर से ही देखकर युधिष्ठिर रथ से

---

1. शिशुपालवध, 10/12
2. वही, 13/8

उतर पड़े, तब युधिष्ठिर के प्रेमवशात् त्रिलोकवन्दित भगवान् श्रीकृष्ण ने बुआ के पुत्र युधिष्ठिर को नम्र होकर प्रणाम किया।

निःसन्देह महाकवि माघ ने सम्बन्धों की महत्ता को दृष्टिगत कराने के लिए ही इस तथ्य को उजागर किया है।

**दानादि की प्रथा–**

महाकवि माघ के काल में भी किसी भी शुभ कार्य के पश्चात् ब्राह्मणों के दान आदि की प्रथा थी जो कि आज भी प्रचलित है। शिशुपालवध में भी हमें ऐसा प्रसंग चतुर्दश सर्ग में प्राप्त होता है जब महाराज युधिष्ठिर अपने यज्ञ को समाप्त करने के पश्चात् ब्राह्मणों को यथेच्छ दक्षिणा देकर सन्तुष्ट कर रहे थे–

**आगताद्व्यवसितेन चेतसा सत्वसम्पदविकारिमानसः।**
**तत्र नाभवदसौ महाहवे शात्रवादिव पराङ्मुखोऽर्थिनः।।**[1]

**उपसंहार**

शिशुपालवध महाकाव्य की कथावस्तु महाभारत के सभा पर्व से उद्धृत है। घण्टा उपाधि से विभूषित माघ ने सामाजिक चित्रण के विविध वर्णन द्वारा अपने महाकाव्य को सुसज्जित किया है। उपरोक्त वर्णन से सुविदित ही है कि माघ के वर्णित समाज में जन सुसभ्य तथा व्यापारिक सम्बन्ध प्रगाढ़ थे। जन समूह आस्तिक होकर, पुण्य कर्मों में परस्पर सहचर होते थे। आधुनिक युग के समान तत्कालीन स्त्रियाँ भी मद्यपान करती थीं, स्त्रियों पुरुषों की वेशभूषा भी सौन्दर्यवर्धक थी।

माघ के समाज में योग–समाधि का भी पूर्ण ज्ञान था। अतः इन तथ्यों से स्पष्ट है कि माघ के समाज में मद्यपान जैसा दोष तो था परन्तु अनेक गुणों से उनका समाज पूर्णरूपेण आवरित था। शिशुपालवध महाकाव्य में माघ द्वारा वर्णित समाज अनुपम व अतुलनीय भारतीय–संस्कृति का पोषक तथा संवर्द्धक है।

---

1. शिशुपालवध, 14/44

# माघकृत शिशुपालवधम् में वर्णित समाज-व्यवस्था का स्वरूप

**- सुषमा देवी***

प्रस्तुत शोध-पत्र का विषय "माघकृत शिशुपालवधम् में वर्णित समाज-व्यवस्था का स्वरूप" है, जिसके अन्तर्गत शिशुपालवधम् नामक महाकाव्य में वर्णित समाज की रूपरेखा को व्याख्यायित करने का प्रयास किया गया है, माघ की एकमात्र रचना शिशुपालवधम् बृहत्त्रयी में परिगणित की जाती है। यद्यपि माघ ने महाभारत के सभापर्व को आधार बनाकर शिशुपालवधम् नामक महाकाव्य की रचना की है। वेदव्यासकृत महाभारत भारतीय सभ्यता, संस्कृति, ज्ञान-विज्ञान व आदर्शपूर्ण आख्यानों का प्रतिनिधि ग्रन्थ है।

**धर्मे चार्थे च कामे च मोक्षे च भरतर्षभ।**
**यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत्क्वचित्।।**[1]

पुरुषार्थ चतुष्ट्य (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष), ज्ञान, भक्ति, उपसना, कर्मकाण्ड और धर्मोपदेश समस्तज्ञान और जीवन-दर्शन की व्याख्या की गई है। यह रचना भावी कवियों के लिए उसी प्रकार आश्रय होगा जिस प्रकार प्राणियों के लिए- मेघ-सर्वेषां कवि मुख्यानामुपजीव्यो भविष्यति। पर्जन्य इव भूतानामक्षयो भारतद्रुमः॥ महाभारत के नामकरण का उल्लेख मिलता है– "महत्त्वाद् भारवत्वाच्च महाभारतमुच्यते" अर्थात् महत्त्व और भार (आकार की विशालता) के कारण यह महाभारत कहा गया।[2]

---

* पूर्व शोधच्छात्रा, संस्कृत एवं प्राच्य विद्या अध्ययन केन्द्र, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

1. डॉ. रामशरण गौण, भारतीय संस्कृति के आधार-स्त्रोत, पृ.सं. 96
2. डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, संस्कृत साहित्य का अभिनव इतिहास, पृ.सं. 77

महाभारत-समय - 500 ई. पू और माघ का समय- 675 ई.पू. महाभारत में कतिपय परिवर्तन भी हुए जिसमें महाभारत के तीन पृथक-पृथक नामों का उल्लेख है-

| ग्रन्थ नाम | कर्ता | श्लोक संख्या | वक्ता-श्रोता | अवसर |
|---|---|---|---|---|
| जय | व्यास | 8800 | व्यास-वैशम्पायन | धर्म-चर्चा |
| भारत | वैशम्पायन | 24000 | वैशम्पायन-जनमेजय | नागयज्ञ |
| महाभारत | सौति | 1 लाख | सौति-शौनक आदि | नैमिषारण्य में यज्ञ |

**महाभारत वर्ण्य विषय**- महाभारत को इतिहास पुराण के साथ ही आख्यान कहा गया है। महाभारत 18 पर्वों में विभक्त है, इसमें कौरवों-पाण्डवों का वंश के वर्णन से लेकर उनके युद्ध तथा पाण्डवों के स्वर्गारोहण तक की कथा का वर्णन है। 18 पर्व हैं- आदि, सभा, विराट, उद्योग, द्रोण, कर्ण, शल्य, सौप्तिक, स्त्री, शान्ति, अनुशासन, अश्वमेध, आश्रमवासी, मौसल, महाप्रास्थानिक और स्वर्गारोहण। आदि पर्व में चन्द्रवंश के विस्तृत इतिहास तथा कौरवों की उत्पत्ति का वर्णन, सभा पर्व में द्यूतक्रीडा। महाभारत आख्यान-नलोपाख्यान, शकुन्तलोपाख्यान, रामोपाख्यान, मत्स्योपाख्यान, सावित्री-उपाख्यान तथा शिवि-उपाख्यान। महाभारत को ज्ञान और धर्म का विश्वकोश कहा गया है, जीवनदर्शन का प्रतिपादन किया गया है, वर्णाश्रम धर्म और निष्काम कर्म का अनुपालन गीता का उद्देश्य है इस विषय में डॉ. रामशरण ने पाश्चात्य मतों को भी उद्धृत किया है।[1]

**महाभारत पर आधारित प्रमुख ग्रन्थ**- महाभारत को मूल स्त्रोत के रूप में धारण करते हुए ग्रन्थों की रचनाएँ की हैं।

| **काव्य-ग्रन्थ** | **नाटक-ग्रन्थ** | **चम्पू-ग्रन्थ** |
|---|---|---|
| भारविकृत किरातार्जुनीयम्, | भासकृत-दूत-घटोत्कच | त्रिविक्रमभट्ट-नलचम्पू |
| माघकृत शिशुपालवधम्, | दूतवाक्य, कणभार, मध्यमव्यायोग, | अनन्तभट्ट-भारतचम्पू |

1. डॉ. रामशरण गौण, भारतीय संस्कृति के आधार-स्त्रोत, पृ.सं. 77

| | | |
|---|---|---|
| क्षेमेन्द्रकृत-भारतमंजरी | पंचरात्र और उरूभंग। | नारायणभट्ट-पांचाली |
| श्रीहर्षकृत-नैषधीचरित | कालिदास-अभिज्ञानशाकुन्तल | स्वयंवर-चम्पू |
| वामनभट्टबाणभट्टकृत-नलाभ्युदय | भट्टनारायणकृत-वेणीसंहार | राजचूडामणि भारत-चम्पू |
| | राजशेखरकृत-बालभारत | चक्रकवि-द्रौपदीपरिणय-चम्पू |
| | जयदेवकृत-प्रसन्नराघव | |

माघ के जीवन परिचय के विषय में शिशुपालवध में उद्धृत कविवंश परिचय के रूप में वर्णित पद्यों के आधार पर परिचय दिया जा सकता है-

**सर्वाधिकारी सुकृताधिकारः**
**श्रीवर्मालाख्यस्य बभूव राज्ञः।**
**असक्तदृष्टिर्विरजाः सदैव**
**देवोऽपरः सुप्रभदेवनामा।**[1]

प्रस्तुत श्लोक के अनुसार माघ के पितामह सुप्रभदेव श्रीमाल या भीनमाल के राजा वर्मलात के यहाँ मंत्री थे। भीनमाल गुजरात का एक प्रधान नगर था। इस प्रकार कविवंश परिचय के आधार पर सुप्रभदेव के पुत्र दत्तक और दत्तक के पुत्र माघ थे उनका निवास स्थान श्रीमाल या भीनमाल अथवा गुजरात था। समय-विविध उद्धरणों के निष्कर्ष रूप में माघ का समय सप्तम शताब्दी का उत्तरार्द्ध और अष्टम का पूर्वार्द्ध है।[2] इस विषय में कीथ ने भी उद्धृत किया है, माघ के पिता दत्तक सर्वाश्रय और उनके पितामह सुप्रभदेव एक राजा के मंत्री थे जिनका नाम हस्तलिखित लेखों में वर्मलाख्य, वर्मलात आदि भिन्न-भिन्न प्रकार से

1. शिशुपालवध, कविवंशवर्णन
2. डॉ. बालकृष्णत्रिपाठी, शिशुपालवध महाकाव्य के शास्त्रीय सन्दर्भ, न्यू भारतीय बुक कार्पोरेशन, दिल्ली 2003

प्राप्त होता है और माघ का समय सातवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध है।[1] **शिशुपालवधम्** माघ की प्रतिभा का उत्कृष्ट निदर्शन है। माघ की उपमा, अर्थगौरव तथा पदलालित्य- इन तीन गुणों की समृद्धि की प्रशंसा की है- **उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थगौरवम्। दण्डिनः पदलालित्यं माघे सन्ति त्रयो गुणाः॥**[2]

माघ की जीवन के विविध क्षेत्रों विशेषकर राजकार्य में अभिरुचि रही है, उन्होंने जो कुछ देखा सुना उसका उसे कारण-कार्य से सुसंगम रूप में सूक्ष्मदर्शी के समान उसको उद्धृत किया।[3]

**माघकृत शिशुपालवध का परिचय**- शिशुपालवध में नायक कृष्ण के अवतार तथा समग्र विभूतियों से युक्त हैं। किन्तु वे आदर्श मानव के रूप में भी अपने श्रेष्ठ गुणों का प्रदर्शन करते हैं। कृष्ण को शौर्य, धैर्य, गाम्भीर्य के प्रतिमान के रूप में प्रस्तुत किया है।

**शिशुपालवध का कथानक**- माघ ने जिस कथानक को आधार बनाकर शिशुपालवधम् की रचना की है, वह कथा महाभारत के सभापर्व (33-45) अध्याय तक तथा श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध में वर्णित है। कवि ने विष्णुभक्त होने के तथा नायक श्रीकृष्ण के चरित का औदात्य चित्रण करने के लिए श्रीमद्भागवत (10/21-75) के आधार ग्रहण किया है।[4] माघ ने शिशुपालवध महाकाव्य की कथावस्तु को श्रीमद्भागवत (120/71-75) के आधार पर ही मुख्य रूप से प्रस्तुत किया है। इसी प्रकार कीथ ने भी संस्कृत साहित्य का इतिहास में उद्धृत किया है- भारवि के समान माघ ने भी अपने ग्रन्थ की कथावस्तु महाभारत से गृहीत की है।[5] माघ ने सम्पूर्ण कथानक को 20 सर्गों में विभाजित किया है, जिसका संक्षिप्त वर्णन है- **प्रथम सर्ग**- नारद का

---

1. डॉ. ए.बी. कीथ, संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ.सं. 153
2. आ.बलदेव उपाध्याय, संस्कृत वाङ्मय का बृहद् इतिहास, पृ.सं. 151
3. रामजी उपाध्याय, संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ.सं. 277
4. आचार्य बलदेव उपाध्याय, संस्कृत वाङ्मय का बृहद् इतिहास, पृ.सं. 148
5. डॉ. ए.बी. कीथ, संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ.सं. 154

श्रीकृष्ण के भवन में उपस्थित होना, नारद और श्रीकृष्ण वार्तालाप। **द्वितीय सर्ग**- सभा में उद्धव और बलराम के साथ कृष्ण का परामर्श बलराम और उद्धव का अपना-अपना मत प्रकट करना। **तृतीय-सर्ग** श्रीकृष्ण की इन्द्रप्रस्थ की यात्रा, **चतुर्थ सर्ग**- रैवतक पर्वत का वर्णन, **पंचम सर्ग**- कृष्ण का रैवतक निवास का वर्णन, **षष्ठ सर्ग**- ऋतुओं का वर्णन, **सप्तम सर्ग**- विहार वर्णन, **अष्टम सर्ग**- जल-क्रीडा वर्णन, **नवम सर्ग**- सायंकाल वर्णन, **दशम सर्ग**- पानगोष्ठी वर्णन, **एकादश सर्ग**- प्रभात वर्णन, **द्वाद्वश सर्ग**- कृष्ण का पुनः प्रस्थान और यमुना वर्णन, **त्रयोदश सर्ग**- कृष्ण और पाण्डवों का मिलना, **चतुर्दश सर्ग**- राजसूय यज्ञ, **पंचदश सर्ग**- शिशुपाल का क्रुध होना, **षोडश सर्ग**- शिशुपाल के दूत का कृष्ण की सभा में उभयार्थक वाक्यों का प्रयोग, **सप्तदश सर्ग**- कृष्ण के सेना का प्रस्थान, **अष्टादश सर्ग**- युद्धवर्णन, **एकोनविंश सर्ग**- कृष्ण और शिशुपाल का शस्त्र युद्ध, **विंश सर्ग**- शिशुपालवधम्।

**शिशुपालवध की टीकाएँ**- शिशुपालवध की प्राचीन टीकाओं में मल्लिनाथकृत सर्वंकषा तथा वल्लभदेवकृत संदेहविषौषधि मुख्य हैं। चौदहवीं शताब्दी में जैनाचार्य ललितकीर्तिगणि ने ललितमाघदीपिका नाम से शिशुपालवध की टीका लिखी। शिशुपालवध पर अन्य व्याख्याएँ हैं- अनन्तदेवयोनि, चरित्रवर्धन, कविवल्लभ चक्रवर्ती, चंद्रशेखर, दिनकर, देवराज, बृहस्पति, भगदत्त, भगीरथी, भरतसेन, महेश्वर, पंचानन, लक्ष्मीनाथ तथा श्रीरंगदेव।

**शिशुपालवध में वर्णित समाज-व्यवस्था का स्वरूप**- बालकृष्ण त्रिपाठी ने समाज शब्द को व्याख्यायित किया है- सम्यक् अर्थ का प्रतिपादन सम् उपसर्ग पूर्वक अज् धातु से 'अकर्तरि च कारके संज्ञायाम्' अधिकरण कारक अर्थ में घञ् (अ) प्रत्यय हुआ और 'अत उपधाया:' सूत्र से उपधा-उपानृय वर्ण अ की (वृद्धि० आ हो जाने से 'समाज' शब्द की व्युत्पत्ति- 'सम्यक् अजन्ति-गच्छन्ति जना: अस्मिन् इति समाज:' अर्थात् जिसमें लोग अच्छी तरह से रहें वह समाज है, यहाँ पर धर्मशब्द

कर्त्तव्य का द्योतक है।[1] माघ ने शिशुपालवध में समाज-व्यवस्था की रूपरेखा में कतिपय सन्दर्भो द्वारा प्रस्तुत किया। शिशुपालवध की समाज-व्यवस्था में राजा की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही उसके स्वरूप के विषय में कतिपय उद्धरणों का उल्लेख किया जा सकता है- बुद्धि ही जिसका शस्त्र है, स्वामी अमात्यादि प्रकृतियाँ ही जिसके अवयव हैं, मन्त्र को गुप्त रखना ही जिसका कवच है, गुप्तचर ही जिसकी आँखें हैं और दूत ही जिसका मुख है। इस प्रकार का राजा कोई विलक्षण पुरुष ही होता है। इन गुणों से युक्त ही कुशल शासक एवं सर्वप्रिय राजा होता है, जिसका उल्लेख द्वितीय सर्ग में की है-

**बुद्धिशस्त्रः प्रकृत्यङ्गो घनसंवृतिकञ्चुकः।**
**चारेक्षणो दूतमुखः पुरुषः कोऽपि पार्थिवः।।**[2]

सामान्य राजा प्रमुख राजा का उसी प्रकार से सहायक होता है, जैसे संचारी भाव स्थायीभाव का।

**स्थायिनोऽर्थे प्रवर्तन्ते भावाः संचारिणो यथा।**
**रसस्यैकस्य भूयांसस्तथा नेतुर्महीभृतः।।**[3]

जैसे कोई रति आदि स्थायीभाव विभाव, अनुभाव और संचारीभाव से परिपुष्ट होकर शृङ्गारादि रस में परिणत हो जाता है, उसी तरह स्थिरता रखने वाले, शान्तिपूर्वक समय की प्रतीक्षा करने वाले यथा समय पुरुषार्थ का प्रयोग करने वाले विजीगीष राजा के विजयरूप प्रयोजन के उपस्थित होने पर राजा स्वयं आकर उसके कार्य की सिद्धि में सहायक हो जाते हैं।

इसी प्रकार माघ ने गुप्तचर के विषय में भी उल्लेख किया है-

---

1. डॉ. बालकृष्ण त्रिपाठी, शिशुपालवध महाकाव्य के शास्त्रीय सन्दर्भ, पृ.सं. 119
2. शिशु. 2/82
3. तदेव, 2/87

**कृत्वा कृत्यविदस्तीर्थष्वन्तः प्रणिधयः पदम्।**
**विदाङ्कुर्वन्तु महतस्तलं विद्विषदम्भसः॥**[1]

जिस प्रकार चतुर लोग (गोताखोर) जलावतारों (सीढ़ी आदि) के भीतर पैर रखकर (प्रवेश करते हुए) गम्भीर जल की गहराई को जान लेते हैं, उसी प्रकार गुप्तचर सर्वप्रथम शत्रु के मन्त्री आदि अठारह राज्याधिकारियों का विश्वास प्राप्त कर दुरवागाह शत्रु के स्वरूप को जान लें। अर्थात् शत्रु की शक्ति कितनी है, कैसी है आदि का अन्वेषण कर लें तत्पश्चात् उसके विरुद्ध कोई कदम बढ़ायें।

भाग्य और पुरुषार्थ दोनों का जीवन में समान महत्त्व है, जैसे काव्य में शब्द और अर्थ दोनों का समान महत्त्व है-

**नालम्बते देष्टिकतां न निषीदति पौरुषे।**
**शब्दार्थौ सत्कविरिव द्वयं विद्वानपेक्षते॥**[2]

जिस प्रकार सुकवि शब्द और अर्थ काव्य के शरीरस्वरूप इन दोनों का आश्रय लेकर काव्य की रचना को करता है, उसी प्रकार विद्वान् पुरुष भाग्य और पुरुषार्थ दोनों में सामञ्जस्य स्थापित कर अपने कार्य को करता है, अर्थात् समयानुसार दोनों का उपयोग करना चाहिए।

माघ ने अतिथि-सत्कार के सन्दर्भ को उपमा के द्वारा उद्धृत किया है- कृष्ण द्वारा नारद का किया गया सत्कार-नारद के उपस्थिति पूर्व ही कृष्ण पर्वत से मेघ की तरह नारद का स्वागत करने के लिए अपने आसन को शीघ्र ही छोड़कर उठ गए-

**पतत्पतङ्गप्रतिमस्तपोनिधिः**
**पुरोऽस्य यावन्न भुवि व्यलीयत।**
**गिरेस्तडित्वानिव तावदुच्चकै-**
**र्जवेन पीठादुदतिष्ठदच्युतः॥**[3]

---

1. शिशु. 2/111
2. तदेव, 2/86
3. तदेव, 1/12

सेवा भाव के रूप में उद्धृत किया है, सज्जन लोग घर में आये हुए पूज्य व्यक्तियों की सेवा करने हेतु सर्वदा तत्पर रहते हैं–

**विधाय तस्य पचितिं प्रसेदुषः**
**प्रकाममप्रीयत यज्वनां प्रियः।**
**ग्रहीतुमार्यान्परिचर्यया मुहु-**
**र्महानुभाव हि नितान्तमर्थिनः॥**[1]

शिशुपालवध में दान के भी सन्दर्भ उद्धृत किए हैं–

**निर्गुणोऽपि विमुखो स भूपतेर्दानशौण्डमनसः पुरोऽभवत्।**
**वर्षुकस्य किमपः कृतोन्नतेरम्बुदस्य परिहार्यमूषरम्॥**[2]

दानशूर चित्तवाले राजा (युद्धिष्ठिर) के आगे विद्यादि न पढ़ने से गुणहीन भी कोई (याचक पुरुष) विमुख (बिना दान पाये) नहीं लौटा, क्योंकि पानी बरसाने वाला, उन्नति को प्राप्त किया हुआ अर्थात् आकाश में छाया हुआ (उदार होने से उन्नत चित्तवाला) मेघ ऊपर (बीजाङ्कुर नहीं पैदा करने वाली भूमि) को छोड़ देता है? अर्थात् नहीं छोड़ता। अतएव दानशील राजा युधिष्ठिर ने निर्गुण को भी दान दिया। अत्यधिक बोलने वाले व्यक्ति को वाग्मी और गम्भीरता युक्त पुरुष को वीरपुरुष नाम से सम्बोधित किया गया है–

**अनिर्लोडितकार्यस्य वाग्जालं वाग्मिनो वृथा।**
**निमित्तादपराद्धेषोर्धानुष्कस्येव वल्गितम्॥**[3]

कर्तव्याकर्तव्य को न जानने वाले वाग्मी (बहुत बोलने वाले विद्वान् की) बातें लक्ष्य से भ्रष्टबाण वाले धनुर्धारी की आत्मप्रशंसा की तरह व्यर्थ (निष्फल) होती है।

---

1. शिशु. 1/17
2. तदेव, 14/46
3. तदेव, 2/27

**तुङ्गत्वमितरा नाद्रौ नेदं सिन्धावगाधता।**
**अलंघनीयताहेतुरुभयं तन्मनस्विनि॥**[1]

पर्वत में ऊँचाई है, किन्तु अगाधता नहीं है, समुद्र में अगाधता है पर ऊँचाई नहीं इसलिए ये दोनों लाँघे जा सकते हैं। परन्तु वीरपुरुष में गम्भीरता (अगाधता) है और आत्मगौरव से वह अत्यन्त उन्नत भी हैं, इस प्रकार इसमें तुङ्गत्व व गम्भीर्य अलंघनीयता के वे दोनों कारण उपस्थित हैं।

**माघ एवं भारवि**- माघ भरवि के नैतिक भावों की सुबुद्धि और सरलता का अनुकरण करने में समर्थ हैं-

**नालम्बते दैष्टिकतां न निषीदति पौरुषे।**
**शब्दार्थौ सत्कविरिव द्वयं विद्वानपेक्षते॥**[2]

विद्वान् व्यक्ति केवल भाग्य पर विश्वास नहीं करता और न पौरुष के ही भरोसे रहता है। सत्कवि की शब्द और अर्थ इन दोनों में अपेक्षा की भांति विद्वान् भी भाग्य और पौरुष दोनों की ही अपेक्ष करता है-

**सम्पदा सुस्थिरमन्यो भवति स्वल्पयापि यः।**
**कृतकृत्यो विधिर्मन्ये न वर्धयति तस्य ताम्॥**[3]

प्रयत्नशील के विषय में उल्लिखित है- प्रायः प्रयत्नशील रहने के परिणामस्वरूप ही सफलता प्राप्त होती है, इस बात को समझाने हेतु समुद्र का दृष्टान्त दिया गया है- समृद्धशाली व्यक्ति प्रचुर वैभव सम्पन्न होने पर भी सन्तुष्ट नहीं होता है, अपितु उसकी वृद्धि के लिए सतत प्रयत्नशील रहता है। इस विषय में समुद्र का उदाहरण दिया जा सकता है, जो परिपूर्णजल से युक्त होने पर भी अपनी वृद्धि के लिए सतत चन्द्रमा के उदय को चाहता है—

---

1. शिशु. 2/48
2. तदेव 2/83
3. तदेव 2/32

**तृप्तियोगः परेणाऽपि महिम्ना न महीयसाम्।**
**पूर्णश्चन्द्रोदयाकाङ्क्षी दृष्टान्तोऽत्र महार्णवः॥[1]**

माघ ने समाज में मित्र के स्वरूप को 'सखा गरीयान् शत्रुश्च'[2] इत्यादि श्लोक के माध्यम से व्याख्यायित किया है– कृत्रिम मित्र और कृत्रिम शत्रु प्रधान होते हैं, क्योंकि वे दोनों कार्यवश होते हैं। सहज और प्राकृत भी कार्यवश मित्र तथा शत्रु होते हैं (परन्तु उतना महत्त्व नहीं होता जितना कि कृत्रिम मित्र व शत्रु का होता है) प्राकृत एवं सहज मित्र एवं शत्रु तो क्रमशः कार्यवश शत्रु या मित्र हो जाया करते हैं। इसमें सहज मित्र मौसी और फूआ के लड़के, सहज शत्रु चचेरे भाई और उनके लड़के, प्राकृत मित्र और प्राकृत शत्रु ये दोनों प्राकृत (स्वभाव) से भी होते हैं। कृत्रिम शत्रु सदा शत्रु ही रहता है और कृत्रिम मित्र सदा मित्र ही रहता है, अतः ये दोनों श्रेष्ठ अथवा प्रधान हैं।

माघकृत शिशुपालवध में कतिपय उद्धरणों में बौद्ध एवं सांख्य दर्शनों का भी उल्लेख मिलता है। बौद्ध-दर्शन के पंचस्कन्धों की समानता राजा के सहायक रूपी-पञ्चाङ्गों की विशेषता को व्याख्यायित किया है–

**सर्वकार्यशरीरेषु मुक्त्वाङ्गस्कन्धपञ्चकम्।**
**सौगतानामिवात्मान्यो नास्ति मन्त्रो महीभृताम्॥[3]**

बौद्धों के मतानुसार रूप-वेदना-संज्ञा-संस्कार-विज्ञान इन पाँचों स्कन्धों के अतिरिक्त सभी कार्य शरीरों में अब अन्य कोई आत्मा (क्षेत्रज्ञ) नहीं है (स्वतन्त्र तत्त्व) उसी प्रकार राजाओं के लिए राजनीतिक में सहायक कर्मणारम्भोपाय, पुरुषद्रव्य-संपत, देशकालविभाग, विनिपातप्रतीकों

---

1. शिशु. 2/31
2. सखा गरीयान् शत्रुश्च कृत्रिमस्तौ हि कार्यतः।
   स्याताममित्रौ मित्रे च सहजाप्राकृतावपि॥– शिशुपालवधम्, 2/36
3. शिशु. 2/33

और कार्यसिद्धि इन पञ्चाङ्गों के अतिरिक्त कोई दूसरा मन्त्र नहीं है। इस प्रकार के उद्धरणों से स्पष्ट है कि माघ को बौद्ध-दर्शन का ज्ञान था। बौद्धों की सम्पति में पाँच स्कन्ध-रूप, वेदना, विज्ञान, संज्ञा, संस्कार का समूह आता है, उसी प्रकार राजाओं के लिए भी अंगपञ्चक ही सबसे बड़ा मंत्र है। अंग पाँच हैं- सहाय, साधनोपाय, देशकालविभाग, विपत्तिप्रतिकार, सिद्धि।[1]

**इसी प्रकार सांख्य-दर्शन में-**

**विजयस्त्वयि सेनायाः साक्षिमात्रेऽपदिश्यताम्।**
**फलभाजि समीक्ष्योक्ते बुद्धेर्भोग इवात्मनि।।**[2]

सांख्यदर्शन में बुद्धि द्वारा प्राप्त किए गए समस्त अनुभव एवं भोगों को उदासीन आत्मा में जिस प्रकार आरोपित कर लिया जाता है, उसी तरह आपकी सेना द्वारा प्राप्त किया गया विजय का फल आपको बिना किसी आयास के ही प्राप्त हो जाएगा। जिस प्रकार बुद्धि द्वारा प्राप्त किए गए सुख दुःख का अनुभव आत्मा को स्वतः ही हो जाता है, उसी प्रकार सेना का शत्रुओं पर विजय का श्रेय कृष्ण को बिन किसी आयास के ही प्राप्त हो जाएगा क्योंकि नौकर का जय-पराजय स्वामी का जय-पराजय माना जाता है। यहाँ पर 'समीक्ष्योक्त' शब्द का अर्थ है- सांख्यदर्शन के समान अर्थ के रूप में व्याख्यायित है। एक कुशल राजा को आत्मा के सदृश्य विवेचित किया गया है।

## शिशुपालवध में समाज-उपयोगी सूक्तियाँ

**1. आरभन्तेऽल्पमेवाज्ञाः कामं व्यग्राः भवन्ति च। महारम्भाः कृतधियस्तिष्ठन्ति च निराकुलाः।।**[3] (मूर्ख लोग छोटा सा कार्य आरम्भ करते हैं और अत्यन्त व्याकुल हो जाते हैं। किन्तु सुशिक्षित बुद्धिवाले लोग बड़े-बड़े कार्यों को प्रारम्भ करते हैं तथा निश्चित रहते हैं कार्यों में

1. आचार्य बलदेव उपाध्याय, संस्कृत-सुकवि-समीक्षा, पृ.सं. 303
2. शिशु. 2/59
3. तदेव 2/79

सफलता प्राप्त कर लेते हैं।)

**2. अनेकशः संस्तुतमप्यनल्पा नवं नवं प्रीतिरहो करोति।**[1] प्रेम की अधिकता अत्यन्त परिचित हो भी नया सा कर देती है।

**"ज्ञातसारोऽपि खल्वेकः सन्दिग्धे कार्यवस्तुनि"**[2] एक व्यक्ति चाहे कितना ही तत्त्वज्ञानी हो, कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य के विषय में संशयात्मा ही रहता है।

माघ के सूक्तियों में पाण्डित्य, विचारप्रवणता, जीवनानुभव तथा प्रेरणाप्रद संदेशों का समावेश हुआ है।[3]

इस प्रकार प्रस्तुत शोध-पत्र में माघकृत शिशुपालवध में समाज-व्यवस्था के विविध स्वरूपों को व्याख्यायित किया गया है। वीर रस प्रधान शिशुपालवध में राजा, अमात्य, गुप्तचर प्रजा इन सभी के कर्त्तव्य-अकर्त्तव्यों को विवेचित किया गया है, जैसे- राजा को समाज में शान्ति और समृद्धि बनाए रखने हेतु विविध कार्यों को करने हेतु उपदेशों का संकलन किया गया है। माघ ने समाज में राजा की मुख्य भूमिका को विविध उपमाओं द्वारा व्याख्यायित किया है। इसके साथ ही साथ माघ ने राजा के लिए बौद्ध एवं सांख्य दर्शन के माध्यम से भी समानता व्याख्यायित की है। इसके अतिरिक्त सुदृढ़ समाज के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्यों का वर्णन भी उपमाओं द्वारा व्याख्यायित किया है, जैसे- अतिथि सत्कार की भावना, दानशीलता, सतत प्रयत्नशील रहने की भावना, नैतिकता का भाव को व्याख्यायित कर एक आदर्श समाज-व्यवस्था हेतु विविध नीतिपरक सूक्तियों को शिशुपालवध के द्वितीय, तृतीय सर्गों में व्याख्यायित किया है।

---

1. शिशु. 3/31
2. तदेव, 2/12
3. डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, संस्कृत साहित्य का अभिनव इतिहास, पृ.सं. 256

## सन्दर्भ-ग्रन्थ सूची

1. माघ, शिशुपालवधम्, चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी, 2010
2. माघ, (व्या. आचार्यधुरन्धरपाण्डेय) शिशुपालवधमहाकाव्यम्, भारतीय विद्या संस्थान, वाराणसी 2002
3. डॉ. रामशरण गौण, भारतीय संस्कृति के आधार-स्रोत, स्वराज प्रकाशन दिल्ली, 1998
4. आ. बलदेव उपाध्याय, संस्कृत वाङ्मय का बृहद् इतिहास, उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान, लखनऊ, 1997
5. डॉ. कपिलदेव द्विवेदी, संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास, रामनारायणलाल प्रकाशन, इलाहाबाद, 2002
6. डॉ. बालकृष्ण त्रिपाठी, शिशुपालवध महाकाव्य के शास्त्रीय सन्दर्भ, न्यू भारतीय बुक कार्पोरेशन, दिल्ली 2003
7. डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, संस्कृत साहित्य का अभिनव इतिहास, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी 2001
8. डॉ. ए.बी. कीथ, संस्कृत साहित्य का इतिहास, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली 2014 पृ.सं. 154
9. डॉ. राधिकाप्रसाद मिश्र, रामायण के आनुषांङ्गिक सन्दर्भ, भारतीय विद्याभवन प्रकाशन, वाराणसी, 2002
10. आचार्य बलदेव उपाध्याय, संस्कृत-सुकवि-समीक्षा, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी 1978.

# शिशुपालवध में रस-विमर्श

-डॉ. अमरेश यादव*

महाकवि माघ संस्कृत काव्य जगत् के अमूल्य रत्नों में से एक हैं, जिनका जन्म श्रीमाल (वर्तमान राजस्थान में) हुआ था। माघ का यश उनकी एक मात्र प्राप्त कृति शिशुपालवध पर आश्रित है, जो बृहत्त्रयी का द्वितीय रत्न है। इसमें महाकाव्य के सभी गुण प्राप्त होते हैं। उसने अपने पूर्ववर्ती सभी कवियों के उत्कृष्ट-गुणों का समन्वय किया है। उनकी कला में सुन्दर नर्तकी का सा हाव-भाव, विलास, माधुर्य और मनोरमता है। माघ की कविता में कहीं पद संचार में मनोहारिता है तो कहीं रति विलास में भावुकता, नीति वचन रूपी कटाक्ष है तो कहीं सरस शब्दों का माधुर्य, कहीं भाव भंगिमा है तो कहीं अंग संचार। अतएव रसिक सहृदयों का कथन है कि- 'मेघे माघे गतं वयः'।

माघ संस्कृत साहित्य के एक रससिद्धहस्त कवि हैं, जिसका परिचय उन्होंने शिशुपालवध के द्वितीय सर्ग में दिया है-

**स्थायिनोऽर्थे प्रवर्तन्ते भावाः सञ्चारिणो यथा।**
**रसस्यैकस्य भूयांसस्तथा नेतुर्महीभृतः॥**[1]

शिशुपालवध में अंगी रस वीर है और श्रृंगार, हास्य, रौद्र आदि अंग रस के रूप में वर्णित हैं। किन्तु वीर रस प्रधान काव्य में भी कवि सहृदयता एवं सरसता के उद्रेक के कारण अंग स्वरूप श्रृंगार रस अंगी रस के तुल्य सा प्रधान प्रतीत हो गया है। सर्ग सात से बारह तक छः

---

* पूर्व शोधच्छात्र, केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय, गंगानाथ झा परिसर, प्रयागराज।

1. शिशुपालवध, 2.87

सर्गों में ही शृंगार की प्रधानता है और वीर मुख्यतः अट्ठारह से बीस तक तीन सर्गों में प्रधान्य है।

महाकवि माघ ने वीर रस के स्थायीभाव उत्साह का बीज प्रथम सर्ग में दिखलाया है। प्रथम सर्ग में उसके आलम्बन विभाव शिशुपाल का वर्णन किया गया है। पन्द्रहवें सर्ग में उसके आलम्बन युधिष्ठिर, भीष्म तथा कृष्ण के प्रति कठोर वचन उद्दीपन विभाव है और सप्तदश सर्ग में अनुभावों का वर्णन किया गया है। प्रथम सर्ग में रावण के साथ युद्ध के समय वरुण रावण पर नागपाश फेंकता है, नागपाश रावण की ओर चलता है, उसे देखकर रावण क्रोध में आकर हुंकार करता है तो नागपाश डरकर वापस लौट जाता है तथा सर्पराज भयभीत होकर वेगपूर्वक प्रहार करने वाले वरुण के गले में लिपट जाता है-

**रणेषु तस्य प्रहिताः प्रचेतसा सरोषहुंकारपराङ्मुखीकृताः।**
**प्रहर्तुरेवोरगराजरज्जवो जवेन कण्ठं सभयाः प्रपेदिरे।।**[1]

शिशुपालवध का अट्ठारहवाँ सर्ग युद्ध वर्णनों के पूर्वरंग की साज-सज्जा, सेनाओं के चलने, तलवारों के चमकने, हाथियों के चिंघाड़ने तथा योद्धाओं के द्वन्द्व-युद्ध में कूद पड़ने के चित्रवत् वर्णनों के लिए प्रशंसनीय है। युद्ध भूमि रूपी बड़े बाजार में आकर शरीर के भीतर में स्थित चंचल प्राणरूपी मूल्यों से पृथ्वी तथा आकाश में व्याप्त स्थिर कीर्तियों को खरीद रहे हैं-

**रोदोरन्ध्रं व्यश्नुवानानि लोलै-**
**रङ्गस्यान्तर्मादितैः स्थावराणि।**
**केचिद्गुर्वीमेत्य संयन्निषद्यां**
**क्रीणन्ति स्म प्राणमूल्यैर्यशांसि।।**[2]

युद्ध भूमि में वीरों में इतना उत्साह था कि वे अपने प्राणों की चिन्ता नहीं कर रहे थे। वे क्रोध के आवेग में अन्धे होकर शत्रुओं के सामने इतने वेग से दौड़ते हैं कि सामने शत्रु के द्वारा पकड़ी गयी तलवार

1. शिशुपालवध, 1.56
2. वही, 18.15

की नोंक उसकी मूठ तक उसकी छाती में शत्रु के प्रयत्न नहीं करने पर भी घुस जा रही थी–

**आधावन्तः सम्मुखं धारिताना-**
**मन्यैरन्ये तीक्ष्णकौक्षेयकाणाम्।**
**वक्षःपीठैरात्सरोरात्मनैव**
**क्रोधेनान्धाः प्राविशन् पुष्कराणि।।**[1]

पीड़ारहित कोई योद्धा हाथी के दाँत के बीच में स्थित होकर योद्धा के शरीर को दाँतों से विद्ध नहीं करने पर भी मैंने इस योद्धा के शरीर में ही दाँतों को गड़ा दिया, ऐसा जानकर सुख को पाये और ऊपर उठायी गयी तलवार से काटे गये दाँत तथा सूँड वाले हाथी को जीत कर उठ गया–

**लब्धस्पर्शं भूव्यधादव्यथेन**
**स्थित्वा किंचिद्दन्तयोरन्तराले।**
**ऊर्ध्वार्धासिच्छिन्नदन्तप्रवेष्टं**
**जित्वोत्तस्थे नागमन्येन सद्यः।।**[2]

निरन्तर वेगपूर्वक दौड़ती हुई एवं उद्धत विपक्षी राजाओं की सेनाओं का बड़े-बड़े तरंगों वाली भगवान् श्रीकृष्ण की सेनाओं के साथ अत्यन्त कोलाहल के साथ इस प्रकार युद्ध करने लगा जिस प्रकार निरन्तर वेगपूर्वक आगे बढ़ती हुई नदियों का समुद्र के बड़े-बड़े तरंगों वाले प्रवाहों से गम्भीर ध्वनि के साथ संघात होता है–

**आयन्तीनामविरतरयं राजकानीकिनीना-**
**मित्थं सैन्यैः सममलघुभिः श्रीपतेरूर्मिमद्भिः।**
**आसीदोघैर्मुहुरिव महद्वारिधेरापगानां**
**दोलायुद्धं कृतगुरुतरध्वानमौद्धत्यभाजाम्।।**[3]

---

1. शिशुपालवध, 18.17
2. वही, 18.47
3. वही, 18.80

महाकवि माघ घनघोर युद्ध का वर्णन करने के बाद उन्नीसवें सर्ग में अनुष्टुप् छन्द से मुरजबन्ध, चक्रबन्ध आदि के द्वारा द्वन्द्व युद्ध का वर्णन करते हैं। घनघोर युद्ध होने के बाद जिस प्रकार वन में बाँसों को जलाकर नष्ट करने वाली वृक्ष समूह की रगड़ से अग्नि उत्पन्न होती है, उसी प्रकार युद्ध में शत्रुओं को मारकर नष्ट करने वाला राज-समूह के द्वेष से वेणुधारी युद्ध के लिए उठ खड़ा हुआ-

**अथोत्तस्थे रणाटव्यामसुहृद्वेणुदारिणा।**
**नृपाङ्घ्रिपौघसंघर्षादग्निवद्वेणुदारिणा॥**[1]

गजदल, हयदल आदि सेनाओं के पहले लगाये गये मण्डलाकार होकर चलते हुए कातरता आदि दोषों से रहित पैदल सैनिकों से युक्त वह युद्ध उस प्रकार सुशोभित होने लगा जिस प्रकार संगीत आरम्भ करने के पहले प्रयुक्त किये गये, बराबर दोहराये गये और स्वरों की आवृत्ति से निर्दोष आलापों से संगीत सुशोभित होती है-

**पुरः प्रयुक्तैर्युद्धतच्चलितैर्लब्धशुद्धिभिः।**
**आलापैरिव गान्धर्वमदीप्यत पदातिभिः॥**[2]

भगवान् श्रीकृष्ण तथा शिशुपाल के युद्ध का वर्णन करते हुए माघ कहते हैं कि श्रीकृष्ण के पराक्रम को शिशुपाल सहन नहीं कर पा रहा था। उनके पराक्रम को सहन न करते हुए क्रोध के कारण भयंकर मुख को धारण करते हुए निर्भीक शिशुपाल भगवान् श्रीकृष्ण से युद्ध करने के लिए ललकारता है-

**मुखमुल्लसितत्रिरेखमुच्चैभिदुरभ्रूयुगभीषणं दधानः।**
**समिताविति विक्रमानमृष्यन्गतभीराह्वत चेदिराणमुरारिम्॥**[3]

श्रृंगार रस के वर्णन में माघ ने संभोग श्रृंगार का ही वर्णन प्रमुख रूप से किया है। रावण का काम-भाव इतना उद्बुद्ध था कि हवा के

---

1. शिशुपालवध, 19.1
2. वही, 19.47
3. वही, 20.1

द्वारा उसकी पत्नियों के जघन-स्थलों से वस्त्र हट जाना उसके नेत्रों की तृप्ति का साधन था। इसलिए वायु ने अन्य देवों को भी मुक्त करा दिया-

**निशान्तनारीपरिधानधूननस्फुटागसाऽप्यूरुषु लोलचक्षुषः।**
**प्रियेण तस्यानपराधाबाधिताः प्रकम्पनेनानुचकम्पिरे सुराः॥**[1]

शिशुपालवध में ऋतुओं का परम्परानुसार शृंगारित है तो कोई आश्चर्य नहीं, परन्तु जब द्वारका वर्णन में कवि सम्भोगवती रमणियों की चर्चा करना नहीं भूलता है तो ऐसा लगता है कि शृंगार के बिना कवि अपना कर्म नीरस मानता है।[2] कवि का शृंगार वर्णन प्रसंग वृक्ष को लतावधू समेत, रैवतक को रमणियों के क्रीडाभिलाष की सुविधाएँ प्रस्तुत करना, मेघ के द्वारा सूर्य को ढ़क कर युवक-युवतियों के लिए दिन को भी रात में परिणत करना, गदहे की पीठ से गिरी हुई अवरोध -वधू के नितम्ब-वस्त्र का खिसकना, घोड़े की पीठ से उतारी जाती हुई राज-रमणियों का उतारने वाले सेवकों द्वारा आलिंगन आदि ऐसी बातें हैं, जिनसे व्यक्त होता है कि माघ शृंगार-निमग्न कवि हैं।[3]

माघ के मानस में और तदनुरूप उनकी कविता में शृंगार का सर्वोच्च्य स्थान होने का सबसे बढ़कर लक्षण है कि नारद शिशुपाल को कृष्ण से मरवाना चहते थे, जिससे शची के साथ इन्द्र को कामसुख निर्बाध रूप से प्राप्त हो सके।

**हृदयमरिवधोदयादुदूढद्रढिम दधातु पुनः पुरन्दरस्य।**
**घनपुलकपुलोमजाकुचाग्रद्रुतपरिरम्भनिपीडनक्षमत्वम्॥**[4]

नारद एक तपस्वी ऋषि हैं। उनके मुख से कुचाग्र-परिरम्भ की चर्चा करना माघ के मानस में शृंगार की उद्दाम प्रवृत्ति का परिचायक है।

---

1. शिशुपालवध, 1.61
2. वही, 3.45, 54, 55, 56
3. वही, 3.71, 72; 4.42, 45, 51, 62; 5.7, 18, 23
4. वही, 1.74

युद्धभूमि में लड़ाई अपने सर्वोच्च शिखर पर है। इस अवसर पर भी माघ को दिखाई दे रहा है कि रूक्मिणी के आलिंगन करने से कृष्ण की छाती पर स्तनों के कुंकुम चिह्न बने हैं, जिन्हें देख कर शिशुपाल क्रुद्ध हो रहा है–

**अभिवीक्ष्य विदर्भराजपुत्रीकुचकाश्मीरजचिह्नमच्युतोत्तरः।**
**चिरसेवितयापि चेदिराजः सहसावाप रुषा तदैव योगम्।।**[1]

माघ को जहाँ कहीं भी स्त्री की चर्चा करनी है, वे प्रसंग न होने पर भी यह कहने से नहीं चूकते कि उस स्त्री का कामोचित सौन्दर्य उन्नत है। माघ का सौन्दर्य इस महाकाव्य में कामशास्त्र के प्राचार्य के रूप में प्रायः प्रतीत होता है। तीसरे सर्ग से बारहवें सर्ग तक ऐसी कोई भी अछूती श्रृंगारित चर्चा नहीं है जो वात्स्यायन के कामशास्त्र में है। यह काम शिक्षा काव्य के परिधान में सरस बन गयी है। माघ ने केवल मनुष्यों में ही श्रृंगार नहीं दिखाई है, वे पशु-पक्षियों में भी इसके लिए आलम्बन विभाग ढूँढ़ ही लेते हैं। यथा–

**आयान्त्यां निजयुवतौ वनात् सशङ्कं**
**बर्हाणामपरखण्डिनीं भरेण।**
**आलोक्य व्यवदधतं पुरो मयूरं**
**कामिन्यः श्रदधुरनार्जवं नरेषु।।**[2]

यदि किसी प्रकार भी अवसर मिल सका तो माघ ने किसी भी पात्र को श्रृंगार के महासागर में निमज्जित करने से न छोड़ा। वे किसी भी पात्र के व्यक्तित्व के श्रृंगार पक्ष की चर्चा अवश्य करते हैं।

यद्यपि माघ हास्य रस का कवि नहीं है परन्तु शिशुपालवध में यत्र-तत्र हास्य की सुन्दर पुट दिखाई पड़ती है। हथिनी की आवाज से विदके हुए खच्चरों का कौतुक कितना हास्यास्पद है–

---

1. शिशुपालवध, 20.6
2. वही, 8.11

**त्रस्तौ समासन्नकरेणुसूत्कृतान्नियन्तरि व्याकुलमुक्तरज्जुके।**
**क्षिप्तावरोधाङ्गनमुत्पथेन गां विलङ्घ्य लघ्वीं करभौ बभञ्जतुः।।**[1]

अर्थात् एक राजकुलीन महिला छोटे रथ पर जा रही थी। दो खच्चर उस रथ को खींच रहे थे। सहसा हथिनी की सूँ-सूँ की ध्वनि से वे बिदक गये और रस्सी छोड़कर भाग खड़े हुए। बेचारी महिला उलट गयी और रथ भी टूट गया।

हास्य रस का अच्छा परिपाक कृष्ण के प्रति शिशुपाल के वचनों में मिलता है। कृष्ण कुछ मधुमक्खियों को मारते हैं, अतएव मधुसूदन है। कृष्ण को सबल केवल इतने ही के लिए कहते हैं कि वे बलराम के साथी हैं। कृष्ण को इष्टसत्य इसलिए कहते हैं कि वे सत्यभामा से प्रेम करते हैं। समुद्र कन्या श्री से विवाह करके कृष्ण श्रीपति हैं। शिशुपाल कहता है कि कृष्ण की पूजा वैसे ही है जैसे खल्वाट के सिर पर कंघी करना-

**त्वयि पूजनं जगति जाल्म कृतमिदमपाकृते गुणैः।**
**हासकरमघटते नितरां शिरसीव कंकतमपेतमूर्धजेः।।**[2]

बीभत्स रस स्वभावतः युद्धवर्णन में प्रायशः मृत शरीर के गीदड़ों से चींथे जाने के वर्णन में है। किसी योद्धा का शरीर बाणों से इतना विध गया था कि उसके मांस को खाना स्यारिनों के लिए बहुत कठिन कार्य था, अतएव उन्होंने चिल्लाकर मुख से निकली हुई ज्वाला से बाणों को जला दिया तथा ज्वाला से पके हुए मांस को स्यारिनों ने खाया-

**नैरन्तर्यच्छिन्नदेहान्तरालं दुर्भक्षस्य ज्वालिना वाशितेन।**
**योद्धुर्बाणप्रोतमादीप्य मांसं पाकापूर्वस्वादमादे शिवाभिः।।**[3]

माघ के काव्य में शान्त रस की प्रवृत्ति भारतीय काव्यधारा की चिरन्तर प्रकृति का परिचायक है। रैवतक पर्वत पर समाधि धारण करने

---

1. शिशुपालवध, 12.24
2. वही, 15.33
3. वही, 18.76

वाले योगी लोग चित्तशोधक वृत्तियों से अन्त:करण के मल को टूट कर तथा अविद्या, राग आदि क्लेशों को नष्टकर सबीज योग को प्राप्त किये, प्रकृति पुरुष भिन्न हैं, ऐसा जानकर उसे छोड़कर स्वयं प्रकाशभाव से स्थित होने के लिए इच्छा करते हैं-

**मैत्र्यादिचित्तपरिकर्मविदो विधाय**
**क्लेशप्रहाणमिह लब्धसबीजयोगाः।**
**ख्यातिं च सत्त्वपुरुषान्यतयाधिगम्य**
**वाञ्छन्ति तामपि समाधिभृतो न रोद्धुम्॥**[1]

इस प्रकार शिशुपालवध का प्रधान रस वीर है और शृंगार, रौद्र आदि उसी में अप्रधान रस बन कर आये हैं। शिशुपालवध के इस वीर रस पूर्ण इतिवृत्त में अप्रासंगिक शृंगार लीलाओं के पूरे छः सर्गों में विस्तृत वर्णन ने वीर रस को दबोच सा लिया है। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि माघ वीर रस के सफल चित्रकार नहीं हैं। माघ वीर रस और शृंगार रस दोनों के ही सफल चित्रकार हैं। परन्तु उनका शृंगार अत्यन्त विलासमय हो गया है, जो कि सहृदयों के हृदय में खटकता है।

---

1. शिशुपालवध, 4.55

# शिशुपालवध महाकाव्य में रस-विमर्श

-डॉ. देवेन्द्र कुमार यादव*

रस पद की व्युत्पत्ति दो प्रकार से की जा सकती है- प्रथम व्युत्पत्ति के अनुसार 'रस्यते आस्वाद्यते इति रसः' और द्वितीय व्युत्पत्ति के अनुसार 'रस्यते इति रसः'। वेदों में भी रस का उल्लेख मिलता है। ऋग्वेद में सोमरस एवं उदक अर्थ को प्रकट करने के लिए रस पद का प्रयोग हुआ है।

**जन्मे रसस्य वावृधे, स्वाद् रसो मधूपेयोरसाय।**
**यो व शिवतमो रसः, तस्य भाजयतेह नः॥**[1]

अथर्ववेद में शक्ति एवं आह्लाद अर्थ में रस का प्रयोग हुआ है। भारतीय शास्त्रों में रस का आविर्भाव वेदकाल से ही हो चुका था, किन्तु साहित्यिक दृष्टि से सर्वप्रथम भरतमुनि ने ही अपने नाट्यशास्त्र में रस का विशद वर्णन किया है। नाट्यशास्त्र एवं परवर्ती अन्य ग्रन्थों के अवलोकन से विदित होता है कि रस का साहित्यिक निरूपण तो भरत से पूर्व ही हो चुका था, किन्तु वह पूर्णतः स्पष्ट नहीं था, कालान्तर में इस पर सम्यक् विचार कर भरतमुनि ने नाटक एवं रस का वर्णन अपने ग्रन्थ में प्रस्तुत किया है। भरत ने रस की व्युत्पत्ति ब्रह्मा से बताया है जिसका उल्लेख उन्होंने नाट्यशास्त्र के प्रथम अध्याय में ही किया है- समस्त देवताओं के आग्रह पर ब्रह्मा ने चारों वेदों का चिन्तन किया और चारों वेदों से क्रमशः ऋग्वेद से पाठ्यांश (संवाद), सामवेद से गीत,

---

* पूर्व शोधच्छात्र- संस्कृत विभाग, कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

1. ऋग्वेद, 1/37/5

यजुर्वेद से अभिनय, अथर्ववेद से रस को लेकर नाट्य नामक पंचम वेद का निर्माण किया-

**जग्राह पाठ्यं ऋग्वेदात् सामभ्यो गीतमेव च।**
**यजुर्वेदादभिनयान् रसानार्थर्वणादपि।।**[1]

रसनिष्पत्ति के सम्बन्ध में आचार्य भरतमुनि नाट्यशास्त्र के षष्ठ अध्याय में रस के स्वरूप का उल्लेख करते हैं-

'विभावानुभावव्यभिचारीसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः'। सूत्रानुसार विभाव, अनुभाव, एवं व्यभिचारी भावों के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है। इसी प्रकार ध्वनिवादी आचार्य मम्मट रस-स्वरूप की महत्ता को प्रतिपादित करते हुए कहते हैं-

**कारणान्यथ कार्याणि सहकारीणि यानि च।**
**रत्यादेः स्थायिनो लोके तानि चेन्नाट्यकाव्ययोः।।**

**विभावानुभावस्तत् कथ्यन्ते व्यभिचारिणः।**
**व्यक्तः स तैर्विभावाद्यैः स्थायी-भावो रसः स्मृतः।।**[2]

इन कारिकाओं में विभाव, अनुभाव, व्यभिचारी भाव तथा स्थायी भाव से रसोत्पत्ति के स्वरूप को बताया गया है, लोक में रत्यादि के उत्पत्ति के जो हेतु हैं वे काव्य में कारण विभाव शब्द से, कार्य अनुभाव शब्द से और सहकारी व्यभिचारी भाव नाम से कहे जाते हैं। इनमें रत्यादि के कारण का नाम विभाव है, इसके दो भेद हैं- प्रथम आलम्बन, द्वितीय उद्दीपन विभाव। सीता, राम आदि एक दूसरे की प्रीति के आलम्बनरूप कारण होते हैं, क्योंकि सीता को देखकर राम के मन में और राम को देखकर सीता के मन में प्रेम या रति की उत्पत्ति होती है इसलिए वे दोनों आलम्बन विभाव कहलाते हैं और वे परस्पर रति या प्रेम की उत्पत्ति के प्रति कारण होते हैं। इस प्रीति या रति का उद्बुद्धि करने वाली चांदनी, उद्यान, नदीतीर आदि सामग्री को उद्दीपन विभाव

---

1. नाट्यशास्त्र का प्रथम अध्याय, 1/17
2. काव्यप्रकाश, 4/27,28

कहा जाता है, क्योंकि वे पूर्वोत्पन्न रति आदि को उद्दीप्त करने वाले हैं। रस की प्रक्रिया में आलम्बन तथा उद्दीपन विभाव को रस का बाह्यकारण समझना चाहिए, रसानुभूति का आन्तरिक और मुख्य कारण स्थायीभाव है, स्थायीभाव मन के भीतर स्थिर रहने वाला प्रसुप्त संस्कार है जो अनुकूल आलम्बन तथा उद्दीपन रूप उद्बोधक सामग्री को प्राप्त कर अभिव्यक्त हो जाता है और हृदय में एक अपूर्ण आनन्द का सञ्चार कर देता है, इस स्थायी भाव की अभिव्यक्ति ही रसास्वादजनक या रस्यमान होने से रस शब्द से बोध्य होती है। रस भेदों का उल्लेख करते हुए आचार्य मम्मट ने काव्यप्रकाश के चतुर्थ उल्लास में कहा है–

**शृङ्गारहास्यकरुणरौद्रवीरभयानकाः।**
**बीभत्साद्भुतसंज्ञौ चेत्यष्टौ नाट्ये रसाः स्मृताः।**[1]

व्यवहार रूप में मनुष्य को जिस प्रकार की अनुभूति होती है उसको ध्यान में रखकर प्रायः आठ प्रकार के स्थायी भाव साहित्यशास्त्र में माने गये हैं। काव्यप्रकाशकार ने उसकी गणना इस प्रकार की है–

**रतिर्हासश्च शोकश्च क्रोधोत्साहौ भयं तथा।**
**जुगुप्सा विस्मयश्चेति स्थायीभावाः प्रकीर्तिताः॥**[2]

इसके अतिरिक्त निर्वेद को भी नौवें स्थायी भाव के रूप में आचार्य श्री ने स्वीकार किया है–

**निर्वेदस्थायीभावोऽस्ति शान्तोऽपि नवमो रसः।**

ये नौ स्थायी भाव मनुष्य के हृदय में स्थायी रूप से सदा विद्यमान रहते हैं, इसलिए स्थायी भाव कहलाते हैं। सामान्यरूप से वे अव्यक्त अवस्था में रहते हैं, किन्तु जब जिस स्थायी भाव के अनुकूल विभावादि सामग्री प्राप्त हो जाती है, तब वह व्यक्त हो जाते हैं और रस्यमान या आस्वाद्यमान होकर रसरूपता को प्राप्त हो जाते हैं। महाकवि माघ विरचित शिशुपालवध महाकाव्य के निकष को सर्वाधिक ग्रहण करने वाला महाकाव्य है, इसीलिए विद्वानों के बीच एक प्रशस्ति

1. काव्यप्रकाश, 4/29
2. वही, 4/30

प्रचलित है 'काव्येषु माघः कवि कालिदासः' अर्थात् कवि की दृष्टि से कालिदास श्रेष्ठ हैं, किन्तु महाकाव्य के लेखन में माघ उत्कृष्ट हैं। कृष्ण के द्वारा शिशुपाल के मारे जाने का कथानक इतिहास प्रसिद्ध है जो महाभारत और भागवतपुराण पर आश्रित है। इस महाकाव्य में रस की अद्भुत अभिव्यक्ति कवि की काव्य कुशलता को प्रकट करती है महाकाव्य का अङ्गी रस वीर है और अन्य रसों में शृङ्गार, हास्य, अद्भुत, रौद्र, बीभत्स एवं भक्तिरस सहायक एवं संपोषक के रूप में प्रयुक्त हैं। इसलिए रस को काव्य का प्राणतत्त्व माना गया है कविराज विश्वनाथ ने 'वाक्यं रसात्मकं काव्यम्' लिखकर रस की महत्ता को प्रतिपादित किया है इस महाकाव्य में वीर एवं शृङ्गार का अपूर्व मिश्रण है। एक ओर वीररस और दूसरी ओर शृङ्गाररस की धारा प्रवाहित हो रही है वीररस के साथ शृङ्गार का मेल भी उपर्युक्त प्रतीत होता है, वीर पुरुष ही शृङ्गार रस की धारा में आसक्त होकर उसकी तिलाञ्जलि दे सकता है। कवि के गीर्वाण में रस है वह रस के द्वारा पाठक एवं श्रोता के हृदय में रस को उद्बुद्ध कर उसे (श्रोता एवं पाठक को) रसास्वादन करा देता है, पाठक काव्य को पढ़ते-पढ़ते इतना आत्मविभोर हो जाता है। कि स्वयं की सत्ता को विस्मृत हो जाता है इस महाकाव्य में शृङ्गार का अतिशय इतना अधिक हुआ है कि ऐसा प्रतीत होता है कि वीररस का अतिक्रमण हुआ है, तथापि महाकाव्य में वीररस प्रधान एवं अन्य रस गौण हैं। जिसका वर्णन अधोलिखित है।

**वीररस-**

जब हृदय में उत्साह के भाव का परिपोषण होता है तो वीर रस की उत्पत्ति होती है आचार्य विश्वनाथ के शब्दों में वीररस वह जिसे उत्साह रूप स्थायीभाव का आस्वाद कहा गया है-

**उत्तमप्रकृतिर्वीर उत्साहस्थायिभावकः।**
**महेन्द्रदैवतो हेमवर्णोऽयं समुदाहृतः॥**

इस महाकाव्य के 12वें सर्ग में युद्धसम्बन्धी सभी बिन्दुओं का वर्णन प्रारम्भ हो जाता है। सेना का आगमन, सेना का अपने कर्त्तव्यों के

प्रति सजग हो जाना। 16वें सर्ग में दोनों सेनाओं का युद्ध हेतु अग्रसर होना, 17वें सर्ग में चतुरङ्गिणी सेनाओं के पराक्रम का वर्णन। 18वें सर्ग में दोनों सेनाओं का पारस्परिक घनघोर युद्ध। 20वें सर्ग में भगवान् श्रीकृष्ण और शिशुपाल का युद्ध वर्णन एवं कृष्ण द्वारा सुदर्शन चक्र से शिशुपाल के शिरोच्छेदन का वर्णन प्राप्त होता है। इस महाकाव्य के प्रथम सर्ग में ही कवि माघ देवर्षि नारद के शब्दों में वरुण पर दशानन रावण की विजय का वर्णन करते हुए कहते हैं कि वरुण द्वारा प्रयुक्त नागपाश उस रावण के क्रोधपूर्ण हुङ्कार से लौटकर भय के साथ वेगपूर्वक प्रहार करने वाले वरुण के ही कण्ठ में लिपट गया।

**रणेषु तस्य प्रहिताः प्रचेतसा**
**सरोषहुङ्कारपराङ्मुखीकृताः।**
**प्रहर्तुरेवोरगराजरज्जवो**
**जवेन कण्ठं सभयाः प्रपेदिरे।।**[1]

कवि ने वीर रस की प्रकर्षिता के लिए तदनुकूल वातावरण उपस्थित किया है, अतएव वीररस का चित्रण अत्यन्त उच्चकोटि का हो गया है, उनका युद्ध वर्णन विशुद्ध वीरता का परिचायक है। महाकवि नें 18वें सर्ग में जब दोनों पक्षों की सेनाएँ रण-क्षेत्र में परस्पर आमने सामने होती हैं- पैदल, पैदल सेना से, घोड़े, घोड़े सैनिकों के साथ, हाथी हाथियों के साथ, रथी सेना, रथी के साथ युद्ध करने लगे-

**पत्तिः पत्तिं वाहमेयाय वाजो**
**नागं नागः स्यन्दनस्थो रथस्थम्।**
**इत्थं सेना वल्लभस्येव रागा-**
**दङ्गेनाङ्गं प्रत्यनीकस्य भेजे।।**[2]

कवि ने इसी सर्ग में बाहुयुद्ध का चित्रण बहुत सुन्दर ढ़ंग से वर्णित किया है-

**रोषावेशादाभिमुख्येन कौचित्-**
**पाणिग्राहं रंहसैवोपयातौ।**

1. शिशुपालवध, 1/56
2. वही, 18/2

**हित्वा हेतीर्मल्लवन्मुष्टिघातं।**
**घ्नन्तौ बाहूवाहवि व्यासृजेताम्।।**[1]

अर्थात् कोई योद्धा क्रोधावेश में एक दूसरे के सम्मुख पहुँचकर और हथियारों का त्याग कर एक दूसरे का हाथ पकड़कर पहलवानों के समान मुक्कों का प्रहार करते हुए बाहुयुद्ध में प्रवृत्त हो गये। कवि ने असह्य वेदनायुक्त धैर्यवाली वीर सैनिक का चित्रण प्रस्तुत करते हुए कहा है-

**आमूलान्तात्सायकेनायतेन**
**स्यूते बाहौ मण्डुकश्लिष्टमुष्टेः।**
**प्राप्यासह्यां वेदनामस्तधैर्या-**
**दप्यभ्रष्यच्चर्म नान्यस्य पाणेः।।**[2]

अर्थात् तात्पर्य यह है किसी वीर सैनिक की भुजा शत्रु के बाण से उसकी आँख (बाहुमूल) कट गयी और उसे असह्य वेदना हो रही थी, तथापि उसने धैर्य बनाये रखा और मुठ्ठी में पकड़ी हुई ढ़ाल को नहीं गिराया। कवि ने शिक्षित और अशिक्षित अश्वों की प्रजातियों की विशेषताओं का यथावत् विवेचन किया जो इस प्रकार है-

**भित्वा घोणामायसेनाधिवक्षः**
**स्थूरीपृष्ठो गार्ध्रपक्षेण विद्धः।**
**शिक्षाहेतोर्गाढरज्ज्वेव बद्धो**
**हर्तुं वक्त्रं नाशकद् दुर्मुखोऽपि।।**[3]

तात्पर्य यह है कि नये घोड़ों के प्रशिक्षित करने के लिए दृढ़ रस्सी से उसकी नासिका और पूँछ बाँध दी जाती है जिससे काटने की इच्छा करता हुआ भी नहीं काट पाता। भाव यह है कि जो घोड़े शिक्षित होते हैं वे बँधे हुए न होने पर भी बँधे हुए की तरह एक स्थान पर ही खड़े रहते हैं और जो अशिक्षित होते हैं, वे बँधे रहने पर भी एक स्थान

1. शिशुपालवध, 18/12
2. वही, 18/21
3. वही, 18/22

पर स्थिर नहीं रहते हैं। कवि ने भगवान् श्रीकृष्ण के मर्यादा युक्त आचरण का चित्रण उपमा के रूप में सुन्दर रीति से प्रस्तुत करते हुए कहा है-

**निःशेषमाक्रान्तमहीतलो जलै-**
**श्चलन् समुद्रोऽपि समुज्झति स्थितिम्।**
**ग्रामेषु सैन्यरकरोदवारितैः**
**किमव्यवस्थां चलितोऽपि केशवः॥**[1]

तात्पर्य यह है कि प्रलयकाल में क्षुब्ध समुद्र भी अखिल चराचर भूमण्डल को आक्रमण कर देता है, किन्तु क्या यात्रा प्रस्थान के समय भगवान् में असीमित सैनिकों से सम्पूर्ण भूमण्डल को आक्रान्त कर ग्राम में अव्यवस्था कर दी? अर्थात् उन्होंने मर्यादा का त्याग नहीं किया। कवि ने दोलायुद्ध का वर्णन बहुत ही मनोरम ढ़ंग से करते हुए कहा है-

**आयन्तीनामविरतरयं राजकानीकिनीना-**
**मित्थं सैन्यैः सममलघुभिः श्रीपतेरूर्मिमद्भिः।**
**आसीदोघैर्मुहुरिव महद्वारिधेरापगानां**
**दोलायुद्धं कृतगुरुतरध्वानमौद्धत्यभाजाम्॥**[2]

तात्पर्य यह है कि अविच्छिन्न वेग से आती हुई राजाओं की उद्धत सेनाओं का श्रीकृष्ण की विशाल तथा तरङ्गवती सेनाओं के साथ महान् कोलाहल से युक्त ऐसा दोलायुद्ध हुआ जैसे अविरत वेग से बहती नदियों का जल समुद्र के जल के साथ मिश्रण हो गया।

**शृङ्गार रस-**

महाकवि कालिदास के शृङ्गार वर्णन में जहाँ प्रेम का शुद्ध रूप दिखाई देता है वहाँ माघ के शृङ्गार वर्णन में विलासिता है, कहीं-कहीं तो वह अमर्यादित सा प्रतीत होता है। इस रस के दो पक्ष हैं- संयोग शृङ्गार, विप्रलम्भ शृङ्गार। नायक एवं परस्पर अनुरक्त होकर दर्शन, स्पर्श

1. शिशुपालवध, 12/36
2. वही, 18/80

चुम्बन, आलिङ्गनादि का सेवन तथा यौवन का उपभोग करते हैं उसे सम्भोग और जब ये समस्त क्रियाओं का अभाव होता है तो वहाँ विप्रलम्भ शृङ्गार होता है। संभोग शृङ्गार की स्थिति उपभोगात्मक होने के कारण वासनामयी होती है। ऐसे वर्णनों में रसिकों का मन अधिक तरङि्त होता रहता है। कवि नायक द्वारा नायिका की सौन्दर्य विलासिता को अपलक दृष्टि से निहारता है। जिसका सचित्र वर्णन प्रतीत सा होता है-

**सीमन्तं निजमनुबध्नती कराभ्या-**
**मालक्ष्यस्तनतटबाहुमूलभागा।**
**भर्त्रान्या मुहुरभिलष्यया निदध्ये**
**नैवाहो विरमति कौतुकं प्रियेभ्यः॥**[1]

अर्थात् नायिका अपने केशपाश को दोनों हाथों को उठाकर बाँध रही है। जिससे उसके वक्षःस्थल और बाहुमूल स्पष्ट दिखाई दे रहे हैं। नायक उसको प्रेमपूर्वक सौन्दर्यावलोकन कर रहा है। महाकवि ने सम्भोग शृङ्गार के आलिङ्गन पक्ष का रोचक वर्णन किया है जिसमें नायिका की स्थिति का वर्णन है। नायक द्वारा नायिका आ आँचल खीचने से अनावृत्त वक्षःस्थल को देख न ले, नायिक लज्जावश अपने वक्षःस्थल को नायक के वक्षःस्थल से आलिङ्गन कर लेती है-

**उत्तरीयविनयात्त्रपमाणा**
**रुन्धती किल तदीक्षणमार्गम्।**
**आवरिष्ट विकटेन विवोढु-**
**र्वक्षसैव कुचमण्डलमन्या॥**[2]

लज्जा स्त्रियों का आभूषण होता है, किन्तु रतिकाल में लज्जा का दूषण कर दिया जाता है। इस रहस्य प्रसंग का कवि नें कितनी सुन्दर रीति से वर्णन किया है-

**अन्यदा भूषणं पुंसः शमो लज्जेव योषितः।**
**पराक्रमः परिभवे वैयात्यं सुरतेष्विवा॥**[3]

1. शिशुपालवध, 8/69
2. वही, 10/42
3. वही, 2/44

इस प्रकार श्रृङ्गार के दोनों पक्षों का उल्लेख शिशुपालवध के 12वें सर्ग में 58-60 श्लोकों में भी वर्णित है। महाकवि माघ का श्रृङ्गार वर्णन कहीं-कहीं अत्यन्त मनोहारी भी हो गया है। भगवान् श्रीकृष्ण ने जिस-जिस प्रिया की ओर देखा उसी ने लज्जा से शिर झुका लिया दूसरी ओर ईर्ष्यालु रमणियों ने निःशङ्क होकर कटाक्षों से प्रियतम पर प्रहार किया-

**यां यां प्रियः प्रैक्षत कातराक्षी**
**सा सा ह्रिया नम्रमुखी बभूव।**
**निःशङ्कमन्याः सममाहितेर्ष्या-**
**स्तत्रान्तरे जघ्नुरमुं कटाक्षैः।।**[1]

विप्रलम्भ श्रृङ्गार में कवि सफल नहीं दिखाई देता है जिसके कारण संस्कृत वाङ्मय में वह स्थान नहीं प्राप्त हो सका जो महाकवि कालिदास और भवभूति को प्राप्त हुआ है।

वीर और श्रृङ्गार के अतिरिक्त अन्य रसों के चित्रण में भी वे सिद्धहस्त हैं। कुछ प्रमुख रसों के उदाहरण प्रस्तुत कर रहे हैं, जो अधोलिखित हैं-

**बीभत्स रस-**

इस रस में घृणात्मक पदार्थों को देखने सुनने से घृणा या जुगुप्सा के भाव की परिपुष्टि होने पर बीभत्स रस होता है जैसे-

**ग्लानिच्छेदी क्षुत्प्रबोधाय पीत्वा**
**रक्तारिष्टं शोषिताजीर्णशेषम्।**
**स्वादुङ्कारं कालखण्डोपदंशं**
**क्रोष्टा डिम्बं व्यष्वणद्व्यस्वनच्च।।**[2]

अर्थात्, गीदड़ अपनी भूख को मिटाने के लिए अजीर्ण तथा ग्लानि को दूर करने वाले रक्तरूपी मध को पीकर कलेजे के मांस का

1. शिशुपालवध, 3/16
2. वही, 18/77

रूप चटपटे को खाकर पुनः मांस को खाया और चिल्लाने लगा।

**रौद्र रस-**

इसमें शत्रु के असह्य अपराध या अपकार के कारण हृदयगतस्थ क्रोध भाव की पुष्टि से रौद्र रस उत्पन्न होता है। जैसा कि कवि ने क्रोधाविष्ट दो सैनिकों का बाहुयुद्ध वर्णित किया है-

**रोषावेशादाभिमुख्येन कौचित्पाणिग्राहं रंहसैवोपयातौ।**
**हित्वा हेतीर्मल्लवन्मुष्टिघातं घ्नन्तौ बाहूबाहवि व्यासृजेताम्।।**[1]

हास्य रस के वर्णन में कवि ने नायिका का आलम्बन ग्रहण करते हुए कहा है कि शीघ्रतावश नायिका करधनी को गले में पहने हुई, कर्णफूल को केशों में लगाई हुई दुपट्टे को पहनी हुई और शाटिका को ओढ़े हुए, कर्णाभूषण को कङ्गन बनाई हुई स्त्रियाँ श्रीकृष्ण को देखने के लिए चल पड़ी-

**रसभेन हारपददत्तकाञ्चयः प्रतिमूर्धजं निहितकर्णपूरकाः।**
**परिवर्तिताऽम्बरयुगाः समापतन्वलयीकृतश्रवणपूरकाः स्त्रियः।।**[2]

इसके अतिरिक्त माघ ने अपने महाकाव्य में भक्ति की भावना की अपूर्व अभिव्यक्ति का कौशल प्रदर्शित किया। माघ कृष्ण भक्त कवि, उनका महाकाव्य लिखने का उद्देश्य यह भी था कि वह आराध्यदेव कृष्ण के गुणों का गान करें। महाकवि ने नवधाभक्ति के अन्तर्गत श्रवण और कीर्तन का विशेष रूप से वर्णन किया है। वे नारद के मुख से श्रीकृष्ण के निराकार रूप का कीर्तन इस प्रकार करते हैं-

**उदासितारं निगृहीतमानसैर्गृहीतमध्यात्मदृशा कथञ्चन।**
**बहिर्विकारं प्रकृतेः पृथग्विदुः पुरातनं त्वां पुरुषं पुराविदः।।**[3]

निराकार ईश्वर का कीर्तन करने के पश्चात् सगुण स्वरूप का कीर्तन किया है-

---

1. शिशुपालवध, 18/12
2. वही, 18/32
3. वही, 1/33

**अनन्यगुर्व्यास्तव केन केवलः पुराणमूर्तेर्महिमावगम्यते।**
**मनुष्यजन्मापि सुरासुरान्गुणैर्भवान्भवच्छेदकरः करोत्यधः।।**[1]

महाकवि माघ के अनुसार रमणीयता वही है जहाँ पर क्षण-क्षण भर में नवीनता पाई जाती है-

**क्षणे-क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयतायाः।।**

कवि ने अपने युद्ध वर्णन प्रौढ़ता, भाषा और शैली की चमत्कार पाण्डित्य-प्रकर्ष आदि उपादानों के समावेश से महाकाव्य को उत्कर्ष प्रदान किया है। शिशुपाल जैसे दुष्ट के वध से श्रीकृष्ण द्वारा धर्म की स्थापना इस काव्य का सुरम्य फल है। मल्लिनाथ ने इस महाकाव्य का संक्षिप्त विशिष्टाओं का निरूपण इस प्रकार किया है-

**नेतास्मिन् यदुनन्दनः स भगवान् वीरप्रधानो रसः**
**शृङ्गारादिभिरङ्गवान् विजयते पूर्णा पुनर्वर्णना।**
**इन्द्रप्रस्थ-गमाद्युपायविषयश्चैद्यावसादः फलं**
**धन्यो माघकविर्वयं तु कृतिनस्तत्सूक्तिसंवेवनात्।।**[2]

1. शिशुपालवध, 1/35
2. मल्लिनाथकृत सर्वङ्कषाटीका, मंगलश्लोक संख्या

# माघ का पदलालित्य

-श्री अखिलेश्वर सिंह*

एक समय था जब कविता का आधार लयात्मकता थी। अपने प्रारम्भिक समय में कविता रस, छन्द, अलंकार इन तीन गुणों तक सीमित थी, किन्तु भारवि, माघ और श्रीहर्ष के समय तक इसका विस्तृत रूप हो गया। इसमें काव्य गुणों के साथ-साथ राजनीतिकशास्त्र, दर्शनशास्त्र, नीतिशास्त्र, कर्मकाण्ड, व्याकरण, ज्योतिष इत्यादि शास्त्रीय तथा वैज्ञानिक विषयों का भी समावेश हो गया। सर्वप्रथम भारवि से इसकी शुरूआत मानी जा सकती है। भारवि ने अपने काव्य ग्रन्थ किरातार्जुनीय में उपर्युक्त सभी विद्याओं को समाहित किया है। माघ भारवि के अनुगामी हैं। किरातार्जुनीय की भाँति शिशुपालवध में भी राजनीति आदि सभी विषयों का सांगोपांग वर्णन है।

पदलालित्य का अर्थ है- विषय के अनुसार पदों का चयन। चूँकि माघ के समय तक काव्य लेकर आनन्द प्रदान करने वाली या रसास्वादन कराने वाली कविता मात्र नहीं थी वरन् यह सम्पूर्ण ज्ञान का श्रोत समझी जाने लगी थी। इसका विषय विस्तार पाण्डित्य के चरमोत्कर्ष तक पहुँच चुका था। राजनीति विषयों के वर्णन के समय राजनीतिक शब्दावली का प्रयोग, दार्शनिक विषयों के वर्णन के समय दार्शनिक शब्दावली का प्रयोग, इसी प्रकार व्याकरण, वेद, कर्मकाण्ड, नीतिशास्त्र, धर्मशास्त्र इत्यादि विषयों की शब्दावली के प्रयोग से काव्य के प्रत्येक पदों में पदलालित्य परिलक्षित होती थी। माघ का शिशुपालवध इसी का उत्कृष्ट उदाहरण है। एकादश सर्ग में प्रभात-वर्णन में अग्निहोत्र वर्णन पदलालित्य का सुन्दर उदाहरण है-

**प्रतिशरणमशीर्णज्योतिरग्न्याहितानां**
**विधिविहितविरिब्धैः सामिधेनीरधीत्य।**

**कृतगुरुदुरितौघध्वंसमध्वर्युवर्यैः**
**हुतमयमुपलीढे साधु सान्नाय्यमग्निः[1]॥**

माघ का पदलालित्य निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत द्रष्टव्य है-

**रस में पदलालित्य-**

रस के वर्णन के समय माघ ने पदों का चयन बड़ी ही सावधानी पूर्वक किया है। इन्होंने अत्यन्त सरल शब्दों के साथ-साथ माधुर्य गुण सम्पन्न पदों को चुना है। शिशुपालवध का अंगीरस वीर है, किन्तु माघ ने श्रृंगार रस को भी प्राथमिकता दी है। माघ का श्रृंगार भारवि के खेगे का विलासी श्रृंगार है। माघ भारवि से अधिक विलासी और वासनामय जान पड़ते हैं। माघ का कामशास्त्री नर्मसाचित्र करने में पूर्णतः सफल हुआ है। वह अपने प्रथम सर्ग के वायु की तरह विलासवृत्ति का उद्बोध कर रावण के हाथों देवताओं के दण्ड से छुड़वा सकते हैं-

**निशान्तनारीपरिधानधूननस्फुटागसाप्यूरुषु लोलचक्षुषः।**
**प्रियेण तस्यानपराधबाधिताः प्रकम्पनेनानुचकम्पिरे सुराः॥[2]**

माघ कहीं-कहीं सरसता के प्रसंग में संभोग श्रृंगार का विवेचन अधिक करते हैं, ऐसे अनेक चित्र माघ में देखे जा सकते हैं-

**हृदयमरिधोदयादुदूढद्रढिम दधातु पुनः पुरन्दरस्य।**
**घनपुलकपुलोमजाकुचाग्रद्रुतपरिरम्भनिपीडनक्षमत्वम्॥[3]**

**घूर्णयन्मदिरास्वादमदपाटलितद्युती।**
**रेवतीवदनोच्छिष्टपरिपूतपुटे दृशौ॥[4]**

1. शिशुपालवध (11/41)
2. तदेव (1/61)
3. तदेव (1/74)
4. तदेव (2/16)

**आश्लेषलोलुपवधूस्तनकार्कश्यसाक्षिणीम्।**
**म्लापयन्नभिमानोष्णैर्वनमालां मुखानिलैः।।[1]**

**अन्यदा भूषणं पुंसः क्षमा लज्जेव योषितः।**
**पराक्रमः परिभवे वैयात्यं सुरतेष्विव।।[2]**

माघ का शृंगार वर्णन विषय सापेक्ष है। ऋतुवर्णन, जलविहार, वनविहार, रतिवर्णन, प्रभातवर्णन तथा सूर्यास्तवर्णन जैसे विषयों में पदों का चयन अलग-अलग विषयानुकूल एवं परिस्थिति के अनुकूल है। जैसे कोई मुग्धा नायिका ऊँचे पेड़ के ऊपर खिले फूलों को माँग रही है। नायक भी उसे आलिंगन करना चाहता है। वह पुष्ट कुचों वाली नायिका को दोनों हाथों से उठाकर कहता है- अच्छा तुम्हीं तोड़ लो-

**उपरिजतरुजानि याचमानानां कुशलतया परिरम्भलोलुपोऽन्यः।**
**प्रथितपृथुपयोधरां गृहाण स्वयमिति मुग्धवधूमुदास दोर्भ्याम्।।[3]**

वीररस के वर्णन में माघ की पदावली बदल जाती है। वह ओज गुण सम्पन्न एवं चमत्कारिक हो जाती है-

**आयन्तीनामविरतरयं राजकानीकिनीना-**
**मित्थं सैन्यैः सममलघुभिः श्रीपतेरूर्मिमद्भिः।**

**आसीदोघैर्मुहुरिव महद्वारिधेरापगानां**
**दोलायुद्धं कृतगुरुतरध्वानमौद्धत्यभाजाम्।।[4]**

अर्थात् एक-दूसरे की ओर बड़ी तेजी से बढ़ती हुई शत्रु राजाओं की उद्धत सेनाओं का श्रीकृष्ण की सेना ने बड़े जोर का शब्द करते हुए दोलायुद्ध किया, जैसे तेजी से आती हुई नदी की गम्भीर तरंगों वाली समुद्र से टक्कर होने पर धीरध्वनि का संघात पाया जाता है।

---

1. शिशुपालवध (2/17)
2. तदेव (2/44)
3. तदेव (7/49)
4. तदेव (18/80)

माघ का अष्टादश सर्ग वीररस का मूलश्रोत है। यहाँ माघ के पदविन्यास की धीर तथा गम्भीर गति का उत्कृष्ट प्रदर्शन है।

**अलंकारों में पदलालित्य-**

माघ ने अपने शिशुपालवध में प्रायः सभी अलंकारों का प्रयोग किया है। अलंकारों का विन्यास विषय सापेक्ष है। अलंकारों में पदों का चयन भी चमत्कारिक है। ये कलावादी कवि हैं। ये शब्द तथा अर्थ दोनों के सौन्दर्य पर ध्यान देते हैं तथा सत्कवि की कसौटी इसे ही मानते हैं-

**अनुत्सूत्रपदन्यासा सद्वृत्तिः सन्निबन्धना।**
**शब्दविद्येव नो भाति राजनीतिरपस्पशा।**[1]
**बद्धदर्भमयकाञ्चिदामया वीक्षितानि यजमानयाजया।।**[2]

माघ के पास कविता का अखण्ड भण्डार है। यदि माघ की कविता अपने पूर्व के कवियों की रूढ़ पद्धति का आश्रय न लेती तो सम्भवतः कवित्व और अधिक स्फुट हो सकता था। माघ श्लेष, यमक, चित्रकाव्य जैसी कृत्रिम कलाबाजियों में भी भारवि से कम नहीं है और ऐसे ही एक अर्थालंकार (निदर्शना) के प्रयोग के कारण पण्डितों ने माघ को 'घण्टामाघ' की उपाधि दे डाली। कृष्ण का रथ रैवतक पर्वत के समीप पहुँच रहा है। कृष्ण का सारथि दारुक रैवतक वर्णन करते समय बता रहा है- 'जब प्रातःकाल के समय किरणों को फैलाता हुआ सूर्य इस पर्वत के एक ओर उदित होता है, तथा चन्द्रमा अपनी किरणों को समेटता-सा पर्वत के दूसरी ओर अस्त होता है, उस समय यह पर्वत उस हाथी की शोभा को धारण करता है' जिनके दोनों ओर रस्सी से बंधे दो घण्टे लटक रहे हैं-

**उदयति विततोर्ध्वरश्मिरज्जावहिमरुचौ हिमधाम्नि याति चास्तम्।**
**वहति गिरिरयं बिलम्बिघण्टाद्वयपरिवारितवारणेन्द्रलीलाम्।।**[3]

---

1. शिशुपालवध (2/112)
2. तदेव (14/22)
3. तदेव (4/20)

माघ के कविता की सरसता, अलंकारों की नवीनता, श्लेष की उपयुक्तता तथा चित्रालंकारों की विचित्रता दर्शनीय है। माघ ने अपने काव्य में स्थान-स्थान पर मुग्धकारिणी स्वभावोक्ति, अतिशयोक्ति, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, दृष्टान्त आदि के प्रयोग के समय पदों का समुचित सन्निवेश किया है। रैवतक पर्वत का वर्णन द्रष्टव्य है-

**अपशङ्कमङ्कपरिवर्तनोचिताः**
**चलिताः पुरः पतिमुपेतुमात्मजाः।**
**अनुरोदितीव करुणेन पत्रिणां**
**विरुतेन वत्सलतयैष निम्नगाः॥**[1]

**दार्शनिक विषयों में पदलालित्य-**

साहित्यिक विषयों में दर्शन का प्रवेश कवियों के पाण्डित्य की कसौटी मानी जाती है। अपने प्रारम्भिक समय में साहित्य केवल रसास्वादन तक सीमित था, किन्तु भारवि, माघ तथा श्रीहर्ष ने साहित्य को एक नया विषय दिया। दर्शन जैसे नीरस विषयों के वर्णन में भी माघ ने अपने पदलालित्य से उसको सरस बना दिया। शिशुपालवध में सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, मीमांसा, वेदान्त, बौद्ध जैसे दार्शनिक विषयों का वर्णन किया गया है। दार्शनिक विषयों के वर्णन के समय माघ का पदविन्यास दर्शनानुकूल हो जाता है। प्रथम सर्ग में कवि ने नारद द्वारा भगवान् विष्णु की स्तुति में सांख्यशास्त्र की पद्धति का आश्रय लिया है, जहाँ पुरुष, प्रकृति एवं विकृति प्रदर्शित है-

**उदासितारं निगृहीतमानसैः**
**गृहीतमध्यात्मदृशा कथञ्चन।**
**बहिर्विकारं प्रकृतेः पृथग्विदुः**
**पुरातनं त्वां पुरुषं पुराविदः॥**[2]

दूसरे सर्ग के प्रस्तुत श्लोक में सांख्यदर्शन की पदावली द्रष्टव्य

1. शिशुपालवध (4/47)
2. तदेव (1/33)

है-

**विजयस्त्वयि सेनायाः साक्षिमात्रेऽपदिश्यताम्।**
**फलभाजि समीक्ष्योक्ते बुद्धेर्भोग इवात्मनि।।**[1]

योगदर्शन के महत्त्वपूर्ण तत्त्व ईश्वर की चर्चा के समय माघ की पदावली द्रष्टव्य है-

**सर्ववेदिनमनादिमस्थितं**
**देहिनामनुजिघृक्षया वपुः।**
**क्लेशकर्मफलभोगवर्जितं**
**पुंविशेषममुमीश्वरं विदुः।।**[2]

न्याय-वैशेषिक के सिद्धान्त 'शब्दगुणकमाकाशम्' की चर्चा करते हुए माघ लिखते हैं-

**अप्यनारभमाणस्य विभोरुत्पादिताः परैः**
**व्रजन्ति गुणतामर्था शब्दा इव विहायसः।।**[3]

इसी प्रकार मुमुक्षु महापुरुषों के लिये नारद कृत स्तुति के समय पदलालित्य द्रष्टव्य है-

**उदीर्णरागप्रतिरोधकं जनैरभीक्ष्णमक्षुण्णतयातिदुर्गमम्।**
**उपेयुषो मोक्षपथं मनस्विनस्त्वमग्रभूमिर्निरपायसंश्रया।।**[4]

**राजनीतिक विषयों में पदलालित्य-**

माघ का शिशुपालवध एक सम्पूर्ण राजनीतिक ग्रन्थ है। इसमें राजनीति के साथ-साथ धर्मनीति, कूटनीति, युद्धनीति, आचारनीति, न्याय-अन्याय, जय-पराजय जैसे राजनीतिक विषयों का वर्णन है। राजनीतिक विषयों युद्ध आदि के वर्णन में वैसे तो कठोर पदावली का

---

1. शिशुपालवध (2/59)
2. तदेव (14/62)
3. तदेव (2/91)
4. तदेव (1/32)

प्रयोग होता है, किन्तु माघ ने सरल एवं सरस पदों का चयन किया है। सूक्ति शैली द्वारा बड़े से बड़े विषयों का संक्षेप में वर्णन किया है। शिशुपालवध में राजनीतिक विषयों का प्रारम्भ प्रथम सर्ग में ही हो जाता है। नारद इन्द्र का सन्देश कृष्ण को सुनाते हैं कि शिशुपाल के आतंक से इन्द्र डरे हुए हैं, अतः उसका वध करें। द्वितीय वर्ग में कृष्ण बलराम और उद्धव के साथ मंत्रणा करते हैं। कृष्ण विचार करते हैं कि इस समय युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में जाना चाहिये अथवा शिशुपाल का वध करना चाहिये। बलराम कहते हैं कि पहले शत्रु का वध करना चाहिये–

**यजतां पाण्डवः स्वर्गमवत्विन्द्रस्तपस्विनः।**
**वयं हनाम द्विषतः सर्वः स्वार्थं समीहते॥**[1]

किन्तु उद्धव कहते हैं कि पहले शत्रु की शक्ति का पता लगाना चाहिये और तब तक युधिष्ठिर का राजसूय यज्ञ भी सम्पन्न हो जायेगा। इस प्रकार निर्णय लिया जाता है कि पहले युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में जाना चाहिये।

द्वितीय सर्ग में राजनीतिक चर्चाओं के समय माघ की सरल पदावली द्रष्टव्य है–

**षड्गुणाः शक्तयस्तिस्त्रः सिद्धयश्चोदयास्त्रयः।**
**ग्रन्थानधीत्य व्याकर्तुमिति दुर्मेधसोऽप्यलम्॥**[2]

**मन्त्रो योध इवाधीरः सर्वांगैः संवृतैरपि।**
**चिरं न सहते स्थातुं परेभ्यो भेदशङ्कया॥**[3]

**आत्मोदयः परज्यानिर्द्वयं नीतिरितीयती।**
**तदूरीकृत्य कृतिभिर्वाचस्पत्यं प्रतायते॥**[4]

1. शिशुपालवध (2/65)
2. तदेव (2/26)
3. तदेव (2/29)
4. तदेव (2/30)

**सखा गरीयान् शत्रुश्च कृत्रिमस्तौ हि कार्यतः।**
**स्यातामित्रौ मित्रे च सहजप्राकृतावपि।।**[1]

माघ के बलराम तथा उद्धव उत्कृष्ट राजनीतिक प्रोफेसर हैं। उनके राजनीतिक चर्चा में व्याकरण, दर्शन तथा अलंकारशास्त्र का ज्ञान साथ-साथ चलता है। माघ का राजनीतिक वाद-विवाद शास्त्री अधिक है।

**प्रकृति-चित्रण में पदलालित्य-**

माघ का प्रकृति-चित्रण, ऋतुवर्णन, वनविहार, जलविहार, सूर्यास्तवर्णन तथा प्रभातवर्णन के साथ उपस्थित हुआ है। पदों के अनुरूप समायोजन से प्रकृति-चित्रण सजीव हो गया है। चतुर्थ सर्ग में यमक अलंकार द्वारा माघ दूर की कल्पना में व्यस्त हो गये हैं। सम्पूर्ण छठा सर्ग का प्रकृति वर्णन यमक से भरा पड़ा है फिर भी सरस है। नवम सर्ग का सूर्यास्त वर्णन एवं एकादश सर्ग का प्रभात वर्णन अप्रस्तुत विधान से भरा पड़ा है। माघ की प्रकृति प्रायः उद्दीपन पक्ष की प्रकृति है और वह भी सम्भोग की प्रकृति। परन्तु कहीं-कहीं वियोग के भी चित्र आ जाते हैं। जैसे कदम्ब के फूल अपने पराग के पटवास को उड़ाकर वियोगिनी नायिकाओं के प्राणों का अपहरण करते हैं। किन्तु अधिकतर उनका ध्येय प्रणयकोपयुक्त कामिनियों को प्रसन्न करना तथा मानिनियों के मान को खण्डित और मन का नमन करना ही रहता है-

**प्रवसतः सुतरामुदकम्पयद्विदलकन्दलकम्पनलालितः।**
**नमयति स्म वनानि मनस्विनीजननमनोनमनो घनमारुतः।।**[2]

**प्रणयकोपभृतोऽपि पराङ्मुखाः सपदि वारिधरारवभीरवः।**
**प्रणयिनः परिरब्धुमथाङ्गना ववलिरे वलिरेचितमध्यमाः।।**[3]

चतुर्थ सर्ग की अपेक्षा छठे सर्ग का प्रकृति-चित्रण अधिक

---

1. शिशुपालवध (2/36)
2. तदेव (6/30)
3. तदेव (6/38)

उत्कृष्ट है। इस सर्ग में एक साथ यमक, श्लेष और शृंगारी अप्रस्तुत विधान के साथ वर्षा का यह सुन्दर वर्णन हुआ है-

**स्फुरदधीरतडिन्नयना मुहुः प्रियमिवागलितोरुपयोधरा।**
**जलधरावलिरप्रतिपालितस्वसमया समयाञ्जगतीधरम्।।**[1]

अर्थात् चमकती हुई चंचल बिजली वाली सघन बादलों से भरी मेघराशि अपने उचित समय पर उपस्थित हुई जैसे चंचल नेत्रों वाली, पुष्ठयौनवती नायिका अपने संकेतित समय पर प्रिय को प्रतीक्षा की अधीरता में न डालती हुई उसके पास अभिसरणार्थ उपस्थित हुई।

यहाँ प्रत्येक पद के विन्यास में माघ ने बड़े ही सूझ-बूझ का परिचय दिया है। इसी प्रकार एक अन्य पद्य द्रष्टव्य है-

**उदयशिखरिशृङ्गप्राङ्गणेष्वेव रिङ्गन्**
**सकमलमुखहासं वीक्षितः पद्मिनीभिः।**

**विततमृदुकराग्रः शब्दयन्त्या वयोभिः**
**परिपतति दिवाऽङ्के हेलया बालसूर्यः।।**[2]

उपर्युक्त वक्तव्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि माघ के काव्य का पदलालित्य अन्यतम है। इनके काव्य में पदों का चयन सरल और प्रासंगिक है। ये अपनी भाषा को अलंकारों के आडम्बर से चित्र-विचित्र करने का प्रयास न कर पदों के उत्कृष्ट चयन का आश्रय लेते हैं। इनका पद-विन्यास नैसर्गिक, प्रवाहपूर्ण, ओजस्वी, ललित एवं सुव्यक्त है।

---

1. शिशुपालवध (6/25)
2. तदेव (11/47)

# बृहत्त्रयी में शिशुपालवध का स्थान

-डॉ. मुनेश देवी*

माघ का शिशुपालवध संस्कृत महाकाव्यों की बृहत्त्रयी में परिगणित है। इसके अतिरिक्त भारवि का किरातार्जुनीयम् और श्रीहर्ष का नैषधीयचरित भी बृहत्त्रयी में परिगणित है। इन तीन काव्यों के लिए बृहत् शब्द का प्रयोग इनकी काव्य-सम्पत्ति तथा इनकी कलेवर-सम्पत्ति दोनों को ही दृष्टि में रखकर दिया गया है। जिस समय नैषधीयचरित की रचना हुई होगी, उस समय तक विचित्र-मार्ग विद्वत् समाज में विशेष स्थान प्राप्त कर चुका था। इस प्रकार के काव्यों की रचना करने में कविगण तथा उनका रसास्वादन करने में विद्वद्वृन्द अपना गौरव समझते थे। किरातार्जुनीयम्, शिशुपालवध और नैषधीयचरित में उन्हें विचित्र-मार्ग के काव्य के वे सभी गुण प्राप्त हो गये थे जो उन्हें काव्य-रसामृत-सागर में आप्लावित करने में पूर्ण समर्थ थे।

इस विचित्र-मार्ग की परम्परा को अपनाकर काव्य रचना करने वाले भारवि सर्वप्रथम कवि हैं। उन्हीं के अनुकरण पर माघ ने शिशुपालवध रचना की और इन दोनों काव्यों को लक्ष्य में रखकर उनसे भी आगे बढ़ जाने वाले कवि हुए श्रीहर्ष, जिनके काव्य में विचित्र मार्ग के काव्य के गुण अपने चरमोत्कर्श को प्राप्त हुए हैं। इस प्रकार इन तीनों काव्यों के लिए जो 'बृहत्त्रयी' शब्द का प्रयोग किया गया है वह पूर्णतः सार्थक है। विचित्र-मार्ग की परम्परा पर अन्य भी अनेक महाकाव्य लिखे गए किन्तु  किरातार्जुनीयम्, शिशुपालवध और नैषधीय चरित की समता करने का सामर्थ्य उनमें नहीं है। बृहत्त्रयी के काव्यों

---

* पूर्व शोधच्छात्रा, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक।

के प्रति सहृदयों का अनुराग बहुत प्राचीन समय से ही चला आ रहा है। इन तीनों काव्यों की कथावस्तु महाभारत से गृहीत है।

भारवि कृत किरातार्जुनीय संस्कृत महाकाव्यों की बृहत्त्रयी में सर्वप्रथम परिगणित होता है। वस्तुतः इस महाकाव्य के साथ संस्कृत महाकाव्य की एक नयी धारा का सूत्रपात होता है। दण्डीकृत अवन्तिसुन्दरी के अनुसार भारवि दण्डि के प्रपितामह थे और उनका वास्तविक नाम दामोदर था। ये चालुक्यवंश के राजा विष्णुवर्धन की सभा के रत्न थे। दण्डी के अन्य उल्लेख में पल्लवनरेश सिंहविष्णु (574-600) ई. ने भी भारवि को आश्रय दिया था तत्पश्चात् सिंहविष्णु के पुत्र मत्तविलास के प्रणेता महेन्द्रविक्रम के आश्रय में भी थे। किरातार्जुनीयम् इनकी एकमात्र उपलब्ध कृति है।

वामन जयादित्य ने अपने व्याकरण के प्रसिद्ध ग्रन्थ 'काशिका' में किरातार्जुनीय के एक पद्य को उद्धृत किया है। काशिका का रचना काल 600 ई. के आसपास है। अतः किरातार्जुनीयम् की रचना 600 ई. के पूर्व हो चुकी थी।

उपर्युक्त उल्लेखों से इतना अवश्य प्रमाणित होता है कि भारवि का निवास स्थान दक्षिण भारत था। उनका समय भी 550 ई. के लगभग माना जाता है।

महाकवि माघ का यश उनकी एक मात्र प्राप्त कृति शिशुपालवध पर आश्रित है। उन्होंने अपने काव्य के अन्त के पाँच श्लोकों में अपना वंशवर्णन किया है। इससे प्रतीत होता है कि इनके पितामह का नाम सुप्रभदेव था जो वर्मलाख्य या वर्मलात नाम के किसी राजा के मन्त्री थे।[1] राजस्थान के वसन्तपुर नामक स्थान पर वर्मलात नाम के एक राजा का शिलालेख मिलता है, जिसका समय 625 ई. है।

---

1. सर्वाधिकारी सुकृताधिकारः श्रीवर्मलाख्यस्य बभूव राज्ञः।
   असक्तदृष्टिर्विरजाः सदैव देवोऽपरः सुप्रभदेवनामा॥
   –शिशुपालवध कविवंशवर्णन

बल्लाल के 'भोजप्रबन्ध' में शिशुपालवध का "कुमुदवनमपश्रि श्रीमदम्भोजशण्डं" श्लोक उद्धृत है। सोमदेव के यशस्तिलक चम्पू (959 ई.) में माघ का उल्लेख हुआ है। आनन्दवर्धन (850 ई.) ने ध्वन्यालोक में शिशुपाल के दो श्लोकों (3/53, 5/26) को उद्धृत किया। वामन (800 ई.) ने काव्यालंकार-सूत्र में शिशुपालवध के अनेक श्लोक उद्धृत किये हैं। इससे यह स्पष्ट है कि माघ 800 ई. से बहुत पहले हुए, साथ ही यह भी स्पष्ट है कि वे 650 ई. के पूर्व नहीं हो सकते, क्योंकि यदि ऐसा होता तो उन जैसे लब्धख्याति महाकवि का नामतः उल्लेख अथवा उनके श्लोकादि के एकाध उद्धरण बाण आदि कवियों की कृतियों में अवश्य मिलते। निम्न प्रमाणों के आधार पर यह निष्कर्ष प्राप्त होता है कि माघ निश्चित रूप से 650-700 ई. के बीच विद्यमान थे।

श्रीहर्ष के नैषधीयचरित की गणना भारवि और माघ की कृतियों के साथ संस्कृत महाकाव्यों की बृहत्त्रयी में होती है। कल्पना के चमत्कार व रमणीयता तथा पदलालित्य में श्रीहर्ष अपने पूर्व के श्रेष्ठ महाकवियों भारवि तथा माघ से आगे हैं। श्रीहर्ष ने अपने महाकाव्य के प्रत्येक सर्ग की पुष्पिका में अपना संक्षिप्त परिचय दिया-

**श्रीहर्ष कविराजराजिमुकुटालंकारहीरः सुतं,**
**श्रीहीरः सुषवे जितेन्द्रीयचयं मामल्लदेवी च यम्॥**

इस प्रकार बृहत्त्रयी के रचयिताओं में भारवि सबसे पहले हुए। माघ उनके पश्चाद्वर्ती थे और श्रीहर्ष भारवि और माघ के बहुत समय पश्चात् हुए। यही तीनों कवियों का पौर्वापर्य है।

### महाकाव्य-लक्षण

भारवि माघ और श्रीहर्ष की कृत्तियाँ महाकाव्य श्रेणी में आती हैं। भामह प्रणीत काव्यालंकार से लेकर साहित्यदर्पण[1] तक के अनेक काव्य शास्त्रीय ग्रन्थों में महाकाव्य का लक्षण प्राप्त होता है। उनके आधार पर इनका विवेचन किया जा रहा है।

---

1. साहित्य-दर्पण, 6/315-325

बृहत्त्रयी के तीनों काव्यों में महाकाव्य के लक्षण पूर्ण-रूप से घटित होते हैं, तीनों का आरम्भ वस्तु-निर्देश से हुआ है तथा तीनों की कथावस्तु इतिहासोद्भव है। भारवि और श्रीहर्ष के काव्यों का नामकरण नायक के नाम पर हुआ है। माघ के काव्य का नामकरण काव्य-वर्णित घटना के आधार पर है। किरातार्जुनीय और नैषधीयचरित के नायक क्रमशः अर्जुन और नल सद्वंश क्षत्रिय हैं, शिशुपालवध के नायक श्रीकृष्ण देव श्रेणी में आते हैं यद्यपि काव्य में उनका महापुरुष रूप ही चित्रित किया गया है। तीनों नायक धीरोदात्त हैं, जिनमें आचार्यों द्वारा निरुपित नायक के प्रायः सभी गुण पाये जाते हैं। तीनों काव्यों के सर्गों की संख्या आठ से अधिक है। शिशुपालवध के चतुर्थसर्ग में तथा नैषधीयचरित के द्वितीयसर्ग में अनेक छन्दों का प्रयोग किया गया है, किरातार्जुनीय के त्रयोदशसर्ग में तीन छन्दों का प्रयोग प्राप्त होता है।

किरातार्जुनीय और शिशुपालवध में अंगी रस वीर का तथा नैषधीयचरित में अंगीरस शृंगार का सुन्दर सन्निबन्धन हुआ है। किरातार्जुनीय में पाँच अंग रसों की, शिशुपालवध में छह अंग रसों की तथा नैषधीयचरित में सात अंग रसों की योजना हुई है। तीनों काव्यों में पाँचों सन्धियों तथा सन्ध्यंगों का सुन्दर सन्निवेश हुआ है। विश्वनाथ ने जिन वस्तुओं के यथासम्भव सांगोपांग वर्णन करने का निर्देश किया है, उनमें से अधिकांश वस्तुओं का बृहत्त्रयी के रचयिताओं ने अति सुन्दर, सरस तथा अनेक-नूतन-कला समन्वित वर्णन किया है। शिशुपालवध में धर्मपुरुषार्थ तथा किरातार्जुनीय और नैषधीयचरित में काम पुरुषार्थ काव्य का मुख्य फल है।

## शिशुपालवध का वैशिष्ट्य

माघ का तत्कालीन ज्ञान-विज्ञान के बहुविध क्षेत्रों में अनुपम और अगाध पाण्डित्य था। कृष्ण-सेना के प्रयाण-पथ के वर्णन में इनका भारतीय भूगोल का ज्ञान उत्कृष्ट प्रतीत होता है। वैदिक संस्कृति के धर्म और दर्शन के मर्म और रहस्य का उन्हें प्रकाम परिचय था। व्याकरण की सूक्ष्मातिसूक्ष्म प्रवृत्तियों का शिशुपालवध में अत्यन्त सरलता एवं काव्य

प्रवाह के साथ समीचीन प्रयोग किया गया है।

माघ विद्वत्समाज के कवि रहे हैं। माघ के काव्य को समझने के लिए पण्डित होना आवश्यक है। माघ की सुन्दर रसोचित कल्पनाएँ उनके भावपक्ष की पूर्ण परिचायक है, किन्तु फिर भी उनकी प्रवृत्ति काव्य के कलापक्ष की ओर बहुत अधिक है। इसलिए शिशुपालवध को पढ़ने में लोगों ने कुछ वर्ष नहीं, अपितु पूरा जीवन ही लगा दिया क्योंकि कहा गया है–

**मेघे माघे गतं वयः।**

यह उक्ति मेघदूत पर चाहे पूर्णरूपेण चरितार्थ न होती हो, किन्तु शिशुपालवध के सम्बन्ध में तो पूर्णतया घटित होती है। ऐसा निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है।

उनके काव्य के राजनीति पक्ष को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने कौटिल्य के अर्थशास्त्र का आमूल अध्ययन किया था और वर्षों तक उनका किसी राजपरिवार से घनिष्ट सम्बन्ध रहा था। युधिष्ठिर, भीम, उद्धव और बलराम के मुख से माघ ने वे बातें कहलाई हैं, जो विश्वास दिलाती हैं कि नीति और अर्थ का ज्ञाता कोई राजमन्त्री ही राजनीति की इतनी बारीकियों को जान सकता है।

अपनी कल्पना के बल पर और श्लेशालंकार का आश्रय लेकर माघ कुछ बातें विचित्र ढ़ंग से कहने में विशेष कुशल हैं। निम्न श्लोक में कृष्ण समुद्र की ओर जाते हुए भी समुद्र से दूर हैं– यह वक्तव्य कितने प्रामाणिक और स्पष्ट ढ़ंग से कहा जा रहा है–

**तुरगशताकुलस्य परितः परमेकतुरङ्गजन्मनः**
**प्रमथितभूभृतः प्रतिपथं मथितस्य भृशं महीभृता।**
**परिचलितो बलानुजबजस्य पुरः सततं धृतश्रिय-**
**श्चिरविगतश्रियो जलनिधेश्च तदाभवदन्तरं महत्॥**[1]

---

1. शिशुपालवध, 4/82

माघ ने अपने वाग्वैचित्र्य की साधना के लिए शब्द और अर्थ दोनों को समान रूप से संवारा है। उन्होंने स्वयं कहा है–

**शब्दार्थौ सत्कविरिव द्वयं विद्वानपेक्षते।**[1]

जहाँ तक शब्दों का सम्बन्ध है, माघ की योग्यता का परिचय निम्न लोकोक्ति से मिलता है–

**नव सर्गगते माघे नव शब्दो न विद्यते।**

इससे स्पष्ट है कि अन्य कवियों की अपेक्षा माघ की प्रयुक्त शब्दराशि विपुलतर है। किरातार्जुनीय की भाँति ही शिशुपालवध में भी 'श्री' शब्द का सैकडों बार प्रयोग हुआ है। भारवि और माघ शब्द प्रयोग में समान रूप से निष्णात थे। दोनों के काव्यों में विविध छन्दों का प्रयोग है। किरातार्जुनीय में यधिष्ठिर द्वारा महर्षि व्यास के स्वागत तथा शिशुपालवध में श्रीकृष्ण द्वारा देवर्षि नारद के स्वागत का वर्णन लगभग समान है। भारवि के 24 छन्दों के मुकाबले माघ ने 41 छन्दों का प्रयोग किया है।

माघ की रस सिद्धि का परिचय उनके निम्न श्लोक से मिलता है–

**स्थायिनोऽर्थे प्रवर्तन्ते भावाः संचारिणो यथा।**
**रसस्यैकस्य भूयांस्तथा नेतुमहीभृतः॥**[2]

वर्णनों में श्रृंगार–तत्त्व माघ के लिए स्वाभाविक सा है। ऋतुओं का वर्णन परम्परानुसार श्रृंगारित है तो कोई आश्चर्य नहीं, किन्तु जब द्वारका वर्णन में कवि सम्भोगवती रमणियों की चर्चा करना नहीं भूलता है तो ऐसा लगता है कि श्रृंगार के बिना कवि अपना कर्म नीरस मानते हैं।[3] इस प्रकार माघ ने किसी भी पात्र को श्रृंगार के महासागर में निमज्जित करने से न छोड़ा।

---

1. शिशुपालवध, 2/86
2. वही, 2/87
3. वही, 3/45,54–56

इस प्रकार बृहत्त्रयी के रचयिता भारवि, माघ और श्रीहर्ष तीनों एक ही परम्परा के कवि हैं। तीनों का ही विविध शास्त्रों में प्रवेश था। भारवि ने जिस अलंकृत शैली को जन्म दिया, उसी को अपनाकर माघ ने उसका विकास किया और श्रीहर्ष के हाथों उसी शैली ने विकास की चरम सीमा को प्राप्त किया। माघ की श्रेष्ठता में निम्न उक्तियाँ ही काफी हैं–

**उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थगौरवम्।**
**नैषधे पदलालित्यं माघे सन्ति त्रयो गुणाः॥**

**तावद् भा-भारवेर्भाति यावन्माघस्य नोदयः।**
**उदिते च पुनर्माघे भारवेर्भारवेरिव॥**

**मुरारि-पद-चिन्ता चेत् तदा माघे रतिं कुरु।**

**मेघे माघे गतं वयः।**

**नवसर्गगते माघे नवशब्दो न विद्यते।**

**माघः शिशुपलवधं विदधन् कविमदवधं विदधे॥**

# शिशुपालवध में वक्रोक्ति

-डॉ. अमिता*

काव्यशास्त्र के प्रमुख छः सिद्धान्तों में वक्रोक्ति सिद्धान्त के प्रतिष्ठापक आचार्य कुन्तक हैं। जिन्होंने वक्रोक्ति के अन्तर्गत प्रायः सभी पूर्ववर्ती आचार्यों के मतों का समावेश किया है, उन्होंने वर्ण से लेकर प्रबन्ध तक वक्रोक्ति का विभाजन किया है। प्रस्तुत शोधपत्र में माघ विरचित 'शिशुपालवध' में प्रयुक्त वक्रोक्ति को दर्शाने का प्रयास किया गया है। गत्यर्थक भ्वादि के वंच् धातु से रक् प्रत्यय करने पर वक्र शब्द निष्पन्न होता है, जिसका अर्थ है कुटिल या टेढ़ा, और उक्ति का अर्थ है कथन। इस प्रकार विचित्र एवं चमत्कारिणी उक्ति को 'वक्रोक्ति' कहते हैं।

जहाँ भामह ने वक्रोक्ति को सभी अलङ्कारों का मूल माना है, वहीं दण्डि ऐसा ही काव्य को द्विधा विभक्त करने का माध्यम मानते हैं। रत्नश्री तो इसे सब की प्रकाशिता मानते हैं। 'वक्रोक्त्या किं न ख्याप्यते, वक्रोक्तिप्रधानत्वात्काव्यस्य' (रत्नश्री पृ. 15)

वामन के अनुसार वक्रोक्ति उपमामूलक अलङ्कार है, तो मम्मट एवं रुद्रट इसे शब्दालङ्कार स्वीकार करते हैं। उन्होंने इसे 'वक्री कृत उक्तिः' कहा है। रुय्यक ने अर्थालङ्कार के अन्तर्गत इसकी गणना की है। आनन्दवर्धन, अभिनवगुप्त, भोज आदि प्रसिद्ध आचार्यों ने भी वक्रोक्ति को स्वीकार किया है। परन्तु आचार्य कुन्तक इन सबसे आगे बढ़ गये। जिन्होंने इसे 'काव्यजीवित' कहा। काव्यसौन्दर्य के सम्पादक सभी तत्त्वों का अन्तर्भाव वे वक्रोक्ति में ही मानते हैं। यही विचित्र अभिधा रूपी वक्रोक्ति कुन्तक के मत में 'काव्य की आत्मा' है। जिसे उसने अलङ्कार

---

* पूर्व शोधच्छात्रा, केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय, नई दिल्ली।

के रूप में वर्णित न कर प्रसिद्ध काव्यचिन्तन के पद पर प्रतिष्ठित किया है–

**कुन्तक ने वक्रोक्ति के छः भेद किये हैं–**

1. वर्णविन्यास वक्रता 2. पदपूर्वार्ध वक्रता 3. पदपरार्ध वक्रता

4. वाक्य वक्रता 5. प्रकरण वक्रता 6. प्रबन्ध वक्रता

इन छः भेदों को ही 6+11+8+1+9+6 के क्रम से 41 उपविभागों में बाँटा गया है। शिशुपालवध में इन सभी भेदों का सुन्दर निदर्शन प्राप्त होता है। जिनके कुछ उदाहरण यहाँ द्रष्टव्य हैं–

**वर्णविन्यासवक्रता**

आचार्य कुन्तक के वक्रोक्ति भेदों में प्रथम स्थान 'वर्णविन्यासवक्रता' का है। वर्ण भाषा की लघुतम इकाई है। वर्णों का ऐसा गुम्फन जो कि सुमधुर एवं कर्णप्रिय हो कवि की विशेष प्रतिभा का परिचायक है, शब्दालङ्कार के अन्तर्गत इसकी गणना होती है। प्राचीन आचार्यों ने अनुप्रास एवं यमक संज्ञा से भी उसे अभिहित किया है।

यमक का अधोलिखित उदाहरण तो लोक प्रसिद्ध है–

**नवपलाशपलाशवनं पुरः स्फुटपरागपरागतपङ्कजम्।**
**मृदुलतान्तलतान्तमलोकयत्स सुरभिं सुरभिं सुमनोभरैः॥**[1]

यहाँ पलाश, पराग, सुरभिं पदों की आवृति हुई है। इसके साथ ही आचार्यकुन्तक ने वर्ण वैचित्र्य के छः भेद किये हैं, जिसके कुछ उदाहरण यहाँ द्रष्टव्य हैं–

**एको द्वौ बहवो वर्णाः बध्यमानाः पुनः पुनः।**
**स्वल्पान्तरास्त्रिधा सोक्ता वर्णविन्यासवक्रता॥**[2]

अर्थात् जहाँ एक, दो, या अनेक व्यञ्जनों को अल्पव्यवधान से संयोजित किया जाता है। 'धनं धनान्ते' 'पुरः प्रवालैरिव पूरितार्धया'

1. शिशुपालवध, 6/2
2. वक्रो. 2/1

इसका उत्तम उदाहरण है। यहाँ ध, न और प, र की आवृत्ति हुई है।

द्वितीय प्रकार की वर्णवक्रता भी तीन प्रकार की है। यथा–

**वर्गान्तयोगिनः स्पर्शा द्विरुक्तास्तनलादयः।**
**शिष्टाश्च रादिसंयुक्ताः प्रस्तुतौचित्यशोभिनः॥**[1]

शिशुपालवध में स्थान स्थान पर इसकी छटा देखने को मिलती है। जिसके कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं–

**मुक्त्वाङ्गस्कन्धपञ्चकम्।** शिशु. 2/28

**अभिसार न वल्लभमङ्गना।** तत्रैव 6/26

**कीर्णवल्ली वितानः।** तत्रैव 11/28

**अवधीर्य धैर्यकलिता दयितम्।** तत्रैव 9/59

कहीं कहीं पर वर्गो की आवृत्ति व्यवधान युक्त या व्यवधान रहित होने पर भी चित्ताकर्षक होती है। यथा– 'तुल्योऽपराधे स्वर्भानुर्भानुमन्तं चिरेणयत्।' (शिशु. 2/49) यहाँ र, भ, न व्यञ्जनों की बिना व्यवधान के आवृत्ति हुई है।

### पदपूर्वार्धवक्रता

आचार्यकुन्तक ने पदवक्रता को प्रकृति एवं प्रत्यय के आधार पर पूर्वार्ध एवं उत्तरार्धवक्रता दो भागों में विभक्त किया है। पाणिनी 'सुप्तिङन्तं पदम्' (अष्टा. 1/4/14) अर्थात् सुबन्त एवं तिङन्त को पद कहते हैं।

आचार्य यास्क ने नाम, आख्यात, उपसर्ग एवं निपात को पद कहा है। प्रातिपदिक एवं धातु के भेद से प्रकृति भी दो प्रकार की होती है। आचार्य कुन्तक ने पदपूर्वार्धवक्रता को रूढ़ि, पर्याय, उपचार विशेषण, संवृत्ति, वृत्ति, लिङ्ग एवं क्रिया वैचित्र्य के भेद से आठ भागों में बाँटा है।

---

1. वक्रो. 2/2

शिशुपालवध में अनेक स्थानों पर रूढ़िवक्रता का प्रयोग किया गया है। जिसका निम्न उदाहरण देखिये–

**यावदर्थपदां वाचमेवमादाय माधवः।**
**विरराम महीयांसः प्रकृत्या मितभाषिणः॥**[1]

यहाँ कृष्ण के लिये कवि माधव पद के स्थान पर केशव, यादव पद का भी प्रयोग कर सकता था। लेकिन कवि को माधव पद ही अभिष्ट था। माँ लक्ष्मी **तस्याः धवः पतिः माधवः** लक्ष्मीपति। माधव पद से कवि ने अपने सकल प्रयोजन की सिद्धि कर ली जो कि रूढ़िवैचित्र्य का अति उत्तम उदाहरण है। इसी प्रकार माघ ने पदपूर्वार्धवक्रता के अन्य भेदों में भी अपनी विलक्षण प्रतिभा का परिचय दिया है। माघ की विशेषणवक्रता भी मनोहारिणी बन पड़ी है–

**शुचिशीतल चन्द्रिकाप्लुताश्चिरनिः शब्दमनोहरा दिशः।**
**प्रशमस्य मनोभवस्य वा हृदि तस्याप्ययं हेतुतां ययुः॥**[2]

यहाँ पर दिशाओं के स्वच्छ एवं शीतल विशेषणों के कारण ही किसी के हृदय में शान्त एवं किसी के हृदय में शृङ्गार रस की स्थिति संभव हो पायी है। आचार्य कुन्तक के अनुसार लिङ्गवैचित्र्यवक्रता में काव्य का सौन्दर्य लिङ्ग पर आधारित होता है।

पन्द्रहवें सर्ग में कृष्ण की पूजा से कुपित शिशुपाल का भीष्म के लिए स्थविरराजकन्यया यह प्रयोग लिङ्गवैचित्र्य का उत्कृष्ट उदाहरण है।

यहाँ भीष्म के लिये 'स्थविरराजकन्यया' पद का प्रयोग किया है। यहाँ पर कन्या पद अनेक अर्थों का परिचायक है। भीष्म अविवाहित हैं इसलिये उर्ध्वरेता हैं। यहाँ पूजनीय अर्थ में कन्या पद का ग्रहण कर सकते हैं। अन्यथा सन्तानहीन होने से नपुंसकता द्योतित करने के लिए निन्दा अर्थ में भी कन्या पद का प्रयोग किया जा सकता है। यहाँ पुलिङ्ग के लिये स्त्रीलिङ्ग पद कन्या का प्रयोग लिङ्गवैचित्र्य का श्रेष्ठ उदाहरण है।

---

1. शिशुपालवध, 2/13
2. वही, 2/53

**पदपरार्धवक्रता**

पदों के उत्तरार्ध से उत्पन्न होने वाला काव्यसौन्दर्य जो की सामान्यतः प्रत्ययरूप होता है पदपरार्धवक्रता कहलाता है। कुन्तक ने काल, कारक, सङ्ख्या, पुरुष, उपग्रह और प्रत्यय इन छः भागों में इसका विभाजन किया है। कालवैचित्र्य वक्रता वहाँ होती है जहाँ काल वाचक पद वर्णनीयविषय के औचित्य के अनुकूल काव्य में समाहित होकर उसके सौन्दर्य को और अधिक बढ़ा देता है। कालवैचित्र्य वक्रता का प्रस्तुत उदाहरण देखिये जहाँ 'हनिष्यति' में 'अभिज्ञयावचने लृट्' से स्मरण दिलाने के अर्थ में भूतकाल की जगह भविष्यत काल का प्रयोग हुआ है यथा–

**पयोधिमाबद्धजलज्जलाविलं,**
**विलङ्घ्य लङ्कां निकषा हनिष्यति॥**[1]

पुरुष वक्रता में स्वयं को तटस्थ दिखाने के लिये पात्र उत्तमपुरुष एवं मध्यमपुरुष का प्रयोग न करके अन्य पुरुष का प्रयोग करता है। शिशुपालवध में भी माघ ने इसका भलीभाँति निर्वाह किया है। यथा–

**बह्वपि प्रियमयं तव ब्रुवन्न व्रजत्यनृतवादितां जनः।**
**सम्भवन्ति यददोषदूषिते सार्व सर्वगुणसम्पदस्त्वयि॥**[2]

यहाँ पर काव्यवैलक्षण्य को प्रतिपादित करने हेतु युधिष्ठिर द्वारा 'अस्मद्' पद अहं के स्थान पर अयं जनः न व्रजति का प्रयोग किया है। जहाँ युधिष्ठिर स्वयं को साधारण मनुष्य की कोटि में रखकर सर्वगुणसम्पन्न कृष्ण की स्तुति कर रहा है। युधिष्ठिर की सत्यवादिता लोकप्रसिद्ध है, जो की अहं पद से स्वयं सिद्ध हो रही है। परन्तु जो काव्यवैचित्र्य अयं में है अहं से उसकी प्राप्ति नहीं हो रही। अतः यहाँ पर पुरुषवक्रता है।

इसी प्रकार पद परार्धवक्रता के अन्य भेदों में भी माघ की विलक्षण प्रतिभा मुखरित हुई है, जिसमें कुन्तक प्रतिपादित समस्त वक्रताओं का कुशलता से समावेश किया गया है।

1. शिशुपालवध, 1/68
2. वही, 14/4

**वाक्यवक्रता**

वक्रोक्ति के उपरोक्त दोनों भेद वाचकवक्रता के उदाहरण थे। केवल वाचक वक्रता से ही काव्य में सौन्दर्य नहीं आता, इसके लिये वाच्यार्थ का होना परमावश्यक है। और जब शब्द एवं अर्थ दोनों मिलकर सौन्दर्य को उद्भाषित करते हैं, तो वही वाक्य वक्रता कहलाती है। इसे ही वस्तु वक्रता भी कहते हैं। जिसमें कवि अपनी कल्पना की तुलिका से सुन्दर शब्दों से संसारिक पदार्थों का चित्रण इस प्रकार करता है कि सहृदय आनन्द से झूम उठता है–

**उदारस्वपरिस्पन्दसुन्दरत्वेन वर्णनम्।**
**वस्तुतो वक्रशब्दैकगोचरत्वेन वक्रता॥**[1]

जहाँ सजह, स्वभाव एवं रस प्रधान के रूप में है। स्वभाव वक्रता सामान्य शोभायुक्त है। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि काव्यगत वस्तु वक्रता का सहजरूप प्राकृतिक होता है, जिसमें कवि विना किसी अलङ्कारादि का प्रयोग किये अपनी प्रतिभा से रमणीयार्थ उत्पन्न कर देता है। भाषा के सहज प्रवाह में यदि अनायास अलङ्कार आ भी जाये तो वह स्वभावोक्ति कहलाती है। वाक्य वक्रता में सभी अलङ्कारों का सन्निवेश किया जा सकता है। इसलिये इसके अनेक भेद हो सकते हैं। कुन्तक ने भी कहा है–

**वाक्यस्य वक्रभावोऽन्यो भिद्यते यः सहस्त्रधा।**
**यत्रालङ्कारवर्गोऽसौ सर्वोऽप्यन्तर्भविष्यति॥**[2]

सहज सौन्दर्य का प्रस्तुत उदाहरण देखिये जहाँ पहरेदारों की प्रातःकालिक स्वभाविक चेष्टाओं का मनोहारी वर्णन किया गया है–

**प्रहरकपमनीयं स्वं निदिद्रासतोच्चैः**
**प्रतिपदमुपहूतः केनचिज्जागृहीति।**
**मुहुरविशदवर्णा निद्रया शून्यशून्यां**
**दददपि गिरमन्तर्बुध्यते नो मनुष्यः॥**[3]

---

1. वक्रो. 3/1
2. वही, 1/20
3. शिशु. 11/4

कुन्तक ने वाक्यवक्रता में सत्रह अलङ्कार माने हैं जिनमें रूपक, उपमा, उत्प्रेक्षा आदि प्रमुख हैं।

**कृतापचारोऽपि परैरनाविष्कृतविक्रियः।**
**असाध्यः कुरुते कोपं प्राप्ते काले गदो यथा।।**[1]

इसके अतिरिक्त सुभाषित एवं सूक्तियाँ भी वाक्य वक्रता के अन्तर्गत आती हैं। माघ ने अपने काव्य में स्थान-स्थान पर इनका प्रयोग किया है। कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं-

**महीयांसः प्रकृत्यामितभाषिणः।**[2]
**क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति तदेवरूपं रमणीयतायाः।**[3]
**सदाभिमानैकधना हि मानिनः।**[4]

**प्रकरणवक्रता**

अभी तक वर्ण, पद, एवं वाक्य वक्रता का वर्णन किया गया है, केवल इन तत्त्वों के संयोग से ही काव्य उत्कर्ष को प्राप्त नहीं होता। इसके लिये प्रकरण की आवश्यकता पड़ती है। जिस प्रकार एक-एक फूल को जोड़ने से माला का निर्माण होता है और वही माला अपने सौन्दर्य से दर्शक के मन को मोह लेती है, वही स्थान प्रबन्ध में प्रकरण का है जो कि कथा का एक प्रसङ्ग होता है। 'प्रबन्धस्यैकदेशानां' (वक्रो. 4/5)। जहाँ कवि अपने वर्णन वैचित्र्य से सामान्य स्थिति को भी सजीव बना देता है। कुन्तक के अनुसार-

**यत्र नियन्त्रणोत्साहपरिस्पन्दोपशोभिनी।**
**व्यावृत्तिर्व्यवहर्तॄणां स्वाशयोल्लेखशालिनी।।**

**अव्यामूलादनाशङ्क्यसमुत्थाने मनोरथे।**
**काप्युन्मीलति निःसीमा सा प्रबन्धांशवक्रता।।**[5]

1. शिशुपाल. 2/84
2. वही, 2/13
3. वही, 4/17
4. वही, 1/67
5. वक्रो. 4/1-2

जिस प्रकार माला में मात्र एक फूल के मुरझा जाने पर वह सौन्दर्यवर्धक नहीं लगती उसी प्रकार एक प्रकरण भी नीरस हो जाये तो प्रबन्ध का सौन्दर्य न्यून हो जाता है। इसलिये कवि प्रकरण को चमत्कृत सरस एवं रोचक बनाने के लिये वक्रता का समावेश करता है। कुन्तक के मत में यह वक्रता नौ प्रकार की है, जो एक साथ मिलकर प्रकरण को चित्ताकर्षक बनाती है। जिनमें पात्रप्रवृत्ति वक्रता, उत्पाद्यकथा वक्रता, उपकारयोपकारकभाव वक्रता, आवृत्ति वक्रता आदि प्रमुख हैं। जहाँ कवि अपनी प्रतिभा से काव्य में रस का प्रवाह बनाये रखने के लिये पात्रादि के चरित्र का उत्कर्ष करता है।

शिशुपालवध में नारद कृष्ण संवाद, बलराम श्रीकृष्ण उद्धव संवाद, युधिष्ठिर कृष्ण संवाद इसके प्रमुख उदाहरण हैं। यहाँ नारद के प्रति श्रीकृष्ण का स्वाभाविक प्रेम द्रष्टव्य है-

**हरत्यघं सम्प्रति हेतुरेष्यतः...........एष धृष्टताम्।।**[1]

उत्पाद्य लावण्य वक्रता के अन्तर्गत कवि मुख्य घटना में रोचकता लाने के लिये अपनी कल्पना से कुछ कथांशों का सन्निवेश कर देता है या कुछ को हटा देता है। यह सब रस उत्पत्ति हेतु ही किया जाता है। आचार्य कुन्तक ने भी कहा है-

**निरन्तररसोद्‌गारगर्भसन्दर्भनिर्भराः।**
**गिरः कवीनां जीवन्ति न कथामात्रमाश्रिताः।।**[2]

शिशुपालवध की संक्षिप्त कथा यद्यपि महाभारत पुराणादि में प्राप्त होती है। परन्तु नारद कृष्ण संवाद, श्रीकृष्ण को ऐश्वर्य, वन विहार, सन्ध्या, प्रातःकाल एवं प्रकृति आदि का वर्णन कर प्रस्तुत काव्य में माघ ने अपनी कल्पना से लावण्यवैचित्र्य उपस्थित किया है-

**कथावैचित्र्यपात्रं तद्वक्रिमाणं प्रपद्यते।**
**यदङ्गं सर्गबन्धादेः सौन्दर्याय निबद्ध्यते।।**[3]

---

1. शिशुपालवध, 1/26-30
2. वक्रो. 4/5
3. वही, 4/9

माघ के छठे सर्ग का ऋतु वर्णन, नवे सर्ग का सूर्यास्त वर्णन एवं ग्यारहवें सर्ग का उषा एवं सूर्योदय वर्णन प्रासङ्गिक प्रमाण का उत्तम उदाहरण है। सूर्योदय का वर्णन यहाँ दर्शनीय है–

**विततपृथुवरत्रातुल्यरूपैर्ममूखैः**
**कलश इव गरीयान् दिग्भिराकृष्यमाणः।**
**कृतचपलविहङ्गालापकोलाहलाभि-**
**र्जलनिधिजलमध्यादेष उत्तार्यतेऽर्कः।।**[1]

**प्रबन्धवक्रता**

जिस प्रकार उद्यान का निर्माण छोटे-छोटे पेड़-पौधों के मिलने से होता है उसी प्रकार पद, वाक्य, प्रकरण आदि मिलकर प्रबन्ध का रूप ले लेते हैं। प्रबन्ध से तात्पर्य महाकाव्य, खण्डकाव्य, नाटक आदि से है। कवि और माली दोनों का उद्देश्य एक ही होता है। अपनी रचना को उस चरमोत्कर्ष तक ले जाना जहाँ सहृदय रसानुभूति प्राप्त कर सके। कुन्तक ने इसके छः उपभेद किये हैं। जिनमें मूलरसपरिवर्तनवक्रता, समापनवक्रता, कथा-विच्छेदवक्रता, आनुषङ्गिकफलवक्रता आदि प्रमुख हैं।

शिशुपालवध मूलरसपरिवर्तन का उत्तम उदाहरण है। जिसका कथानक महाभारत एवं श्रीमद्भागवत् महापुराण से लिया गया है। जिनका अङ्गीरस शान्त है, किन्तु माघ ने शिशुपालवध में अङ्गीरस के रूप में वीर रस उद्भाषित कर जहाँ मूल रस में परिवर्तन किया है वहीं कथा को भी चमत्कृत कर दिया है।

यहाँ समापन वक्रता में भी कवि का कौशल सराहनीय है, जहाँ कवि ने मूल ग्रन्थ से इतिवृत्त ग्रहण कर अपने रचना वैचित्र्य से उसे रसमय बनाते हुए अपनी सुविधा अनुसार समापन कर दिया है, आचार्य कुन्तक के अनुसार–

**त्रैलोक्याभिनवोल्लेखनायकोत्कर्षपोषिणा।**
**इतिहासैकदेशेन प्रबन्धस्य समापनम्।।**

1. शिशुपालवध, 11/44

**तदुत्तरकथावर्तिविरसत्वजिहासया।**
**कुर्वीत यत्र सुकविः सा विचित्रास्य वक्रता।।**[1]

महाभारत में वर्णित शिशुपालवध के पश्चात् द्यूतक्रीडा, युधिष्ठिर की हार, बारह वर्ष का वनवास इत्यादि महत्त्वपूर्ण घटनायें हुई, किन्तु यहाँ कवि ने राजसूय यज्ञ में आमन्त्रण एवं इन्द्र सन्देश इन दोनों कार्यों की पूर्ति के साथ ही नायक के चरमोत्कर्ष पर कथा की समाप्ति कर दी।

आनुशङ्गिक फलवक्रता में नायक को मुख्य फल की प्राप्ति के साथ-साथ ही अन्य फलों की भी प्राप्ति हो जाया करती है। शिशुपालवध में नायक कृष्ण का मुख्य उद्देश्य शिशुपाल का वध करना है, परन्तु उसी के बीच में राजसूय यज्ञ में उनका निमन्त्रण, युधिष्ठिर द्वारा उनकी अग्रपूजा और भीष्म का उनके विषय में उक्त कथन कृष्ण के व्यक्तित्व को और उत्कृष्ट बना देता है-

**धन्योऽसि यस्य हरिरेष समक्ष एव**
**दूरादपि क्रतुषु यज्वभिरिज्यते यः।**
**दत्त्वार्घमत्रभवते भुवनेषु यावत्-**
**संसारमण्डलमवाप्नुहि साधुवादम्।।**[2]

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि माघ विरचित शिशुपालवध में कुन्तक प्रतिपादित वक्रता की छटा हमें देखने को मिलती है। सम्भवतः माघ ही कुन्तक के वैचित्र्य विधान के प्रेरणा श्रोत रहें हैं। वर्ण से लेकर प्रबन्ध तक माघ का प्रत्येक पद वैचित्र्य से परिपूर्ण है। उसी का परिणाम है कि महाभारत की छोटी सी घटना को भी माघ ने महाकाव्य का रूप दे दिया, जिसमें प्रारम्भ से लेकर अन्त तक पाठक निरसता का अनुभव न करता हुआ, आनन्दानुभूति करता है। जिसका प्रमाण माघ की प्रशस्ति में कही गयी निम्न उक्ति है- 'मेघे माघे गतं वयः'।

---

1. वक्रो. 4/18-19
2. शिशुपालवध, 14/87

# शिशुपालवध महाकाव्य में प्रयुक्त प्रमुख पर्वत एवं नदियाँ

-डॉ. विरेन्द्र बहादुर*

प्रकृति मानव की चिरसंगिनी है। जब से मनुष्य ने आँखे खोली हैं सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, पृथ्वी, आकाश, पर्वत, नदी, वायु, जल, वृक्ष, पशु-पक्षी आदि विभिन्न रूपों में प्रकृति सदैव उसकी समता करती आयी है। अतः सभी भाषाओं के सभी सहृदय कवियों ने प्रकृति का किसी न किसी रूप में वर्णन किया है। काव्य में प्रकृति के वर्णन से मानव अन्तःकरण की भावना साकार हो उठती है। इसी से प्रत्येक कवि उत्कृष्ट कल्पनाओं के लिए प्रकृति का निश्चित रूप से अवलम्बन करते हैं।

महाकवि माघ ने इसी पथ का अवलम्बन सफलतापूर्वक करते हुए 'शिशुपालवध' महाकाव्य में भारत के प्रकृति स्वरूप का विस्तृत वर्णन किया है। कवि ने महाकाव्य में प्रकृति वर्णन के फलस्वरूप अनेक पर्वत शृंखलाओं का उल्लेख किया है। मुख्य रूप से रैवतक पर्वत शृंखला के वर्णन में माघ ने चतुर्थ सर्ग की रचना की है। इसके अतिरिक्त हिमालय पर्वत शृंखला का वर्णन विस्तार से मिलता है, इसके अन्तर्गत कैलाश सुमेरू आदि का वर्णन हुआ है। इन पर्वत शृंखलाओं के अतिरिक्त मन्दराचल, विन्ध्य, सह्य, त्रिकूट, नीलगिरि, मलयाचल, गोवर्धन तथा लोकालोक आदि पर्वतों की भी चर्चा की गयी है। इन पर्वतों के अतिरिक्त महाकवि माघ ने नदियों का भी वर्णन किया है।

---

* पूर्व शोधच्छात्र, संस्कृत विभाग, कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

जिसमें गंगा, यमुना का वर्णन विशेष रूप से मिलता है। जिनका वर्णन क्रमशः किया जा रहा है।

महाकवि माघ ने हिमालय को पर्वतराज के नाम से सम्बोधित किया है। हिमालय का वर्णन करते हुए माघ ने कहा है कि हिमालय पर्वत की भूमि बर्फीली एवं लता समूहों से युक्त है–

**दधानमम्भोरुहकेसरद्युतीर्जटाः शरच्चन्द्रमरीचिरोचिषम्।**
**विपाकपिङ्गास्तुहिनस्थलीरुहो धराधरेन्द्रं व्रततीततीरिव॥**[1]

माघ ने हिमालय के लिए तुषार पर्वत नाम भी प्रयुक्त किया है।[2] इसकी गुफाओं का उल्लेख करते हुए माघ ने कहा है कि जिस प्रकार अस्थिर दृष्टि वाला उल्लू परम तेजस्वी सूर्य को देखने में असमर्थ होकर हिमालय की गुफा में प्रवेश करता हुआ दिन व्यतीत करता है, उसी प्रकार रावण के भय से चञ्चल नेत्र वाले इन्द्र से सूर्य के समान तेजस्वी रावण को देखने में असमर्थ होकर अपनी अमरावती पुरी छोड़कर हिमालय की गुफा में प्रवेश किया।

**अशक्नुवन् सोढुमधीरलोचनः**
**सहस्त्ररश्मेरिव यस्य दर्शनम्।**
**प्रविश्य हेमाद्रिगुहागृहान्तरं**
**निनाय बिभ्यद्दिवसानि कौशिकः॥**[3]

कैलाशपर्वत का वर्णन करते हुए महाकवि माघ कहते हैं कि शिवजी पार्वती जी के साथ कैलाश पर निवास करते हैं। रावण ने खेल-खेल में ही उस कैलाश पर्वत को उठा लिया था।[4] कैलाश पर्वत पर अत्यधिक ठण्ड का उल्लेख करते हुए माघ ने लिखा है कि भगवान् शंकर ठण्ड के भय से मोटे गजचर्म को पहनकर तथा ओढ़कर कैलाश पर शयन करते हैं।

---

1. शिशुपालवधम्, 1/5
2. वही, 1/15
3. वही, 1/53
4. वही, 1/50

**प्रालेयशीतमचलेश्वरमीश्वरोऽपि**
**सान्द्रेभचर्मवसनावरणोऽधिशेते।**
**सर्वर्तुनिर्वृतिकरे निवसन्नुपैति**
**न द्वन्द्वदुःखमिह किञ्चिदकिञ्चनोऽपि।।**[1]

रात्रि में चन्द्रमा की किरणों से लिप्त होकर कैलाश पर्वत का तट, स्फटिक मणि से रचित मकान के समान सुशोभित होता है।

**प्लुतमिव शिशिरांशोरंशुभिर्यन्निशासु**
**स्फटिकमयमराजद्राजताद्रिस्थलाभम्।**
**अरुणितमकठोरैर्वेश्म काश्मीरजाम्भः**
**स्नपितमिव तदेतद्भानुभिर्भाति भानोः।।**[2]

सुमेरु पर्वत का उल्लेख करते हुए माघ ने वर्णन किया है कि जिस समय श्यामवर्ण श्रीकृष्ण स्वर्ण आसन पर बैठे थे, उस समय वह आसन जामुन से सुशोभित सुमेरु पर्वत की चोटी की शोभा को भी जीत लिया था–

**स काञ्चने यत्र मुनेरनुज्ञया नवाम्बुदश्यामवपुर्न्यविक्षत।**
**जिगाय जम्बूजनितश्रियः श्रियं सुमेरुशृङ्गस्य तदा तदासनम्।।**[3]

देवताओं ने श्रीकृष्ण का आना जानकर सुमेरु पर्वत के ऊँचे शिखरों को लाकर रैवतक पर्वत को सजाया एवं ऊँचा किया।[4] सुमेरु शिखर के चारों तरफ नक्षत्र समूह घूमते हैं।[5] सुमेरु के वप्र की तुलना माघ ने रैवतक पर्वत के मणिमय शिखरों से किया है–

**इतस्तोऽस्मिन् विलसन्ति मेरोः समानवप्रे मणिसानुरागाः।**
**स्त्रियश्च पत्यौ सुरसुन्दरीभिः समा नवप्रेमणि सानुरागाः।।**[6]

1. शिशुपालवधम्, 4/64
2. वही, 11/53
3. वही, 1/19
4. वही, 4/10
5. वही, 3/37
6. वही, 4/27

कवि ने मन्दराचल पर्वत का उल्लेख समुद्र मन्थन के लिए मथनी के रूप में अनेक स्थलों पर किया है। महाकवि माघ ने मन्दराचल को देवताओं का स्थान बताया है।

**सवधूकाः सुखिनोऽस्मिन्ननवरतममन्दरागतामरसदृशः।**
**नासेवान्ते रसवन्न नवरतममन्दरागतामरसदृशः॥[1]**

विन्ध्य पर्वत का उल्लेख करते हुए महाकवि माघ ने वर्णन किया है कि बड़े-बड़े चट्टानों के चारों ओर से उठते हुए मेघ समूहों से सूर्य के मार्ग को रोकने के लिए पुनः तत्पर विन्ध्य पर्वत के समान आचरण करते हुए रैवतक पर्वत को कृष्ण ने देखा-

**गुर्वीरजस्त्रं दृषदः समन्तादुपर्युपर्यम्बुमुचा वितानैः।**
**विन्ध्यायमानं दिवसस्य भर्तुर्मार्गं पुना रोद्धुमिवोन्नमद्भिः॥[2]**

एक अन्य स्थल पर वर्णन है कि जिस प्रकार विन्ध्य और सह्य पर्वत पंख कटने के पूर्व एक स्थल पर निवास के लिए चाहते हुए एक दूसरे से मिल गये, उसी प्रकार श्रीकृष्ण तथा शिशुपाल की सेनायें युद्ध स्थल में वेगपूर्वक एक दूसरे से मिल गये-

**सञ्जग्माते तावपायानपेक्षौ सेनाम्भोधी धीरनादौ रयेण।**
**पक्षच्छेदात्पूर्वमेकत्र देशे वाञ्छन्तौ वा विन्ध्यसह्यौ निलेतुम्॥[3]**

रैवतक पर्वत का वर्णन महाकवि माघ ने चौथे सर्ग से ग्यारहवें सर्ग तक किया है। इस पर्वत का दृश्य श्रीकृष्ण तथा उनके सारथि के नेत्रों के सम्मुख जैसा आया, उसी प्रकार माघ ने वर्णन किया है। श्रीकृष्ण ने रैवतक पर्वत को अनेकों बार देखा था, फिर भी वे रैवतक को देखकर आश्चर्यचकित हो गये। यह सहस्रों शिखरों से आकाश में तथा सहस्रों पादों (समीपवर्ती पर्वतों) से पृथ्वी में व्याप्त है-

---

1. शिशुपालवधम्, 4/51
2. वही, 4/2
3. वही, 18/1

**सहस्त्रसंख्यैर्गगनं शिरोभिः पादैर्भुवं व्याप्य वितिष्ठमानम्।**
**विलोचनस्थानगतोष्णरश्मिर्निशाकरं साधु हिरण्यगर्भम्।।**[1]

यह अनेक वृक्षों, लताओं तथा निर्मल जल से युक्त है।[2] यह पर्वत पक्षियों के लिए अपने पद्मरूपी छत्रों से छाया करता है।[3] रैवतक पर्वत पर मेघ जल बरसाकर चातकों की प्यास दूर करते हैं।[4] इसमें कामुको को स्वेच्छा से कामज्वर दूर करने के लिए आश्रय मिलता है।[5] शिखर पर सज्जनों को रैवतक निर्जन बादलों की जवनिका से सुखी करता है।[6] बादल सूर्य को आच्छादित करके युवक-युवतियों के लिए दिन को रात में परिणत कर देते हैं।[7] रैवतक समशीतोष्ण है, जहाँ अकिञ्चन भी भारी भरकम् परिधान के बिना रह सकते हैं।[8] विकसित चम्पक के पिंगलवर्ण कनकमयी दीवालों से सुमेरुतुल्य इस पर्वत के द्वारा भारतवर्ष इलावृत के समान शोभता है। सूर्योदय तथा चन्द्रमा के अस्त होने पर यह पर्वत, दोनों पार्श्वों में लटकते हुए दो घण्टाओं वाले हाथी के समान सुशोभित होता है।

**उदयति विततोर्ध्वरश्मिरज्जावहिम-**
**रुचौ हिमधाम्नि याति चास्तम्।**
**वहति गिरिरयं बिलम्बिघण्टाद्वय-**
**परिवारितवारणेन्द्रलीलाम्।।**[9]

यह पर्वत इतना अधिक ऊँचा है कि इसके शिखरों पर चढ़े हुए

---

1. शिशुपालवधम्, 4/4
2. वही, 4/7-8
3. वही, 4/6
4. वही, 4/24
5. वही, 4/42
6. वही, 4/56
7. वही, 4/62
8. वही, 4/64
9. वही, 4/20

लोग चन्द्रमा के दूसरी अर्थात् चन्द्रमा के पिछले हिस्से को देखते हैं।[1] यहाँ इन्द्रनील, सूर्यकान्त तथा मरकत आदि मणियाँ प्रचुर मात्रा में पायी जाती है।[2] इस पर्वत पर अनेक निर्झर हैं।[3] इस पर एक ओर स्फटिक मणि के किनारे की प्रभा से श्वेत जलवाली तथा दूसरी ओर इन्द्रनीलमणि की प्रभा से मिश्रित होने से नीले जल वाली नदियाँ, यमुना के जल से मिश्रित गंगा की शोभा को धारण करती है।

**एकत्र स्फटिकतटांशुभिन्ननीरा**
**नीलाश्मद्युतिभिदुराम्भसोऽपरत्र।**
**कालिन्दीजलनिताश्रियः श्रयन्ते**
**वैदग्धीमिह सरितः सुरापगायाः।।[4]**

यह पर्वत किन्नरों का विहार स्थल है।[5] यहाँ अनेक महौषधियाँ पायी जाती हैं।[6] सह्य पर्वत का उल्लेख करते हुए माघ ने वर्णन किया है कि, युद्ध से नहीं भागने वाले श्रीकृष्ण तथा शिशुपाल दोनों की सेनायें इस प्रकार वेग पूर्वक एक दूसरे से मिल गयी जैसे पंख कटने से पहले एक ही स्थल पर निवास करने के लिए इच्छित सह्य तथा विन्ध्य एक दूसरे से मिल गये।[7] माघ ने त्रिकूट पर्वत का उल्लेख श्रीकृष्ण के सभा मण्डप के सन्दर्भ में किया है। वर्णन है कि सभामण्डप के जिस ऊँचे स्वर्ण सिंहासन पर श्रीकृष्ण, उद्धव तथा बलराम विराजमान थे, वह सिंहासन तीन सिंहों से अधिष्ठित त्रिकूट के शिखर जैसा प्रतीत होता है।

**अध्यासामासुरुत्तुङ्गहेमपीठानि यान्यमी।**
**तैरूहे केसरिक्रान्तत्रिकूटशिखरोपमा।।[8]**

---

1. शिशुपालवधम्, 4/22
2. वही, 4/14, 16
3. वही, 4/23
4. वही, 4/26
5. वही, 4/38
6. वही, 4/34
7 वही, 18/1
8. वही, 2/5

श्रीकृष्ण की उपमा अञ्जनगिरी से देते हुए माघ ने वर्णन किया है कि जब नारद तथा श्रीकृष्ण दोनों एक साथ हुए, उस समय लोगों को, शुभ्रवर्ण नारद को हिमालय के समान तथा श्यामवर्ण श्रीकृष्ण को अंजनगिरि (नीलगिरि) के समान देखा।

**न यावदेताबुदपश्यदुत्थितो**
**जनस्तुषाराञ्जनपर्वताविव।**
**स्वहस्तदत्ते मुनिमासने मुनि-**
**श्चिरन्तनस्तावदभिन्यवीविशत्॥**[1]

मलयाचल का वर्णन करते हुए माघ ने वर्णन किया है कि मृगनयनियों के ललाट में उत्पन्न पसीने के जल को सुखाते हुए, अनेक केशकलाप को हिलाने वाला, नीलकमलों के विकास पूर्वक जलाशयों के तरंग श्रेणी को धीरे-धीरे हिलाता हुआ, मलयाचल का पवन चलने लगा। इस वर्णन से स्पष्ट होता है कि मलयाचल पर शीतल वायु चलती है।

**विलुलितालकसंहतिरामृशन्मृगदृशां श्रमवारि ललाटजम्।**
**तनुतरङ्गततिं सरसां दलत्कुवलयं वलयन्मरुदाववौ॥**[2]

महाकवि माघ गोवर्धन पर्वत का वर्णन करते हुए कहते हैं कि श्रीकृष्ण ने गोवर्धन पर्वत को धारण करके गायों की रक्षा की थी।[3] जब श्रीकृष्ण की सेनाओं से रैवतक पर्वत आक्रान्त हो रहा था, उस समय वह रैवतक श्रीकृष्ण से उलाहना दे रहा है कि हे भगवन्! गोवर्धन पर्वत से आप सम्पूर्ण लोक में पर्वत के उद्धारक (ऊपर उठाने वाले) कहलाते हैं, तो फिर मुझे अपनी सेना से भाराक्रान्त कर क्यों इस प्रकार दबा रहे हैं कि मैं धस कर पाताल में चला जाऊँ।

**धरस्योद्धर्ताऽसि त्वमिति ननु सर्वत्र जगति**
**प्रतीतस्तत्किं मामतिभरमधः प्रापिपयिषुः।**

---

1. शिशुपालवधम्, 1/15
2. वही, 6/3
3. वही, 15/30

**उपालब्धेवोच्चैर्गिरिपतिरिति श्रीपतिमसौ**
**बलक्रान्तः क्रोडद्द्विरदमथितोर्वीरुहरवैः।।**[1]

लोकालोक पर्वत का उल्लेख करते हुए महाकवि माघ ने वर्णन किया है कि, शिशुपाल का दूत श्रीकृष्ण से कहता है कि हे कृष्ण! सूर्य का तेज भी लोकालोक पर्वत का उल्लंघन नहीं कर पाता है, किन्तु हमारे राजा शिशुपाल का विश्वव्यापी तेज बड़े-बड़े भूभृतों का अतिक्रमण कर जाता है।

**लोकालोकव्याहतं घर्मरश्मेः**
**शालीनं वा धाम नालं प्रसर्तुम्।**
**लोकस्याग्रे पश्यतो धृष्टमाशु**
**क्रामत्युच्चैर्भूभृतो तेजः।।**[2]

माघ ने पर्वतों के अतिरिक्त नदियों का भी बड़े सुन्दर ढ़ंग से वर्णन किया है। जिसमें मुख्य रूप से गंगा एवं यमुना है। माघ ने गंगा नदी का वर्णन जाह्नवी और सुरसिन्धु नामों से भी किया है। गंगा नदी का वर्णन करते हुए महाकवि माघ कहते हैं कि गंगा नदी ऊँचे ऊँचे पर्वतों से भी नहीं रूकी हुई और यमुना आदि अनेक नदियों को आत्मसात करती हुई तीन मार्गों से चलने के कारण 'त्रिमार्गगा' कहलाती है।

**भूभृद्भिरप्यस्खलिताः खलून्नतै-**
**रपह्नुवाना सरितः पृथूरपि।**
**अन्वर्थसंज्ञैव परं त्रिमार्गगा**
**ययावसंख्यै : पथिभिश्चमूरसौ।।**[3]

गंगा में अनेक नदियाँ मिलती हैं। इस प्रकार निरन्तर बहती हुई गंगा समुद्र में मिल जाती है।

---

1. शिशुपालवधम्, 5/69
2. वही, 16/83
3. वही, 12/23

**बृहत्सहायः कार्यान्तं क्षोदीयानपि गच्छति।**
**सम्भूयाम्भोधिमभ्येति महानद्या नगापगा।।**

**महात्मानोऽनुगृह्णन्ति भजमानान् रिपूनपि।**
**सपत्नीः प्रापयन्त्यब्धिं सिन्धवो नगानिम्नगाः।।**[1]

माघ ने समुद्र के वर्णन में गंगा का उल्लेख करते हुए कहा है कि गंगा ने समुद्र को पूरा नहीं किया है, बल्कि यमुना ने ही पूरा किया है। क्योंकि यदि गंगा ने पूरा किया होता तो समुद्र का पानी गंगा के प्रवाहों से भस्मरहित किये गये शंकर जी के कण्ठ के समान कृष्ण वर्ण कैसे होता अर्थात् कदापि न होता।

**व्यक्तं बलीयान् यदि हेतुरागमा-**
**दपूरयत्सा जलधिं न जाह्नवी।**
**गाङ्गौघनिर्भस्मितशम्भुकन्धरा-**
**सवर्णमर्णः कथमन्यथास्य तत्।।**[2]

गंगा का जल प्रवाह जिस प्रकार हिमालय पर्वत की गुफा के अग्र भाग की ओर जाता है, उसी प्रकार श्रीकृष्ण के सेना नगर द्वार के सम्मुख तीव्र गति से जा रही है।[3] गंगा नदी का जल प्रवाह यमुना नदी के जल प्रवाह की तुलना में अधिक ऊँचा नहीं उठता है। शिव जी ने गंगा के प्रवाह को शिर पर धारण किया है, भगवान् विष्णु ने इसी जल प्रवाह को पैर से धारण किया था।

**क्रियते धवलः खलूच्चकैर्धवलैरेव सितेतरैरधः।**
**शिरसौधमधत्त शंकरः सुरसिन्धोर्मधुजित्तमङ्घ्रिणा।।**[4]

गंगा का जल शीतल होता है यह अत्यधिक वेग के साथ ऊँचे-ऊँचे पर्वतों को पार करता हुआ नीचे की ओर बहता है।

---

1. शिशुपालवधम्, 2/100, 104
2. वही, 12/69
3. वही, 13/27
4. वही, 16/46

**अवनीभृतां त्वमपहाय गणमतिजडः समुन्नतम्।**
**नीचि नियतमिव यच्चपलो निरतः स्फुटं स्वसि निम्नगासुतः।।**[1]

यमुना नदी का वर्णन करते हुए महाकवि माघ कहते हैं कि यमुना नदी का जल कृष्ण वर्ण है। यमुना के कृष्ण वर्ण जल को पीकर शुभ्रवर्ण मेघ भी अञ्जल के रंगवाले (कृष्ण वर्ण) हो जाते हैं।

**यस्या महानीलतटीरिव द्रुताः**
**प्रयान्ति पीत्वा हिमपिण्डपाण्डुराः।**
**कालीरपस्ताभिरिवानुरञ्जिताः**
**क्षणेन भिन्नाञ्जनवर्णतां घनाः।।**[2]

यमुना का जल शीतल, सबकी प्राणभूत तथा पापों को नष्ट करने में समर्थ है।[3] यमुना के ही जल से सागर पूर्ण हुआ है, तभी तो समुद्र का जल शंकर जी के कण्ठ के समान (कृष्ण वर्ण) है।[4] कृष्णवर्ण वाली बहुत लम्बी यह यमुना नदी वेग से पृथ्वी का अतिक्रमण करती है।[5] यमुना के राशि में बड़े-बड़े भंवर होते हैं। गंगा के जल प्रवाह से स्पर्धा होने से यमुना का जल प्रवाह ऊपर उठता है।

**क्रामतोऽस्य ददृशुर्दिवौकसो दूरमूरुमलिनीलमायतम्।**
**व्योम्नि दिव्यसरिदम्बुपद्धतिस्पर्धयेव यमुनौधमुत्थितम्।।**[6]

यमुना नदी गंगा में मिल जाती है और उसके समागम को देखने के लिये आये हुए देवों के विमान प्रतिध्वनित हो गये।

**गतयोरभेदमिति सैन्ययोस्तयोरथ भानुजह्नुतयाम्भसोरिव।**
**प्रतिनादितामरविमानमानकैर्नितरां मुदा परमयेव दध्वने।।**[7]

1. शिशुपालवधम्, 15/21
2. वही, 12/68
3. वही, 12/67
4. वही, 12/40
5. वही, 3/17
6. वही, 14/77
7. वही, 13/25

अतः माघ द्वारा प्रस्तुत पर्वतों एवं नदियों के वर्णन से हमें यह ज्ञात होता है कि कवि के हृदय में प्राकृतिक स्थलों के प्रति असीम अनुराग था। इनका प्राकृतिक वर्णन अनुपम है। इनके काव्य में पर्वतों एवं नदियों आदि प्राकृतिक वस्तुओं का हृदयाकर्षक वर्णन किया गया है। इन्हीं सब कारणों से माघ का एक स्वतंत्र एवं वैशिष्ट्य पूर्ण स्थान है। इस प्रकार माघ के काव्य में प्राकृतिक स्थल केवल सुन्दर एवं सुकुमार रूप से ही नहीं अपितु मानव आत्मा के साथ संयुक्त प्राणवान रूप में दृष्टिगोचर होती है।

# महाकवि माघ का गुणत्रय विमर्श

-श्री अखिलेश कुमार*

प्राक्तन काल से अद्यावधि पर्यन्त ऋषियों, महर्षियों, कवियों तथा महाकवियों ने प्रायः उपमा, अर्थगौरव तथा पदलालित्य को केन्द्र में रखकर अपने वाक्-वैदग्ध्य को रचना का रूप प्रदान किया है। इस लौकिक एवं पारलौकिक जगत् को जिन्होंने जितने ही समीप से देखा, श्रवण किया तथा अनुभव किया उन्होंने उतना सुरम्य चित्रण अपनी रचनाओं में प्रस्तुत किया। **अग्निपुराण** में भी कहा गया है कि इस अपार काव्य जगत् का सृष्टिकर्ता कवि है। उसे जैसा रुचता है, वैसा ही अपनी रुचि के अनुसार काव्य जगत् का सृजन करता है-

**अपारे काव्यसंसारे कविरेकः प्रजापतिः।**
**यथास्मै रोचते विश्वं तथैदं परिवर्तते॥**[1]

इस पुराण वचन से भी यही ज्ञात होता है कि पूर्ववर्ती कवियों का प्रभाव परवर्ती कवियों पर पड़ना निःसर्गतः सिद्ध है। उस पर भी जो रुचिकर हो उसके विषय में क्या कहना। महाकवियों पर दृष्टिपात् करें तो भास, कालिदास, अश्वघोष तथा भारवि के पश्चात् महाकवि माघ का समय आता है। महर्षि पतञ्जलि के **व्याकरणमहाभाष्य** में पदलालित्य तथा अर्थगौरव के वैशिष्ट्य को देखा जा सकता है। जिसमें एक स्वर के परिवर्तन मात्र से अर्थ में कितना परिवर्तन हो जाता है कि स्वयं अपना हित चाहने वाले को ही अहित हो जाता है-

---

* पूर्व शोधच्छात्र, संस्कृतविभाग, कलासङ्काय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

1. शिशु. भूमिका पृ. 1 सम्पादक शशिशेखर चतुर्वेदी

**दुष्टः शब्दः स्वरतो वर्णतो वा**
**मिथ्याप्रयुक्तो न तमर्थमाह।**
**स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति**
**यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपराघात्।।**[1]

इसी प्रकार महाकवि ने भी वर्णन किया है कि यज्ञीय मन्त्रों में जब संदेहोत्पादक समास यदि कहीं आते थे तो व्याकरणशास्त्र के विद्वान् ऋत्विज उनका स्वर बदलकर अपने प्रकृत इष्ट कर्म के अनुकूल अर्थ का निर्णय, विग्रह द्वारा करते थे-

**संशयाय दधतोः सरूपतां दूरभिन्नफलयोः क्रियां प्रति।**
**शब्दशासनविदः समासयोर्विग्रहं व्यवससुः स्वरेण ते।।**[2]

गुणों पर विचार करें तो किसी भी चर एवं अचर जीवन-जगत् की पहचान उसके गुणों से ही होती है। गुणों के कारण ही कवियों एवं महाकवियों को कवि श्री तथा नगरों एवं पुष्पों को भी प्रसिद्धि प्राप्त हुई है-

**पुष्पेषु चम्पा नगरीषु काञ्ची**
**नदीषु गङ्गा नृपेषु रामः।**
**नारीषु रम्भा पुरुषेषु विष्णुः**
**काव्येषु माघः कविकालिदासः।।**

प्रत्येक रचनाकार किसी न किसी तथ्य का प्रख्यापन इस दृष्टि से करता है कि उसका कलेवर सर्वजनग्राह्य होने के कारण विश्वविश्रुत होता है। यदि कालिदास की लेखनी ने नानाविध प्रतिमानों को स्थापित करते हुए उपमा को, नारिकेलफल सदृश दृष्टिगत होने वाली भारवि की मधुरिम उक्तियाँ अर्थगौरव को तथा शृङ्गार के साथ सम्पूर्ण सामाजिक बिम्बों के प्रकटीकरण में श्रीहर्ष का पदलालित्य सभी के चित्त को झंकृत कर देता है तो इन सभी कवियों में अन्यतम ऐसे कवि जिनमें इन तीनों गुणों का सन्निवेश पूर्णरूपेण परिलक्षित होता है, महाकवि माघ

1. व्याकरणमहाभाष्य, प्रथम पस्पशाह्निक
2. शिशु. 14.24

अपनी कृति **शिशुपालवध** द्वारा सम्पूर्ण जगत् को आलोकित करते हैं। इस प्रकार इन महाकवियों के विषय में कही गई ये उक्तियाँ साक्षात् उनके गुणों का प्राकट्य करती हैं–

**उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थगौरवम्।**
**नैषधे पदलालित्यं माघे सन्ति त्रयो गुणाः।।**

**उपमा**

महाकवि कालिदास सदृश महाकवि माघ ने भी उपमा प्रयोग में कुशलता दिखाई है। इनकी ये उपमाएँ चित्त में नवीन भावों का संचार करने वाली एवं तथ्यों का ख्यापन करती हुई दृष्टिगत होती हैं। जहाँ महाकवि कालिदास शृङ्गारिक कवि होने के कारण उन्होंने सरस एवं कोमल उपमाओं को अधिक महत्त्व दिया है वहीं महाकवि माघ ने शृङ्गार के साथ ही साथ विविध अवयवों का उद्घाटन बड़े ही सुगमता से किया है। यथा– शास्त्रीय उपमा जिस प्रकार **पस्पश** (पस्पशाह्निक व्याकरणमहाभाष्य) के विना व्याकरण विद्या सुशोभित नहीं होती, उसी प्रकार **स्पश** (गुप्तचर) के विना राजनीति भी सुशोभित नहीं होती–

**अनुत्सूत्रपदन्यासा सद्वृत्तिः सन्निबन्धना।**
**शब्दविद्येव नो भाति राजनीतिरपस्पशा।।**[1]

यहाँ व्याकरण विद्या से राजनीति की उपमा दी गयी है।

महाकवि कालिदास की उपमा यथा– इन्दुमती स्वयंवर में उपस्थित भूपालों को छोड़कर जब इन्दुमती आगे बढ़ जाती है, तब वे राजमार्ग में दीपशिखा के द्वारा छोड़े गए महलों के समान प्रतीत होते हैं–

**संचारिणी दीपशिखेव रात्रौ**
**यं यं व्यतीयाय पतिंवरा सा।**
**नरेन्द्र-मार्गाट्ट इव प्रपेदे**
**विवर्णभावं स स भूमिपालः।।**[2]

1. शिशु. 2.112
2. रघु. 6.67

यहाँ राजाओं की विष्णता तथा उदासी का वर्णन किया गया है।

शास्त्रीय उपमानों को राजनीति से जोड़ते हुए बौद्धमत के पञ्चस्कन्धों से राजनीति के पञ्चाङ्गों की उपमा दी गई है। जिस प्रकार बौद्धों के मत में पञ्चस्कन्ध के अतिरिक्त कोई आत्मा नहीं है, उसी प्रकार राजाओं के पाँच अंगों के अतिरिक्त और कोई मन्त्र नहीं है–

**सर्वकार्यशरीरेषु मुक्त्वाऽङ्गस्कन्धपञ्चकम्।**
**सौगतानामिवात्माऽन्यो नास्ति मन्त्रो महीभृताम्।।**[1]

तात्पर्य यह है कि बौद्धों के यहाँ केवल पञ्चस्कन्ध– रूपस्कंध, वेदनास्कंध, विज्ञानस्कंध, संज्ञास्कंध तथा संस्कारस्कंध ही माने गये हैं। इनके अतिरिक्त आत्मा नाम की कोई वस्तु स्वीकार नहीं करते, क्योंकि यह नास्तिक दर्शन है, उसी प्रकार राजाओं के यहाँ पञ्चाङ्गमन्त्र–

**सहायाः साधनोपाया विभागो देशकालयोः।**
**विपत्तेश्च प्रतीकारः सिद्धिः पञ्चाङ्गमिष्यते।।**[2]

इसके अतिरिक्त कोई अन्य मंत्र नहीं है।

महाकवि माघ शब्द और अर्थ की उपमा दैव और भाग्य से देते हुए कहते हैं कि जिस प्रकार विद्वान् पुरुष केवल दैव और भाग्य का अवलम्बन न कर समयानुकूल दोनों का ग्रहण करते हैं, उसी प्रकार कवि भी अपने भावों को व्यक्त करने के लिए शब्द और अर्थ दोनों को ग्रहण करता है, किसी एक का नहीं–

**नालम्बते दैष्टिकतां न निषीदति पौरुषे।**
**शब्दार्थौ सत्कविरिव द्वयं विद्वानपेक्षते।।**[3]

महाकवि ने शृङ्गारादि रसों के विभावादि भावों तथा स्थायी भावों से राजा कि तुलना की है कि जिस प्रकार संचारी भाव रस की पदवी को प्राप्त करने वाले स्थायी भाव के सहायक हो जाते हैं। अर्थात् संचारी

1. शिशु. 2.26
2. कामन्दक मत. 11.56
3. शिशु. 2.88

भाव से पुष्ट होकर स्थायी भाव ही आस्वाद्य के योग्य होकर रस रूप में परिणत हो जाते हैं, उसी प्रकार स्थायी अर्थात् शान्ति से अवसर की प्रतिक्षा करने वाले विजिगीषु राजा के भी अन्य राजागण सहायक हो जाते हैं-

**स्थायिनोऽर्थे प्रवर्तन्ते भावाः सञ्चारिणो यथा।**
**रसस्यैकस्य भूयांसस्तथा नेतुर्महीभुजः।।**[1]

यहाँ रस विषयक उपमा दी गई है।

महाकवि की **संगीतशास्त्रविषयक** उपमाएँ भी अति विद्वत्तापूर्ण एवं मनोवैज्ञानिक होते हुए भी अत्यन्त सरल एवं सुन्दर हैं। उन्होंने वर्णन किया है कि जिस प्रकार निषादादि सात स्वरों से समन्वित संगीतशास्त्र के गायन के प्रकार असंख्य हैं, उसी प्रकार केवल 50 अकारादि वर्णमातृकाओं से रचित शब्द प्रयोग के प्रकार भी अनन्त हैं-

**वर्णैः कतिपयैरेव ग्रथितस्य स्वरैरिव।**
**अनन्ता वाङ्मयस्याहो गेयस्येव विचित्रता।।**[2]

तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार केवल षड्ज, ऋषभ तथा गान्धारादि सात स्वरों से अनेक प्रकार के गायन का सृजन हो जाता है, उसी प्रकार अकारादि स्वर तथा ककारादि व्यंजनों के प्रयोग मात्र से अनेक प्रकार के शब्दों का आविर्भाव हो जाता है, जिसका प्रतिफल काव्य, महाकाव्य तथा नाटकादि के रूप में दृष्टिगोचर होता है।

महाकवि ने प्रातःकाल उदित हो रहे सूर्य को घड़ा, समुद्र को कुँआ, किरणों को रस्सी तथा दिशाओं को नारियों के समान वर्णित किया है कि यह सूर्य समुद्रजल से दिशारूपी नारियों के द्वारा, किरणरूपी रस्सियों से उसी प्रकार खींचा जा रहा है, जिस प्रकार स्त्रियाँ घड़े को कुँए से रस्सियों के सहारे खींचती हैं-

---

1. शिशु. 2.81
2. वही, 2.72

**विततपृथुवरत्रातुल्यरूपैर्मयूखैः**
**कलश इव गरीयान् दिग्भिराकृष्यमाणः।**
**कृतचलविहङ्गलापकोलाहलाभि-**
**र्जलनिधिजलमध्यादेष उत्तार्यतेऽर्कः॥**[1]

इसी प्रकार महाकवि ने अनेक उपमाएँ विभिन्न क्षेत्रों में दी हैं। यथा- भगवान् श्रीकृष्ण के वक्षस्थल पर सुशोभित मूक्तलता की उपमा आकाशगंगा से की गई है-

**उभौ यदि व्योम्नि पृथक्प्रवाहावाकाशगङ्गापयसः पतेताम्।**
**तेनोपमीयेत तमालनीलमामुक्तमुक्तालतमस्य वक्षः॥**[2]

महाकवि ने गोमूत्रिकादि व्यूहों से शिशुपाल के सेना की उपमा दी है कि जिस प्रकार सर्वतोभद्र चक्र तथा गोमूत्रिकादि बन्धों से युक्त महाकाव्य दुरूह हो जाता है, उसी प्रकार सर्वतोभद्र चक्र तथा गोमूत्रिकादि व्यूहों से युक्त शिशुपाल की सेना दुर्गम हो गई-

**विषमं सर्वतोभद्रचक्रगोमूत्रिकादिभिः।**
**श्लोकैरिव महाकाव्यं व्यूहैस्तदभवद्बलम्॥**[3]

काव्यबन्धों अर्थात् जिसमें श्लोकों के रूप में अत्यन्त दुष्कर होते हुए भी सम्पूर्ण वर्ण एवं मात्राएँ पिरोये गए हैं, उनसे शिशुपाल की सेना की उपमा देना महाकवि के उत्कृष्ट औपम्य को प्रदर्शित करता है। देवर्षि नारद की तुलना हिमालय से की है कि-

**दधानमम्भोरुहकेसरद्युतीर्जटाः शरच्चन्द्रमरीचिरोचिषम्।**
**विपाकपिङ्गास्तुहिनस्थलीरुहो धराधरेन्द्रं व्रततीततीरिव॥**[4]

## अर्थगौरव

जिस अर्थगौरव के ख्यापन में महाकवि भारवि ने कीर्तिपताका

1. शिशु. 11.44
2. वही, 3.8
3. वही, 19.41
4. वही, 1.5

स्थापित की है, उन्हीं महाकवि के मार्गों का अनुसरण कर महाकवि माघ ने भी अर्थगौरव में अपनी उत्कृष्टता प्रदर्शित की है। वे **ज्योतिषशास्त्र-विषयक** अर्थगाम्भीर्य को भाग्य से जोड़कर कहते हैं कि चन्द्रमा का प्रतिकूल होना उसी प्रकार अनिष्टकारक है, जिस प्रकार भाग्य के प्रतिकूल होने पर अनेक प्रकार के साधन सुलभ रहने पर भी किसी कार्य में नहीं आते अपितु व्यर्थ हो जाते हैं। साथ ही जिसका अवलम्बन करके सूर्य उदित होता है वे सहस्र किरणें भी सूर्यास्त के समय उसे डूबने से नहीं रोक पाती हैं। अर्थात् उनका साथ नहीं दे पाती हैं-

**प्रतिकूलतामुपगते हि विधौ विफलत्वमेति बहुसाधनता।**
**अवलम्बनाय दिनभर्तुरभून्न पतिष्यतः करसहस्रमपि॥**[1]

ज्योतिषशास्त्र में भी कहा गया है कि चन्द्रमा का प्रतिकूल होना अनिष्टकारक है-

**सम्मुखे हि अर्थलाभाय दक्षिणे सुखसम्पदः।**
**पृष्ठतो मरणं चैव वामे चन्द्र धनच्छयः॥**

महाकवि ने सूर्य को नायक और उसकी रश्मियों को नायिका के रूप में चित्रित किया है कि जिस प्रकार सूर्य की सहस्र रश्मियाँ सूर्यरूप तीव्र अग्नि में इसलिए प्रविष्ट होती हैं कि अगले जन्म में अर्थात् प्रातः-काल में पुनः सूर्यरूप पति को प्राप्त करूँ, उसी प्रकार पतिव्रता स्त्रियाँ अपने पति के मृत्यु के पश्चात् उनके पर्थिव शरीर के साथ स्वयं को इस उद्देश्य से सती कर देती हैं कि यदि मेरा पुनर्जन्म हो तो इन्हें ही अपने पतिरूप में प्राप्त करूँ-

**रुचिरधाम्नि भर्तरि भृशं विमलाः**
**परलोकमभ्युपगते विविशुः।**
**ज्वलनं त्विषः कथमिवेतरथा**
**सुलभोन्यजन्मनि स एव पतिः॥**[2]

---

1. शिशु. 9.6
2. वही, 9.13

षोडश संस्कारों में परिगणित विवाह संस्कार के अवसर पर अग्नि को साक्षी मानकर वर-वधू जिन सात वचनों को परस्पर निर्वहन का संकल्प लेते हैं, वह उनके दाम्पत्य प्रेम एवं सर्वस्व समर्पण का आधार होता है। सम्भवतः यही कारण है कि पतिव्रता स्त्रियाँ प्राणप्रिय पति के विना जीवन की अर्थहीनता स्वीकार कर पति के साथ ही उसी अग्नि में स्वयं को भी समर्पित कर देती हैं। इसी तथ्य की पुष्टि **श्रुतिवचन** भी करती है कि-

**अग्निं वा वादित्यः सायं प्रविशति।**

पतिव्रता स्त्री के विषय में कहा गया है कि-

**मृते या मृये पत्यौसा स्त्री ज्ञेयापतिव्रता।**[1]

महाकवि **शास्त्रबल** और **शास्त्रेतरबल** के विषय में वर्णन करते हैं कि नीतिशास्त्र के अनुसार जब शत्रु विपत्ति में रहे, उस समय उस पर आक्रमण करना तथा उच्छृंखल अर्थात् नीति के विरुद्ध बलपूर्वक शत्रु पर चढ़ायी करना दोनों अलग-अलग बल हैं। दोनों एक रूप उसी प्रकार नहीं हैं, जिस प्रकार प्रकाश और अन्धकार-

**अन्यदुच्छृङ्खलं सत्त्वमन्यच्छास्त्रनियन्त्रितम्।**
**सामानाधिकरण्यं हि तेजस्तिमिरयोः कुतः॥**[2]

तात्पर्य यह है कि उचित और अनुचित अवसर का सम्यक् निर्धारण करके ही बल प्रयोग करना चाहिए अन्यथा वह बल व्यर्थ हो जाता है, उसका कोई मोल नहीं होता। जैसे प्रकाश और अन्धकार एक साथ नहीं रहते, एक के आने पर दूसरे का विनाश शीघ्र ही हो जाता है।

कौटिल्य ने भी वर्णन किया है कि-

**व्यसनी यातव्यः अनपाश्रयो दुर्बलाश्रयो वोच्छेदनीयः।**

---

1. शिशु. सर्ग 9 पृ. 471
2. शिशु. 2.62

अर्थात् जो व्यसनी, आश्रयहीन और दुर्बल शत्रु राजा हो उस पर आक्रमण कर देना चाहिए।

राजा किस प्रकार अपने साम्राज्य को सुदृढ़ बनाये और प्रभाव, उत्साह एवं मंत्रशक्ति को प्राप्त करे तथा साथ ही साम्राज्य के सभी प्राणी, स्वामी तथा अमात्यादि स्वस्थ रहें इसके लिए संधि तथा विग्रहादि षड्गुणरूपी रसायन का सेवन करना चाहिए। क्योंकि इसके सेवन से न केवल साम्राज्य के समस्त प्राणी अपितु अंग भी उसी प्रकार सुदृढ़ हो जाते हैं, जिस प्रकार स्वर्णसिन्दूरादि रसायन का सेवन करने से बल चाहने वाले के हस्तपादादि अंग बलवान हो जाते हैं और शत्रु का दमन करने में समर्थ हो जाते हैं–

**षाड्गुण्यमुपयुञ्जीत शक्त्यपेक्षी रसायनम्।**
**भवन्त्यस्यैवमङ्गानि स्थास्नूनि बलवन्ति च॥**[1]

महाकवि माघ के प्रकृति चित्रण में भी अर्थगाम्भीर्य परिलक्षित होता है। वे कहते हैं कि न केवल चेतन प्राणी ही करुणक्रन्दन करते हैं, अपितु जड़ पदार्थ भी हृदयार्द्र होते हैं। इस तथ्य की पुष्टि कवि के इन शब्दों से होती है कि जिस प्रकार एक पिता शैशवकाल से ही पालन-पोषण कर विवाहोपरान्त अपनी पुत्री के पति गृह जाते देखकर पुत्री वियोग से व्यथित होकर करुणक्रन्दन करता है, उसी प्रकार यह रैवतक पर्वत भी स्वयं से उत्पन्न एवं अपने गोद में पली-बढ़ी हुई नदियों को अपने पति समुद्र के पास सङ्गम के लिए जाती हुई देखकर मानो पक्षियों के कूजन के व्याज से करुणक्रन्दन कर रहा है-

**अपशङ्कमङ्कपरिवर्तनोचिताश्चलिताः पुरः पतिमुपैतुमात्मजाः।**
**अनुरोदितीव करुणेन पत्रिणां विरुतेन वत्सलतयैष निम्नगाः॥**[2]

यहाँ सहृदयसंवेद्य चमत्कारपूर्ण तथा मनोरम अर्थगाम्भीर्य का निदर्शन होता है।

---

1. शिशु. 2.93
2. वही, 4.47

चित्त को व्यथित कर देने वाली पिता की व्यथा को कालिदास के शब्दों में भी देखा जा सकता है-

**यास्यत्यद्य शकुन्तलेति हृदयं संस्पृष्टमुत्कण्ठया**
**कण्ठः स्तम्भितवाष्पवृत्तिकलुषश्चिन्ताजडं दर्शनम्।**
**वैक्लव्यं मम तावदीदृशमिदं स्नेहादरण्यौकसः**
**पीड्यन्ते गृहिणः कथं नु तनयाविश्लेषदुःखैर्नवैः।।**[1]

और भी

**सेयं याति शकुन्तला पतिगृहं सर्वैरनुज्ञायताम्।।**[2]

इसी प्रकार सम्पूर्ण महाकाव्य में सरस, मधुर तथा गाम्भीर्यपूर्ण अर्थगौरव दृष्टिगोचर होता है।

## पदलालित्य

पदलालित्य के विषय में सर्वप्रथम दो महाकवियों का नाम मानसपटल पर अंकित होता है- महाकवि दण्डी एवं महाकवि श्रीहर्ष। इन दोनों ही कवियों का पदलालित्य महाकवि माघ के **शिशुपालवध** में दृष्टिगत होता है। महाकाव्य में वर्णित उनकी मनमोहक ललित पदावली सहृदयों के हृदय को हठात् आकर्षित कर लेती है। त्रिविक्रमभट्ट ने भी कहा है-

**किं कवेस्तेन काव्येन किं काण्डेन धनुष्मतः।**
**परस्य हृदये लग्नं न घूर्णयति यच्छिरः।।**[3]

अर्थात् उस काव्य और बाण से क्या लाभ जो दूसरे के हृदय को वेधन न करे! काव्य में पदलालित्य, अर्थगौरव तथा उपमा का ही तो अधिकांशतः वर्णन होता है जो सहृदयों को प्रसन्नचित्त कर देता है।

---

1. अभि. 4.6
2. वही, 4.9
3. नलचम्पू 1.5

महाकवि ने पदलालित्य को दृष्टि में रखकर ऐसी पदशैय्या का सृजन किया है जो हमारे मानस पटल पर सहज ही अंकित हो जाता है। वे वसन्त ऋतु के वर्णन प्रसंग में माधवी लता का वर्णन करते हुए कहते हैं कि वह लता जब वसन्त ऋतु में अपने विकास की पूर्णता को प्राप्त करती है तो उसके सुगन्धित मकरन्द का पान करके उन्मादित भ्रमरी उन्मत्त स्वरों में मधुर गुंजार करने लगती है, अर्थात् प्रसन्नचित्त हो चतुर्दिक् मधुर गुंजार करती हुई भ्रमण करने लगती है–

**मधुरया मधुबोधितमाधवी मधुसमृद्धिसमेधितमेधया।**
**मधुकराङ्गनया मुहुरुन्मदध्वनिभृता निभृताक्षरमुज्जगे।।**[1]

इस पद्य में महाकवि ने **म** और **ध** का कितना सुन्दर संयोजन किया है, जिसके पठन तथा श्रवण मात्र से ही मन प्रफुल्लित हो जाता है।

महाकवि श्रीहर्ष ने पदलालित्य के माध्यम से विरहावस्था का वर्णन किया है कि हेमन्त ऋतु में दिन तथा ग्रीष्म ऋतु में रात्रि के छोटी होने पर भी विरहीजनों को बहुत ही दीर्घकाय प्रतीत होती है–

**अहो अहोभिर्महिमा हिमागमेऽप्यतिप्रपेदे प्रति तां स्मरार्दिताम्।**
**तपर्तुपूर्त्तावपि मेदसां भरा विभावरीभिर्विभरांबभूविरे।।**[2]

श्लेषसम्राट कवि बिहारी के काव्य में भी पदलालित्य का सफल चित्रांकन हुआ है–

**छकि रसाल-सौरभ-सने, मधुर माधवी-गन्ध।**
**ठौर-ठौर झूमत झँपत, भौंर-भौंर मधु-अन्ध।।**[3]

महाकवि ने संसृष्टि के माध्यम से पदलालित्य का वर्णन किया है कि नवयौवना की मुखकान्ति से निःसृत हो रहे सौरभ के लोभ से भ्रमर समूह उसके मुख के पास मडराने लगे, जिसके भय से भागने पर

1. शिशु. 6.20
2. नैषधीयचरित, 1.41
3. बिहारी सतसई, 495

उसके मेखला से मधुर ध्वनि होने लगी–

> **वदनसौरभलोभपरिभ्रमद्भ्रमरसम्भ्रमसम्भृतशोभया।**
> **चलितया विदधे कलमेखलाकलकलोऽलकलोलदृशाऽन्यया।।**[1]

इसमें कवि ने **स,र,भ,क** तथा **ल** वर्णों के माध्यम से सुन्दर पदशैय्या का सृजन किया है।

इसी प्रकार पदलालित्य के विषय में **'पदवृत्ति यमक'** का उदाहरण–

> **नवपलाशपलाशवनं पुरः स्फुटपरागपरागतपङ्कजम्।**
> **मृदुलतान्तलताऽन्तमलोकयत् स सुरभिं सुरभिं सुमनोभरैः।।**[2]

इसमें **प, ल, श, र, त, स** तथा **भ** वर्णों का मञ्जुल समन्वय हुआ है।

**वृत्यनुप्रास** के माध्यम से यज्ञपरक पदलालित्य का उदाहरण–

> **प्रतिशरणमशीर्णज्योतिरग्न्याहितानां**
> **विधिविहितविरिब्धैः सामिधेनीरधीत्य।**
> **कृतगुरुदुरितौघध्वंसमध्वर्युवर्यै–**
> **र्हुतमयमुपलीढे साधु सान्नाय्यमग्निः।।**[3]

महाकवि के अधोलिखित **'नादात्मक'** तथा अन्त:तलस्पर्शिनी पदलालित्य पर प्रसन्न होकर महाराजा भोज ने प्रचुर-प्रभूत धन प्रदान किया। जिसका सार यह था कि हाय! दुर्दैव की चेष्टाओं का परिणाम विचित्र होता है–

> **कुमुदवनमपश्रि श्रीमदम्भोजखण्डं**
> **त्यजति मुदमुलूकः प्रीतिमांश्चक्रवाकः।**

---

1. शिशु. 6.14
2. वही, 6.2
3. वही, 11.41

**उदयमहिमरश्मिर्याति शीतांशुरस्तं**
**हतविधिलसितानां ही विचित्रो विपाकः॥**[1]

इसी प्रकार दुर्दीनता के विषय में तुलसीदास ने वर्णन किया है कि–

**खेती न किसान को, भिखारी को न भीख, बली,**
**बनिक को बनिज, न चाकर को चाकरी।**
**जीविका बिहीन लोग सीद्यमान सोच बस,**
**कहैं एक एकन सों 'कहाँ जाई, का करी॥**[2]

महाकवि कालिदास ने इस दुर्दैवगति को शिक्षाप्रद दृष्टि से वर्णन किया है कि–

**यात्येकतोऽस्तशिखरं पतिरोषधीना-**
**माविष्कृतोऽरुणपुरःसरः एकतोऽर्कः।**
**तेजोद्वयस्य युगपद्व्यसनोदयाभ्यां**
**लोको नियम्यत इवात्मदशान्तरेषु॥**[3]

उपर्युक्त वर्णनों के अवलोकन से यह स्वतः ही ज्ञात हो जाता है कि महाकवि माघ के **शिशुपालवध महाकाव्य** में न केवल उपमा का ही प्राधान्य है, अपितु अर्थगौरव तथा पदलालित्य भी काव्य को उत्कृष्टता प्रदान करते हैं। वे विविध क्षेत्रों में उपमाओं का सृजन बड़े ही सुगमता से करते हैं। यथा– **शास्त्रविषयक** उपमाएँ व्याकरण से राजनीति की उपमा, जिसमें **पस्पश**– व्याकरणमहाभाष्य तथा **स्पश**– गुप्तचर, बौद्ध दर्शन के पञ्चस्कन्ध से राजनीति के पञ्चाङ्ग की उपमा, दैव एवं भाग्य से शब्द एवं अर्थ की उपमा, रसविषयक उपमा, संगीतशास्त्रविषयक उपमा, मुक्तलता से आकाशगंगा की उपमा एवं गोमूत्रिकादि व्यूहों से शिशुपाल के सेना की उपमा आदि तथा चन्द्रमा की

---

1. शिशु. 11.64
2. कवितावली उत्तरकाण्ड, 97
3. अभि. 4.2

प्रतिकूलता एवं भाग्य के प्रतिकूल होने पर सर्वसाधन होने की व्यर्थता का वर्णन, सहस्त्र किरणों का सूर्य को डूबने से न रोक पाना, सूर्यरूप अग्नि में सहस्त्र रश्मियों का प्रविष्ट होना, पतिव्रता स्त्री का अपने पति के साथ सती होना, शास्त्रबल और शास्त्रेतर बल का वर्णन प्रकाश एवं अन्धकार के समान करना, षड्गुण रसायन का वर्णन, पिता के समान अचेतन रैवतक पर्वत का करुणक्रन्दन करना आदि उत्कृष्ट अर्थगौरव के परिचायक हैं। पदलालित्य में वसन्तऋतु का वर्णन, याज्ञिक वर्णन तथा नादात्मक वर्णन आदि की पदशैय्या उत्कृष्ट पदलालित्य को दर्शाते हैं। जिसके पढ़ने से मन तथा अन्त:तल स्वतः ही प्रसन्नचित्त तथा प्रफुल्लित हो जाता है।

उपर्युक्त वर्णन महाकवि माघ के विषय में कही गई उक्ति **माघे सन्ति त्रयो गुणाः** की प्रामाणिकता को अक्षरशः पुष्ट करते हैं। महाकवि माघ की प्रशंसा में शशिशेखर चतुर्वेदी ने कहा है कि-

**भारवी राजनीतिज्ञः कालिदासो रसेश्वरः।**
**भट्टिर्व्याकरणश्रेष्ठः माघे च तिस्रो विधाः॥**[1]

---

1. शिशु. भूमिका, पृ. 44, सम्पादक- शशिशेखर चतुर्वेदी

# माघे सन्ति त्रयो गुणाः

-डॉ. राकेश कुमार यादव*

अपने एकमात्र ग्रन्थ 'शिशुपालवध' महाकाव्य से ही संस्कृत साहित्य में अपना शीर्षस्थ स्थान बनाने वाले महाकवि माघ संस्कृत साहित्य को अमरत्व प्रदान करने वाले महाकवियों की ज्योतिर्मयी परम्परा में एक विशिष्ट स्थान रखते हैं। विशाल संस्कृत साहित्य में असंख्य कवियों एवं काव्य-रत्नों के होने पर भी जिन ग्रन्थों की गणना सर्वोपरि की जाती है वे केवल छः ही हैं। उनमें से तीन (कुमारसम्भवम्, रघुवंशम् और मेघदूतम्) की गणना लघुत्रयी तथा तीन (किरातार्जुनीयम्, शिशुपालवधम् और नैषधीयचरितम्) बृहत्त्रयी के नाम से विख्यात हैं। इस बृहत्त्रयी में माघ द्वारा प्रणीत 'शिशुपालवधम्' महाकाव्य की गणना की जाती है।

महाकवि भारवि की अलङ्कार प्रधान शैली के अनन्य उपासक एवं उनके अनुकर्ता महाकवि माघ का विशाल पाण्डित्य एवं अगाध ज्ञान उनके इस महाकाव्य में सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है। माघ की काव्य सरस्वती रस निष्पन्दन में पूर्ण रूप से सफल हुई है जो कवि का सबसे बड़ा उद्देश्य होता है। माघ की कल्पना चातुरी प्रतिपाद्य विधि एवं भाव सम्पत्ति उन्हें काव्य सृष्टि की पराकाष्ठा पर पहुँचा देती है और इसी कारण-

**माघेन विघ्नितोत्साहा नोत्सहन्ते पदक्रमे।**
**स्मरन्तो भारवेरेव कवयः कपयो यथा।।**

अर्थात् जिस प्रकार माघ महीने के ठिठुरते हुए जाड़े में वानरगण

---

* पूर्व शोधच्छात्र, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

चुपचाप रहकर उछल-कूद नहीं करते भले ही वे सूर्य की किरणों का कितना ही स्मरण क्यों न करें, उसी प्रकार माघ की रचना का स्मरण करके बड़े-बड़े कवियों का उत्साह पद-योजना में ठण्डा पड़ जाता है, चाहे वे भारवि के पदों का कितना ही स्मरण क्यों न करें।

भले ही इस प्रशस्ति में माघ के प्रति पक्षपात की कुछ गन्ध समालोचकों को अवश्य ही मिले, किन्तु यह तो सभी को स्वीकार करना ही पड़ता है कि काव्य-गुणों की जैसी अपूर्व छटा इस अनुपम कृति में स्थान-स्थान पर परिलक्षित होती है वैसी अन्यत्र दुर्लभ है। क्या अलङ्कार की छटा, क्या अर्थ और भाव की गम्भीरता, क्या अन्य लौकिक विषयों का आगाध ज्ञान-गौरव, क्या पदों की मनोहारिता, क्या वर्ण्यविषय तथा भाषा पर उनका असीम अधिकार, सभी दृष्टियों से माघ को सर्वश्रेष्ठ कवि सिद्ध करने वाले आलोचकों ने उनकी बहुमुखी प्रशस्तियाँ गायी हैं। महाकवि माघ ने कोई भी वर्णन कोई भी प्रसङ्ग साधारण रूप से प्रस्तुत नहीं किया। यही कारण है कि सम्पूर्ण महाकाव्य आदि से लेकर अन्त तक प्रभावोत्पादक बन गया है। और इसी कारण-

**माघेनेव च माघेन कम्पः कस्य न जायते।**

जिन वर्णनों को अन्य कवियों ने महत्वपूर्ण न समझते हुए छोड़ दिया था उनको भी माघ ने अपनी प्रतिभा से पर्याप्त सकृत किया है। किन्तु उल्लेखनीय है कि उनकी वर्णन चातुरी भाव सौष्ठता एवं विचारों की गम्भीरता सर्वत्र विद्यमान है।

भट्टि की भाँति व्याकरण के सूत्रों का उदाहरण बनाने के लिए वे काव्य रचना करने नहीं बैठे थे और न ही श्रीहर्ष की भाँति जटिल शब्दों को ढूँढ़-ढूँढ़कर पदों में पच्चीकारी करने का उन्हें व्यसन था। फिर भी यह कहा जाता है कि कविता के क्षेत्र में माघ ने जितने नूतन शब्दों का प्रयोग किया है उतने किसी अन्य कवि से अकेले नहीं बन पड़ा। इसीलिए कहा गया है-

**नवसर्गगते माघे नवशब्दो न विद्यते।**

अर्थात् शिशुपालवध महाकाव्य का नवम सर्ग समाप्त होने तक ऐसा कोई नया शब्द नहीं रह जाता जिसका प्रयोग काव्य के क्षेत्र में अन्यत्र कहीं हुआ हो। माघ के ग्रन्थ का अनुशीलन करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि यही सत्य है। महाकवि माघ एक प्रकाण्ड महावैयाकरण थे। शब्दों की व्युत्पत्ति एवं निरूक्ति की अपार क्षमता उनमें थी। अपने असाधारण व्याकरण वैदुष्य के सहारे माघ ने नूतन शब्दों को गढ़ा है और उनके कोश वैभव के सहारे नये अर्थ दिये हैं। जब जैसा प्रयोग उन्हें रुचिकर लगता था, वैसा ही अनायास वे कर लेते थे। परोक्षभूत में प्रयुक्त लोट् लकार का चमत्कार दर्शनीय है-

**पुरीमवस्कन्द लुनीहि नन्दनं**
**मुषाण रत्नानि हराऽमराङ्गनाः।**
**विगृह्य चक्रे नमुचिद्विषा बली**
**य इत्थमस्वास्थ्यमहर्दिवं दिवः॥**[1]

इसका सूक्ष्म अध्ययन करने पर एक महत्वपूर्ण कारण यह ज्ञात होता है कि रमणीयता का मानदण्ड महाकवि माघ ने नित्य नूतनता को माना है। नवीनता रमणीयता से प्रगाढ़ सम्बद्ध होती है। इस मान्यता का कवि ने शिशुपालबधम् के चतुर्थ सर्ग में रैवतक पर्वत के प्रसङ्ग में स्पष्ट उल्लेख किया है-

**क्षणे-क्षणे यन्नवतामुपोति तदेवरूपं रमणीयतायाः।**

अर्थात् समस्त अवस्थाओं में रमणीयता का होना माधुर्य है। जो मधुर है वह हृदयंगम भी होता है, क्योंकि रमणीयता, नवीनता काव्य की शक्ति है। माघ जो भी वर्णन करते हैं, उसके सूक्ष्मातिसूक्ष्म नवीन पक्षों का वे उद्घाटन करते चलते हैं। जैसे वे एक सूक्ष्मदर्शी के चित्र अनवरत गति से घूमते जा रहे हो और दर्शक उन विविध दृश्यों और साथ ही साथ नूतन चित्रों की अगधिता में डूब जाता है। यहाँ यह महत्वपूर्ण है कि महाकवि माघ किसी वस्तु का जो पक्ष एक बार उद्घाटित करते हैं

1. शिशुपालवध, 1/51

वह दूसरा नहीं आता। यदि आ गया तो उसमें नवीनता कहाँ रही? और नवीनता ही रही तो भला रमणीयता कैसे आयेगी?

फलतः कवि नयी-नयी विथियों की ओर पाठक को खीचता जाता है और नये-नये शब्दों का प्रयोग कर अपने इस वर्णन को और भी अधिक सुन्दर बना देता है। रमणीयता सदैव नूतन होने के कारण विस्मयकारिणी हुआ करती है। टीकाकार आचार्य मल्लिनाथ इस बात को स्वीकार करते हैं- **विस्मयम् आततान अतिरमणीयतात्वानीति भावः। तन्नवत्वोपगमनमेव रमणीयतायाः रूपं स्वरूपम्।**

नूतन शब्दों का प्रयोग सामान्य पदार्थो में भी नवीनता ला देता है। नित्य परिचित वस्तुएँ भी और अधिक नवीनता धारण कर लेती हैं। माघ के इस कवि रूप को देखकर यह उक्ति युक्तिसंगत प्रतीत होती है-

**पुष्पेषु जाती नगरीषु काञ्ची**
**नारीषु रम्भा पुरुषेषु विष्णुः।**
**नदीषु गङ्गा नृपते च रामः**
**काव्येषु माघः कविकालिदासः॥**

कवि के रूप में कालिदास से समानता रखने वाले माघ कैसे हो सकते थे। जिनकी केवल एक ही रचना सामने आती है, जबकि दूसरी ओर महाकवि कालिदास ने अपनी रससिद्ध लेखनी जहाँ लगा दी वह शब्द-अर्थ सुन्दर काव्य बन गया। किन्तु इससे इतना स्पष्ट है कि संस्कृत साहित्य में शिशुपालवध का स्थान अद्धितीय है। यह सत्य है कि कविकुलगुरू कालिदास की तरह उनकी कविता साधारण जनों की मनोभावना न हो सकी, किन्तु यह भी स्वीकार करना पड़ता है कि समीक्षकों की दृष्टि में माघ की महत्ता कालिदास से कम नहीं, कालिदास का काव्य यदि स्वच्छ मानसरोवर है जिसमें सभी प्रकार के आकर्षण विद्यमान हैं, तो माघ का काव्य अगाध रत्नाकर है जिसमें अवगाहन करने की स्फुरणा सर्वसाधारण में ही नहीं है। कालिदास यदि सर्वसाधारण के कवि थे तो माघ कवियों के कवि तथा पण्डितों के पथ-प्रदर्शक थे। उनकी रचना का अध्ययन करने की क्षमता साधारण

काव्य प्रेमियों से ऊपर वर्ग के काव्य रसिकों में होती है। माघ केवल एक सिद्धहस्त कवि ही नहीं प्रत्युत् सर्वशास्त्रज्ञ प्रकाण्ड पण्डित भी थे। उनकी जैसी बहुज्ञता और बहुस्फुटता अन्यत्र किसी कवि में नहीं मिलती है। संस्कृत साहित्य में विविध शास्त्रीय एवं लौकिक विषयों पर साधिकार रचना करने की सफलता केवल माघ को ही मिली थी। साहित्य पर तो अधिकार है ही, किन्तु संगीतशास्त्र अर्थात् गायन-बादन, वाद्य स्वर-लय के सम्बन्ध में इनकी अधिकार पूर्ण युक्तियाँ सिद्ध करती है कि इनका साहित्यशास्त्र पर ही नहीं अपितु अन्य विषयों पर अधिकार था।

कवि के पाण्डित्य के विभिन्न अङ्गों का रस वर्णन के सिद्धहस्तता का कहना ही क्या था, यह तो कवि का अपना ही अधिकृत क्षेत्र है। राजनीति और कूटनीति जैसे नीरस विषयों में भी उन्होंने अपनी निपुणता एवं पाण्डित्य का परिचय दिया है। पाण्डित्य का इससे बड़ा प्रमाण और क्या चाहिए कि ध्वनि को काव्य का सर्वस्य मानने वालों से लेकर अलङ्कार प्रेमी भी शब्द वैशिष्ट्य या विकट अनुलोम प्रतिलोम एकाक्षर आदि के निर्वाण में पाण्डित्य-प्रदर्शन करने वालों को सन्तुष्ट करने की पूर्ण सामग्री माघ ने अपने काव्यों में प्रस्तुत की, किन्तु फिर भी अर्थ भाव तथा वर्ण्य-विषय की अन्विति में उपस्थित नहीं हुई। इन्हीं कारणों से वे माघ महीने के समान कवियों को कँपा देने वाले कहे गये हैं और यही बात है कि कितने ही सहृदयवादी इस काव्य के अनुशीलन में अपनी-अपनी आयु व्यतीत कर देते थे-

**मेघे माघे गतं वयः।**

अर्थात् कालिदास कृत 'मेघदूत' और माघकृत शिशुपालवध के परिशीलन में पूरी आयु व्यतीत हो गयी।

**माघे सन्ति त्रयो गुणाः।**

इस प्रसिद्ध सूक्ति में अत्युक्ति एवं माघ के प्रति पक्षपात की कुछ ग्रन्थ सूक्ष्म समालोचकों को भले ही मिले, किन्तु इस बात को

अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि माघ के काव्य में उत्कृष्ट से उत्कृष्टतर उपमायें, गुरू गुरूतर, सूक्ष्म से सूक्ष्मतर मनोहारी अर्थ तथा मधुर से मधुरतर ललित पदों का सन्निवेश, ये सब गुण प्रचुरमात्रा में मिलते हैं। माघ कवि के सम्बन्ध में प्रशस्तियों का जाल दूसरे कवियों की अपेक्षा बहुत विशाल हैं। अनेक वृत्तियों से माघ को कविसिद्ध करने वाले आलोचकों ने इनकी बहुत ही प्रशस्तियाँ गायी हैं।

प्रस्तुत सूक्ति का आशय यह है महाकवि माघ के काव्य में कालिदास जैसी उपमा, भारवि जैसा अर्थगौरव और दण्डी जैसा पदलालित्य, इन तीनों का सुखद समिश्रण है। यहाँ पर श्लोक–

**उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थगौरवम्।**
**दण्डितः पदलालित्यं माघे सन्ति त्रयो गुणाः॥**

का चतुर्थ चरण ही व्याख्येय है। माघ की कमनीय कविता में तीनों का मंजुल समन्वय सर्वत्र ही परिलक्षित होता है। इसी कारण से पूर्वोक्त कथन कसौटी पर बिल्कुल खरा उतरता है। यही कारण है कि यह उक्ति विद्वत् समाज में समादृत एवं प्रमाणिक है।

नूतन चमत्कारी उपमा का विन्यास महाकवि माघ की अपनी विशिष्टता है। यद्यपि माघ कालिदास की भाँति सुकुमारमार्गी कवि नहीं अपितु वे अलंकृत काव्यशैली के महान पुरोधा कवि माने जाते हैं। माघ ने भावपक्ष को अत्यन्त समृद्ध बनाया है। महाकवि कालिदास का क्या कहना वह तो उपमा के कवि माने जाते हैं, किन्तु उनकी उपमाएँ भी कम सुन्दर नहीं हैं। वे आज भी सहृदय पाठकों को रसासिक्त कर देने में पूर्णतया समर्थ हैं। माघ की उपमायें आदि कालिदास की उपमाओं की अतिशय नहीं हो उनसे किसी भी प्रकार से कम भी नहीं। माघ ने भी कालिदास की भाँति नूतन सूक्ष्म औचित्यमयी, व्यञ्जकतामयी मधुर उपमायें संयोजित की हैं। महाकाव्य का प्रत्येक पद कवि की हृदयस्पर्शी कल्पनाओं का मनोहर प्रमाण है। कालिदास की उपमा सहज होती है तो माघ की प्रायः कल्पित माघ को उपमाओं का नहीं तो सुमधुर उत्प्रेक्षाओं का कवि कहा जाता है–

**स तप्तकार्त्तस्वरभास्वराऽम्बरः**
**कठोरताराधिपलाञ्छनच्छविः।**
**विदिद्युते वाडवजातवेदसः**
**शिखाभिराश्लिष्ट इवाम्भसां निधिः॥**[1]

कमल-केसर के समान पीली जटाओं को धारण करते हुए शरदकालीन चन्द्रकिरण सदृश शुभ्रवर्ण नारद की तुषारमण्डिता भूमि में उत्पन्न लता समूहों को धारण करते हुए हिमालय से दी गयी उपमा दर्शनीय है-

**दधानमम्भोरुहकेसरद्युतीर्जटाः शरच्चन्द्रमरीचिरोचिषम्।**
**विपाकपिङ्गास्तुहिनस्थलीरुहो धराधरेन्द्रं व्रततीततीरिव॥**[2]

इस प्रकार हम देखते हैं कि माघ की उपमायें अनोखी हैं, सटकी हैं। इतनी भावप्रणव हैं कि कवि का भाव वैचित्त्य स्वतः ही सुस्पष्ट हो जाता है। नित्य परिचित वस्तुएँ उपमा के माध्यम से नवीनता धारण कर लेती हैं।

जिस प्रकार अर्थगौरव के लिए महाकवि भारवि विख्यात् हैं, उसी प्रकार माघ में भी यही सूक्ति चरितार्थ होती है, क्योंकि माघ के काव्य में अर्थगाम्भीर्य का सन्निवेश है। माघ भारवि से केवल प्रभावित ही नहीं थे, अपितु इनसे अविभूत भी थे। उनके मन में सम्भवतः भारवि के कवित्व से आगे गढ़ जाने की स्पर्धा भी थी। माघ को उनसे आगे बढ़ने और विद्वत् समाज में प्रतिष्ठा पाने के लिए आवश्यक था कि उनकी कृति में वह सब कुछ तो अवश्य ही जो भारवि में हैं, उसके साथ-साथ उसमें कुछ नवीनता और उत्कृष्टता भी हो। इसी स्पर्धा के कारण माघ में अपनी रचना को भारवि से उत्कृष्ट बनाने का प्रयास किया है, जिसमें वे बहुत कुछ सफल भी हुए। इसका प्रमाणोक्ति है-

**तावद्भारवेर्भाति यावन् माघस्य नोदयः।**

---

1. शिशुपालवध, 1/20
2. वही, 1/5

अर्थगौरव भारवि के काव्य की प्रमुख विशेषता है तो भला माघ का काव्य अर्थगौरव से रहित कैसे हो सकता है। माघ का शब्द केवल एक सुन्दर शब्द ही नहीं अपितु वह सुन्दर भावों का प्रकाशन भी है। अर्थगाम्भीर्य से यह प्रबन्ध दुष्कर भी है। यह माघ अच्छी तरह जानते थे और इसे उन्होंने शिशुपालवधम् महाकाव्य के द्वितीय सर्ग में स्पष्ट कह दिया है। इसी कारण सार्वभौम एवं सार्वजननी कथनों का माघ ने प्रयोग किया है–

**अमानवं जातमजं कुले मनोः**
**प्रभाविनं भाविनमन्तमात्मनः।**
**मुमोच जानन्नपि जानकीं न यः**
**सदाऽभिमानैकधना हि मानिनः।।**[1]

कालिदास के औपम्य एवं भारवि के अर्थगौरव के साथ ही दण्डी नैषध का पदलालित्य प्रसिद्ध है। लालित्य वस्तुतः मधुरपद सन्निवेश को कहते हैं, क्योंकि लालित्य में माधुर्य गुण सहजरूप से विद्यमान रहता है। माघ की मधुर कोमलकान्त पदाली असाधारण ही है। यद्यपि माघ के शिशुपालवध महाकाव्य की प्रमुख विशेषताओं की संख्या एक या दो नहीं हैं, अपितु सभी प्रकार के काव्यगुणों की छटा उनकी कृति में स्थान–स्थान पर परिलक्षित होती है, किन्तु उनकी एक विशेषता जिनकी ओर सभी का ध्यान बरबस ही आकर्षित होता है, वह है उनकी ललित–पद योजना। न केवल पदों के ललित विन्यास में ही माघ निपुण थे, प्रत्युत् नवीन, नूतन श्रुति मधुर शब्दों की संगीतात्मक एकरसता वीणा के तारों की झंकार की भांति अर्थावबोध की प्रतिरक्षा किये बिना ही हृदय को रसालुक्त बना देती है–

**रथाङ्गपाणेः पटलेन रोचिषा–**
**मृषित्विषः संवलिता विरेजिरे।**

---

1. शिशुपालवध, 1/67

**चलत्पलाशान्तरगोचरास्तरो-**
**स्तुषारमूर्तेरिव नक्तमंशवः॥**[1]

श्रृङ्गार वर्णन में स्वयं पदों से स्वरलहरी सी गूँजती सुनाई पड़ती है। इन पदों के अनबद्ध लालित्य का अनुभव सहृदय पाठक सहज ही कर सकते हैं, क्योंकि कर्णकुहरों में अमृतरस घोलने वाली मधुर शब्दावली ही पर्याप्त काव्यानन्द दे जाती है।

आधुनिक समीक्षकों ने **'माघे सन्ति त्रयो गुणाः'** की व्याख्या अन्य प्रकार से करते हुए यह प्रकट किया है कि माघ में त्रयो गुणाः का अर्थ उपर्युक्त तीनों गुणों की उपस्थिति नहीं, अपितु ओज, माधुर्य तथा प्रसाद इन तीन काव्य-गुणों की स्थिति है। उपमा, अर्थगौरव और पदलालित्य ऐसी विशिष्टताएँ जो न्यूनाधिक रूप से सभी कवियों में रहती हैं, तब माघ में इनकी उपस्थिति से प्रशस्तिकार का तात्पर्य क्या होगा? अवश्य ही प्रशस्तिकार ने माघ के पृथक वैशिष्ट्य का निरूपण करना चाहा है। अन्य कवियों में जहाँ एक या दो गुण रहते हैं, माघ में तीनों काव्यगुण युगपत् वर्तमान रहते हैं, रसधर्म के रूप में नहीं अपितु अपने गौण अर्थ में अर्थात् शब्दार्थवृत्ति के रूप में।[2]

**ये रसस्याङ्गिनो धर्माः शौर्यादय इवात्मनः।**

**गुणवृत्या पुनस्तेषां वृत्तिः शब्दार्थयोर्मता।**

तदनुसार ओज गुण का सौन्दर्य देखा जा सकता है।

**हृदयमरिवधोदयादुदूढद्रढिम दधातु पुनः पुरन्दरस्य।**
**घनपुलकपुलोमजाकुचाग्र-द्रुतपरिरम्भनिपीडनक्षमत्वम्॥**[3]

इसी प्रकार प्रसाद-गुण का सौन्दर्य द्वारका की ललनाओं के द्वारा कृष्ण के अवलोकन में उदाहरणीय है-

---

1. शिशुपालवध, 1/21
2. काव्यप्रकाश, 8/66
3. शिशुपालवध, 1/74

**यां यां प्रियः प्रैक्षत कातराक्षी**
**सा सा ह्रिया नम्रमुखी बभूव।**
**निःशङ्कमन्याः सममाहितेर्ष्या-**
**स्तत्रान्तरे जघ्नुरमुं कटाक्षैः॥**[1]

माधुर्य-गुण प्रभात-वर्णन (एकादश सर्ग) के निम्नाङ्कित पद्य में पूर्णतः विकसित रूप में द्रष्टव्य है। हवा बहने का वर्णन करने वाले इस पद्य पर मुग्ध होकर मल्लिनाथ ने कहा है कि आचार्यों के द्वारा प्रतिपादित दसों प्राचीन गुण इसमें वर्तमान हैं-

**विकच-कमल-गन्धैरन्धयन्भृङ्गमालाः**
**सुरभित-मकरन्दं मन्दमावाति वातः।**
**प्रमद-मदन-माद्यद्-यौवनोद्दाम-रामा-**
**रमण-रभस-खेद-स्वेद-विच्छेद-दक्षः॥**[2]

विकसित कमलों की गन्धों से भ्रमर-पंक्तियों को अन्धा बनाने वाला वह प्रातः पवन मकरन्द को सुरभित करते हुए मन्द-मन्द बह रहा है, जो हर्ष और काम से उन्मत्त तथा युवावस्था के कारण अनियंत्रित (उद्दाम) सुन्दरियों के रति-वेग की थकावट से उत्पन्न स्वेद (पसीने) को दूर करने में समर्थ है।[3]

---

1. शिशुपालवध, 3/16
2. वही, 3/16
3. वही, 11/19

# माघे सन्ति त्रयो गुणाः

**-श्री बदरे आलाम***

शिशुपालमहाकाव्य के प्रणेता महाकवि माघ संस्कृत साहित्याकाश के अद्भुत एवं अनुपम नक्षत्र हैं। महाकाव्य माघ का स्थान संस्कृत कवियों में विशेष महत्त्व रखता है। महाकवि की प्रतिभा केवल काव्य तक ही सीमित नहीं है। माघ का वैदुष्य एकांगी न होकर सर्वांगीण है। वह एक सफल काव्याशास्त्री, वैयाकरण, राजनीतिज्ञ, अर्थशास्त्री, धर्मशास्त्री, हस्तिशिल्पी, अश्वशास्त्री आदि भी हैं। उनके चमत्कृत काव्य प्रतिभा का रसपान करके विद्वान् इसकी भूरि-भूरि प्रसंशा करते हैं। महाकवि माघ के गौरवपूर्ण कृति "शिशुपालवध महाकाव्य" की गणना बृहत्त्रयी के अन्तर्गत की जाती है।

महाकवि माघ में कालिदास के तुल्य सुन्दर उपमा प्रयोग ही नहीं है, बल्कि भारवि के समान अर्थगौरव तथा दण्डी के तुल्य पदलालित्य भी विद्यमान है। माघ का यह दृष्टिकोण रहा है कि उनके काव्य में उस समय तक प्रचलित सभी गुण आ जायें, जिससे किसी भी दृष्टि से उनका काव्य न्यून या एकांगी प्रतीत न हो। इसलिए उन्होंने एक ओर अलंकारों का सुन्दर प्रयोग किया है, तो दूसरी ओर भाव-सौष्ठव का। एक ओर भाषा सौष्ठव है तो दूसरी ओर भाव-गाम्भीर्य। इसी समन्वयात्मकता से मुग्ध होकर 'माघे सन्ति त्रयो गुणा:' कहा गया है।

यहाँ पर यह स्पष्ट कर देना उचित होगा कि 'माघे सन्ति त्रयो गुणा:' का अर्थ यह कदापि नहीं है कि माघ उपमा प्रयोग में कालिदास

---

* पूर्व शोधच्छात्र, संस्कृत विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम विश्व विद्यालय, अलीगढ़

से, अर्थगौरव में भारवि से तथा पदलालित्य में दण्डी से बढ़कर है या उनके समकक्ष हैं। इस कथन का अभिप्राय मात्र केवल यही है कि कालिदास आदि कवियों में एक-एक गुण विद्यमान है, लेकिन माघ में यह तीनों गुण समष्टि रूप में विद्यमान हैं। इसी कारण यह कथन और भी युक्त संगत प्रतीत होता है कि-

**उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थगौरवम्।**
**दण्डिनः ( नैषधे ) पदलालित्यं माघे सन्ति त्रयो गुणाः॥**

सभी कवियों की पकड़ चतुर्दिक सम्यक् रूप से नहीं होती है। उसकी विशिष्टता एक गुण विशेष से होती है। जैसे कालिदास की कृतियों में उपमा की जो स्वाभाविकता देखने को प्राप्त होती है वह अन्यत्र कहीं नहीं प्राप्त होती है। उसी प्रकार भारवि महाकवि की रचना किरातार्नुनीयम् में अर्थगौरव के जो उदाहरण प्राप्त होते हैं उसके तुल्य का अर्थगौरव अन्य रचना में उपलब्ध नहीं होता है। ठीक उसी प्रकार दण्डी के रचनाओं में विद्यमान पदलालित्य की महिमा मण्डित है।

कहीं-कहीं पर दण्डि के स्थान पर पदलालित्य के लिए नैषधे पदलालित्यम् का प्रयोग भी प्राप्त होता है। लेकिन महाकवि माघ प्रतिभा के प्रचूर धनी थे, जिसके कारण उनके रचनाओं में, उपमा, अर्थगौरव और पदलालित्य का प्रयोग सम्यक् रूप से दिखलाई देता है।

## उपमा प्रयोग

इसका प्रयोग सामन्यतः प्रस्तुत विषय पाठकों को सरलरूपेण ग्राह्य हो जाय इसी कारण किया जाता है। यह कवि की प्रतिभा पर आश्रित है कि वह पाठकों को किस अप्रस्तुत विषय के द्वारा विषय को सुगम बनायें। इस प्रसंग में कवि कभी-कभी अपने पाण्डित्य को दिखाते हुए शास्त्रीय उपमान भी देता है। कालिदास भी इस लोभ का संवरण नहीं कर सकते हैं, वैसे इनकी उपमाएँ सामान्य जीवन की ही हैं। सामान्य उपमाओं की सीख कालिदास से लेते हुए यह बहुत प्रसिद्ध है जिसके कारण उन्हें 'घण्टामाघ' कहा जाता है-

**उदयति विततोर्ध्वरश्मिरज्जावहिम-**
**रुचौ हिमधाम्नि याति चास्तम्।**
**वहति गिरिरयं विलम्बि घण्टा-**
**द्वयपरिवारितवारणेन्द्र-लीलाम्॥**[1]

रैवतक पर्वत पर सूर्योदय का दृश्य है, लम्बी-लम्बी और ऊपर की ओर रस्सी के समान फैली हुई किरणों वाले सूर्य के उदय एवं चन्द्रमा के अस्त होने के कारण यह पर्वत लटकने वाले दो घण्टाओं (स्वर्ण तथा रजत से निर्मित) से युक्त गजराज के सदृश शोभा पा रहे हैं।

निम्नांकित पद्य में रैवतक पर्वत से निकलकर समुद्र तक जाने वाली नदियों की तुलना पिता की गोद में नि:शंक क्रीड़ा करने वाली उन पुत्रियों से की गयी है, जो अपने पति-गृह चली जा रही हैं। पिता (रैवतक) पक्षियों के कलरव के माध्यम से रो रहा है। यह मार्मिक उपमा है जिसमें पुत्री-वियोग की व्यथा वर्णित है-

**अपशङ्कमङ्कपरिवर्तनोचिता-**
**श्चलिताः पुरः पतिमुपैतुमात्मजाः।**
**अनुरोदितीव करुणेन पत्त्रिणां**
**विरुतेन वत्सलतयैष निम्नगाः॥**[2]

यह शास्त्रीय दृष्टि से उत्प्रेक्षा है जो सादृश्य मूलक अलंकार होने के कारण सामान्यत: 'उपमा' द्वारा गृहीत है। इसी प्रकार नारद के शुभ्र भ्रूमण्डल के ऊपर भूरी पीली लताओं की तुलना माघ से हिमालय की तुषार मण्डित भूमि पर उगी हुई, किन्तु पककर पीली बन गयी लताओं से की है-

**दधानमम्भोरुहकेसरद्युतीर्जटाः शरच्चन्द्रमरीचिरोचिषम्।**
**विपाकपिंगांस्तुहिनस्थलीरुहो धराधरेन्द्रं व्रतती ततीरिव॥**[3]

---

1. शिशुपालवध, 4/20
2. वही, 4/47
3. वही, 1/15

नारद हिमालय के रूप में विद्यमान लग रहे हैं प्रस्तुत उपमा श्लोक में।

शास्त्रगत उपमाओं में माघ से आगे बढ़ाने की कल्पना भी नहीं हो सकती। आयुर्वेद, वेद, व्याकरण आदि शास्त्रों के अवगाहन से ही इन उपमाओं का सौन्दर्य जाना जा सकता है। इसी के सन्दर्भ में द्वितीय सर्ग की कुछ उपमाएँ दी जा सकती है।

**अप्यनारभमाणस्य विभोरुत्पादिताः परैः।**
**व्रजन्ति गुणतामर्थाः शब्दा इव विहायसः॥**[1]

स्वयं क्रियाशून्य होने पर भी सर्व-समर्थ (विभु) विजिगीषु राजा के, दूसरे द्वारा सम्पादित कार्य उसी प्रकार गुण बन जाते हैं जिस प्रकार स्वयं कुछ न करने वाले विभु आकाश के, दूसरे (पटहादि) के द्वारा उत्पादित शब्द गुण बन जाते हैं। वैशेषिक अर्थ का ज्ञाता ही इसका आनन्द ले सकता है।

**या वेदि यदसवेको जेतव्यश्चैदिराडिति।**
**राजयक्ष्मेव रोगाणां समूहः स महीभृताम्॥**[2]

उद्धव कहते हैं कि आप यह न समझे कि शिशुपाल अकेला है, आसानी से जीता जा सकता है। जिस प्रकार राजयक्ष्मा अनेक रोगों का समूह होता है, उसी प्रकार वह भी अनेक राजाओं का समूह है, जिसकी सहायता करने के लिए सभी आ जायेंगे आप किस-किस को मार पायेंगे? व्याकरण गत उपमाएँ अनेक हैं। राजनीति की तुलना शब्दविद्या से की गयी है-

**शब्दविद्येव नो भाति राजनीतिरपस्पशा।**[3]

इस प्रकार लौकिक एवं शास्त्रीय दोनों कोटि की अप्रस्तुत योजना माघ ने उदात्त रूप से की है।

## अर्थगौरव

कतिपय शब्दों से उत्पन्न होने वाला अर्थगौरव उसी प्रकार व्यापक

---

1. शिशुपालवध, 2/91
2. वही, 2/26
3. वही, 2/212

प्रभाव डालता है जैसे सात ही स्वरों से उत्पन्न गान का व्यापक और विधिक रूपों का होता है (2/72)।

दार्शनिक उपमाओं के प्रयोग में तो अर्थ-गाम्भीर्य का एक महत्वपूर्ण रूप दिखाई पड़ता ही है। सामान्य उक्तियों की व्यापकता में अर्थगौरव परिस्फुरित होता है। कालिदास तथा भारवि ने ऐसी असंख्य उक्त्याँ दी हैं जो अर्थान्तरन्यास के निवेश के कारण जीवन के प्रत्येक चरणों में उपयोगी हैं। इनमें नीतियों के समावेश के कारण भारवि विख्यात हैं **( भारवेरर्थगौरवम् )।** माघ के अर्थान्तरन्यास भी, भारवि के प्रतिस्पर्धा के कारण बड़े व्यापक अर्थ-निवेश से सम्पन्न हैं। कुछ उदाहरण हैं-

**( 1 ) गृहानुपैतुं प्रणयादभीप्सवो भवन्ति नापुण्यकृतां मनीषिणः।** (1/14) महात्मा लोग अपुष्यात्माओं के घर पर प्रेम से आना नहीं चाहते हैं। **( 2 ) श्रेयसि केन तृप्यते** (1/21) मंगलमय कार्य में कौन तृप्त हो सकता है। **( 3 ) सदाभिमानैकधना हि मानिनः** (1/67) मानी (मनस्वी) लोगों का एक मात्र धन स्वाभिमान ही होता है। **( 4 ) ज्ञातसारोऽपि खल्वेकः सन्दिग्धे कार्यवस्तुनि** (2/12) सारभूत तत्त्व को जानने पर भी अनेक व्यक्ति अपने कर्तव्य के निर्धारण में संशय युक्त रहते हैं। **( 5 ) महीयांसः प्रकृत्या मितभाषिणः** (2/13) बड़े लोग स्वभाव से ही कम बोलते हैं। **( 6 ) क्रियासमभिहारेण विराध्यन्तं क्षमेत कः ( 2/43 )** बार-बार विरोध करने वाले को कोई भी नहीं सह सकता। **( 7 ) सर्वः स्वार्थं समीहते ( 2/64 )** सभी लोग अपना स्वार्थ देखते हैं। **( 8 ) नान्यस्य गन्धमपि मानभृतः सहन्ते ( 5/42 )** मनस्वी लोग दूसरे की शत्रु की गंध को भी नहीं सहते हैं। **( 9 ) क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयताया ( 4/17 )** जो प्रत्येक क्षण में नवीन प्रतीत हो वही सुन्दरता का स्वरूप है। **( 10 ) क्षतसकलविपक्षस्तेजसः स स्वभावः ( 11/59 )** सभी विपक्षियों को नष्ट करना तेज का स्वभाव ही है।

**पदलालित्य**

पदों का श्रुतिमधुर विन्यास पदलालित्य है जो कोमलकान्त पदावली से या अनुप्रास पदों से निष्पन्न होता है। दण्डी कालिदास आदि प्रथम कोटि के पदलालित्य का प्रयोग करते हैं तो श्रीहर्ष, जयदेव प. राजजगन्नाथ आदि का पदलालित्य अनुप्रास पर आधारित है। परवर्ती युग में यह कोटि अधिक लोकप्रिय हुई। माघ ने दोनों विधाओं का सफल प्रयोग किया है। दोनों में संगीतात्मकता का आनन्द है। षष्ठ सर्ग के यमक युक्त पदों में लालित्य का प्राचूर्य है। वसन्त काल में मधुर गुन्जन का ध्वनिमय चित्र कवि ने इस प्रकार सींचा है-

**मधुरया मधुबोधितमाधवी मधुसमृद्धिसमेधितमेघया।**
**मधुकराङ्गनया मुहुरुन्मद-ध्वनिभृता निभृताक्षरमुज्जगे॥**[1]

इसी प्रकार रैवतक पर्वत के वर्णन में माघ ने पदलालित्य का यमक युक्त मधुर सन्निवेश किया है, जिसमें देवांगनाओं के राक्षासोपद्रव से रहित निवास कर वर्णन है-

**राजीवराजीवशलोलभृङ्गं**
**मुष्णान्तमुष्णं ततिभिस्तरूणाम्।**
**कान्तालकान्ता ललनाः सुराणां**
**रक्षोभिरक्षोभितमुद्वहन्तम्॥**[2]

शब्द और अर्थ की परस्पर प्रतिस्पर्धा के रूप में पदलालित्य का निवेश निम्नांकित पद्य में देखा जा सकता है, जिसमें समुद्र द्वारा भगवान् श्रीकृष्ण का अभिनन्दन किये जाने का वर्णन है-

**तमागतं वीक्ष्य युगान्तबन्धुमुत्सङ्गशय्या शयमम्बुराशिः।**
**प्रत्युज्जगामेव गुरु-प्रमोदप्रसारितोत्तुङ्ग-तरङ्गबाहुः॥**[3]

आधुनिक समीक्षकों ने 'माघे सन्ति त्रयो गुणाः' की व्याख्या अन्य

---

1. शिशुपालवध, 6/20
2. वही, 4/9
3. वही, 3/48

प्रकार से करते हुए यह प्रकट किया है कि माघ में 'त्रयो गुणाः' का अर्थ उपर्युक्त तीनों गुणों की उपस्थिति नहीं बल्कि ओज, माधुर्य तथा प्रसाद इन तीनों काव्य गुणों की स्थिति से है। उपमा, अर्थगौरव और पदलालित्य ऐसी विशिष्टताएँ हैं जो न्यूनाधिक्य रूप से सभी कवियों में रहती हैं। तब माघ में उनकी उपस्थिति से प्रशास्तिकार का तात्पर्य क्या होगा? अवश्य प्रशास्तिकार माघ के पृथक वैशिष्ट्य का निरूपण करना चाहता है। अन्य कवियों में जहाँ एक या दो गुण रहते हैं, माघ में तीनों काव्यगुण युगपत वर्तमान रहते हैं। सधर्म के रूप में नहीं अपितु गौण अर्थ में अर्थात् शब्दार्थवृत्ति के रूप में।

इसी प्रकार प्रसाद-गुण का सौन्दर्य द्वारका की ललनाओं के द्वारा कृष्ण के अवलोकन में उदाहरणीय है-

**यां यां प्रियः प्रैक्षत कातराक्षी**
**सा सा ह्रिया नम्रमुखी बभूव।**
**निःशङ्कमन्याः सममाहितेर्ष्या-**
**स्तत्रान्तरे जघ्नुरमुं कटाक्षैः॥**[1]

तदनुसार ओज गुण का सौन्दर्य भी प्रस्तुत उदाहरण में अवलोकनीय है-

**हृदयमरिवधोदयादुदूढद्रढिम दधातु पुनः पुरन्दस्य।**
**धनपुलकपुलोमजाकुचाग्र द्रुतरिरम्भ-निपीडनक्षमत्वम्॥**[2]

माधुर्य-गुण प्रभात-वर्णन (एकादश सर्ग) के निम्नांकित पद्य में पूर्णतः विकसित रूप में द्रष्टव्य है। हवा बहने का वर्णन करने वाले इस पद्य पर मुग्ध होकर मल्लिनाथ ने कहा कि आचार्यों के द्वारा प्रतिपादित दसों प्राचीन गुण इसमें विद्यमान हैं-

**विकचकमलगन्धैरन्धयन्भृंगमालाः**
**सुरभितमकरन्दं मन्दमावातिवातः।**
**प्रमदमदनमाद्यद्यौवनोद्दाम-रामा-**
**रमण-रभसखेदस्वेदविच्छेददक्षः॥**[3]

1. शिशुपालवध, 3.16
2. वही, 1.74
3. वही, 11.19

# माघ में तीन गुण

-दीक्षा आर्या*

संस्कृत के पण्डित-समाज में परम्परा से यह उक्ति चली आ रही है कि काव्य के क्षेत्र में कालिदास की उपमा, भारवि का अर्थगौरव और दण्डी का पदलालित्य सर्वोत्कृष्ट है, किन्तु माघ की कविता में इन तीनों विशेषताओं का एक साथ समन्वय देखने को मिलता है। उसमें कालिदास की उपमा-योजना, भारवि की अर्थाभिव्यक्ति और गद्यकार दण्डी का सुललित पद-विन्यास, तीनों का संयोग है। इसका आश्रय भले ही पूर्ववर्ती तीनों कवियों की तुलनात्मक उत्कृष्टता का द्योतन करना नहीं है; अपितु उनके उत्कृष्ट काव्यत्व गुणों का मूल्यांकन करना माघ की कविता के प्रशंसकों ने उसकी कविता में कवित्व के उन श्रेष्ठ गुणों को खोज निकाला है, जो उनके पूर्ववर्ती कृतियों की विशिष्टता के सूचक स्वरूप कहे जाते हैं।

माघ की कविता-शैली के सन्दर्भ में यथास्थान उनकी अलंकार-योजना की चर्चा की गयी है। यद्यपि उन्होंने प्राय: सभी शब्द-अर्थ-अलंकारों का प्रयोग किया है, तथापि उनमें उपमा अलंकार की छटा विशेष रूप से दर्शनीय है। कालिदास के परवर्ती और माघ के पूर्ववर्ती अनेक कवियों ने उपमा अलंकार की विशिष्टता प्रदर्शित करने की दृष्टि से अनेक प्रयोग किये हैं; किन्तु कालिदास के बाद फिर वह रूप माघ में ही देखने को मिलता है। माघ के बाद श्रीहर्ष ने भी इस दिशा में प्रयत्न किया; किन्तु उन्हें भी आशिंक सफलता प्राप्त हुई है।

कालिदास और माघ की उपमा-योजना में स्वाभाविकता एवं

---

* पूर्व शोधच्छात्रा, श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विद्यापीठ, नई दिल्ली

विशिष्टता है, उसमें सरसता तथा भावाभिव्यंजकता है।

कवि कालिदास के बाद यद्यपि अनेक कवि ऐसे हुए हैं, जिन्होंने अर्थगांभीर्य के प्रलोभन से अपनी कविता की पाण्डित्य की प्रखरता से अभिषिक्त करने का भरपूर यत्न किया है, किन्तु उसमें एकमात्र सफलता भारवि को मिली है। उनकी परम्परा एवं प्रसिद्धि को दृष्टि में रखकर इस दिशा में कुमारदास और भट्टि ने भी काव्य में अर्थवता की गम्भीरता को श्रेष्ठ माना है; किन्तु भारवि की कविता से उनकी तुलना नहीं की जा सकती है। इस दृष्टि से एकमात्र माघ ही ऐसे हैं, जो भारवि की कविता के वास्तविक उत्तराधिकारी हैं। माघ की कविता में अर्थगाम्भीर्य विषयक वे सभी विशेषताएँ स्वाभाविक रूप में दृष्टिगत होती हैं, जो भारवि की कविता में हैं। इसी कारण राजशेखर ने लिखा है कि जहाँ भारवि की कविता सूर्यरश्मियों की भाँति समय ज्ञान को प्रकाशित करने वाली है, वहाँ माघ मास के समान माघ का नाम सुनकर ही किस कवि को रोमांच (कँपकँपी) नहीं हो जाता है-

**कृत्स्नप्रबोधकृद्वाणी भारवेरिव भारवेः।**
**माघेनेव च माघेन कम्पः कस्य न जायते।।**

जहाँ तक माघ के पदलालित्य का प्रश्न है, माघ भाषाशास्त्र के प्रकाण्ड विद्वान् थे। कविहृदय होने के कारण उन्होंने अपनी कविता में पदों की योजना इस ढंग से की है, जिसको पढ़कर सामान्य पठक उल्लसित हो उठता है। समस्त संस्कृत साहित्य में माघ ही एकमात्र ऐसा कवि हुआ है, जिसने अपने महाकाव्य के आधे भाग में ही संस्कृत साहित्य के शब्द भण्डार को सँजो दिया है। उनकी यह पदशय्या, प्रसिद्ध काव्यशास्त्री एवं गद्यकार दण्डी के पदलालित्य की तुलना में किसी प्रकार न्यून नहीं है। उनकी यह सुसंगत पदयोजना एक साथ उनके पाण्डित्य और कवित्य को प्रकट करती है। यही कारण है कि उनकी कविता के प्रशंसकों ने उनके सम्बन्ध में विभिन्न प्रशंसात्मक उक्तियाँ प्रकट की हैं। 'कवियों में कालिदास और काव्यों में माघ' को इसी हेतु वरीयता दी गयी है-

**काव्येषु माघः कविकालिदासः।**

## माघ की वर्णन-शैली

साहित्य-निर्माण में शैली का विशेष महत्त्व माना गया है। प्रत्येक रचनाकार या साहित्यस्रष्टा की अपनी एक शैली होती है। उसके रचना-विधान की परख और स्वायत्त करने के उपरान्त ही उसकी रचना का मर्म समझा जा सकता है। इस दृष्टि से महाकवि माघ के कृतित्व का मूल तथा निष्कर्ष समझने के लिए उनकी वर्णनशैली से परिचित होना नितान्त आवश्यक है।

माघ की शैली को हृदयंगम करने के लिए सबसे पहली बात यह है कि अध्येता को न केवल कविहृदय अपितु काव्यशास्त्रीय नियमों और अन्य भी अनेक विषयों का ज्ञान होता आवश्यक है। माघ स्वयं राजनीति, धर्म, अर्थ, दर्शन, व्याकरण और काव्यशास्त्र आदि अनेक विषयों के ज्ञाता थे। उनकी कविता के सम्बन्ध में जो दोषारोपण किया जाता है, उसका कारण भी संभवतः यही हो सकता है कि जिज्ञासु को उतने बहुविध विषयों में अभिज्ञ होना चाहिए, जितना कि उसके लिए आवश्यक है। माघ की कविता के गुण-दोषों का सम्यक् विवेचन उसी दिशा में संभव है, जब कि अध्येता का दृष्टिकोण व्यापक एवं अनेकांगी हो।

इस दृष्टि से विचार करने पर पहली बात यह निश्चित होती है कि माघ ने परम्परा और समसामयिक जनरुचि को हृदयंगम कर उसे अपने काव्य में समन्वित किया है। उनके पूर्ववर्ती अनेक ग्रंथकार हो चुके थे और उनकी शैली के विविध पक्ष लोक में प्रचलित हो चुके थे। अतः माघ ने अपनी काव्य-सफलता एवं लोकप्रियता के लिए स्वभावतः कालिदास, भारवि और दण्डी से रचना-शैली के लोकप्रिय उपादानों को ग्रहण किया। इस आधार पर उन्होंने काव्य में नये-नये प्रयोग किये, जिन्हें कि काव्यरसिक समाज ने उत्साह से अपनाया। फिर भी जहाँ तक प्रबन्ध काव्य के कलेवर की विधिवत् पूर्ति का सम्बन्ध था, उन्होंने

कालिदास की अपेक्षा अपने निकटतम पूर्ववर्ती भारवि से ही अधिक प्रेरणा प्राप्त की। एक छोटे-से कथानक को प्रबन्ध-काव्य का स्वरूप देते समय माघ ने अवश्य भारवि का अनुकरण किया। दोनों महाकवियों की वर्णन-विधा कई दृष्टियों से समानता रखती है।

माघ की वर्णनशैली या रचना विधान का परिचय प्राप्त करने के लिए तत्कालीन परिस्थितियों से अवगत होना भी आवश्यक है। यह युग कवि-दरबारों की चहल-पहल का युग था। माघ स्वयं राज्याश्रित कवि थे। दरबारों में कवि-सभाओं का आयोजन होता था और प्रत्येक कवि अपने यश और सम्मान के लिए ऐसी कविता को सुनाने का आकांक्षी होता, जिससे राजसभा प्रभावित हो सके। ऐसा करने के लिए निश्चित ही कविहृदय सहायक न होता, अपितु पाण्डित्य का वैचित्र्य एवं गाम्भीर्य भी उसकी कविता में निहित होता। माघ की कविता में चमत्कारवादिता का समावेश इसी प्रवृत्ति के कारण हुआ।

किन्तु चमत्कारिता माघ की रचनाशैली का प्रधान गुण नहीं है। उन्होंने काव्य के कलापक्ष का सुन्दर समावेश किया; चित्र और अलंकार आदि की योजना करके अपनी कविता को भली-भाँति सुसज्जित किया। किन्तु उनकी शैली में भाव पक्ष सरस, स्वाभावितक छटा के भी दर्शन होते हैं। उनके भावप्रवण हृदय के उद्गार जिन सन्दर्भों में प्रकट हुए हैं वे स्थल ही 'शिशुपालवध' के स्थायित्व के कारण हैं। शृङ्गार के संयोग पक्ष का आश्रय लेने पर भी माघ ने कल्पना की सुन्दर अवतारणा की है। वीररस के वर्णनों में भी उनके स्वानुभव विद्यमान प्रतीत होते हैं।

माघ की काव्य-शैली की सर्वोच्च विशेषता है। उनका असामान्य भाषाधिकार और पदरचना। समस्त संस्कृत साहित्य में काव्य रचना की दिशा में माघ ही एकमात्र ऐसे कवि हुए, जिन्होंने अपने असामान्य भाषा-पाटव के कारण अपनी काव्य-शैली को सर्वथा नये रूप में प्रस्तुत किया।

माघ की रचना-शैली की विशेषता एवं सफलता का इससे अधिक प्रमाण दूसरा क्या हो सकता है कि उनके बाद लिखे गये काव्यों

एवं महाकाव्यों में उनकी शैली को अपनाने की प्रतिस्पर्धा-सी प्रचलित हो गयी। माघ पर जो ह्रासोन्मुख महाकाव्य परम्परा का दोषारोपण किया जाता है, वह आधारहीन है और वस्तुतः देखा जाय तो माघ ने जिन काव्य-उपादानों को ग्रहण किया, परवर्ती कवियों की रचनाओं में उनके दर्शन ही नहीं होते।

इस प्रकार महाकवि माघ के काव्य की जिन कारणों से प्रशंसा की जाती है, उनमें एक कारण उनकी रचना-शैली भी है। काव्य के कलेवर-वृद्धि की प्रेरणा उन्हें भली ही परम्परा से प्राप्त हुई हो, किन्तु शैली की विशिष्टता उनकी सर्वथा निजी है।

## माघकालीन सामाजिक तथा राजनीतिक स्थिति

महाकवि माघ के महाकाव्य 'शिशुपालवध' में तत्कालीन सामाजिक जीवन के सुन्दर चित्र देखने को मिलते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि तत्कालीन जन-जीवन परम्परागत वैदिक संस्कृति का अनुयायी था। वर्णाश्रम व्यवस्था की जो शास्त्रानुकूल वैदिक परम्परा थी, माघकालीन समाज में उसका पूर्ण निर्वाह देखने को मिलता है। प्रत्येक गृहस्य सन्ध्या-वन्दनादि और यज्ञ-हवन आदि धार्मिक कृत्यों के प्रति निष्ठावान था। अतिथि-सत्कार और वय-विद्या-वृद्धों का समादर कुलाचार के रूप में माना जाता था। 'शिशुपालवध' के प्रथम सर्ग में महर्षि नारद के पहुँचने पर श्रीकृष्ण ने और इन्द्रप्रस्थ की सीमा पर श्रीकृष्ण के पहुँचने पर युधिष्ठिर ने जो आतिथ्य दर्शित किया था वह भारतीय संस्कृति का उज्ज्वल उदाहरण है। पति-पत्नी के सम्बन्धों और पतिव्रत्य धर्म का अच्छा निरूपण किया गया है।

तत्कालीन समाज में देवतावाद और मूर्तिपूजा का प्रचलन था। शिव और विष्णु प्रमुख देवता थे। ये दोनों वैदिक देवता समाज में अधिक संपूज्य थे। इन दोनों के अतिरिक्त अन्य अवतारों का भी स्थान-स्थान पर उल्लेख हुआ है। जनता को भी देवत्व की कोटि में रखा है। श्रीकृष्ण को भी मानवीय सृष्टि के कार्य-कलापों का विधाता,

कर्मनियन्ता और अद्वितीय शक्ति के रूप में माना गया है। देवतावाद के साथ ही पुनर्जन्म पर विश्वास था और सद्गति के लिए सुकर्मों के अधिष्ठान पर बल दिया गया है।

पूर्ण वयस, अर्थात् युवावस्था प्राप्त होने पर ही स्त्रीपुरुषों के विवाह का विधान था, विवाह असगोत्र होते थे। विवाह-संस्कार सम्पन्न हो जाने के अनन्तर जब कन्या पतिगृह को जाती थी तो ग्राम सीमा या नदी तट तक उसे बिदा करने के लिए जाया जाता था। आज की ही भाँति इस करुण दृश्य का माघ ने बड़ा ही सजीव वर्णन 'शिशुपालवध' के चतुर्थ सर्ग में किया है:

**अपशङ्कमङ्कपरिवर्तनोचिश्चलिताः पुरः पतिमुपैतुमात्मजाः।**
**अनुरोदतीव करुणेन पत्रिणां विरुतेन वत्सलतयैष निम्नगाः।।**[1]

ऐसा प्रतीत होता है कि तब स्त्रियों की शिक्षा-दीक्षा का पर्याप्त प्रचलन था। मर्यादा और शीलरक्षा उनका मुख्य कर्तव्य हुआ करता था। वे पर्दे में रहकर भी रणांगण में अपने वीर पतियों के साथ युद्ध में भाग लिया करती थीं, इसलिए शास्त्र के साथ शस्त्र-शिक्षा की भी, उनके लिए व्यवस्था हुआ करती थी। स्त्री-पुरुषों को समान अधिकार प्राप्त थे और नृत्य-संगीत आदि कलाओं के सार्वजनिक आयोजनों में भाग लेना उनकी प्रकृत अभिरुचि थी।

तत्कालीन युग की संस्कृति का सुपरिचय सामाजिक जीवन के रहन-सहन में दृष्टिगत होता है। स्त्री-पुरुषों के रहन-सहन और वेष-भूषा के सम्बन्ध में माघ के कतिपय स्थलों पर प्रकाश डाला है। ऐसा प्रतीत होता है कि विभिन्न अंगों के आभूषणों के धारण करने में स्त्रियों की बड़ी अभिरुचि थी। कर्णफूल, करधनी, नूपुर, हार और कंकण उस समय के सर्वप्रचलित आभूषण थे। इसी प्रकार प्रसाधन के लिए महावर, लाल चन्दन, आलता और अंजन आदि विभिन्न सौन्दर्यवर्धक रागों का उपयोग किया जाता था। वस्त्रों में महीन कपड़े की साड़ियाँ, कंचुकी और ओढ़नी आदि धारण करती थीं।

1. शिशुपालवध, 4/47

पुरुषों के वस्त्रों में धोती, कंचुक, उष्णीष और उपानह का सामान्य प्रचलन था, वे दाढ़ी-मूछें भी रखते थे। हार, कुण्डल और कंगन धारण करते थे।

तत्कालीन सामाजिक जीवन नगरों और ग्रामों में विभक्त था। ग्रामीण जनता कृषि, पशुपालन और घरेलू लघु उद्योग करती थी। नगरों के लोग व्यापार तथा बड़े उद्योग करते थे। कुछ लोग राजवृत्ति पर निर्भर थे। तत्कालीन ग्राम्यनगर-जीवन बड़ा सुखी और आनन्दित था। लोग अपनी-अपनी रुचि एवं स्थिति के अनुरूप मनोविनोद किया करते थे। नृत्य तथा संगीत गोष्ठियों का अधिक प्रचलन था।

राजनीतिक स्थिति की दृष्टि से वह युग अधिक उथल-पुथल का नहीं था। छोटे-छोटे माण्डलिक राजाओं में यदा-कदा युद्ध भी हो जाया करते थे; किन्तु सामान्यतः परिस्थिति निरापद थी। आपसी बात-चीत द्वारा तथा दूतों के पारस्परिक परामर्श में विरोधी बातों को तय कर दिया जाता था। राष्ट्र, दुर्ग तथा सेना का संगठन बड़े कौशल से किया जाता था। चक्रवर्तित्व प्राप्त करने के लिए प्रभावशाली एवं शक्तिशाली राजा समस्त माण्डलिक राजाओं पर अपना प्रभुत्व स्थापित करता था। राजा और प्रजा का सम्बन्ध बहुत ही मधुर था। विद्वानों और गुणियों का पर्याप्त आदर-सम्मान था।

इस प्रकार ज्ञात होता है कि माघ के समय की सामाजिक एवं राजनीतिक स्थिति सन्तोषप्रद तथा उन्नतशील थी। प्रत्येक व्यक्ति अपने न्यायोचित अधिकारों के साथ अपना विकास करने में पूर्ण स्वतन्त्र था। किसी भी उन्नताकांक्षी व्यक्ति के लिए सभी मार्ग खुले हुए थे।

# माघे सन्ति त्रयो गुणाः

-डॉ. गोपाल कुमार झा*

शिशुपालवध के कर्ता का नाम माघ है। डॉक्टर यकोवी का मत है कि जिस प्रकार भारवि ने प्रतिभा की प्रखरता सूचित करने के लिए "भा-रवि" (सूर्य का तेज) का नाम रख, उसी शिशुपालवध के अज्ञातनामा रचयिता ने अपनी कविता से भारवि को ध्वस्त करने के लिए माघ का नाम धारण किया, क्योंकि माघमास में सूर्य की किरणें ठण्डी पड़ जाती है। परन्तु यह कल्पना बिल्कुल निराधार जान पड़ती है। शिशुपालवध के कर्ता का व्यक्तिगत नाम ही माघ है उपाधि नहीं। माघ की जीवन घटनाओं का पता भोजप्रबन्ध तथा प्रबन्धचिन्तामणि से लगता है, दोनों पुस्तकों में प्रायः एक सी कथा दी गयी है। माघ में ग्रन्थ के अन्त में अपना थोड़ा परिचय भी दिया है। इन सबको एकत्रित करने पर माघ के जीवन की रूपरेखा को हम जान सकते हैं।

**जीवनी**- माघ के दादा सुप्रभदेव वर्मलात नामक राजा के जो गुजरात के किसी प्रदेश का शासक था, प्रधानमंत्री थे। अतः माघ कवि का जन्म एक प्रतिष्ठित धनाढ्य ब्राह्मणकुल में हुआ था। इनके पिता दत्तक बड़े विद्वान् तथा दानी थे। गरीबों की सहायता में इन्होंने अपने धन का अधिकांश भाग लगा दिया माघ का जन्म भीन-माल में हुआ था। यह गुजरात का एक प्रधान नगर था जो बहुत दिनों तक राजधानी तथा विद्या का मुख्य केन्द्र था। प्रसिद्ध ज्योतिष ब्रह्मगुप्त ने 625 ई. के आस-पास अपने ब्रह्मगुप्त सिद्धान्त को यहीं बनाया। इन्होंने अपने को भीनमल्लाचार्य लिखा है, हुवेनसांग ने भी इसकी समृद्धि का वर्णन किया है। पिता की

---

* पूर्व शोधछात्र, साहित्य विभाग, श्री ला.ब.शा.रा.सं.वि.वि., नई दिल्ली-16

दानशीलता का प्रभाव पुत्र पर भी पड़ा है, ये खूब दानी निकले। राजा भोज से इनकी बड़ी मित्रता थी, राजा भोज का इन्होंने अपने घर पर बड़े आवभगत से सत्कार किया। धीरे-धीरे अधिक दान देने से निर्धन हो गए, यह धारा का प्रसिद्ध राजा भोज नहीं हो सकता।

इतिहास इसे असम्भव सिद्ध कर रहा है एवं कुछ लोग भेजप्रबन्ध की कथा पर विश्वास नहीं करते। परन्तु इतिहास में कम से कम दो भोज अवश्य थे। एक तो प्रसिद्ध धारानरेश भोज (1010-50) थे और दूसरे भोज सदी के उत्तरार्द्ध में हुए। सम्भवतः इसी दूसरे राजा के समय में माघ हुए थे।

'भोजप्रबन्ध' ने भोजों की कथाओं में गड़बड़ मचा डाली है। भोजप्रबन्ध में लिखा है कि इनकी पत्नी राजा के पास कुमुदवनमपश्रि श्रीमदम्भोजखण्डम् आदि पद्य को जो माघ काव्य के प्रभातवर्ण (11 सर्ग) में मिलता है ले गयी। इस पद्य को सुनकर राजा ने प्रभूत धन दिया, उसे लेकर माघ की पत्नी ने रास्ते में दरिद्रो को बाँट दिया। माघ के पास पहुँचने पर उसकी पत्नी के पास एक कोड़ी भी नहीं बची, परन्तु याचकों का तांता बंधा ही रहा। कोई उपाय न देखकर दानी माघ ने अपने प्राण छोड़ दिये। प्रातःकाल भोज ने माघ का यथोचित अग्निसंस्कार किया और बहुत दुःख मनाया। माघ की पत्नी भी सती हो गई, माघ के जीवन की यही घटना ज्ञात है। यह सच्ची है या नहीं, परन्तु इतना तो हम निःसन्देह कह सकते हैं कि माघ परम्परानुसार एक प्रतिष्ठित धनाढ्य ब्राह्मण कुल में हुए थे। जीवन के सुख की समग्र सामग्री इनके पास थी। पिता ने इन्हें शिक्षा दी थी, पिता के समान ही ये दानी तथा परोपकारी थे। सम्भवतः भोज के यहाँ इनका बड़ा मान था।

**समयः**- माघ के समय निरूपण के लिए एक सन्देह हीन प्रमाण उपलब्ध हुआ है। आनन्दवर्धन ने शिशुपालवध के दो पद्यों को ध्वन्यालोक के उदाहरण के लिए उद्धृत किये हैं- रम्या इति प्राप्तवतीः पताकाः (3/43) तथा त्रासाकुलः परिपतन् (4/26)

**फलतः** माघ आनन्दवर्धन (नवम शती के पूर्वार्ध) से प्राचीन हैं। एक शिलालेख से इसका यथार्थज्ञान होता है। डॉ. कीलहार्न को राजपूताने के बसन्तगढ़ नामक किसी स्थान से 'वर्मलात' राजा का एक शिलालेख मिला है। शिलालेख का संवत 682 अर्थात् 625 ई. है, शिशुपालवध की हस्तलिखित प्रतियों में सुप्रभदेव के आश्रयदाता का नाम भिन्न-भिन्न मिलता है। धर्मनाम वर्मनाम धर्मलात आदि अनेक पाठभेद पाये जाते हैं। भीनमाल के आस पास के प्रदेश में इस शिलालेख की उपलब्धि से डॉक्टर किलहार्न वर्मलाम को असकी पाठ मानकर इस राजा तथा सुप्रभदेव के आश्रय दाता को यथार्थतः अभिन्न मानते हैं। अतः सुप्रभदेव का समय 625 ई. के आस पास है। अतएव इनके पौत्र माघ का समय भी लगभग 650 ई. से लेकर 700 ई. तक होगा, अर्थात् माघ का आविर्भाव काल सातवीं सदी का उत्तरार्द्ध मानना उचित है।

**कथावस्तु**- माघ की कीर्तिलता केवल एक ही महाकाव्य शिशुपालवध रूपी वृक्ष पर अवलम्बित है। श्रीकृष्ण के द्वारा युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में चेदिनरेश शिशुपालवध के वध का सांगोपांग वर्णन है। यही शिशुपालवध महाकाव्य का वर्ण्य विषय है। इसका प्रेरणा स्त्रोत मुख्यता श्रीमद्भागवत है, गौण रूप से महाभारत वैष्णव माघ के ऊपर भागवत अपना प्रभाव जमाया था।

**फलतः** उसी के आधार पर कथा का विन्यास है। सर्गों की संख्या 20 तथा श्लोकों की संख्या 1650 हैं।

**प्रथम सर्ग**- द्वारका में श्रीकृष्ण के पास नारद पधारकर शिशुपाल के वध के लिए प्रेरणा देते हैं।

**द्वितीय सर्ग**- युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में जाने के लिए बलराम तथा उद्धव द्वारा मन्त्रणा निश्चय किया जाता है।

**तृतीय सर्ग**- श्रीकृष्ण दलबल के साथ इन्द्रप्रस्थ की यात्रा करते हैं।

**चतुर्थ सर्ग**- तदनन्तर महाकाव्यों के पूरक विषयों का वर्णन आरम्भ होता है रैवतक का।

**पंचम सर्ग**- कृष्ण के रैवतक निवास का।

**षष्ठ सर्ग**- ऋतुओं का वर्णन होता है।

**सप्तम् सर्ग**- वन विहार का।

**अष्टम् सर्ग**- जलक्रीड़ा का।

**नवम् सर्ग**- सूर्यास्त तथा चन्द्रोदय का।

**दशम् सर्ग**- मधुपान और सुरत का।

**एकादश सर्ग**- प्रभात का।

**द्वादश सर्ग**- प्रातःकालीन अभियान का।

**त्रयोदश सर्ग**- पाण्डवों से मिलन तथा सभाप्रवेश का।

**चतुर्दश**- राजसूय याग तथा दान का।

**पञ्चदश**- शिशुपाल द्वारा विद्रोह।

**षोडष सर्ग**- दूतों की युक्ति प्रत्युक्ति।

**सप्तदश**- सभासदों का क्षोभ तथा युद्धार्थ कवचधारण का।

**18वां वा 19वां सर्ग**- युद्ध का वर्णन।

**बीसवां सर्ग**- श्रीकृष्ण तथा शिशुपाल के साथ द्वन्द्व युद्ध का वर्णन।

इस विषय सूची पर आपाततः दृष्टि डालने से स्पष्ट है कि लघुकाय व्रत्त का परिबृंहित का महाकाव्य के निर्वाह के लिए माघ ने आठ सर्गों की योजना (4 सर्ग-11 सर्ग) अपनी प्रतिभा के बल पर की है। अलंकृत महाकाव्य माघ का संस्कृत साहित्य को अविस्मरणीय योगदान है, जिसका अनुसरण तथा परिबृंहण कर हमारा काव्य साहित्य समृद्ध सम्पन्न तथा सुसंस्कृत हुआ है।

**माघे सन्ति त्रयो गुणाः** उपमा, अर्थगौरव तथा पदलालित्य इन तीनों गुणों का सुगम दर्शन हमें माघ की कमनीय कविता में मिलता है। बहुत से आलोचक पूर्वोक्त वाक्य को किसी माघ भक्त पण्डित का

अविचारित हृदयोद्गार भले ही बतावे, परन्तु वास्तव में पूर्वोक्त आभाणक में सत्यता है। माघ में कालिदास जैसी उपमाएँ भले ही न मिले, फिर भी इनमें न सुन्दर उपमाओं का अभाव है, न अर्थगौरव की कमी। पदों का ललित विन्यास तो निःसन्देह प्रशंसनीय है। माघ की पदशय्या इतनी अच्छी है कि कोई भी शब्द अपने स्थान से हटाया नहीं जा सकता।

**माघे सन्ति त्रयो गुणाः**

**उपमा की सुषमा**- नवीन चमत्कारी उपमा का विन्यास माघ की विशिष्टता है। माघ के पात्रों में खूब सजीवता है, आकाश से उतरने वाले काले काले मेघों के नीचे कर्पूरपाण्डुर महर्षि नारद के रूप चित्रण में जितना कवि सफल है, उतना ही उनके सन्देश कथन में भी। भगवान् श्रीकृष्ण का रूप तथा उनका सहिष्णु चरित्र बड़ा ही सुन्दर है। कवि की अलोकसामान्य प्रतिभा सामान्य पदार्थों में भी विशिष्टना उत्पन्न कर देती है, नित्यपरिचित वस्तुओं में नवीनता का भी संचार करती है। वह प्रकृति के हृदय को समझता है तथा मधुर शब्दों में उसे अभिव्यक्त करता है। प्रातःकालीन दिवाकर का बालक रूप में चित्रण कवि के सरस हृदस का परिचायक है, तो प्राची में सूर्योदय का यह रंगीन दृश्य एक चितस्मरणीय वस्तु है।

**विततपृथुवरत्रातुल्यरूपैर्मयूखैः**
**कलश इव गरीयान् दिग्भिराकृष्यमाणः।**
**कृतचपलविहंगालापकोलाहलाभि-**
**र्जलनिधिजलमध्यादेष उत्तार्यतेऽर्कः॥**[1]

चारों ओर फैली हुई मोटी रस्सियों के समान, किरणों के द्वारा खींचा जाता हुआ बड़े भारी कलश के समान यह सूर्यरूपी नारियों के द्वारा समुद्र के जल से निकाला जा रहा है। जिस प्रकार कलश रस्सियों की सहायता से बाहर निकाला जाता है उसी प्रकार पूर्व समुद्र में डूबे हुए सूर्य को दिशायें किरणरूपी रस्सियों से खींचकर निकाल रही है। जिस प्रकार जल में डूबे हुए घड़े से निकालने के समय कड़ा कोलाहल

1. शिशुपालवध, 11/44

मचता है, उसी प्रकार प्रातःकाल की चुहचुहाती चिड़ियाँ शोर मचा रही है। प्रातःकाल के समय पक्षिगण का मनोहर कोलाहल कर्णपुर को सुख देता है, चारों ओर किरणें फैलाने वाले बाल सूर्य का यह सुन्दर उदाहरण है।

**अर्थ का गौरव**– भारवि के समान माघ में भी अर्थगौरव के उत्पादन में विशेष क्षमता थी। वे भलीभांति जानते हैं कि कतिपय वर्णो के विन्यास से वाङ्मय में अनन्त विचित्रता उसी प्रकार उपजती है, जिस प्रकार केवल सात स्वरों से ग्रथित होने वाला गायन अनन्त रूप से विचित्र बन जाता है (2/72) और इसीलिए वे वाणी के प्रतान को पटी के प्रसार के समक्ष मानते हैं (2/73) अर्थ के गाम्भीर्य से माघकाव्य भरा पूरा है। यह दार्शनिक तथ्यों के उद्घाटन के अवसर पर विशेष रूप से खुलता है–

**तस्य सांख्यपुरुषेण तुल्यतां**
**बिभ्रतः स्वयमकुर्वतः क्रियाः।**
**कर्तृता तदुपलम्भतोऽभवद्–**
**वृत्तिभाजि करणे यथार्त्विजि॥**[1]

यज्ञ का प्रसंग है। होम आदि क्रियाओं (पाप पुण्य कर्मों) को स्वयं न करते हुए सांख्यशास्त्र में वर्णित (उदासीन) पुरुष की समानता धारण करने वाले राजा युधिष्ठिर को अन्तःकरण के समान ऋत्विजों द्वारा अधिष्ठित यज्ञ की भावना से कर्तापन की प्राप्ति हुई है। चतुर्दश सर्ग में याग का वर्णन इतना विशद् है कि कवि के अनुष्ठान विधिज्ञता पर यज्ञिकजन रीझ उठते हैं। मन्त्र के उच्चारण का विधान इस प्रकार ऋत्विज लोग कर रहे थे कि उसके अर्थ समझने में किसी प्रकार सन्देह का स्थान नहीं था।

**संशयाय दधतोः सरूपतां दूरभिन्नफलयोः क्रियां प्रति।**
**शब्दशासनविदः समासयोर्विग्रहं व्यवससुः स्वरेण ते॥**[2]

---

1. शिशुपालवध, 14/19
2. वही, 14/24

आशय है कि मन्त्रों में जहाँ कहीं ऐसे सन्देह उत्पन्न करने वाले समास आ जाते थे जिनका विग्रह कई प्रकार से हो सकता था, तो ऐसे स्थलों पर व्याकरण के ज्ञाता ऋत्विज गण स्वर के द्वारा यजमान के प्रकृत कर्म के अनुकूल अर्थ का निश्चय विग्रह के द्वारा कर रहे थे।

आदर्श राजा के स्वरूप का यह चित्रण कितना समुचित तथा चमत्कारी है–

**बुद्धिशस्त्रः प्रकृत्यङ्गो घनसंवृतिकञ्चुकः।**
**चारेक्षणो दूतमुखः पुरुषः कोऽपि पार्थिवः॥**[1]

शस्त्र जिसकी बुद्धि है, जिसके अंग प्रकृति, स्वामी, अमात्य आदि हैं। जिसका कवच दुर्वेद्य मन्त्र की सुरक्षा है, जिसके नेत्र गुप्तचर हैं, जिसका मुख सन्देश वाहक दूत होता है, ऐसा राजा सामान्य जन न होकर अलौकिक पुरुष होता है। इस अल्पकाय श्लोक में अर्थ का गौरव पूरी मात्रा में विद्यमान है।

**पद का लालित्य** माघ तो पदविन्यास के बादशाह ठहरे। न केवल शब्दों तथा पदों के ललित विन्यास में ही माघ निपुण थे, प्रत्युत नित नूतन श्रुति मधुर शब्दावली के तो मानों वे श्लाघ्य शिल्पी थे। नूतन नवीन शब्दों का इन्होंने अधिक प्रयोग किया है कि संस्कृत में यह आभाणक ही प्रसिद्ध है कि माघ के नव सर्ग बीतने पर नव शब्द मिलता ही नहीं "नवसर्गगते माघे नवशब्दो न विद्यते" यह कथन अर्थवाद नहीं है, प्रत्युत तथ्यवाद है। पदमाधुर्य की निपुणता के आचार्य माघ की कविताकामिनी की प्रशस्ति किन शब्दों में की जाये। उनके शब्दों में इतनी संगीतात्मक एकरसता है कि वीणा के तारों की झंकार की भांति अर्थावबोध की प्रतीक्षा बिना किये ही वह श्रोताओं के हृदय को रसाप्लुत बना देती हैं। बसन्त की सुषमा का संकेत कितनी सुन्दरता से शाब्दी ध्वनि द्वारा विद्योतित हो रहा है–

**मधुरया मधुबोधितमाधवीमधुरसमृद्धसमेधितमेधया।**
**मधुकराङ्गनया मुहुरुन्मदध्वनिभृता निभृताक्षरमुज्जगे॥**[2]

1. शिशुपालवध, 14/82
2. वही, 6/20

श्लोक के सरस वर्णों के उच्चारण के समय जीभ फिसलती हुई मानों चली जाती है बिना किसी परिश्रम के अनायास ही, बिना अन्त तक पहुँचे वह ठहरने का नाम ही नहीं जानती। कर्ण कुहरों में अमृत रस घोलने वाली मधुर पदावली ही पर्याप्त आनन्द देने वाली है। इन पद्यों का स्वाद साधारण पाठक भी ले सकता, परन्तु माघ के पाण्डित्य मण्डित अर्थों को समझना उसकी समझ से बाहर की बात है। उचित ही है कवि पण्डित माघ की काव्यकला परखने के लिए हृदय के साथ मस्तिष्क की भी नितान्त आवश्यकता होती है। विचित्र मार्ग के उद्भावक भारवि और माघ की अलंकृत शैली का प्रभाव ही प्रभावित है। ठीक ही कहा है- **मेघे माघे गतं वयः।**

# शिशुपालवध में नदी एवं पर्वत

- श्री राकेश कुमार यादव*

**विविधविधिविधायिनी संस्कृत काव्य-परम्परा सनातन से ही सन्तों एवं सदाशयों के हृदय को रसवादिता एवं ज्ञान आभा से आप्लावित करती रही** है। महाकवियों की ज्योर्तिमयी इस काव्य-परम्परा में विशिष्ट स्थान बनाने वाले संस्कृत भारती के महाभागवत कवि, उपमा, अर्थगौरव तथा पदलालित्य रूपी गुणत्रयी से सुशोभित, घण्टामाघ की कीर्तिलता बृहत्त्रयी में परिगणित, 'लक्ष्मीपतेश्चरितकीर्तन मात्रचारु' से अलङ्कृत विंशति सर्गो तथा 1650 श्लोकों में विभक्त शिशुपालवध महाकाव्य रूपी वृक्ष पर अवलम्बित है। मालिनी छन्द के रससिद्ध तथा 'सर्वशास्त्र-तत्त्वज्ञ' सांख्ययोग के पारखी आचार्य माघ की काव्यशैली 'अलङ्कृतशैली' का चूडान्त दृष्टान्त है। महाकवि माघ के प्रवीण पद्य उस गुलदस्ते के समान है जिसे माली ने अनेक रंगीन फूलों के मंजुल मिश्रण से तैयार किया है और जो खूब कटे-छँटे, नपे तुले, विदग्ध जनों के मनोविनोद के लिये प्रस्तुत एक नयानाभिराम कलात्मक पदार्थ होता है। महाकवि माघ की 'पदशय्या' इतनी सुव्यवस्थित है कि कोई भी शब्द अपने स्थान से हटाया नहीं जा सकता। माघ ने अपना सम्पूर्ण ज्ञान कविता-कामिनी को अर्पण कर दिया है। वे न केवल शब्दों तथा पदों के ललित विन्यास में ही निपुण थे, प्रत्युत नित-नूतन श्रुति-मधुर शब्दावली के तो मानों वे श्लाघ्य शिल्पी व बादशाह थे। नूतन नवीन शब्दों का उन्होंने इतना अधिक प्रयोग किया है कि संस्कृत साहित्य में यह आभाणक ही प्रसिद्ध है कि माघ के नव सर्ग बीतने पर नव शब्द मिलता ही नहीं-

---

* पूर्व शोधच्छात्र, संस्कृत विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज।

**नव-सर्गगते माघे नवशब्दो न विद्यते।**

भाषा और व्याकरण पर पूर्ण अधिकार होने के कारण वे यथावसर शब्दों का निर्माण तुरन्त कर लेते थे। यह उक्ति अक्षरशः सव्य भले ही न हो परन्तु यह तो मानना ही पड़ेगा कि महाकवि माघ के काव्य में शब्दों का दारिद्र्य नहीं है।

डॉ. व्यास कहते हैं कि माघ की शैली में एक क्षणिक नशा है जो नये अभ्यासशील व्यक्ति को अपनी ओर आकृष्ट कर लेता है।

**डॉ. भोला शङ्कर व्यास- महाकवि माघ को 'ऑल राउण्डर स्कॉलर' मानते हैं और कहते हैं कि कालिदास का काव्य शेक्सपियर** की भाँति भाव प्रधान है, माघ का काव्य मिल्टन की भाँति अत्यधिक अलङ्कृत हैं जिसे हम अलङ्कृत शब्दों का उद्भावक (Creator of Ornate Members) कह सकते हैं।

काव्यशास्त्रीय दृष्टि से प्रकृति-चित्रण महाकाव्य का अनिवार्य अङ्ग है। अतः बहुमुखी प्रतिभा वाले कलावादी माघ ऐसी स्थिति में प्रकृति-चित्रण की उपेक्षा नहीं कर सकते थे। महाकवि कालिदास और भवभूति जैसी गहनता महाकवि माघ के प्रकृति-चित्रण में भले ही न हो, परन्तु उनके प्राकृतिक चित्रण में वह स्वाभाविकता, यथार्थता मनोहरता एवं बिम्बात्मकता निहित है, जो पाठक को तन्मय कर देने में पूर्ण समर्थ है। महाकवि माघ के काव्य का कथानक ऐसा है जिसमें प्रकृति-चित्रण का अधिक अवसर नहीं है तथापि अवसर मिलते ही कवि प्राकृतिक दृश्यों में खो जाता है और पाठक को तल्लीन कर देता है। वस्तुतः श्रीकृष्ण की यात्रा के प्रसङ्ग में रैवतक पर्वत पर सेना के पड़ाव डालने का यही रहस्य है कि कथानक की धारा को रोककर कवि अपनी प्रकृति-चित्रण की पिपासा शान्त करना चाहता है। प्रकृति में मानवीय आरोप करना संस्कृत शृङ्गारी कवियों की एक विशेषता रही है। **इस परम्परा में माघ भी पीछे नहीं है। कवि का प्रकृति-चित्रण शृङ्गारमय है, उसमें भी संयोग पक्ष की प्रधानता** है। महाकवि माघ के वर्णनों में चाहे वे प्राकृतिक हों या मानुषिक उसमें अपूर्व सजीवता है। कवि के

प्राकृतिक पर्यवेक्षण का परिणाम उसके स्वाभाविक वर्णनों में खूब ही झलकता है।

महाकवि माघ ने वन, उपवन, सरोवर, लता, वृक्ष, सरिता, पर्वत, प्रभात, सन्ध्या, ऋतु आदि प्रकृति के विभिन्न रूपों का बड़ा ही हृदयग्राही एवं सजीव वर्णन किया है। महाकवि माघ ने अपने काव्य के उपबृंहण के लिये पर्वत, नदी का चित्र बड़ी ही कुशल तूलिका से चित्रित किया है।

महाकवि माघ ने अपने ग्रन्थ शिशुपालवध में प्रमुख रूप से रैवतक पर्वत तथा यमुना नदी का विस्तार से बड़ा मनोहारी वर्णन किया है। वे न केवल रैवतक तथा यमुना नदी का वर्णन करते हैं बल्कि पर्वतराज हिमालय, कैलास, चित्रकूट, गोवर्धन, सुमेरु उदयगिरि, मन्दराचल पर्वत तथा नदियों में गङ्गा का भी मनमोहक वर्णन किया है, जो अग्राङ्कित प्रकार से है–

**(1) हिमालय पर्वत–**

प्राचीनकाल में हिमालय पर्वत, हिमवान, हिमाद्रि, हैमवत नामों से विश्रुत था। इसे पर्वतराज, नगाधिराज तथा धराधरेन्द्र भी कहा जाता है। पर्यावरण के संरक्षण में हिमालय पर्वत की महती उपादेयता है। महाकवि माघ ने भी हिमालय पर्वत का वर्णन शिशुपालवध में किया है।

महाकवि माघ शिशुपालवध के 'कृष्ण नारद सम्भाषण' नामक प्रथम सर्ग में 'नारदमुनि' की शोभा का वर्णन करते हुए नारद को पर्वतराज हिमालय के समान बताते हैं। हिमालय पर्वत पर सदा कमल के पुष्प खिले रहते हैं, वह शरद् ऋतु के चन्द्रमा की किरणों के समान गौर वर्ण का है तथा उसके बर्फीले स्थानों पर नाना प्रकार की लता व गुल्म उगे हुए हैं–

**दधानमम्भोरुहकेसरद्युतीर्जटाः शरच्चन्द्रमरीचिरोचिषम्।**
**विपाकपिङ्गास्तुहिनस्थलीरुहो धराधरेन्द्रं व्रततीततीरिव॥**[1]

1. शिशुपालवध, 1/5

**(2) हिम तथा अञ्जन पर्वत-**

महाकवि माघ ने गौरवर्ण वाले नारद मुनि की उपमा हिम पर्वत से तथा श्याम वर्ण के श्रीकृष्ण की उपमा अञ्जन पर्वत से दी है। अर्थात् हिम तथा अञ्जन पर्वत का भी उल्लेख शिशुपाल के प्रथम सर्ग में प्राप्त होता है। हिम पर्वत श्वेत वर्ण का है तथा अञ्जन पर्वत श्याम वर्ण का है। अञ्जन पर्वत को कज्जलपर्वत भी कहा जाता है-

**न यावदेतावुदपश्यदुत्थितौ जनस्तुषाराञ्जनपर्वताविव॥**[1]

**उदयाचल पर्वत-**

महाकवि माघ ने 'कृष्ण नारद सम्भाषण' नामक प्रथम सर्ग में उदयाचल पर्वत या उदयगिरि पर्वत का भी नामोल्लेख किया है। उदयगिरि उस पर्वत को कहते हैं जहाँ भगवान् सूर्य देव प्रातःकाल में उदित होते हैं-

**श्रितोदयाद्रेरभिसायमुच्चकैरचूचुरच्चन्द्रमसोऽभिरामताम्।**[2]

**कैलास पर्वत-**

यह हिमालय के मध्य स्थित है। इस पर्वत पर भगवान् शिव एवं पार्वती का निवास स्थान है। अतः यह उनकी लीला-भूमि होने के कारण पौराणिक मान्यता में अत्यन्त पवित्र एवं मोक्षभूमि के रूप में वर्णित है। सिन्धु, सतलज, ब्रह्मपुत्र नदियों का उद्‌गम कैलास पर्वत से होता है। महाकवि माघ ने प्रथम सर्ग में ही कैलास पर्वत का भी वर्णन किया है। यह हिमालय के उत्तर दिशा में स्थित है। इसके दक्षिण दिशा में ही मानसरोवर है। कैलास पर्वत पर भगवान् शिव जी निवास करते हैं। कहा जाता है लंकाधिपति रावण ने कैलास पर्वत को एक बार अपने ऊपर उठा लिया था-

---

1. शिशुपालवध, 1/15
2. वही, 1/16

**समुत्क्षिपन्यः पृथिवीभृतां वरं वरप्रदानस्य चकार शूलिनः।**[1]

**त्रिकूट पर्वत-**

महाकवि माघ ने 'मन्त्र वर्ण' नामक द्वितीय सर्ग में 'त्रिकूट पर्वत' का वर्णन किया है। त्रिकूट पर्वत पर सिंह निवास करते हैं-

**तैरूहे केसरिक्रान्तत्रिकूटशिखरोपमा।**[2]

**गोवर्धन पर्वत-**

महाकवि माघ ने 'पुरी प्रस्थान' नामक तृतीय सर्ग में गोवर्धन पर्वत का वर्णन किया है। गोवर्धन पर्वत, रंग बिरंगी धातुओं तथा शिलाओं से युक्त है-

**अनेकधातुच्छुरिताश्मराशेर्गोवर्धनस्याऽकृतिरन्वकारि।**[3]

**मन्दराचल पर्वत-**

महाकवि माघ ने शिशुपाल के तृतीय सर्ग में मन्दराचल पर्वत का भी वर्णन किया है। मन्दराचल पर्वत से ही देवों और दानवों ने समुद्र को मथा था-

**तमङ्गदे मन्दरकूटकोटिव्याघट्टनोत्तेजनया मणीनाम्।**[4]

**सुमेरु पर्वत-**

महाकवि माघ ने सुमेरु पर्वत का वर्णन शिशुपाल के प्रथम सर्ग तथा तृतीय सर्ग में किया है। प्रथम सर्ग में भगवान् कृष्ण जिस सुनहले आसन पर बैठते हैं वह सुमेरु के समान सुशोभित हो रहा है। सुमेरु पर्वत पर जामुन के वृक्ष पाये जाते हैं-

**जिगाय जम्बूजनितश्रियः श्रियं सुमेरु शृङ्गस्य तदा तदासनम्।**[5]

---

1. शिशुपालवध, 1/50
2. वही, 2/5
3. वही, 3/4
4. वही, 3/6
5. वही, 1/19

सुमेरु पर्वत नक्षत्रों के समूहों से युक्त है। महाकवि माघ कहते हैं कि सुमेरु पर्वत अत्यन्त ऊँचा है। वे द्वारकापुरी की प्राचीर की उपमा सुमेरु पर्वत से देते हैं। सुमेरु पर्वत पर ही अमरावती स्थित है–

**वप्रेण पर्यन्तचरोडुचक्रं सुमेरुवप्रोऽन्वहमन्वकारि।**[1]

## रैवतक पर्वत

महाकवि माघ को रैवतक पर्वत से बहुत लगाव था। उन्होंने शिशुपालवध के चतुर्थ सर्ग में रैवतक पर्वत का बहुत विस्तार से उल्लेख किया है। शिशुपालवध के चतुर्थ सर्ग का नाम भी रैवतक पर्वत के नाम पर है। इस सर्ग में केवल रैवतक का ही वर्णन है।

रैवक पर्वत पर इन्द्रनील–मणि के समान बहुमूल्य अनेक धातुयें पायी जाती है। महाकवि माघ कहते हैं कि रैवतक पर्वत पर इतनी मूल्यवान् मणियाँ विद्यमान हैं जिसके कारण वह ऐसा मालूम हो रहा है मानों मणियों की कान्ति के साथ भूमि को विदारित कर ऊपर उठती हुई सर्पो के निःश्वास की धूम राशि हो। बड़ी–बड़ी चट्टानों के ऊपर निरन्तर छाये हुए मेघों के वितानों से घिरा हुआ रैवतक मानों फिर से सूर्य के मार्ग को अवरुद्ध करने के लिये विन्ध्याचल के समान आचरण कर रहा है। सहस्त्रों शिखरों से आकाश को तथा समीपवर्ती छोटे–छोटे पर्वतों की श्रेणियाँ पृथ्वी तल को घेर कर अवस्थित तथा नेत्र–स्थानों पर सूर्य और चन्द्रमा से सुशोभित मानो हिरण्यगर्भ ब्रह्मा की भाँति दिखायी पड़ने वाले या अन्दर ही अन्दर सुवर्णों से भरा हुआ है। नूतन किरणों के जालों से युक्त मणियों की सुवर्णमयी चोटी तक फैली हुई कान्ति से व्याप्त, इन्द्रनील मणि की शिलाओं की श्यामलता से सुन्दर तथा भ्रमरों को आमन्त्रित करती हुई लताओं से आश्रित था रैवतक। जिस प्रकार एक श्रेष्ठ विद्वान् ब्राह्मण अनेक गोपनीय मंत्रों को जानता है, उसी प्रकार यह रैवतक भी अनेक प्रचुर धनराशि वाली निधियों को छिपाये हुए हैं।

---

1. शिशुपालवध, 3/37

**निःश्वासधूमं सह रत्नभाभिर्भित्त्वोत्थितं भूमिमिवोरगाणाम्।**
**नीलोपलस्यूतविचित्रधातुमसौ गिरिं रैवतकं ददर्श।।**[1]

महाकवि माघ रैवतक के विशाल बहुमूल्य रत्न भण्डार का वर्णन करते हुए कहते हैं कि जिस प्रकार लोग किसी जौहरी से किसी समय, अनवरत रत्न प्राप्त करते हैं उसी प्रकार लोग रैवतक की बड़ी-बड़ी विशाल चोटियों में सुरक्षित उत्कृष्ट और चमकते हुए रत्नों को निरन्तर प्राप्त करते हैं-

**यतः परार्घ्यानि भृतान्यनूनैः प्रस्थैर्मुहुर्भूरिभिरुच्छिखानि।**
**आढ्यादिव प्रापणिकादजस्रं जग्राह रत्नान्यभितानि लोकः।।**[2]

महाकवि माघ कहते हैं कि रैवतक का शिखर इतना ऊँचा था कि मानो वह सूर्य मण्डल तक पहुँचा हुआ था। रैवतक पर्वत पर नित्य ही वर्षा होती थी जिसके प्रभाव से उसके वृक्षों पर विषाग्नि का प्रभाव नहीं पड़ता था। गुण, योग्य पात्रों में पड़कर अधिक तेजवान् हो जाते हैं- इस बात की प्रशंसा रैवतक अपनी सूर्यकान्त मणियों के द्वारा करता था। सूर्य की किरणे यद्यपि सर्वत्र ताप फैला रही थी, किन्तु सूर्यकान्त मणि में वे अग्नि का तेज प्रकट कर रही थी। बारम्बार देखा हुआ भी वह रैवतक पर्वत पहले कभी न देखे हुए के समान भगवान् श्रीकृष्ण के विस्मय को बढ़ा रहा था।

**दृष्टोऽपि शैलः स मुहुर्मुरारेरपूर्ववद्विस्मयमाततान।।**[3]

यह रैवतक इतना विशाल है कि इसमें कहीं बादल बरस रहे हैं और कहीं कड़ाके की धूप फैली है। कदम्ब के पुष्पों से सुगन्धित इस रैवतक पर्वत पर पक्षीगण अनेक प्रकार के स्वरों में कूँजते रहते हैं और नूतन कदम्ब के वन को कँपाने वाला यह वायु बारम्बार मेघों को कँपाता हुआ विचरण करता है। इस रैवतक पर्वत पर अत्यन्त श्रेष्ठतम,

---

1. शिशुपालवध, 4/1
2. वही, 4/11
3. वही, 4/17

मन्दराचल से आये हुए देवताओं के समान परम सुन्दर अत्यन्त रक्त के कमल की भाँति लाल-लाल नेत्रों वाले विलासी पुरुष अपनी रमणियों के साथ अनुरागपूर्वक नूतन रति नहीं करते ऐसा नहीं अर्थात् करते ही हैं। इस रैवतक पर सुप्रसन्न हाथियों के बच्चे प्रत्येक दिशा में सुमधुर किन्तु भीषण चीत्कार करते हैं और प्रत्येक वन में चमरी गौओं के समूह विचरण करते हैं तथा सुवर्णमयी भूमि की किरणें चमकती रहती हैं।

**इह मुहुर्मुदितैः कलभैः रवः**
**प्रतिदिशं क्रियते कलभैरवः।**
**स्फुरति चानुवनं चमरीचयः**
**कनकरत्नभुवां च मरीचयः॥**[1]

महाकवि माघ रैवतक की सुन्दरता का वर्णन करते हुए कहते हैं कि सर्वशक्तिमान् ईश्वर (शिव) भी अत्यन्त मोटे गज चर्म को ओढ़ कर ही हिमालय पर्वत पर शयन करते हैं, किन्तु सर्वदा सुख देने वाले इस रैवतक पर्वत पर निवास करने वाला अकिंचन पुरुष भी तनिक भी शीत या गर्मी का दुःख नहीं उठाता। अर्थात् रैवतक पर विद्यमान समस्त ऋतुओं के परस्पर सहयोग के कारण न तो यहाँ शीत की अधिकता है और न गर्मी की। यह रैवतक पर्वत नूतन वृक्षों के वन की पंक्तियों से श्यामल वर्ण की मध्यभाग वाली इन स्फटिक मय तटवर्ती भूमियों से, वासुकि रूपी परिकर को कटि प्रदेश में बाँधे हुए समूचे शरीर पर भस्म लपेटने के कारण धवलता को प्राप्त त्रिशूलपाणि शङ्कर भगवान् की शोभा का अनुकरण कर रहा है-

**न द्वन्द्वदुःखमिह किञ्चिदकिञ्चनोऽपि।**
**अधिगतधवलिम्नः शूलपाणेरभिख्याम्॥**[2]

महाकवि माघ चतुर्थ सर्ग में रैवतक पर्वत की शोभा का वर्णन करते हुए कहते हैं कि जिस प्रकार गोद में खेलने वाली कन्या जब पति

1. शिशुपालवध, 4/60
2. वही, 4/ 64, 65 श्लोक

के घर जाने लगती है, तब पिता वत्सलता से करुण रोदन करता है। उसी प्रकार रैवतक पर्वत से उत्पन्न तथा उसी के मध्य (गोद) से बहने वाली नदियाँ अपने पति (समुद्र) से मिलने के लिये समतल भूमि पर उतरने लगी है, तब पक्षियों के कलरव के बहाने मानो वह (रैवतक पर्वत) नदी रूपी पुत्रियों के लिये अनुरोदन कर रहा है-

**अपशङ्कमङ्कपरिवर्तनोचिताश्चलिताः पुरः पतिमुपैतुमात्मजाः।**
**अनुरोदितीव करुणेन पत्रिणां विरुतेन वत्सलतयैष निम्नगाः।।**[1]

महाकवि माघ कहते हैं कि चिरकाल बाद मित्र, हितैषी या गुरुजन के समागमन पर लोग उत्साहपूर्वक उठकर खड़े हो जाते हैं। आकाश में ऊपर छाये हुए बादलों की कवि उत्प्रेक्षा कर रहा है मानो स्वयं रैवतक ही उठकर भगवान् श्रीकृष्ण के प्रति अपना आदर प्रकट करने के लिये अभ्युत्थान कर रहा है-

**अनुकृतशिखरौघश्रीभिरभ्यागतेऽसौ**
**..................................................**
**हलधरपरिधानश्यामलैरम्बुवाहैः।।**[2]

आकाश को छूने वाले एवं विकसित चम्पक के पुष्पों के समान पीत वर्ण की कान्ति युक्त सुवर्ण के तटों को धारण करते हुए सुमेरु पर्वत के नितम्ब की **शोभा को प्राप्त करने वाले इस रैवतक गिरि** से यह हमारा भारतवर्ष का भूखण्ड इलावृत्त (लोक विशेष) की भाँति सुशोभित हो रहा है। पौराणिक भूगोल के अनुसार जम्बूद्वीप में नव खण्ड कहे गये हैं। उनमें से हिमालय के दक्षिण का भूखण्ड हैमवत या भारतवर्ष तथा मध्य का खण्ड सुमेरु पर्वत से सम्बन्धित होने के कारण सोमरेव या इलावृत्त कहलाता है।

**व्योमस्पृशः प्रथयता कलधौतभित्ति-**
**रुन्निद्रपुष्पचणचम्पकपिङ्गभासः।**

---

1. शिशुपालवध, 4/47
2. वही, 4/68

**सौमेरवीमधिगतेन नितम्बशोभा-**
**मेतेन भारतमिलावृतवद्विभाति।।**[1]

**नदी वर्णन-**

महाकवि माघ ने शिशुपालवध के 'प्रयाण वर्णन' नामक द्वादश सर्ग में यमुना नदी का बड़ा ही अद्भुत वर्णन किया है। यमुना यद्यपि सूर्य की कन्या है, फिर भी उसका जल शीतल है। यद्यपि यमुना यमराज की बहन है, फिर भी लोगों को जीवन दान करने वाली है। यद्यपि यमुना का जल (काला) है अर्थात् काले रंग की होती हुई भी अधिक निर्मलता के विधायक अपने जल से वह पापों का विनाश करने में समर्थ है। बर्फ के पिण्ड के समान शुभ्र वर्ण के मेघ, द्रवित हुए इन्द्रनील मणि की शिलाओं की तरह काले यमुना के जल को पीकर तत्काल ही उनसे अनुरञ्जित होकर तेल मिश्रित जल का रंग धारण कर लेते हैं-

**या धर्मभानोस्तनयापि शीतलैः**
**स्वसा यमस्यापि जनस्य जीवनैः।**
**कृष्णापि शुद्धेरधिकं विधातृभि-**
**र्विहन्तुमंहांसि जलैः पटीयसी।।**

**यस्या महानीलतटीरिव द्रुताः**
**प्रयान्ति पीत्वा हिमपिण्डपाण्डुराः।**
**कालीरपस्ताभिरिवानुरञ्जिताः**
**क्षणेन भिन्नाञ्जनवर्णतां घनाः।।**[2]

महाकवि माघ यमुना नदी का वर्णन करते हुए कहते हैं कि अनुमान यदि शब्द प्रमाण से अधिक बलवान् है तो यह कहना चाहिए कि यमुना ही समुद्र को भरती है, गंगा नहीं। क्योंकि यदि ऐसा न होता तो समुद्र का जल, गंगा के जल वेग से धुले होने के कारण भस्म रहित शिव के कण्ठ के समान नीले रंग का कैसे होता। तमाल के समान

1. शिशुपालवध, 4/31
2. वही, 12/67, 68 श्लोक

कृष्णवर्णा अत्यन्त दीर्घ महानदी यमुना अपने वेग से पृथ्वी को आक्रान्त करने के लिये उद्यत भगवान् श्रीकृष्ण के सेना रूपी महासमुद्र के सम्मुख मानों क्षणभर के लिये बेला अर्थात् तट की सीमा भूमि की भाँति आकर उपस्थित हो गयी–

**व्यक्तं बलीयान्यदि हेतुरागमादपूरयत्सा जलधिं न जाह्नवी।**
**गाङ्गौघनिर्भस्मितशंभुकंधरासवर्णमर्णः कथमन्यथास्य तत्॥**

**अभ्युद्यतस्य क्रमितुं जवेन गां तमालनीला नितरां घृतायतिः।**
**सीमेव सा तस्य पुरः क्षणं बभौ बलाम्बुराशेर्महतो महापगा॥**[1]

महाकवि माघ शिशुपालवध के 'पुरी-प्रस्थान' नामक तृतीय सर्ग में यमुना की शोभा का वर्णन करते हुए कहते हैं कि भगवान् श्रीकृष्ण यमुना के उस रंग-बिरंगे जलसमूह की भाँति सुशोभित हो रहे थे, जिसमें कमल पुष्पों का पराग इधर-उधर फैला हो। यमुना नदी में भँवरों से युक्त जल समूह व्याप्त था–

**सा इन्द्रनीलस्थलनीलमूर्ती रराज कर्चूरपिशङ्गवासाः।**
**विसृत्वरैरम्बुरुहां रजोभिर्यमस्वसुश्चित्र इवोदभारः॥**
**चक्रेण रेजे यमुनाजलौघः स्फुरन्महावर्त इवैकबाहुः॥**[2]

महाकवि माघ चतुर्थ सर्ग में रैवतक पर्वत पर नदियों के जल की शोभा का उल्लेख करते हुए कहते हैं कि रैवतक पर्वत पर एक ओर स्फटिक के तट की किरणों से श्वेत जल वाली तथा दूसरी ओर इन्द्रनीलमणि की कान्ति से नीले जल वाली बहने वाली नदियाँ यमुना के नीले जल से सुशोभित गङ्गा की शोभा को धारण करती है।

**एकत्र स्फटिकतटांशुभिन्ननीरा**
**नीलाश्मद्युतिभिदुराम्भसोऽपरत्र।**
**कालिन्दीजलनितश्रियः श्रयन्ते**
**वैदग्धीमिह सरितः सुरापगायाः॥**[3]

---

1. शिशुपालवध, 12/69, 70 श्लोक
2. वही, 3/11, 17 श्लोक
3. वही, 4/26

संस्कृत साहित्य में जितने भी कृतिकार हुए हैं, प्रायः उनका पर्वतों से घना सम्बन्ध रहा है जो कि 'हिमालयो नाम नगाधिराजः' के महाकवि कालिदसीय स्तवन से स्पष्ट है। भारतीय संस्कृति में पर्वतों को पूज्य, देवतुल्य रूप में माना गया है। पर्वतों ने मानव जाति को अनेक वरदान दिये हैं जो सच में जीवन के लिए ऐतिहासिक आधार रहे हैं। विश्व की अधिकांश प्रसिद्ध नदियों के जनक पर्वत हैं। आर्थिक संसाधनों के विभिन्न रूपों के अनेक सन्दर्भ पर्वतों की अस्मिता से जुड़े हैं।

प्राचीन मनीषी पर्यावरण के प्रति सचेष्ट थे। वे पर्यावरण के महत्त्व को जानते थे, जिससे पर्वत, नदी, वन आदि के प्रति वे जागरूक रहते थे। पर्वतों और नदियों की उपयोगिता एवं महत्त्व को वे अच्छी तरह जानते तथा समझते थे। वे यह भी जानते थे कि मनुष्य को समृद्ध बनाने की क्षमता इन धातुमय एवं रत्नगर्भा पर्वतों में है। इनके क्रोड से प्रवाहमान सरिताएँ मनुष्य के तन एवं मन दोनों को पवित्र करती हुई उन्हें अन्न-पानी भी देती हैं। तभी इन्हें देवात्मा तथा तीर्थ भी कहा गया है। पर्वत और नदी का मानव जीवन से अटूट सम्बन्ध है, केवल मानव जाति के लिये नहीं अपितु प्राणिमात्र के लिये पर्वत और नदी प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष दोनों रूपों में लाभकारी होते हैं।

पर्यावरण की दृष्टि से सम्प्रति पर्वतीय क्षेत्रों में औद्योगिक विकास योजनाएँ प्रायः पर्वतों के असामान्य खतरों की अनदेखी कर जाते हैं, जिसके कारण भूकम्प, पर्वतों पर वनों के कटान से पृथ्वी का तापमान लगातार बढ़ रहा है। ग्रीन हाऊस गैसों और आने वाले समय में ध्रुवों पर बर्फ पिघलने से समुद्रों के जलस्तर बढ़ने से पूरे संसार में प्रलय की भावी आशंका को तो वैज्ञानिक पहले ही बता चुके हैं।

वैदिककाल से भारतीय लोकाचार एवं सांस्कृतिक परम्पराओं को मूर्त रूप देने में नदियों की अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। सभी हिन्दू धार्मिक अनुष्ठान गङ्गा, यमुना, गोदावरी, नर्मदा, कावेरी तथा सिंधु नदियों की वन्दना से ही शुरू होते हैं-

**गङ्गे च यमुने चैव गोदावरी सरस्वती।**
**नर्मदे सिन्धु कावेरी जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु॥**

माता गङ्गा और यमुना पवित्र है, हमने उन्हें देवनदी माना और माना कि उसमें स्नान से स्वर्ग मिलता है तथा दु:ख का नाश होता है। इस प्रकार हमारे मन की भावना ने उसे पवित्र रखा। उसमें दातून, कुल्ला, कपड़-बर्तन साफ करना, तट पर शैचादि तथा गन्दगी करना निषिद्ध किया जिसका प्रभाव मन पर पड़ा। कालान्तर में वह गङ्गा जो हमारी मात्र नदी नहीं बल्कि देवी थी केवल नदी बनकर रह गयी। देवत्व का नाश हो गया। परिणामस्वरूप आज उनकी स्वच्छता हेतु 'नमामि गंगे' और 'गंगा ऐक्शन प्लान अभियान' चल रहा है, किन्तु क्या यह कार्य स्थूल योजना रूप में परिणत हो सकेगा? सन्देह है। क्योंकि इनमें से एक भी योजना मन की विकृति हटाने में समर्थ नहीं है।

प्रकृति के अङ्ग पर विकृतियाँ उद्भूत हो रही हैं। यह विकृति का संवर्द्धन नाश की ओर ले जा रहा है। जब धरातल के मुख्य घटक पर्वतों एवं नदियों में विकृतियाँ पैदा की जायेंगी तो जीवन के लिये खतरा पैदा हो जायेगा तथा सम्पूर्ण जागतिक प्रक्रिया प्रभावित हो सकती है। एतदर्थ विकृति से बचने के लिये हमारे ऋषियों तथा शास्त्रकारों एवं महाकवियों ने मानव को सचेत करते हुए पर्वतों एवं नदियों को देवतुल्य माना तथा वैदिक जीवन धारा में जीने की सलाह दी है।

# शिशुपालवध महाकाव्य में चित्रालङ्कार : एक समीक्षा

**-डॉ. संदीप कुमार यादव***

संस्कृत-साहित्याकाश में महाकवियों की सुदीर्घ परम्परा रही है। एक सफल कवि के लिए जितना प्रतिभा सम्पन्न होना आवश्यक है, उतना ही व्युत्पन्न होना परम आवश्यक है। इसे ध्यान में रखकर ही हमारे आर्ष और लौकिक साहित्य में 'कवि' शब्द का प्रयोग सर्वज्ञ और सर्वविषय विनियामक के रूप में है। कवित्व के दो आधार स्तम्भ हैं- दर्शन और वर्णन। इन दोनों के पूर्ण रूप से समन्वित होने पर ही सत्कवित्व का उन्मेष होता है। वस्तु के विचित्र भाव को, उसके अन्तर्निहित धर्म को तत्त्व रूप से देखना ही दर्शन है और उसे शब्द रूप में प्रकट करना वर्णन है। वस्तु के बाह्य और अन्तर्निहित तत्त्व का द्रष्टा होने के कारण ही कवि 'क्रान्तिदर्शी' कहलाता है- **'कवयः क्रान्तिदर्शिनः।'** ये समस्त गुण महाकवि माघ में विद्यमान हैं। संस्कृत महाकवियों की परम्परा में माघ का व्यक्तित्व, कवित्व और पाण्डित्य, प्रखरता और आह्लादकता, रूक्षता और आर्द्रता के अपूर्व संयोग को लेकर उपस्थित होता है। वस्तुतः वे एक बहुमुखी प्रतिभाशाली कवि हैं।

महाकवि माघ की कवित्व प्रतिभा न केवल पाण्डित्य के कारण है, अपितु इसलिए है कि वह समाज की भावनाओं को समझकर काव्य में अपने समय के समाज, धर्म, राजनीति आदि विविध क्षेत्रों का व्यापक चित्र अंकित कर सके हैं। माघ के पाण्डित्य को देखकर प्राचीन आलोचकों ने इन्हें भारवि से भी श्रेष्ठ बतलाया है। इनके काव्य को

---

* पूर्व शोधच्छात्र, संस्कृत विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज।

देखकर महाकाव्यपञ्चक पर टीका करने वाले प्रखर पाण्डित्य से विभूषित आचार्य मल्लिनाथ ने अपने ये विचार बड़ी तन्मयता से व्यक्त किये हैं- **"धन्यो माघकविर्वयं तु कृतिनस्तत्सूक्तिसंसेवनात्।"** निश्चय ही मल्लिनाथ की यह उक्ति निर्मूल एवं निराधार नहीं है। उनके विचार में अत्यधिक व्युत्पन्न कविवर माघ के व्यक्तित्व में हृदय और मस्तिष्क का अपूर्व सङ्गम परिलक्षित होता है। वास्तव में बहुज्ञता और विद्वत्ता में माघ अपने पूर्ववर्ती कवियों- किं बहुना श्रीहर्ष से भी एक कदम आगे ही बढ़े हुए दिखाई देते हैं। यदि देखा जाय तो कालिदास मूलतः कवि हैं, भारवि राजनीति के प्रकाण्ड विद्वान् और भट्टि शुष्क वैयाकरण तथा उत्तरवर्ती श्रीहर्ष तो दार्शनिक ही ज्ञात होते हैं, किन्तु माघ उक्त सभी-क्षेत्रों के मर्मज्ञ पण्डित हैं।[2] उन कवियों का ज्ञान-क्षेत्र एकाङ्गी है, जबकि महाकवि माघ की गति सर्वत्र है। वेद तथा दर्शनों से लेकर राजनीति तक का परिनिष्ठित ज्ञान इनके काव्य में देखने को मिलता है। यही नहीं अलङ्कारशास्त्र, कामशास्त्र, सङ्गीतशास्त्र एवं व्याकरण आदि विविध शास्त्रों के ज्ञान का उन्मेष इनके काव्य में दृष्टिगत होता है। अपने व्यापक लोक-ज्ञान के कारण वे न केवल मानव-प्रकृति को समझते थे, अपितु गज-तुरग आदि पशुओं के प्रकृति के अच्छे ज्ञाता भी थे।[3] उनकी सर्वशास्त्र-तत्त्वज्ञता को देखकर **'नवसर्गगते माघे नवशब्दो न विद्यते'** अथवा **'काव्येषु माघः कविः कालिदासः'** जैसी उक्तियाँ निराधार प्रतीत नहीं होती, उनका पाण्डित्य सर्वगामी था। इसीलिए कोई उनके वर्णन वैचित्र्य पर मुग्ध होता है, तो कोई काव्य में निहित भाव-सौष्ठव पर, कोई सहृदय उनकी कल्पना की ऊँची उड़ान पर आश्चर्यचकित होता है तो कोई उनके प्रकाण्ड पाण्डित्य पर विस्मित। किसी को उनके चित्रकाव्य तथा उनकी यमक योजना ने आकर्षित किया तो किसी को उनके अर्थालङ्कारों ने आवर्जित किया।

1. शिशुपालवध, भूमिका, पृ. 19
2. अवयः केवलकवयः केवलकीरास्तु केवलं धीराः।
   पण्डितकवयः कवयः तानवमन्ता तु केवलं गवयः॥ वही, पृ. 19
3. वही, पृ. 36

महाकवि कालिदास, अश्वघोष की ललित-मधुर विनोदात्मक, रम्योदात्त और आदर्शवादी काव्य-परम्परा शताधिक वर्षों के अनन्तर में ओजपूर्ण, भारी-भरकम, विवेक-प्रधान एवं आयास सिद्ध अलङ्कारिता का रूप धारण कर लिया और यही 'विचित्रमार्ग' संस्कृत-काव्याकाश में महाकवियों के कीर्ति का साधन बनी। क्योंकि राज-दरबारों में वही व्यक्ति विद्वान् व पण्डित कहलाता जिसकी कविता में शब्दों में जादूगरी हो। महाकवि माघ भी इसी मार्ग का अवलम्बन कर अपनी प्रखर द्युति से प्रकाशित होकर सुकवि की कीर्ति प्राप्त की। महाकवि माघ ने भी अपने महाकाव्य शिशुपालवध को अलङ्कारों से सजाया। माघ ने शब्दालङ्कार से शब्द की चित्रकारी की तो अर्थालङ्कार से भावपूर्ण अर्थ की अभिव्यक्ति की। माघ ने प्रत्येक वर्णन, प्रत्येक भाव साधारण शब्दों में न कहकर अलङ्कारों से विभूषित भाषा में प्रकट किया है। इन अलङ्कारों की नवीनता देखते ही बनती है। अर्थालङ्कारों में उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, स्वभावोक्ति, समासोक्ति, अतिशयोक्ति, काव्यलिङ्ग, सहोक्ति, तुल्ययोगिता आदि अलङ्कारों का प्रयोग किया है।[1] शब्दालङ्कार में भी माघ प्रवीण थे। यमक, अनुप्रयास, श्लेष आदि शब्दालङ्कारों का प्रयोग किया है। महाकवि माघ ने चित्रालङ्कार से भी अपने काव्य को संजोया है। शिशुपालवध का उन्नीसवां सर्ग ही चित्रालङ्कार से अलङ्कृत है। जिसमें अनुलोम, प्रतिलोम, एकाक्षरबन्ध, सर्वतोभद्र, मुजरबन्ध, खड्गबन्ध आदि विशेष हैं।

शब्दों के निबन्धन से भिन्न-भिन्न प्रकार के चित्र बनाना, शब्दों को किसी वाञ्छित क्रम से बैठाना, समान अक्षर वाले पद बनाना, एकाक्षर, द्वयक्षर, गतप्रत्यागत, समुद्गयमक आदि कविता की रचना में मानसिक कौशल दिखलाना है। इसमें शब्दों को तोड़ने मरोड़ने की आवश्यकता पड़ती है, अतएव इसमें स्वभाविकता बहुत कुछ नष्ट हो जाती है, किन्तु यह अवश्य है कि चित्रालङ्कारों के प्रयोग के द्वारा कवि का अद्भुत पाण्डित्य और कवित्व शक्ति प्रकट होती है। शिशुपालवध में पदलालित्य का विशेष योग होने से काव्य का जटिलतम अंश भी अधिक सुन्दर एवं हृदयग्राही बन जाता है।

---

1. शिशुपालवध, भूमिका

**एकाक्षरपाद-**

युद्ध में वेणुदारी को पराजित करने के लिए उद्यत हुए बलरामजी के वर्णन के प्रसङ्ग में एकाक्षरपाद का प्रयोग किया है। एकाक्षरपाद से तात्पर्य है कि छन्द के एक पाद में एक ही वर्ण का प्रयोग किया जाता है अर्थात् चार वर्ण को लेकर छन्द के चारों चरणों की रचना की जाती है-

**जजौजोजाजिजिज्जाजी तं ततोऽतितताततुत्।**
**भाभोऽभीभाभिभूभाभूराराऽरिररिरीररः॥**[1]

इसके प्रत्येक पाद में अनुप्रास अलङ्कार है। इसमें केवल चार अक्षरों 'ज', 'त', 'भ' और 'र' के द्वारा चारों पदों की रचनाकर कवि ने रचना-चातुरी का चमत्कार दिखाया है।

**अर्धसम-**

इसमें श्लोक के दो चरण समान होते हैं, अतः इसे अर्धसम कहते हैं। युद्ध कर रहे बलराम जी पर वेणुदारी ने जब अनेक बाणों से प्रहार किया तब क्रुद्ध हुए बलराम जी ने भी तीक्ष्ण बाणों से वेणुदारी को क्षत-विक्षत कर दिया-

**रामे रिपुः शरानाजिमहेष्वास विचक्षणे।**
**कोपादथैनं शिताय महेष्वा स विचक्षणे॥**[2]

इस श्लोक में अभिन्नसमपाद नाम का (पादाभ्यास) यमक भेद है।

**सर्वतोभद्रबन्ध-**

सर्वतोभद्र से तात्पर्य है सब ओर से ग्राह्य। काव्यादर्शकार आचार्य दण्डी सर्वतोभद्र के विषय में कहते हैं कि "तदिष्टं सर्वतोभद्रं भ्रमणं

---

1. शिशुपालवध, 19/3
2. वही, 19/5

यदि सर्वतः।"[1] अर्थात् सब ओर से यदि भ्रमण हो तब वह सर्वतोभद्र है। सर्वतोभद्र के माध्यम से शिशुपाल के सेना का वर्णन करते हुए महाकवि कहते हैं कि उत्साह युक्त अनेक प्रकार के शत्रु-समूहों की गति एवं उनके शरीरों के नाश करने वाले बाणों से युक्त उस शिशुपाल की सेना रण में अनुरक्त होकर श्रेष्ठ घोड़ों की हिनहिनाहट एवं खटपट के साथ विवाद करने वाली अपने विविध वाद्यों की ध्वनियों से व्याप्त थी-

स का र ना ना र का स
का य सा द द सा य का।
र सा ह वा वा ह सा र
ना द वा द द वा द ना॥[2]

| | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| स | का | र | ना | ना | र | का | स |
| का | य | सा | द | द | सा | य | का |
| र | सा | ह | वा | वा | ह | सा | र |
| ना | द | वा | द | द | वा | द | ना |
| ना | द | वा | द | द | वा | द | ना |
| र | सा | ह | वा | वा | ह | सा | र |
| का | य | सा | द | द | सा | य | का |
| स | का | र | ना | ना | र | का | स |

इस चित्र की विशेषता यह है कि चाहे जिस ओर से इसे पढ़े पर वही श्लोक बनता है। चतुष्कोण के चौंसठ कोष्ठों से युक्त बन्ध में क्रमशः एक-एक अक्षर लिखकर पढ़ने से इसका सर्वतोभद्र रूप समझ

---

1. काव्यादर्श, 3/200
2. शिशुपालवध, 19/27

में आ जाता है। इसके विषय में यह ध्यान देने योग्य है कि चार कोष्ठों में चार पादों को 1,2,3,4 इस क्रम से लिखकर बाद की चार पंक्तियों में 4,3,2,1 इस क्रम से चार पदों के लिखने पर चारों ओर प्रथम चार पंक्तियों में प्रथम पाद सब ओर से पढ़ा जायेगा, इसी तरह द्वितीय आदि पंक्तियों में द्वितीय आदि पाद पढ़े जायेंगे।

प्रथम पाद- पहली और आठवीं पंक्तियाँ-दाएँ से बाएँ तथा

द्वितीय पाद- दूसरी और सातवीं पंक्तियाँ-बाएँ से दाएँ और

तृतीय पाद- तीसरी और छठीं पंक्तियाँ ऊपर से नीचे तथा

चतुर्थ पाद- चौथी और पाँचवीं पंक्तियाँ नीचे से ऊपर।

**मुजरबन्ध-**

शिशुपाल के सेना के वर्णन के अवसर पर इस बन्ध का प्रयोग किया गया है। शिशुपाल के सेना के वीर सैनिक गण सिंह के समान गर्जना कर रहे थे। वे पीड़ा रहित थे, युद्धार्थ-गमन करने के आरम्भ में वे युद्धोत्साह से पूर्ण थे और उनके साथ धैर्यशाली और मदोन्मत्त गजराज थे-

| | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| सा | से | ना | ग | म | ना | र | म्भे |
| र | से | ना | सी | द | ना | र | ता |
| ता | र | ना | द | ज | ना | म | त्त |
| धी | र | ना | ग | म | ना | म | या॥[1] |

| | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| सा | से | ना | ग | म | ना | र | म्भे |
| र | से | ना | सी | द | ना | र | ता |
| ता | र | ना | द | ज | ना | म | त्त |
| धी | र | ना | ग | म | ना | म | या॥ |

1. शिशुपालवध, 19/29

इस चित्रबन्ध के अक्षरों को चारों पंक्तियों में अलग-अलग लिखकर फिर प्रथम, द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ अक्षर पढ़ने से **"सा सेना गमनारम्भे"** पंक्ति बनेगी। इस प्रकार यह तीन वर्णाकार चित्र बनाता हुआ उन वर्णों को आधे पर काटता हुआ मुरज (=ढ़ोलक) नामक वाद्ययन्त्र के बन्ध (=डोरी) का चित्र बन जाता है।

**गोमूत्रिकाबन्ध–**

इसका लक्षण करते हुए आचार्य दण्डी कहते हैं कि **"वर्णानामेकरूपत्वं यत्त्वेकान्तरमर्धयोः। गोमूत्रिकेति तत् प्राहुर्दुष्करं तद्विदो यथा॥"**[1] यह गोमूत्रिका चित्र प्रभेद अतिदुष्कर होता है। इसके तीन भेद होते हैं– 1. पादगोमूत्रिका, 2. अर्धगोमूत्रिका और 3. श्लोकगोमूत्रिका। युद्ध के वर्णन के अवसर पर इस बन्ध का प्रयोग महाकवि ने किया है।

**प्र वृ त्ते वि क सा द्ध्वा नं**
**सा ध ने प्य वि षा दि भिः।**
**व वृ षे व क सा ह्वा नं**
**यु ध मा प्य वि षा णि भिः॥**[2]

अर्थात् बढ़ते हुए कोलाहल के साथ युद्ध के आरम्भ होने पर भी विचलित न होने वाले हाथियों ने युद्ध-भूमि को प्राप्त कर प्रचुर मदजल की वर्ष की।

**प्र वृ त्ते वि क सा द्ध्वा नं**
**सा ध ने प्य वि षा दि भिः।**
**व वृ षे वि क सा ह्वा नं**
**यु ध मा प्य वि षा णि भिः॥**

गोमूत्रिकाबन्ध चित्रकाव्य में ऊपर और नीचे के सोलहवों कोष्ठों

---

1. काव्यादर्श, 3/78
2. वही, 19/46

में दोनों पंक्तियों के एक-एक अक्षर को छोड़कर पढ़ने से भी यही श्लोक बनता है।

**अर्धभ्रमक-**

युद्ध का वर्णन करते हुए महाकवि कहते हैं कि वह भयानक युद्ध निर्भय चित्तवाले वीरों से सुशोभित था तथा भयभीतों के आनन्द का नाश करने वाला था। विजय की भावना से भरी हुई सेनाओं से युक्त तथा लोगों के मन्द उत्साह को दूर करने वाला था-

**अ भी क म ति के ने द्धे**
**भी ता न न्द स्य ना श ने।**
**क न त्स का म से ना के**
**म न्द का म क म स्य ति।।**[1]

**अ भी क म ति के ने द्धे**
**भी ता न न्द स्य ना श ने।**
**क न त्स का म से ना के**
**म न्द का म क म स्य ति।।**

यह अर्धभ्रमक बन्ध है। इसके प्रथम चरण को सीधा पढ़ने अथवा चारों चरणों के प्रथम अक्षर ऊपर से नीचे तथा आठवें अक्षर नीचे से ऊपर को इसी प्रकार दूसरे चरण को सीधा पढ़ने अथवा चारों चरणों के दूसरे अक्षर को ऊपर से नीचे और सातवें अक्षरों को नीचे से ऊपर पढ़ने पर द्वितीय चरण प्राप्त होता है। तीसरे चरण को सीधा पढ़ने से अथवा तीसरे अक्षरों को ऊपर से नीचे तथा छठें अक्षरों को नीचे से ऊपर पढ़ने पर तीसरा चरण प्राप्त होगा। चौथे चरण में यदि चौथे अक्षरों को ऊपर से नीचे और पाँचवें अक्षरों को नीचे से ऊपर पढ़ा जाय तो

---

1. शिशुपालवध, 19/72

चौथा चरण प्राप्त हो जाता है और अर्थ में भी किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं होता।

**द्व्यक्षरबन्ध–**

महाकवि माघ ने उन्नीसवें सर्ग में द्व्यक्षरबन्ध का प्रयोग भी अनेक बार किया है। केवल दो अक्षर को लेकर इस बन्ध की रचना की जाती है। युद्ध-क्षेत्र में लड़ रहे हाथियों के वर्णन के अवसर पर द्व्यक्षरबन्ध का निदर्शन होता है–

**भूरिभिर्भारिभिर्भीरैर्भूभारैरभिरेभिरे।**
**भेरीरेभिभिरभ्राभैरभीरुभिरिभैरिभाः॥**[1]

अत्यन्त भार से युक्त, भयानक, पृथ्वी के भारस्वरूप, भेरी की भाँति भयानक शब्द करने वाले बादलों के समान काले एवं निर्भीक हाथी प्रतिद्वन्द्वी हाथियों से भिड़ गये।

**विभावी विभवी भाभ्रो विभाभावी विवो विभीः।**
**भवाभिभावी भावावो भवाभावो भुवो विभुः॥**[2]

भगवान् श्रीकृष्ण प्रभाव सम्पन्न, ऐश्वर्यवान् तथा नक्षत्र के समान कान्तिवाले थे। गरुड़ पक्षी पर आरूढ़ होकर चलने वाले श्रीकृष्ण भवसागर का नाश करने वाले, जगत् के रक्षक, संसार के दुःख-द्वन्द्वों से रहित, पृथ्वी के स्वामी तथा परम पुरुष परमेश्वर ही थे।

इस श्लोक में केवल 'भ' और 'व' अक्षर का प्रयोग किया गया है।

**प्रतिलोमयमकबन्ध–**

प्रतिलोम अर्थात् उलटी वर्णावृत्ति होने से इसे प्रतिलोमयमक कहते हैं। आचार्य दण्डी के अनुसार इसका लक्षण है– "आवृत्तिः प्रातिलोम्येन पादार्धश्लोकगोचरा। यमकं प्रतिलोमत्वात्प्रतिलोममिति स्मृतम्॥[3]" युद्धरत हाथियों के वर्णन के प्रसङ्ग में इस बन्ध का प्रयोग दृष्टिगत होता है–

1. शिशुपालवध, 19/66
2. वही, 19/86
3. काव्यादर्श, 3/73

**वाहनाजनि मानासे साराजावनमा ततः।**
**मत्तसारगराजेभे भारीहावज्जनध्वनि।।**[1]

इस श्लोक के पादों को उलट देने से अग्रिम श्लोक बन जाता है–

**निध्वनज्जवहारीभा भेजे रागरसात्तमः।**
**ततमानवजारासा सेना मानिजनाहवा।।**

एक श्लोक को उलटकर पढ़ने पर दूसरा दूसरा श्लोक तथा दूसरे को उलटकर पढ़ने पर पहला श्लोक बन जाता है।

**गतप्रत्यागत-बन्ध-**

इस बन्ध का प्रयोग महाकवि माघ ने श्रीकृष्ण को सर्वपापनाशक के रूप में व्यक्त करने के अवसर पर किया है। इस बन्ध में प्रथम पाद को उलटकर पढ़ने पर चतुर्थ पाद बन जाता है तथा द्वितीय पाद को उलटकर पढ़ने पर तृतीय पाद बन जाता है–

**तं श्रिया घनयाऽनस्तरुचा सारतया तया।**
**यातया तरसा चारुस्तनयाऽनघया श्रितम्।।**[2]

**समुद्गयमकबन्ध-**

इसमें पूर्व पद की पर पद में आवृत्ति होती है, किन्तु यहाँ प्रथम चरण तृतीय चरण तथा द्वितीय चरण चतुर्थ चरण बन जाता है-

**अयशोभिदुरालोके कोपधामरणादृते।**
**अयशोभिदुरा लोके कोपधा मरणादृते।।**[3]

अर्थात् भाग्यवान् एवं तेजस्वी होने के कारण कठिनाई से देखने योग्य तथा रण राग से क्रोधान्ध वीरों के लिए स्वामी द्वारा प्राप्त अनादर रूपी अपयश को मिटाने के लिए इस समय प्राण-त्यागने के अतिरिक्त और अन्य उपाय ही क्या था?

---

1. शिशुपालवध, 19/33-34
2. वही, 19/88
3. वही, 19/58

**गूढ़चतुर्थ-**

इस बन्ध में चतुर्थ चरण में जितने अक्षर प्रयुक्त होते हैं, उसके एक-एक अक्षर शेष तीनों चरणों में छिपे रहते हैं-

**शरवर्षी महानादः स्फुरत्कार्मुककेतनः।**
**नीलच्छविरसौ रेजे केशवच्छलनीरदः॥**[1]

बाणों की वर्षा करने वाले, महान् सिंहनादवाले, स्फुरित होते हुए धनुष तथा पताकाओं वाले श्यामवर्ण के यह श्रीकृष्ण रूपी मेघ रणक्षेत्र में सुशोभित होने लगे। इस श्लोक के चतुर्थ चरण 'केशवच्छलनीरदः' वाक्य के प्रत्येक अक्षर शेष तीनों चरणों में छिपे हैं।

**एकाक्षरबन्ध-**

युद्ध में शिशुपाल-सेना के विरूद्ध श्रीकृष्ण के युद्ध-कौशल के प्रसङ्ग में महाकवि माघ ने एकाक्षर श्लोक का प्रयोग किया है। केवल 'द' अक्षर को लेकर महाकवि ने एकाक्षर श्लोक की रचना की है-

**दाददो दुद्ददुद्दादी दादादो दूददीददोः।**
**दुद्दादं दददे दुद्दे ददाददददोऽददः॥**[2]

इस श्लोक में केवल 'द' अक्षर का प्रयोग किया गया है। इस एकाक्षर अनुप्रास अलङ्कार भी कहा जाता है।

**समुद्गबन्ध-**

इसमें चरण 1-2 तथा 3-4 समान होते हैं। इसमें पदच्छेद मात्र से भेद होता है-

**सदैव संपन्नवपू रणेषु स दैवसंपन्नवपूरणेषु।**
**महो दधेस्तारि महानितान्तं महोदधेऽस्तारिमहा नितान्तम्॥**[3]

**चक्रबन्ध-**

महाकवि ने चक्रबन्ध की रचना इस प्रकार की है- दस गोल

---

1. शिशुपालवध, 19/96
2. वही, 19/114
3. शिशुपालवध, 19/118

रेखा में बने हुए नौ मण्डल तथा नाभिस्थान (=मध्यवृत्त) के साथ ही साथ 19 कोष्ठक हुए, प्रत्येक में दो अक्षर से तीन पंक्तियों को समरेखा में लिख करके वहाँ एक पंक्ति में बायीं ओर से पहला चरण लिखकर के और फिर प्रदक्षिणा के प्रक्रम से दूसरे और तीसरे में दूसरे और तीसरें पाद को लिखकर धूरी स्थान में बाहरी चक्र में 6 कोष्ठकों में लिखे हुए अक्षरों के साथ-साथ इस प्रकार अठ्ठारह कोष्ठक वाले तीसरे पाद आदि पाद से आरम्भ करके प्रदक्षिणा क्रम से चौथे पाद को लिखकर वहीं समाप्त कर देना चाहिए–

**सत्त्वं मानविशिष्टमाजिरभसादालम्ब्य भव्यः पुरो**
**लब्धाघक्षयशुद्धिरुद्धरतरश्रीवत्सभूमिर्मुदा।**
**मुक्त्वा काममपास्तभीः परमृगव्याधः स नादं हरे-**
**रेकौघैः समकालमभ्रमुदयी रोपैस्तदा तस्तरे।।**[1]

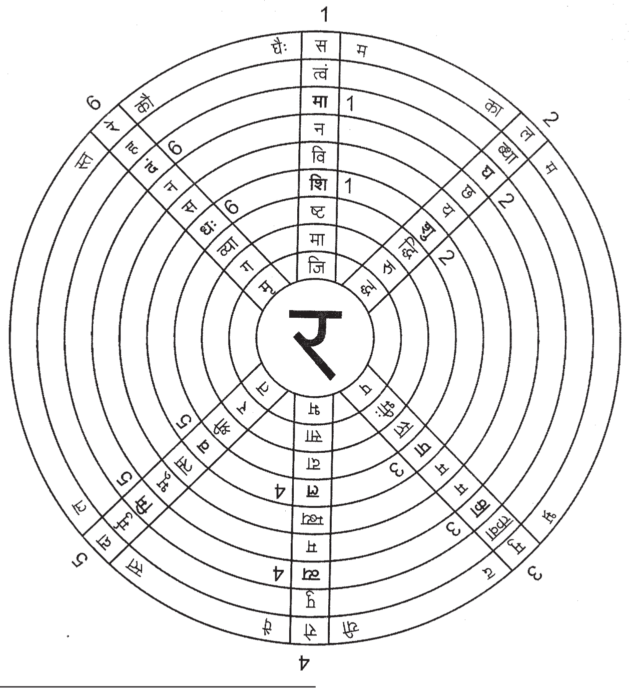

1. शिशुपालवध, 19/120

इस चक्र के छठे वलय (गोले) में **'शिशुपालवधः'** तथा तृतीय वलय (=गोले) में **'माघकाव्यमिदम्'–** ये वाक्य निहित हैं।

इस प्रकार स्पष्ट है कि संस्कृतसाहित्य में महाकवि भारवि ने जिस रीति–सम्प्रदाय का प्रवर्तन किया था, वह भट्टि से होते हुए माघ पर परिपूर्ण हुआ। माघ ने अपने असाधारण प्रतिभा एवं व्युत्पत्ति को लेकर अपने काव्य को खूब संजोया। इन्होंने अपने काव्य में चित्रालङ्कार का प्रयोग किया है। जो उनके अद्‌भुत पाण्डित्य एवं बुद्धि–कौशलता की अभिव्यक्ति करता है, किन्तु काव्यशास्त्रीय आचार्य इस विकटबन्ध को हेय एवं अनुपादेय बताया है। आचार्य विश्वनाथ कहते हैं कि काव्य में यह सर्वतोभद्र आदि शब्द चित्र तो ऐसा भद्दा प्रदर्शन है, जैसे किसी के गले में माँस फूलकर लटक रहा हो, उसे लटके माँस से पुरुष की शोभा बढ़ने के स्थान पर और घटती ही है, इसलिए यह सर्वतोभद्र आदि विकटबन्ध काव्य में 'गडु' से प्रतीत होते हैं। आचार्य मम्मट तथा पण्डितराज जगन्नाथ ने भी इसकी बहुत अपेक्षा की है। फिर भी तत्कालीन समय में राजदरबारों में पाण्डित्य का निकष शब्दालङ्कारों, अर्थालङ्कारों आदि का अतिशय प्रयोगाधिक्य ही हो गया था, अतः महाकवि माघ द्वारा प्रयोग किया चित्रालङ्कार काव्य की शोभा में साधक है, बाधक नहीं।

# शिशुपालवध में पशु-पक्षी का वर्णन

- **श्रीमती अर्चना देवी***

**कृत्स्न प्रबोधकृद्वाणी भारवेरिव भारवेः।**
**माघेनेव च माघेन कम्पः कस्य जायते।।**

सूर्य की किरणों के समान भारवि की कविता सभी को जगाने वाली है तथा माघ मास के समान माघ कवि से कौन नहीं काँप उठता?

संस्कृत साहित्य की महाकाव्य परम्परा में बृहत्त्रयी के नाम से प्रख्यात  महाकाव्यों में शिशुपालवध महाकाव्य अपनी विशिष्ट काव्यशैली के लिए सुविख्यात है। वैदुष्यपूर्ण शाब्दिक-योजना एवं काव्यार्थ-परिपाक का ऐसा सुन्दर समन्वय ही शिशुपालवध महाकाव्य का अध्ययन शब्दकोश की श्रीवृद्धि के लिए किया जाता रहा है वह **नवसर्गगते माघे नवशब्दो न विद्यते** इस उक्ति से प्रमाणित हो जाता है।

कतिपय समीक्षकों का मानना है कि भारवि की काव्य परम्परा का ही यह महाकाव्य जो उसी मार्ग पर चलकर भी उससे आगे बढ़ गया है। **"तावद् भा भारवेर्भाति यावन्माघस्य नोदयः"** का तात्पर्य यही है कि माघ कवि ने भारवि को मन्दप्रभ कर दिया है। भारवि की रचना को पद्धति अपने काव्य का आदर्श मानकर चलने वाले माघ न अपने पाण्डित्य एवं प्रातिभ प्रकर्ष से शिशुपालव में ऐसा अलौकिक चमत्कार पैदा कर दिया है कि तिलकमञ्जरीकार धनपाल को कहना पड़ा-

**माघेन विघ्नितोत्साहा नोत्सहन्ते पदक्रमे।**
**स्मरन्तो भारवेरेव कवयः कपयो यथा।।**

---

* पूर्व शोधछात्रा, साहित्यविभाग, श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विश्वविद्यालय, नई दिल्ली- 110016

प्रस्तुत शोध लेख में महाकवि माघ के कुछ प्रमुख सन्दर्भों के माध्यम से उनके द्वारा उद्धृत पशु-पक्षी का वर्णन इस प्रकार है -

**घोड़े का वर्णन-**

दारूक से रैवतक पर्वत का उदात्त वर्णन सुनकर उस पर विहार करने के लिए श्रीकृष्ण भगवान् से सेना सहित प्रस्थान किया सैनिक घोड़े का वर्णन इस प्रकार है-

अपनी तीव्रगति से मृगों की गति को तुच्छ करने वाले बहुत लम्बे मार्ग को तय किये हुये तथा तेज चलने से निकले हुए फेन जल के फैलने से स्पष्ट दिखलाई पड़ रहे हैं, जीन की रस्सी बाँधने से चिह्न जिनके ऐसे घोड़े को भूमि पर लेटाने के लिए घुड़सवार धीरे-धीरे खींचते हुए लाए।

मस्तक झुकाकर सूँघने पर नाक के छिद्रों की हवा से उड़ी हुई सूक्ष्मतम धूल मानो उस घोड़े के शरीर समागम जन्य सुघ के लिए उत्कण्ठित सा हो गया। स्वर्णमयी भूमि पर सब ओर से लोटकर शरीर को कँपाता हुआ फैले हुए बड़े-बड़े रोमों के समूह वाला घोड़ा बाहर निकलते हुए चिनगारी के समान लाल वर्णवाले धूलि के समूह से ऐसा सुन्दर लग रहा था कि उसके शेष तेज के कण निकल रहे हो-

**हेम्नः स्थलीषु परितः परिवृत्य वाजी**
**धुन्वन् वपुः प्रवितातायत केशपङ्क्तिः।**
**ज्वालाकणारुणरुचा निकरेण रेणोः**
**शेषेण तेजस इवोल्लसत रराज॥**[1]

अत्यधिक सुलक्षण एवं सुन्दर होने से निमेष रहित लोगों से देखा जाता हुआ शोभायुक्त होने से अत्यधिक रमणीय उन्नत घोड़ा समुद्र से तत्काल निकलते हुए ऊँचे कानों वाले के सदृश शोभता था-

**रेजे जनैः स्नपनसान्द्रनरार्द्रमूर्ति-**
**र्देवैरिवानिमिषदृष्टिभिरीक्ष्यमाणः।**

---

1. शिशुपालवध, 5/55

**श्रीसन्निधानरमणीयतरोऽश्व उच्चै-**
**रुच्चैःश्रवा जलनिधेरिव जातमात्रः॥**[1]

प्रातःकाल जब राजाओं ने देखा कि घोड़ों को हरी घास खाते हुये, गर्दन में घुंघुरूओं की मधुर ध्वनि से मिश्रित घास चबाने से निकलते हुए चुर्चुर शब्द को सुना तब बहुत प्रसन्न हुए। शिविर के चारों ओर घास चलते हुए तम्बू की टुटी हुई रस्सी के सम्बन्ध वाले तम्ब के रक्षकों से रोके गये घोड़े पैर बाँधने की रस्सियों में पैर उछालते हुए भागने लगे-

**मुक्तास्तृणाहि परितः कटकं चरन्त-**
**स्त्रुट्यद्वितानतनिकाव्यतिषङ्गभाजः।**
**सस्त्रुः सरोषपरिचारकवार्यमाणा**
**दामाञ्चलस्खलितलोलपदं तुरङ्गाः॥**[2]

**हाथी का वर्णन-**

हाथियों के झुण्डों ने चञ्चल सूड़ो के अग्रभाग से ऊपर (अपने को) फेंके गये जल के फौव्वारों से सब तरफ से बार-बार सिक्त कर लिया, फौव्वारे से निकले हुए वे जल-कण (मार्गजन्य) थकावट से दीर्घ श्वासों के वेगों से निकले हुए, मनोहर मस्तकस्थ गजमुक्ताओं के समूह के समान प्रतीत होते थे।

जलाशय में अपने प्रतिबिम्ब को देखकर मानो दूसरे हाथी से आक्रान्त के स्थान गजराज निर्भय हो मारने के लिए क्रोध से दौड़ा। दूसरे हाथियों से जल में छोड़े गये मदजल से तोता पानी को लेने तथा छोड़ने की भी इच्छा नहीं करते हुए तथा प्रहार की प्रवाह न करने वाले क्रोध युक्त हाथी से नदी के तट पर करने वाले क्रोध युक्त हाथी से नदी के तट पर रूक जाने पर लोग हाथ में खाली जलपात्र किए देर तक ठहरे रह गये-

---

1. शिशुपालवध, 5/57
2. वही, 5/61

**नादातुमन्यकरिमुक्तामदाम्बुतिक्तं**
**धूताङ्कुशेन न विहातुमपीच्छताम्भः।**
**रुद्धे गजेन सरितः सरुषावतारे**
**रिक्तोदपात्रकरमास्त चिरं जनौघः।।**[1]

हाथियों के बढ़े हुए मद से उत्पन्न सन्ताप से होने वाली पीड़ा की शान्ति के सूड़ों से कपोल मण्डल से धीरे-धीरे छोड़ा गया। अत एव कान तक उछला हुआ तथा विकसित कास के समान शुभ्र पानी श्वेत चामर की समता को प्राप्त किया-

**कीर्णं शनैरनुकपोलमनेकपानां**
**हस्तैर्विगाढमदतापरुजः शमाय।**
**आकर्णमुल्लसितमम्बु विकासिकाश-**
**नीकाशमाप समतां सितचामरस्य।।**[2]

दूसरे हाथी के हवा को पाया हुआ, सूँड में लिए हुए जल को रोषपूर्वक छोड़ने वाला हाथी, जलाशय के किनारे पर स्थूल दोनों दाँतों के मध्यभाग से रोके हुए विशाल मुसलाकार दाँतों के प्रहारवाला होकर स्वयं गिर पड़ा-

**गण्डूषमूज्झितवता पयसः सरोषं**
**नागेन लब्धपरवारणमारुतेन।**
**अम्भोधिरोधसि पृथुप्रतिमानभाग-**
**रुद्धोरुदन्तमुसलप्रसरं निपेते।।**[3]

**हंस और मोर का वर्णन-**

शरद ऋतु में हंसों के शब्द मधुर तथा मयुरों के शब्द कर्कश हो गये, उससे पूर्व वर्षा ऋतु में हंसों के शब्द कर्कश तथा मयूरों के शब्द मधुर थे। यह परिवर्तन समय के कारण ही हुआ।

---

1. शिशुपालवध, 5/33
2. वही, 5/35
3. वही, 3/36

**समय एव करोति बलाबलं**
**प्रणिगदन्त इतीव शरीरिणाम्।**
**शरदि हंसरवाः परुषीकृत-**
**स्वरमयूरमयूरमणीयताम्॥**[1]

पहले हंसों की ध्वनियों से पराजित ध्वनिवाले मोर के पंख मान या ईर्ष्या के कारण या असमर्थता या क्रोध के कारण झड़ गये। शत्रुकृत पराभव अत्यन्त दुःसह होता है-

**तनुरुहाणि पुरे विजितध्वने-**
**र्धवलपक्षविहङ्गमकूजितैः।**
**जगलुरक्षमयेव शिखण्डिनः**
**परिभवोऽरिभवो हि सुदुःसहा॥**[2]

**बैल का वर्णन-**

नदियों के गोले तट को उजाड़ने से अगले भाग में मिट्टी लगाये हुए ऊपर में मिट्टी के लगने से दोनों किनारों में कलङ्करूपी मलयुक्त अर्द्धचन्द्र की अपेक्षा अधिक शोभते हुए सींगों से दूसरे बैलों की सींग को उखाड़े हुए गम्भीर गर्जन करते हुए नदियों के किनारों को उखाड़ने लगे-

**मृत्पिण्डशेखरितकोटिभिरर्धचन्द्रं**
**शृङ्गैः शिखाग्रगतलक्ष्ममलं हसद्भिः।**
**उच्छृङ्गितान्यवृषभाः सरितां नदन्तो**
**रोधांसि धीरमवचस्करिरे महोक्षाः॥**[3]

बलिष्ठ बैल मांसल अर्थात् मोटे वेगपूर्वक आए हुए कामुक दूसरे बैलों को बार-बार युद्ध से हटाकर विजयलाभ से विशाल सींगों को ऊपर किये हुए प्रतिपक्षी रहित हो गायों के पीछे लग गये-

---

1. शिशुपालवध, 6/44
2. वही, 6/45
3. वही, 5/63

**मेदस्विनः सरभसोपगतानभीकान्**
**भङ्क्त्वा परानडुहो मुहुराहवेन।**
**ऊर्जस्वलेन सुरभीरनु निःसपत्नं**
**जग्मे जयोद्धुरविशालविषाणमुक्ष्णा।।**[1]

नमक-गुड़ आदि के बोझ उतारने से हल्के होने पर भी बढ़े हुए 'उलप' नामक घास को भरपेट खाने से आलसपूर्ण बैलों के झुण्ड जुगाली करने से गल कम्बल को तथा आलस्य से नेत्रों को बन्द किये हुए पेड़ों के नीचे विश्राम किये-

**उत्तीर्णभारघूनाप्यलघूलपौघ-**
**सौहित्यानिःसहतरेण तरोरधस्तात्।**
**रोमन्थमन्थरचलद्गुरुसास्नमासां**
**चक्रे निमीलदलसेक्षणमौक्षकेण।।**[2]

**ऊँट का वर्णन-**

हमेशा खाए जाने से अभ्यस्त नीम के पत्तों के साथ में किसी प्रकार मुख के भीतर गए हुए कोमल आम के पत्ते को ऊँट ने तत्काल उस प्रकार उगल दिया जिस प्रकार अभ्यस्त निषादों के साथ किसी प्रकार मुख के भीतर गये हुए ब्राह्मण को पहले गरूड़ ने उगल दिया था-

**सार्धं कथञ्चिदुचितैः पिचमर्दपत्रै-**
**रास्यान्तरालगतमाम्रदलं म्रदीयः।**
**दासेरकः सपदि संवलितं निषादै-**
**र्विप्रं पुरा पतगराडिव निर्जगार।।**[3]

उन्नत मुख वाले ऊँटो का झुण्ड वृक्षों के रसदार होने से स्वादिष्ट एवं ताजे एवं बहुत ऊँचे नवपल्लवों को ओठों को जल्दी-जल्दी हिलाता

1. शिशुपालवध, 5/64
2. वही, 5/62
3. वही, 5/66

हुआ खाने लगा, इस प्रकार उनका लम्बी गर्दन धारण करना सफल हो गया-

**बिभ्राणमायतिमतीमवृथा शिरोधि**
**प्रत्यग्रतामतिरसामधिकं दधन्ति।**
**लोग्रोष्ठमौष्ट्रकमुदग्रमुखं तरुणा**
**मभ्रं लिहानि लिलिहेः नवपल्लवानि।।**[1]

भारयुक्त गोणी आदि को पीठ पर रखने पर उठने की इच्छा करता हुआ बलपूर्वक पकड़ा गया बहुत शब्द करने वाला ऊँट आधे चबाये गये बकापन आदि की पत्तियों के खाने से विषम शब्द को करता हुआ अपने नाम को स्पष्ट अर्थवाला अर्थात् सार्थक कर दिया-

**उत्थातुमिच्छन्विधृतः पुरोबला**
**-न्निधीयमाने भरभाजि यन्त्रके।**
**अर्धोज्झितोद्गारविझर्झरस्वरः**
**स्वनाम नित्ये रवणः स्फुटार्थताम्।**[2]

**गायों का वर्णन-**

बाँए पैर से बाँधे गये बछड़ों को स्नेह से चरती हुयी गायों से दोनों घुटनों से दुहने के वर्तन को दबाकर बढ़ते हुए धारा के शब्द को साथ-साथ दूध को दुहते हुए गाय दुहने वालों को उन श्रीकृष्ण ने देर तक अच्छी तरह देखा-

**प्रीत्या नियुक्तांल्लिहती स्तनन्धया-**
**न्निगृह्य पारीमुभयेन जानुनोः।**
**वर्धिष्णुधाराध्वनि रोहिणाः पय-**
**श्चिरं निदध्यौ दुहतः स गोदुहः।।**[3]

सामने आते हुए तथा हाथ में नोथड़ा (पतली रस्सी) के लिए दुहने वाले गोप के सामने आकर शीघ्रता करते हुए छोटे बच्चेवाली गोओं

---

1. शिशुपालवध, 5/65
2. वही, 12/9
3. वही, 12/40

के झुण्ड से सुन्दर हुङ्कारकर निकलती हुयी श्रेष्ठ गाय को मधुसूदन ने देखा-

**अभ्याजतोऽभ्यागततूर्णतर्ण-**
**कान्निर्याणहस्तस्य पुरो दुधुक्षतः।**
**वर्गाद्गवां हुंकृतिचारुनिर्यती**
**-मरिर्मधोरैक्षत गोमतल्लिकाम्।।**[1]

**मृग औ शुक का वर्णन-**

धान की रखवाली करने वाली जब तक खेत की एक ओर धान को खाते हुए सुग्गों को उड़ाने के लिए गयीं तब तक उसी खेत के दूसरी ओर मृगों से चरे जाते धानों वाले खेतों के समूह के दोनों ओर घबड़ाई रखवाली करने वाली स्त्रियों को मुस्कारते हुए श्रीकृष्ण भगवान् देखते थे-

**स व्रीहिणां यावदपासितुं गताः**
**शुकान्मृगैस्तावदुपद्रुतश्रियाम्।**
**कैदारिकाणामभितः समाकुलाः**
**सहासमालोकयतिस्म गोपिकाः।।**[2]

भय से व्याकुल तथा सब ओर से निवास स्थान को जाते हुए मृग को यद्यपि किसी धनुर्धर पुरुष ने नहीं रोका तथापि स्त्रियों के कान तक पहुँचे हुए अर्थात् विशाल नेत्र रूप वाणों से नष्ट नेत्र शोभा वाला वह मृग कहीं पर भी नहीं ठहरा-

**त्रासाकुलः परिपतन् परितो निकेतान्।**
**पुंभिर्न कैश्चिदपि धान्विभिरन्वबन्धि**
**तस्थौ तथापि न मृगः क्वचिदङ्गनाना-**
**माकर्णपूर्णनयनेषु हितेक्षणश्रीः।।**[3]

---

1. शिशुपालवध, 12/41
2. वही, 12/42
3. वही, 5/26

**खच्चर का वर्णन–**

पास में आये हुए हाथी के सूत्कार से डरे हुए छकड़े में जुते हुए दो खच्चरों ने सारथि के घबड़ाकर रास को छोड़ देने पर अन्तःपुर की स्त्री को गिराकर बेरास्ते भूमि को पारकर छकड़ी को (छोटी गाड़ी) तोड़ दिया–

> **त्रस्तौ समासन्नकरेणुसत्कृता–**
> **न्नियन्तरि व्याकुलमुक्तरज्जुके।**
> **क्षिप्तावरोधाङ्गनमुत्पथेन गां**
> **विलङ्घ्य लघ्वीं करभौ बभञ्जतुः॥[1]**

**चकवा चकवी का वर्णन–**

प्रियतम चकवे के द्वारा निःशङ्क अर्थात् सम्यक् प्रकार से चुम्बित तथा चुम्बन के अनन्तर सीत्कारादि कार्यों में मूढ़ चकई का प्राणप्रियों के सामने हाथ को हिलाती हुई तरूणियों ने सीत्काररूप समुचित उत्तर दिया–

> **मुग्धायाः स्मरललितेषु चक्रवाक्या**
> **निःशङ्कं दयिततमेन चुम्बितायाः।**
> **प्राणेशानभि विदधुर्विधूतहस्ताः**
> **सीत्कारं समुचितमुत्तरं तरुण्यः॥[2]**

उक्त कतिपय उदाहरणों से हमें यह ज्ञात होता है कि महाकवि माघ ने अपने महाकाव्य में पशु–पक्षी का वर्णन भिन्न–भिन्न प्रसङ्गों में सुन्दर रूप से प्रस्तुत किया है।

---

1. शिशुपालवध, 12/24
2. वही, 8/13

# शिशुपालवध महाकाव्य में नायक विचार

- श्री आकाश आर्य*

**काव्यशास्त्र की उपादेयता :**

इस संसार में मानव जीवन का उद्देश्य धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की प्राप्ति है, यह शाश्वत नियम है कि संसार का प्राणिमात्र अधिकाधिक एवं नित्य सुख-समृद्धि की कामना करता है तथा उसकी सिद्धि के लिए सरल से सरल साधन चाहता है। यद्यपि इसके लिए योगसाधन, तपश्चरण तथा मुख्य साधन के रूप में वेद शास्त्रों का ज्ञान ही शास्त्रकारों ने बतलाए हैं, परन्तु वेद शास्त्रों के नीरस तथा कठिन होने से उन्हें वे ही मनुष्य पढ़ने तथा समझने में समर्थ हैं जिनकी बुद्धि तीक्ष्ण एवं परिपक्व है। कोमल बुद्धिवालों के लिए तो अत्यन्त सरल एवं सरस होने से काव्य को ही समस्त सुख साधक एवं धर्मादि की सुखपूर्वक प्राप्ति कराने का सरल साधन आचार्यों ने स्वीकार किया है। भरतमुनि ने स्पष्ट कहा है कि- **"धर्मार्थियों को धर्म, कामार्थियों को काम, विद्याभिलाषुओं को विद्वत्ता तथा दीन दुखियों एवं शोकसन्तप्तों को परम शान्ति का देने वाला एकमात्र काव्य ही है।"**[1] और साहित्य-दर्पणकार आचार्य विश्वनाथ ने भी कहा है कि- **"चतुर्वर्गफलप्राप्तिः सुखादल्पधियामपि।।"**[2] आचार्य रुद्रट ने सत्काव्यों को अपनी-अपनी

---

* श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विश्वविद्यालय, नवदेहली-110016

1. नाट्यशास्त्र, 109-124
2. साहित्यदर्पण, 1/2

# शिशुपालवध महाकाव्य में नायक विचार

- श्री आकाश आर्य*

**काव्यशास्त्र की उपादेयता :**

इस संसार में मानव जीवन का उद्देश्य धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की प्राप्ति है, यह शाश्वत नियम है कि संसार का प्राणिमात्र अधिकाधिक एवं नित्य सुख-समृद्धि की कामना करता है तथा उसकी सिद्धि के लिए सरल से सरल साधन चाहता है। यद्यपि इसके लिए योगसाधन, तपश्चरण तथा मुख्य साधन के रूप में वेद शास्त्रों का ज्ञान ही शास्त्रकारों ने बतलाए हैं, परन्तु वेद शास्त्रों के नीरस तथा कठिन होने से उन्हें वे ही मनुष्य पढ़ने तथा समझने में समर्थ हैं जिनकी बुद्धि तीक्ष्ण एवं परिपक्व है। कोमल बुद्धिवालों के लिए तो अत्यन्त सरल एवं सरस होने से काव्य को ही समस्त सुख साधक एवं धर्मादि की सुखपूर्वक प्राप्ति कराने का सरल साधन आचार्यों ने स्वीकार किया है। भरतमुनि ने स्पष्ट कहा है कि- **"धर्मार्थियों को धर्म, कामार्थियों को काम, विद्याभिलाषुओं को विद्वत्ता तथा दीन दुखियों एवं शोकसन्तप्तों को परम शान्ति का देने वाला एकमात्र काव्य ही है।"**[1] और साहित्य-दर्पणकार आचार्य विश्वनाथ ने भी कहा है कि- **"चतुर्वर्गफलप्राप्तिः सुखादल्पधियामपि।।"**[2] आचार्य रुद्रट ने सत्काव्यों को अपनी-अपनी

---

* पूर्व शोध छात्र, श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विश्वविद्यालय, नवदेहली- 110016

1. नाट्यशास्त्र, 109-124
2. साहित्यदर्पण, 1/2

**काव्य का लक्षण :**

**'कवि'** तथा **'काव्य'** शब्द की व्युत्पत्ति करते हुए अमरकोष के टीकाकार महावैयाकरण भानुजिदीक्षित ने लिखा है- **"कवते श्लोकान् ग्रथते, वर्णयति वा कविः"।** **'शब्दकल्पद्रुम'** में **'कु शब्दे'** धातु से **'अची'** सूत्र द्वारा **'इ'** प्रत्यय करने पर **'कवि'** शब्द की सिद्धि बतलाई गई है। इस प्रकार श्लोक रचना या वर्णन करने वाले को **'कवि'** कहते हैं। विद्याधर ने एकावली में **"कवयति इति कविः, तस्य कर्म काव्यम्"** ऐसी व्युत्पत्ति की है। ध्वन्यालोक की **'लोचन'** व्याख्यान में **'कवनीयं काव्यम्'** व्युत्पत्ति की गयी है। इस प्रकार वर्णन करने वाले या जानने वाले को **'कवि'** तथा उसके कर्म या कृति को **'काव्य'** कहते हैं। यद्यपि **"कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूः"**[1] के द्वारा कवि शब्द का प्रयोग सर्वज्ञ परमेश्वर के लिए प्रयुक्त हुआ है, तथा **"तेने ब्रह्महृदा य आदिकवये"**[2] के अनुसार आदि कवि शब्द का प्रयोग **'ब्रह्मा'** अर्थ में मिलता है। तथापि आदिकवि वाल्मीकि मुनि तथा व्यास जी के लिए भी **'कवि'** शब्द का प्रयोग मिलता है। इसी से वाल्मीकि मुनि प्रणीत रामायण के प्रत्येक सर्ग की पुष्पिका में **'इत्यार्षे आदि काव्ये'** सर्वत्र लिखा हुआ उपलब्ध होता है। महर्षि व्यास जी कृत महाभारत की गणना भी **'काव्य'** में ही की गई है। उन्होंने स्वयं इसका प्रतिपादन किया है- **"कृतं मयेदं भगवन्! काव्यं परमपूजितम्"।**[3] काव्य में वाक्चातुर्य की प्रधानता रहने पर भी **'रस ही काव्य का प्राण है'** ऐसा अग्निपुराण का मत है।[4] पण्डितराज जगन्नाथ ने **"रमणीयार्थ प्रतिपादकः शब्दः काव्यम्"** तथा **"रसे सारश्चमत्कारः"** वचनों द्वारा रमणीयार्थ प्रतिपादक शब्द को काव्य कहकर रस में चमत्कार को ही सार माना है। इसी प्रकार अनेक आचार्यों ने अपने-अपने मत में काव्य की अनेक प्रकार से विवेचना की है। कुछ आचार्यों के मतों को यहाँ प्रस्तुत कर रहे हैं-

1. शुक्लयजुर्वेद, 40/8
2. श्रीमद्भागवत
3. महाभारत, अनुशासन पर्व, 1/61
4. अग्निपुराण, 337/7, 33

| | | |
|---|---|---|
| आचार्य विश्वनाथ | - | वाक्यं रसात्मकं काव्यम्।[1] |
| आचार्य मम्मट | - | तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलङ्कृति पुनः क्वापि।[2] |
| आचार्य आनन्दवर्धन | - | काव्यस्यात्मा ध्वनिः।[3] |
| आचार्य भामह | - | शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्।[4] |
| अग्निपुराण | - | इष्टार्थव्यवच्छिन्ना पदावली।<br>काव्यं स्फुरदलङ्कारं गुणवद्दोषवर्जितम्।[5] |
| रुद्रट | - | शब्दार्थौ काव्यम्।[6] |
| कुन्तक | - | शब्दार्थौ सहितौ वक्रकविव्यापारशालिनि।<br>बन्धे व्यवस्थितौ काव्यं तद्विदाह्लादकारिणी।[7] |
| भोजराज | - | निर्दोषं गुणवत्काव्यमलङ्कारैरलङ्कृतम्।<br>रसान्वितं कविः कुर्वन् कीर्तिं प्रीतिं च विन्दति।[8] |
| जयदेव | - | निर्दोषा लक्षणवती सरीतिर्गुणभूषणा।<br>सालङ्काररसानेककवृत्तिर्वाक्काव्यनामभाक्।[9] |
| दण्डी | - | शरीरं तावत् इष्टार्थव्यवच्छिन्ना पदावली।[10] |

**महाकाव्य का लक्षण :**

आचार्य विश्वनाथ ने अपने ग्रन्थ साहित्यदर्पण में महाकाव्य का लक्षण करते हुए लिखा है कि-

1. साहित्यदर्पण
2. काव्यप्रकाश
3. ध्वन्यालोक
4. काव्यालङ्कार
5. अग्निपुराण
6. काव्यालङ्कार
7. वक्रोक्तिकाव्यजीवितम्
8. सरस्वतीकण्ठाभरणम्
9. चन्द्रालोकम्
10. काव्यादर्शः

सर्गबन्धो महाकाव्यं तत्रैको नायकः सुरः।
सद्वंशः क्षत्रियो वापि धीरो दात्तगुणान्वितः।
एकवंशभवा भूपाः कुलजा बहवोऽपि वा॥
शृङ्गारवीरशान्तानामेकांऽगी रस इष्यते।
अंगानि सर्वेऽपि रसाः सर्वे नाटकसंधयः॥
इतिहासोद्भवं वृत्तमन्यद्वासज्जनाश्रयम्।
चत्वारस्तस्य वर्गा स्युस्तेष्वेकं च फलं भवेत्॥
आदौ नमस्क्रियाशीर्वा वस्तुनिर्देश एव वा।
क्वचिन्निन्दा खलादीनां सतां च गुणकीर्तनम्॥
एकवृत्तमयैः पद्यैरवसानेऽन्यवृत्तकैः।
नातिस्वल्पा नातिदीर्घाः सर्गा अष्टाधिका इह॥
नानावृतमयः क्वापि सर्गः कश्चन दृश्यते।
सर्गान्ते भाविसर्गस्य कथायाः सूचनं भवेत्॥
सन्ध्यासूर्येन्दुरजनीप्रदोषध्वान्तवासराः।
प्रातर्मध्याह्नमृगयाशैलर्तुवनसागराः॥
संभोगविप्रलम्भौ च मुनिस्वर्गपुराध्वराः।
रणप्रयाणोपयममन्त्रपुत्रोदयादयः॥
वर्णनीया यथायोगं सांगोपांगा अमी इह।
कवेर्वृत्तस्य वा नाम्ना नायकस्येतरस्य वा॥
नामास्य सर्गोपादयेकथया सर्गनाम तु।
अस्मिन्नार्षे पुनः सर्गा भवन्त्याख्यानसंज्ञकाः॥

महाकाव्य सर्गबन्ध होता है। कोई एक देव या उत्तम वंशज धीरोदात्त क्षत्रिय अथवा एक कुल में उत्पन्न अनेक राजाओं के चरित्र का वर्णन किया जाता है। शृङ्गार, वीर तथा शान्त इन तीनों में से कोई एक रस प्रधान (अङ्गी) तथा अन्य रस अप्रधान (अङ्ग) होते हैं। इसमें रामायण, महाभारतादि इतिहास के नायक या अन्य किसी सज्जन के

चरित्र का वर्णन होता है। धर्म, अर्थ, काम, मोक्षरूप पुरुषार्थ-चतुष्टय में से कोई एक फल लक्ष्य होता है। महाकाव्य के आदि में नमस्कारात्मक, वस्तु निर्देशात्मक या आशीर्वादात्मक मङ्गलाचरण रहता है। किसी किसी महाकाव्य में प्रथम दुष्टों की निन्दा तथा सज्जनों की प्रशंसा भी रहती है। प्रत्येक सर्ग में एक ही छन्द तथा अन्तिम पद्य भिन्न छन्द में होता है। कहीं-कहीं सर्ग में अनेक छन्द भी मिलते हैं। महाकाव्य में कम से कम आठ सर्ग होते हैं, न बहुत अधिक और न बहुत कम। सर्ग के अन्त में आगामी सर्ग की कथा का संकेत प्राप्त होता है। सन्ध्या, सूर्य, चन्द्र, रात्रि, प्रदोषकाल, अन्धकार, दिन, प्रातःकाल, मध्याह्न, आखेट, पर्वत, ऋतु, संयोग तथा विप्रलम्भ शृङ्गार, मुनि, स्वर्ग, नगर, यज्ञ, युद्धयात्रा, विवाह, मन्त्रणा, पुत्रोत्पत्ति, जलक्रीडा, वनविहार आदि का यथा सम्भव साङ्गोपाङ्ग वर्णन होता है। कवि, वृत्त (कथा), नायक या किसी अन्य मुख्य के नाम पर महाकाव्य का नाम रहता है और सर्ग में वर्णित कथा के नाम पर प्रत्येक सर्ग का नाम रहता है। उपरोक्त समस्त गुणों से युक्त होने से **'शिशुपालवध'** महाकाव्य की श्रेणी में आता है जो सर्वथा उपयुक्त है।

## काव्य के भेद :

दृश्य तथा श्रव्य भेद से काव्य दो प्रकार का होता है। दृश्य काव्य को ही रूपक कहते हैं, यह रूपक नाटकादि भेद से दस प्रकार का होता है। रूपकों के समान ही कुछ विशेषता लिए नाटिकादि 18 प्रकार के उपरूपक भी होते हैं। द्वितीय श्रव्य काव्य पद्यात्मक, गद्यात्मक तथा गद्यपद्योभयात्मक भेद से तीन प्रकार का होता है, इनमें पद्यात्मक- (1) महाकाव्य (2) खण्डकाव्य (3) कुलक (4) कलापक (5) सन्दानितक (6) युग्मक (7) मुक्तक, इस प्रकार से सात भेद होते हैं। गद्यात्मक काव्य - कथा तथा आख्यायिका भेद से दो प्रकार का माना गया है। आचार्य विश्वनाथ के मत से गद्यकाव्य- मुक्तक, वृत्तगन्धि, उत्कलिका प्राय, चूर्णक भेद से चार प्रकार का है। गद्यपद्योभयात्मक काव्य को चम्पू कहते हैं। यही चम्पू यदि राजस्तुतिपरक हो तो विरुद कहलाता है और

यदि अनेक भाषा निबद्ध हो तो यही करम्भक कहलाता है।

**शिशुपालवध महाकाव्य की श्रेष्ठता :**

यद्यपि संस्कृत साहित्य में सहस्रों महाकवि एवं उनके द्वारा रचित ग्रन्थ हैं, तथापि पं. दुर्गाप्रसाद जी के कथनानुसार पहले 'रघुवंश, कुमारसम्भव, किरातार्जुनीयम्, शिशुपालवध तथा नैषधीचरित' इन पाँचों काव्यों का ही प्रचार-प्रसार एवं अध्ययनाध्यापन प्रचलित था, अन्य विद्वानों के मत से इनके अतिरिक्त 'मेघदूत' नामक खण्डकाव्य भी उसी कोटि में गिना जाता है। इन छः काव्यों में रघुवंश, कुमारसम्भव और मेघदूत महाकवि कालिदास की कृतियाँ है और ये 'लघुत्रयी' नाम से प्रसिद्ध हैं, शेष किरातार्जुनीय, शिशुपालवध तथा नैषधीयचरित महाकाव्य क्रमशः भारवि, माघ तथा श्रीहर्ष के द्वारा रचित है और ये 'बृहत्त्रयी' नाम से प्रसिद्ध है और इन्हीं का अध्ययनाध्यापन द्वारा सर्वाधिक प्रचार-प्रसार अब तक होता रहा है।

अब यहाँ शिशुपालवध (माघ) महाकाव्य के प्रति विद्वानों की अमितश्रद्धा का संक्षिप्त परिचय देना भी अप्रासंगिक नहीं होगा। किसी कवि ने सत्य ही कहा है-

**उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थगौरवम्।**
**नैषधे पदलालित्यं माघे सन्ति त्रयो गुणाः॥**

अन्यच्च-

**मुरारिपदचिन्ता चेत्तदा माघेरतिं कुरु।**
**मुरारिपदचिन्ता चेत्तदामाऽघे रतिं कुरु॥**

एक वृद्ध महाविद्वान् से किसी ने पूछा कि आपने किन-किन ग्रन्थों का अध्ययन किया है, जिससे आपकी बुद्धि इतनी विशद् और दूरदर्शिनी हो गई है? उसके प्रत्युत्तर में वृद्ध महाविद्वान् ने कहा-

**"मेघे माघे गतं वयः"** अर्थात् कालिदास कृत 'मेघदूत' काव्य तथा माघकृत (माघ) 'शिशुपालवध' काव्य में मैंने पूरी आयु समाप्त कर दी है। अतः इस संक्षिप्त कथानक से भी 'माघ' की महत्ता स्पष्टतया

प्रतिपादित होती है।

**काव्य गुणों की दृष्टि से शिशुपालवध की समीक्षा :**

**वस्तु संघटना :**

शिशुपालवध की कथा का आधार महाभारत के सभा पर्व अध्याय 33 से 45 तक की कथा है। महाकवि माघ ने अपनी नवीन उद्भावनाओं से इस छोटी सी कथा को बीस सर्ग के महाकाव्य का रूप दिया है। कथावस्तु दो प्रकार की होती है- (1) आधिकारिक (2) प्रासङ्गिक। आदिकारिक वस्तु का साक्षात् सम्बध नायक तथा काव्य के फल से होता है, परन्तु प्रासङ्गिक वस्तु में नायक से भिन्न किसी अन्य का वृत्त रहता है जिसका परम्परया संबन्ध काव्य के फल से रहता है। शिशुपालवध महाकाव्य में शिशुपाल का वध ही आधिकारिक कथा है, जिसका अनेक प्रासंगिक वर्णनों द्वारा विस्तार किया गया है।

इस महाकाव्य की कथा को देखने पर प्रतीत होता है कि यह एक घटना-प्रधान महाकाव्य है। घटना-प्रधान काव्यों में कवि की दृष्टि किसी मुख्य घटना पर होती है और उसका समस्त वस्तु-विन्यास उस घटना पर ही केन्द्रित रहता है, परन्तु रामायण या बुद्धचरित जैसे व्यक्ति प्रधान महाकाव्यों में नायक के समस्त जीवन का परिचय मिलता है। यहाँ कवि की दृष्टि व्यक्ति के जीवन की सभी मुख्य घटनाओं पर रहती है। इस घटना-प्रधान शिशुपालवध महाकाव्य में शिशुपाल का वध ही मुख्य घटना है। अन्य सभी प्रासंगिक वर्णन उसके पोषक के रूप में है।

यहाँ महाकवि माघ प्रबन्धकाव्य की इति वृत्तनिर्वाहकता में सफल नहीं कहे जा सकते हैं। इस ओर उनका ध्यान भी नहीं है। मूलकथा पहले, दूसरे तथा चौदहवें से बीसवें सर्ग तक पाई जाती है। इसमें भी कई अप्रासंगिक वर्णनों का कवि ने विस्तार पूर्वक विवेचन किया है। शेष चतुर्थ सर्ग से त्रयोदश सर्ग तक का वर्णन आनुषङ्गिक है जिसका आवश्यकता से अधिक विस्तार आलोचकों को अत्यन्त खटकता है। यह

कथा के प्रवाह को रोक लेता है। वीर रस प्रधान शिशुपालवध के पूरे 6 सर्गों में शृङ्गार लीलाओं का वर्णन वीर रस को दबोच सा लेता है। काव्य के मध्य भाग को पढ़ने पर पाठक यह समझने लगता है कि यह शृङ्गार का ही काव्य है। वस्तुतः यहाँ शृङ्गार रस वीर रस की चर्वणा में बाधक बन गया है।

प्रबन्ध काव्य में संबन्ध निर्वाह का महत्वपूर्ण स्थान है। इस बात को स्वयं महाकवि माघ भी स्वीकार करते हैं–

**बह्वपि स्वेच्छया कामं प्रकीर्णमभिधीयते।**
**अनुज्झितार्थसम्बन्धः प्रबन्धो दुरुदाहरः॥**[1]

अर्थात् इच्छानुसार बहुत सी असंगत बातें सरलता से कही जा सकती हैं, परन्तु ऐसे प्रबन्ध को कहना कठिन है जिसमें पदार्थों की संगति विच्छिन्न हुई हो।

वस्तुतः मुख्य घटना के साथ प्रासंगिक बातों का वर्णन वहीं तक उचित होता है, जहाँ तक वे प्रासंगिक वर्णन मुख्य घटना को रोचक बनाकर श्रोताओं को भाव-मग्न करके रसानुभूति में सहायक सिद्ध हो सकें। अतः ये वर्णन पाण्डित्य प्रदर्शन के लिए नहीं होने चाहिए और उनका विस्तार भी मुख्य घटना के अनुकूल होना चाहिए अत्यधिक नहीं। माघ का यह अप्रासंगिक वर्णनों का अत्यधिक विस्तार कथा के प्रवाह में बाधक होकर रसानुभूति में भी बाधक बन गया है।

**भावाभिव्यञ्जना और रसाभिव्यक्ति :**

शिशुपालवध का प्रधान रस वीर है। शृङ्गार तथा रौद्रादि रस उसी के अंग बनकर आए हैं। शिशुपालवध के इस वीर रस पूर्ण इतिवृत्त में अप्रासंगिक शृङ्गार लीलाओं के पूरे 6 सर्ग में विस्तृत वर्णन ने वीर रस को दबोच सा लिया है, परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि माघ वीर रस के सफल चित्रकार नहीं है। माघ वीर तथा शृङ्गार दोनों के सफल चित्रकार हैं। यहाँ दिग्दर्शन के लिए कुछ उदाहरण प्रस्तुत कर रहे हैं। वीर रस का उदाहरण–

1. शिशु. 2/73

**आयन्तीनामविरतरयं राजकानीकिनीना-**
**मित्थं सैन्यैः सममलघुभिः श्रीपतेरूर्मिमद्भिः।**
**आसीदोघैर्मुहुरिव महद्वारिधेरापगानां**
**दोलायुद्धं कृतगुरुतरध्वानमौद्धत्यभाजाम्॥**

निरन्तर वेगपूर्वक दौड़ती हुई एवं उद्धत (विपक्षी) राजाओं की सेनाओं का बड़े-बड़े तरङ्गों वाली भगवान् श्रीकृष्ण की सेनाओं के साथ अत्यन्त कोलाहल के साथ इस प्रकार युद्ध होने लगा, जिस प्रकार निरन्तर वेग पूर्वक आगे बढ़ती हुई नदियों का, समुद्र के बड़े-बड़े तरंगों वाले प्रवाहों से गम्भीर ध्वनि के साथ संघात (टक्कर) होता है।

महाकवि माघ ने रावण के साथ वरुण के युद्ध का कैसा सुन्दर चित्रण प्रस्तुत किया है- युद्ध के समय वरुण रावण पर नागपाश फेंकता है, नागपाश रावण की ओर चलता है। उसे देखकर रावण क्रोध से हुंकार करता है तो नागपाश डरकर लौट पड़ता है और वह नागपाश भयभीत होकर वेगपूर्वक प्रहार करने वाले वरुण के गले में जाकर लिपट जाता है।

**रणेषु तस्य प्रहिताः प्रचेतसा**
**सरोषहुंकारपराङ्मुखीकृताः।**
**प्रहर्तुरेवोरगराजरज्जवो**
**जवेन कण्ठं सभयाः प्रपेदिरे॥**[2]

माघ का मन वीर रस से भी अधिक श्रृङ्गार के वर्णन में रमता हुआ प्रतीत होता है। लेकिन उन्होंने संभोग श्रृङ्गार का ही अधिक वर्णन किया है। उनके षड् ऋतुवर्णन, वनविहार, मद्यपान, जलक्रीडा आदि संभोग श्रृङ्गार के उद्दीपन की दृष्टि से ही लिखे गये प्रतीत होते हैं। कहीं-कहीं विप्रलम्भ श्रृङ्गार का भी वर्णन है, उनके श्रृङ्गारिक पदों की स्निग्धता अतिशय मुग्धकारिणी है-

---

1. शिशु. 18/80
2. वही, 1/56

**यां यां प्रियः प्रैक्षत कातराक्षी सा सा ह्रिया नम्रमुखी बभूव।**
**निःशङ्कमन्याः सममाहितेर्ष्यास्तत्रान्तरे जघ्नुरमुं कटाक्षैः॥**[1]

जिस-जिस को प्रिय कृष्ण ने देखा उसने लज्जा से मुख को नीचा कर लिया। इस पर दूसरी युवतियाँ उस प्रियतम कृष्णपर ईर्ष्यावश निर्भय होकर एक साथ अपने कटाक्षों से प्रहार करने लगीं।

और भी देखिये-

**चिररतिपरिखेदप्राप्तिनिद्रासुखानां**
**चरमपि शयित्वा पूर्वमेव प्रबुद्धाः।**
**अपरिचलितगात्राः कुर्वतेन प्रियाण-**
**मशिथिलभुजचक्राश्लेषभेदं तरुण्यः॥**[2]

अर्थात् प्रातःकाल हो गया है। रात्रि की रतिक्रीडा से थककर सोये हुए दम्पतियों में से नायिकायें पहले जाग गयी हैं, परन्तु वे अपने शरीर को इसलिए नहीं हिलाती-डुलाती हैं कि कहीं उनके हाथ के हट जाने से उनके प्रिय की नींद टूट न जाये।

वस्तुतः माघ प्रेम के कवि न होकर प्रेम कला के कवि हैं। वे नायिका के हाव-भाव या नख-शिख वर्णन आदि के द्वारा ही भाव पक्ष की कमी को पूरा करते हुए दृष्टिगोचर होते हैं।

**प्रकृति चित्रण-**

माघ का प्रकृति वर्णन कृत्रिमता से परिपूर्ण है। चतुर्थ सर्ग के प्रकृतिवर्णन में माघ दूर की कल्पना और यमक में फँस गये हैं तो षष्ठ सर्ग के प्रकृतिवर्णन में पूरा सर्ग यमक से भरा है, परन्तु फिर भी षष्ठ सर्ग का प्रकृति वर्णन सरस है। नवम सर्ग का सूर्यास्त वर्णन तथा एकादश सर्ग का प्रभात वर्णन भी अप्रस्तुत विधान से बहुत लदा हुआ है। माघ कि प्रकृति प्रायः उद्दीपन पक्ष की प्रकृति है और वह भी संभोग शृङ्गार की प्रकृति, बीच-बीच में वियोग के चित्र भी आ जाते हैं। माघ का प्रकृति वर्णन मुख्य रूप से तीन प्रकार का है-

1. शिशु. 3/16
2. वही, 11/13

1. यमक वाला प्रकृतिवर्णन
2. श्रृंगारी अप्रस्तुत विधान वाले प्रकृतिवर्णन
3. अन्य अप्रस्तुत विधान वाले प्रकृतिवर्णन

प्रथम प्रकार में आने वाला चतुर्थ सर्ग का प्रकृतिवर्णन अच्छा नहीं कहा जा सकता है, जबकि छठे सर्ग का प्रकृतिवर्णन सुन्दर है। इस छठे सर्ग में दूसरी दो कोटियों के श्रृङ्गार का भी समावेश है। यमक, श्लेष और श्रृंगारी अप्रस्तुत विधान के साथ वर्षा का वर्णन कितना सुन्दर है–

**स्फुरदधीरतडिन्नयना मुहुः प्रियमिवागलितोरुपयोधरा।**
**जलधरावलिरप्रतिपालितस्वसमया समयाञ्जगतीधरम्॥**[1]

चमकती हुई चञ्चल बिजली वाली सघन बादलों से भरी मेघ पंक्ति अपने उचित समय पर ठीक उसी तरह उपस्थित हुई जैसे चञ्चल नेत्रों वाली, पुष्टि यौवन वाली नायिका अपने संकेतित समय पर प्रिय को प्रतीक्षा में न डालती हुई उसके पास में उपस्थित होती है।

माघ के दूसरे ढंग के अप्रस्तुत विधान के प्रकृतिवर्णन एकादश सर्ग में अधिक सुन्दर बन पड़े हैं। प्रातःकालीन सूर्य का बाल रूप में चित्रण कवि के सरस हृदय का परिचायक है।

**उदयशिखरिश्रृङ्गप्राङ्गणेष्वेव रिङ्गन्**
**सकमलमुखहासं वीक्षितः पद्मिनीभिः।**

**विततमृदुकराग्रः शब्दयन्त्या वयोभिः**
**परिपतति दिवोऽङ्के हेलया बालसूर्यः॥**[2]

उदयाञ्चल के शिखर रूपी आंगन में रेंगता हुआ कमलिनियों के द्वारा कमल रूपी मुख के हास्य के साथ देखा गया, कोमल हस्ताग्र बालसूर्य पक्षियों के कलरव के द्वारा बुलाती हुई मातृतुल्य आकाश की गोदी में जा रहा है। इस पद्य में श्लेष, अतिशयोक्ति तथा रूपक का शंकर पाया जाता है। रैवतक से बहने वाली नदियों के वर्णन में कवि

1. शिशु. 6/25
2. वही, 11/47

अपने प्रेमी हृदय का परिचय देता है-

**अपशङ्कमङ्कपरिवर्तनोचिताश्चलिताः पुरः पतिमुपेतुमात्मजाः।**
**अनुरोदितीव करुणेन पत्रिणां विरुतेन वत्सलतयैष निम्नगाः॥**[1]

पहाड़ी नदियाँ कलकल शब्द करती हुई बह रही हैं। ये निडर होकर रैवतक की गोद में लेटा करती हैं अतः वे रैवतक की बेटियाँ हैं। आज वे अपने पति समुद्र से मिलने जा रही हैं। इस प्रकार रैवतक चिड़ियों के करुण स्वर के द्वारा जान पड़ता है कि प्रेम के कारण रो रहा है।

कहना न होगा, माघ के प्रकृतिवर्णन का सौन्दर्य अप्रस्तुत विधान पर ही आधृत है।

## नायक विवेचन

रूपक तथा काव्यों का दूसरा भेदक है नायक। नायक शब्द 'नी' धातु से निष्पन्न है। नायक कथानक को अपने निर्दिष्ट फलागम तक ले चलता है। रामचन्द्र-गुणचन्द्र कृत नाट्यदर्पण के अनुसार प्रधान फल को प्राप्त करने वाला व्यसन (विषयासक्ति अथवा प्राणहानि रूप विपत्ति) से रहित मुख्य नायक होता है।[2]

### नायक के सामान्य गुण-

नायक के सामान्य गुणों का परिगणन आचार्यों द्वारा किया गया है, दशरूपककार धनञ्जय ने नायक को विनीत, मधुर, त्यागी, दक्ष, प्रियंवद, लोकप्रिय, शुचि (पवित्र मन वाला), वाग्मी, कुलीनवंशोत्पन्न, स्थिर, युवा, बुद्धिमान, उत्साही, स्मृतिमान, प्रज्ञावान, कलाशील, मानी, शूर, दृढ़, तेजस्वी, शास्त्रचक्षु तथा धर्मपारयण बताया है।[3]

और इसी प्रकार साहित्यदर्पणकार आचार्य विश्वनाथ ने भी अपने ग्रन्थ में इन्हीं गुणों का उल्लेख किया है।

1. शिशु. 4/47
2. नाट्यदर्पण, 4 विवेक, का. 160, सू. 239
3. दशरूपक, 2/1-2

**त्यागी कृती कुलीनः सुश्रीको रूपयौवनोत्साही।**
**दक्षोऽनुरक्तलोकस्तेजो वैदग्ध्यशीलवान्नेता।।**[1]

**नायक भेद-**

नाट्यशास्त्र तथा नाट्यशास्त्रीय अन्य ग्रन्थों में नायक को चार प्रकार का माना गया है। यह भेद नायक की प्रकृति के आधार पर किया गया है। ये चारों प्रकार के नायक धीर् तो होते ही हैं, धीरत्व के अतिरिक्त इनमें अपनी-अपनी प्रकृतिगत विशेषता पाई जाती है। इन चारों नायकों के और भी उपभेद होते हैं, परन्तु यहाँ उनके वर्णन की आवशकता न समझते हुए हम यहाँ चार प्रकार के नायकों का वर्णन कर रहे हैं-

**धीरोदात्तो धीरोद्धत्तस्तथा धीरललितश्च।**
**धीरप्रशान्त इत्ययमुक्तः प्रथमश्चतुर्भेदः।।**

**धीरोदात्त-**

धीरोदात्त कोटि का नायक महासत्व, अत्यन्त गम्भीर, क्षमाशील, आत्मश्लाघा न करने वाला, अहंकार रहित, दृढ़व्रत तथा न्यायप्रिय होता है।

1. **महासत्त्वोऽतिगम्भीरः क्षमावानविकत्थनः।**
   **स्थिरो निगूढाहङ्कारो धीरोदात्तो दृढव्रतः।।**[2]
2. **अविकत्थनः क्षमावानतिगम्भीरो महासत्वः।**
   **स्थेयान्निगूढमानो धीरोदात्तो दृढव्रतः कथितः।।**[3]
3. **धीरोदात्तोऽतिगम्भीरो न्यायी सत्त्वी क्षमी स्थिरः।।**[4]

**धीरोद्धत्त-**

धीरोद्धत्त नायक दर्प और मात्सर्य से युक्त, मायावी, छद्मपरायण, अहंकारी, चञ्चल, प्रचण्ड क्रोधी और आत्मश्लाघी होता है।

---

1. सा.द.- 3/30
2. दशरूपक, 2/4, 5
3. सा.द.- 3/32
4. नाट्यदर्पण, 1 विवेक, का. 8, सू. 7

**1. दर्पमात्सर्यभूयिष्ठो मायाछद्मपरायणः।**
**धीरोद्धत्तस्त्वहङ्कारी चलश्चण्डो विकत्थनः॥[1]**

**2. मायापरः प्रचण्डश्चपलोऽहंकारदर्पभूयिष्ठः।**
**आत्मश्लाघानिरतो धीरैर्धीरोद्धतः कथितः॥[2]**

**3. धीरोद्धतश्चलश्चण्डो दर्पी दम्भी विकत्थनः॥[3]**

**धीरललित-**

धीरललित नायक निश्चिन्त, कलासक्त और विशेषतया विलासी होता है। धीरललित नायक के योग-क्षेम की चिन्ता उसके मन्त्री आदि के द्वारा की जाती है, अतः वह इस प्रकार की चिन्ताओं से निश्चिन्त रहता है। इस निश्चिन्तता के कारण वह गीत आदि कलाओं का प्रेमी होता है तथा भोग-विलास में रत रहता है, उसमें शृंगार रस की प्रधानता होने के कारण वह सुकुमार आचरण वाला तथा कोमल स्वभाव वाला होता है।

**1. निश्चिन्तो धीरललितः कलासक्तः सुखी मृदुः॥[4]**

**2. निश्चिन्तो मृदुरनिशं कलापरो धीरललितः स्यात्॥[5]**

**3. शृंगारी धीरललितः कलासक्तः सुखी मृदुः॥[6]**

**धीरप्रशान्त-**

विनय आदि नायक के सामान्य गुण जिसमें पाये जाएँ, जो ब्रह्मण, वैश्य या मन्त्री पुत्र हो वह धीरप्रशान्त नायक कहलाता है।

---

1. दशरूपक, 2/5-6
2. सा.द.-3/33
3. नाट्यदर्पण- 1 विवेक, का. 8, सू. 7
4. दशरूपक- 2/3
5. सा.द.- 3/34
6. नाट्यदर्पण- 1 विवेक, का. 8, सू. 7

1. **सामान्यगुणयुक्तस्तु धीशान्तो द्विजादिकः॥**[1]
2. **सामान्यगुणैर्भूयान्द्विजादिको धीरशान्तः स्यात्॥**[2]
3. **धीरशान्तोऽनहङ्कारः कृपालुर्विनयी नयी॥**[3]

**शिशुपालवध में नायक विचार-**

शिशुपालवध में चित्रित श्रीकृष्ण धीरोदात्त कोटि के नायक हैं, जिनमें आचार्यों द्वारा निरूपित प्रायः सभी गुण विद्यमान हैं।[4]

1. **त्यागी कृती कुलीनः सुश्रीको रूपयौवनोत्साही।**
   **दक्षोऽनुरक्तलोकस्तेजो वैदग्ध्यशीलवान्नेता॥**
2. **अविकत्थनः क्षमावानतिगम्भीरो महासत्वः।**
   **स्थेयान्निगूढमानो धीरोदात्तो दृढव्रतः कथितः॥**

**दानवीर-**

**अक्षितारासु विव्याध द्विषतः स तनुत्रिणः।**
**दानेषु स्थूललक्ष्यत्वं न हि तस्य शरासने॥**[5]

श्रीकृष्ण ने अपने बाणों से शत्रुओं की नेत्रों की पुतलियों में प्रहार किया, क्योंकि वे दान करने में स्थूल-लक्ष्य (दानवीर) थे, बाण चलाने में स्थूललक्ष्य नहीं थे। इससे श्रीकृष्ण की युद्धवीरता तथा शर-सन्धान योग्यता का मुख्यरूप से तथा प्रकारान्तर से दानवीरता का भी पता चलता है।

**लक्ष्मीवान्-**

**श्रीयः पतिः श्रीमती शासितुं जगज्जगन्निवसो वसुदेवसद्मनि।**
**वसन्ददर्शावतरन्तमम्बराद्धिरण्यगर्भाङ्गभुवं मुनिं हरिः॥**[6]

---

1. दशरूपक, 2/4
2. सा.द.- 3/34
3. नाट्यदर्पण- 1 विवेक, का. 9, सू. 7
4. दशरूपक, 2-1/2
5. शिशु. 19/99
6. वही, 1/1

लक्ष्मी के पति, जगत् के निवास स्थान, संसार का शासन करने के लिये, समस्त सम्पत्ति से युक्त वसुदेव के घर में निवास करते हुए श्रीकृष्ण ने आकाश से उतरते हुए ब्रह्मपुत्र नारद मुनि को देखा। यहाँ समस्त सम्पत्ति से युक्त पिता के पुत्र होने से श्रीकृष्ण भी समस्त वैभवों के स्वामी होंगे।

**स काञ्चने यत्र मुनेरनुज्ञया नवाम्बुदश्यामवपुर्न्यविक्षत।**
**जिगाय जम्बुजनितश्रियः श्रियं सुमेरुश्रृङ्गस्य तदा तदासनम्।।**[1]

मेघ के समान श्यामशरीर श्रीकृष्ण नारद जी के कहने पर जब 'सुवर्णासन' पर बैठे तब उस आसन से जामुन से शोभायमान सुमेरु पर्वत की चोटी की शोभा को जीत लिया।

**लोगों के अनुराग का पात्र-**

1. **दिदृक्षमाणाः प्रतिरथ्यमीयुर्मुरारिमारादनघं जनौघाः।**
   **अनेकशः संस्तुतमपप्यनल्पा नवं नवं प्रीतिरहो करोति।।**[2]
2. **शैलाधिरोहाभ्यसनाधिकौद्धुरैः पयोधरैरामलकीवनाश्रिताः।**
   **तं पर्वतीयप्रमदश्चचायिरे विकासविस्फारितविभ्रमेक्षणाः।।**[3]
3. **अवलोकनाय सुरविद्विषां द्विषः पटहप्रणादविहितोपहूतयः।**
   **अवधीरितान्यकरणीयसत्वराः पतिरथ्यमीयुरथ पौरयोषितः।।**[4]

श्रीकृष्ण पुरुषों तथा स्त्रियों सभी के प्रिय हैं। जब वे द्वारिकापुरी से इन्द्रप्रस्थ के लिये प्रस्थान करते हैं, तब उनके दर्शन के इच्छुक लोग गलियों में एकत्रित होने लगते हैं। आद्वले के वनों में रहने वाली विलास्युक्त नेत्रों वाली पर्वतनिवसियों की स्त्रियाँ उनको बहुत देर तक देखती रहती हैं तथा श्रीकृष्ण के इन्द्रप्रस्थ नगर में प्रवेश करने के पश्चात् नागरिकों की रमणियाँ श्रीकृष्ण को देखने के लिये अन्य कार्यो

---

1. शिशु.- 1/19
2. वही, 3/31
3. वही, 12/51
4. वही, 13/30

को छोड़कर शीघ्रतापूर्वक मार्गों में आने लगती हैं। इस प्रकार पुरुषों तथा स्त्रियों की चेष्टाएँ श्रीकृष्ण के रक्तलोकत्व की परिचायक हैं।

**रूपयौवन–**

1. **न यावदेतावुदपश्यदुत्थितो जनस्तुषारञ्जनपर्वताविव।**
   **स्वहस्तदत्ते मुनि मानसे मुनिश्चिरन्तनस्तावदभिन्यवीविशत्।।**[1]
2. **महामहानीलशिलारुचः पुरो निषेदिवान् कंसकृषः स विष्टरे।**
   **श्रितोदयाद्रेरभिसायमुच्चकैरचूचुरच्चन्द्रमसोऽभिरामताम्।।**[2]
3. **स इन्द्रनीलस्थलनीलमूर्ती रराज कर्चूरपिशङ्गवासाः।**
   **विसृत्वरैरम्बुरुहां रजोभिर्यमस्वसुश्चित्र इवोदभारः।।**[3]
4. **स काञ्चने यत्र मुनेरनुज्ञया नवम्बुदश्यामवपुर्न्यविक्षत।**
   **जिगाय जम्बूजनितश्रियः श्रियं सुमेरुशृंगस्य तदा तदासनम्।।**[4]
5. **स तप्तकार्तस्वरभास्वराम्बरः कठोरताराधिपलाञ्छनच्छविः।**
   **विदिद्युते वाडवजातवेदसः शिखाभिराश्लिष्ट इवाम्भसां निधिः।।**[5]
6. **प्रफुल्लतापिच्छनिर्भरभीषुभिः शुभैश्च सप्तच्छदपांशुपाण्डुभिः।**
   **परस्परेण च्छुरितामलच्छवी तदैकवर्णाविव तौ बभुवतुः।।**[6]
7. **लोकालोकी कलोऽकल्ककलिलोऽलिकुलालकः।**
   **कालोऽकलोऽकलिः काले कोलकेलिकिलः किल।।**[7]

श्रीकृष्ण की शारीरिक शोभा का वर्णन करते हुए माघ ने उनके श्याम वर्ण तेजस्वी रूप को अति सुन्दर उपमानों द्वारा प्रस्तुत किया है।

---

1. शिशु., 1/15
2. वही, 1/16
3. वही, 3/11
4. वही, 1/19
5. वही, 1/20
6. वही, 1/22
7. वही, 19/98

श्रीकृष्ण अञ्जन पर्वत, इन्द्रनीलमणि की कान्ति, नवीन जल पूर्ण मेघ, पूर्ण चन्द्र, विकसित तमाल पुष्प तथा अतसी पुष्प के समान स्निग्ध श्यामलकान्ति वाले हैं। वे तपायें गये सुवर्ण के समान देदिप्यमान तथा हरिताल (कर्चूर) के समान रङ्ग का सुन्दर पीताम्बर धारण किए हुए हैं और इस प्रकार पीताम्बरधारी श्यामवर्ण श्रीकृष्ण की शोभा फैलाने वाले कमल-परागों से चित्रित यमुना की जलराशि के समान है। उनके केश अलि-कुल के समान काले तथा सुवासित हैं। उनका वक्ष:स्थल कपाट के समान विस्तीर्ण एवं मनोरम है, उनका वक्ष:स्थल उनकी महा-सत्वता का सूचक है। अतः हर प्रकार से श्रीकृष्ण की आकृति अत्यन्त भव्य है।

**वाक्-चातुर्य-**

**गतस्पृहोऽप्यागमनप्रयोजनं वदेति वक्तुं व्यभसीयते यया।**
**तनोति नस्तामुदितात्मगौरवो गुरुस्तवैवागम एष धृष्टताम्।।**[1]

निम्नलिखित कथन में श्रीकृष्ण का वाक्चातुर्य दर्शनीय है- मुने! निस्पृह रहते हुए भी आप अपने आगमन का प्रयोजन कहें- यह कहने के लिए जो धृष्टता मुझे उद्यत कर रही है, मेरी उस धृष्टता को कहने वाला आपका प्रशस्त आगमन ही बढ़ा रहा है। इस प्रकार श्रीकृष्ण अतिकुशलता से देवर्षि के प्रयोजन को पूछते हैं।

**अविकत्थन :-**

1. **तोषमेति वितथैः स्तवैः परस्ते च तस्य सुलभाः शरीरिभिः।**
   **अस्ति न स्तुतिवचनोऽनृतं तव स्तोत्रयोग्य न च तेन तुष्यसि।।**[2]
2. **लज्जते न गदितः प्रियं परो वक्तुरेव भवति त्रपाधिका।**
   **व्रीडमेति न तव प्रियं वदन्ह्रीमतात्रभवतैव भूयते।।**[3]

---

1. शिशु., 1/30
2. वही, 14/3
3. वही, 14/2

3. **प्रकटान्यपि नैपुणं महत्परवाच्यानि चिराय गोपितुम्।**
**विवरीतुमथात्मनो गुणान्भृशमाकौशलाचार्यचेतसाम्।।**[1]

श्रीकृष्ण अपनी प्रशंसा के प्रति सदा उदासीन रहते हैं। सामान्य जन किसी से प्रशंसित होने पर स्वयं लज्जित नहीं होते हैं, चाहे मिथ्या या अधिक प्रशंसा करने के कारण बोलने वाले को ही लज्जा आ जाए, किन्तु श्रीकृष्ण के विषय में यह बात सर्वथा विपरीत है। श्रीकृष्ण के अनन्त गुणों से युक्त होने से उनका प्रशंसक लज्जित न हि होता है, किन्तु वे स्वयं ही लज्जित हो जाते हैं, श्रीकृष्ण कभी आत्मश्लाघा नहीं करते, वे दूसरे लोगों के सर्वविदित दोषों तथा अपने गुणों को छुपाते हैं।

**क्षमावान–**

**विहितागसो मुहुरलङ्घ्यनिजवचनदामसंयतः।**
**तस्य कतिथ इति तत्प्रथमं मनसा समाख्यदपराधमच्युतः।।**[2]

सात्वती नाम की अपनी बुआ से शिशुपाल के सौ अपराधों को क्षमा करने की अपनी प्रतिज्ञा से बंधे हुए श्रीकृष्ण ने शिशुपाल के पहले सहस्त्रों अपराधों को करने पर भी यहाँ किये गये अपराध को उसका पहला अपराध मानकर मन में गिनने लगे।

**अतिगम्भीर–**

**कटुनापि चैद्यवचनेन विकृतिमगमन्न माधवः।**
**सत्यनियतवचसं वचसा सुजनं जनाश्चलयितुं क ईशते।।**[3]

**इति जोषमवस्थितं द्विषः प्रणिधिं गामभिधाय सात्यकिः।**
**वदति स्म वचोऽथ चोदितश्चलितैकभ्रु रथाङ्गपाणिना।।**[4]

---

1. शिशु., 16/30
2. वही, 15/42
3. वही, 15/40
4. वही, 16/16

**प्रतिवाचमदत्त केशवः शपमानाय च चेदिभूभुजे।**
**अनुहुङ्कुरुते घनध्वनिं न हि गोमायुरुतानि केसरी।।**[1]

श्रीकृष्ण उत्तेजनापूर्ण परिस्थितियों में भी अद्भुत तथा अद्वितीय धैर्यशाली हैं। शिशुपाल के द्वारा कौन चञ्चल कर सकता है? शिशुपाल के प्रिय तथा अप्रिय द्वयर्थक वचन का भी श्रीकृष्ण पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता और वे उसे उत्तर नहीं देते, उनके भ्रू के संकेत पर सात्यकि उस दूत को उत्तर देता है, शिशुपाल के कटुवचन सुनकर भी श्रीकृष्ण ने उसे उत्तर क्यों नहीं दिया इसे बहुत सुन्दर ढ़ङ्ग से स्पष्ट करता हुआ सात्य-कि कहता है 'अपशब्द कहते हुए चेदिपति को श्रीकृष्ण ने प्रत्युत्तर नहीं दिया क्योंकि सिंह मेघ के गरजने पर गरजता है, स्यार के बोलने पर नहीं'। इस प्रकार क्रोध तथा महान क्षोभ के कारणों के उपस्थित रहने पर भी श्रीकृष्ण के निर्विकार रहना उनके गाम्भीर्य गुण का परिचायक है।

**विनम्र-**

**पतत्पतङ्गप्रतिमस्तपोनिधिः पुरोऽस्य यावन्न भुवि व्यलीयत।**
**गिरेस्तडित्वानिव तावदुच्चकैर्जवेन पीठादुदतिष्ठदच्युतः।।**[2]

**तमर्घ्यमर्घ्यादिकमादिपूरुषः सपर्यया साधु स पर्यपूपुजत्।**
**गृहानुपैतुं प्रणयादभीप्सवो भवन्ति नापुण्यकृतां मनीषिणः।।**[3]

**विधाय तस्यापचितिं प्रसेदुषः प्रकाममप्रीयत यज्वनां प्रियः।**
**ग्रहीतुमार्यान्परिचर्यया मुहुर्महानुभावा हि नितान्तमर्थिनः।।**[4]

**अशेषतीर्थोपहृताः कमण्डलोर्निधाय पाणावृषिणाऽभ्युदीरिताः।**
**अघौघविध्वंसविधौ पटीयसीर्नतेन मूर्ध्ना हरिरग्रहीदपः।।**[5]

---

1. शिशु., 16/25
2. वही, 1/12
3. वही, 1/14
4. वही, 1/17
5. वही, 1/18

**अवलोक एव नृपतेः स्म दूरतो रभसाद्रथादवतरीतुमिच्छतः।**
**अवतीर्णवान्प्रथममात्मना हरिविनयं विशेषयति संभ्रमेण सः।।**[1]
**वपुषा पुराणपुरुषः पुरःक्षितौ परिपुञ्ज्यमानपृथुहारयष्टिना।**
**भुवनैर्नतोऽपि विहितात्मगौरवः प्रणनाम नाम तनयं पितृष्वसुः।।**[2]
**शिरसि स्म जिघ्रति सुरारि बन्धने छलवामनं विनयवामनं तदा।**
**यशसेव वीर्यविजितामरद्रुम प्रसवेन वासितशिरोरुहे नृपः।।**[3]

श्रीकृष्ण ऋषि, मुनि तथा ब्राह्मण आदि का यथोचित् सत्कार करना अच्छी तरह जानते हैं। देवर्षि नारद के भूमि पर पैर रखने से पहले ही वे उनके स्वागतार्थ अपने आसन से उठ खड़े होते हैं। वे अर्घ्य, पाद्य आदि पूजा सामग्रियों से नारद की विधिवत् पूजा करते हैं। उनकी पूजा करके वे अत्यन्त हर्षित होते हैं, क्योंकि महान् लोग श्रेष्ठ लोगों की पूजा द्वारा बार-बार आराधना करने के लिए अत्यन्त अभिलाषित होते हैं। नारद के कहने पर श्रीकृष्ण का आसन ग्रहण करना श्रद्धा, शिष्टता तथा नम्रता का सूचक है। श्रीकृष्ण अत्यन्त विनयशील हैं, दूर से ही श्रीकृष्ण को देखकर रथ से शीघ्र उतरना चाहते हुए राजा युधिष्ठिर से पहले ही स्वयं रथ से उतरकर श्रीकृष्ण अपने विनय का विस्तार करते हैं। समस्त लोकों से नमस्कृत होते हुए भी श्रीकृष्ण युधिष्ठिर को प्रणाम करते हैं, युधिष्ठिर के समक्ष वे विनय से वामन बने रहते हैं।

**दृढ़व्रती-**

**तीक्ष्णा नारुन्तुदा बुद्धिः कर्मशान्तं प्रतापवत्।**
**नोपतानि मनः सोष्म वागेका वाग्मिनः सतः।।**[4]

सज्जन पुरुष एकबार जो कह देते हैं उसका अन्त तक पालन करते हैं। उद्धव का यह वचन शिशुपाल वध के नायक श्रीकृष्ण के अनेक गुणों का परिचय देने में पूर्ण समर्थ है।

---

1. शिशु., 13/7
2. वही, 13/8
3. वही, 13/12
4. वही, 2/109

**सन्दर्भ-ग्रन्थ-सूची–**


1. आचार्यविश्वेश्वर, **काव्यप्रकाश** (मम्मट), ज्ञान मण्डल लिमिटेड वाराणसी, 2013 ई.
2. शास्त्री, शालिग्राम, **साहित्यदर्पण** (कविराजविश्वनाथकृत), मोतीलाल बनारसीदास, 2004 ई.
3. सं.- सिद्धान्तशिरोमणि, आचार्य विश्वेश्वर, **वक्रोतिजीवितम्** (कुन्तकाचार्य), माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, 1995 ई.
4. सं.- शर्मा, प्रो. योगेश्वरदत्त, **काव्यादर्श** (आचार्दण्डी), नाग पब्लिशर्स, दिल्ली, 1999 ई.
5. सं.- पाठक आचार्य जगन्नाथ, **ध्वन्यालोक** (आनन्दवर्धन), चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी, 2000 ई
6. सं.- चौधरी सत्यदेव, **काव्यालंकार** (रुद्रट), परिमल पब्लिकेशन शक्तिनगर दिल्ली, 1990 ई.
7. हिन्दी व्याख्याकार - डॉ. पारसनाथद्विवेदी, **नाट्यशास्त्र** (भरतमुनि), तृतीय भाग, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी 2001 ई.
8. *यजुर्वेद-अथर्ववेदभाष्यम्* (हिन्दी-भाषानुवादसहित), व्या.पं. बुद्धदेव विद्यालङ्कार, गोविन्दराम हासानन्द, नई दिल्ली : 2008
9. *महाभारत* (श्रीमन्महर्षि वेदव्यासप्रणीत) (सम्पूर्ण, छः भागों में), अनु.-पण्डित रामनारायण शास्त्री पाण्डेय, गोविन्दभवन कार्यालय, गीताप्रेस, गोरखपुर : सं. 5; 2026-2044 वि.सं.
10. *शिशुपालवधमहाकाव्यम् (महाकविमाघप्रणीतम्)*, चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी, 2000 ई.

# शिशुपालवध में गजशास्त्र

- श्री कन्हैया लाल यादव*

हिन्दू दर्शन, नाट्यशास्त्र, अलङ्कारशास्त्र, व्याकरण तथा सङ्गीतादि शास्त्रों के ज्ञाता एवं कवि और पण्डित के अपूर्व समन्वय से प्रत्युत्पन्न प्रतिभा के धनी महाकवि माघ एवं उनकी एकमात्र कृति संस्कृत महाकाव्य युग का ग्रन्थरत्न 'शिशुपालवधम्' बृहत्त्रयी के नाम से समलङ्कृत, जो उनकी कीर्तिकेतु का सारतत्व रूप ही है। जिसमें एक ओर माघ ने कालिदास से भावतरलता, भारवि से कलाप्रवीणता तथा भट्टि से व्याकरण पाण्डित्य, कौटिल्य से राजनीतिक स्वरूप, वेदों के तत्त्वों का सारभाग और दूसरी ओर महाभारत के सभापर्व[1] श्रीमद्भागवत[2] एवं पद्मपुराण[3] की कथाओं के सार भागों का जो प्रयोग कथा को विस्तार प्रदान करने में किया और साथ ही उनका मञ्जुल समन्वय, जो कि इनके महाकाव्य का बृहत्त्रयी में समाविष्ट होने तथा कथावस्तु की कमनीयता एवं कवि की विलक्षण प्रतिभा का भी द्योतक है। यदि काव्यप्रकाशकार आचार्य मम्मट द्वारा प्रतिपादित काव्यप्रयोजनों[4] की दृष्टि से देखा जाय तो विवशता के अनुभव में कहना होगा कि माघ ने तो एकमात्र ग्रन्थ शिशुपालवध के द्वारा प्राप्त कीर्तिलता से काव्य के प्रथम प्रयोजन यश को सार्थक ही नहीं बना रखा अपितु इसका प्रभाव इतना

---

* पूर्व शोधच्छात्र, संस्कृत विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

1. महाभारत, सभापर्व- 33-45
2. श्रीमद्भागवत्- 10/71-75
3. पद्मपुराण- अध्याय- 125
4. काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये।
   सद्यः परनिर्वृत्तये कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे॥ (काव्यप्रकाश)

गूढ़ रहा कि यह ग्रन्थ महाकाव्य एवं माघ संस्कृत महाकाव्य की परम्परा में माघ महाकवि की संज्ञा से अभिहित हो गये। इतना ही नहीं माघ का व्यक्तित्व तो कवि और पण्डित का अपूर्व समन्वय ही है। पाण्डित्य में माघ निश्चित रूप से कालिदास, भारवि, भट्टि और श्रीहर्ष से अधिक उत्कृष्ट प्रतीत होते हैं। जहाँ कालिदास मूलतः कवि, भारवि राजनीति के व्यावहारिक ज्ञाता, भट्टि वैयाकरण और श्रीहर्ष दार्शनिक हैं, किन्तु माघ सर्वतंत्र-स्वतन्त्र पाण्डित्य के धनी और व्याकरण, राजनीति, सांख्य-योग, बौद्ध दर्शन, वेद-पुराण, अलङ्कारशास्त्र, कामशास्त्र, सङ्गीत के साथ ही अश्वविद्या तथा हस्तिविद्या के तो एकमात्र अयन ही हैं। महाकवि माघ ने अपनी सूक्ष्म दृष्टि द्वारा गजों एवं अश्वों के स्वाभाविक क्रियाकलापों के साथ ही उनके शास्त्रीय लक्षणों का समावेश जो अपने महाकाव्य में किया है वह उच्चकोटि की कवि प्रतिभा का ही द्योतक है।

शिशुपालबध में महाकवि माघ श्रीकृष्ण द्वारा रैवतक पर्वत पर निवास करने के प्रसङ्ग में हाथी के द्वारा अपने शरीर को सिंचित करने के क्रियाकलापों का वर्णन करते हुए कहते हैं कि जिस हाथी के मार्ग चलने के श्रम से दीर्घ निःश्वास लेने पर उसके सूँढ़ से निकली जल फुहारें उसके शरीर पर पड़कर शीतलता का आनन्द प्रदान करती हैं।[1] महाकवि हाथी के भ्रम का स्वाभाविक चित्र प्रस्तुत करते हैं कि- जब विशाल गजराज सरोवर की उच्छृङ्खल तरङ्गों में प्रतिबिम्बित अपने अङ्ग-प्रत्यङ्ग को ही निहारता है तो उसे ऐसा प्रतीत होता है कि कोई अन्य गजराज के द्वारा उसके ऊपर आक्रमण किया जा सकता है जो प्रतीकार में वह निःशङ्क होकर क्रोध से दौड़ने लगता है।[2] गजशास्त्र में

---

1. आलोलपुष्करमुखोल्लसितैरभीक्ष्णमुक्षांबभूवुरभितो वपुरम्बुवर्षैः।
   खेदायतश्वसितवेगनिरस्तमुग्धमूर्धन्यरत्ननिकरैरिव हास्तिकानि॥
   (शिशु. 5/30)
2. आत्मानमेव जलधेः प्रतिबिम्बिताङ्गमूर्मौ महत्यभिमुखापतितं निरीक्ष्य।
   क्रोधादधावदपभीरभिहन्तुमन्यनागाभियुक्त इव युक्तमहो महेभः॥
   (शिशु. 5/32)

हाथी के द्वारा मदजल स्रावित होने के सात स्थलों में हाथी दोनों नेत्र, दोनों कपोल, सूँड, मूत्रेन्द्रिय तथा मलेन्द्रिय का उल्लेख है।[1] शिशुपालवध के सत्रहवें सर्ग में महाकवि माघ द्वारा युद्ध के वर्णन में गजों द्वारा मदजल स्रावित स्थलों के विषय में उपन्यस्त प्रसङ्ग गजशास्त्रोक्त लक्षण का ही अनुकरण करना प्रतीत होता है कि अपने सातों स्थानों से मद बहाते हुए सेना के गजराजों ने अपने नीचे की धूलि-राशि को तो शान्त कर दिया, किन्तु उनके ऊपर धूलि-जाल पूर्ववत् बना रहा, जो उनके ऊपर ठीक उसी प्रकार सुशोभित हो रहा था जैसे कपड़े के तने तम्बुओं से कोई मैदान सुशोभित होता है[2] और हाथी के द्वारा निस्सृत मद जल के स्वाद एवं दूसरे हाथी पर पड़ने वाले उसके प्रभाव का वर्णन माघ इस प्रकार करते हैं- मदमत्त गजराज का मदजल गन्धयुक्त होने के साथ ही कटु, तिक्त और कषायपूर्ण होता है, परिणामतः परित्यक्त योग्य होने पर भी जब वह जल में मिश्रित हो जाता है तो उस मदमिश्रित जल में जलक्रीड़ा करता हुआ अन्य कोई हाथी उसकी गन्ध को सहन नहीं करता[3] और मदजल की गन्ध से युक्त जल को ग्रहण करने में अनिच्छुक किन्तु क्रोध एवं प्यास से व्याकुल होने के कारण जल के त्यागने में भी अनिच्छुक वह हाथी अपने हाथिवान् के अंकुश की परवाह न करते हुए उस नदी के घाट को इस प्रकार आक्रान्त कर लेता है कि जल के निमित्त आये लोग उस क्रुद्ध हाथी से भयभीत होकर अपने खाली बर्तनों को लेकर किंकर्त्तव्यविमूढ़ की भाँति खड़े ही रह जाते हैं[4] और उस मदगन्ध से क्रोधान्ध हाथी अपने मुखस्थ जल को

---

1. चाक्षुषी च कपोलौ च करो मेत्रढं गुदस्तथा।
   सप्तस्थानानि मातंगमदस्य स्तुतिहेतवः॥ (गजशास्त्र)
2. मदाम्भसा परिगलितेन सप्तधा गजाञ्जनः शमितरजश्चयानधः।
   उपर्यवस्थितघनपांशुमण्डलानलोकयत्ततपटमण्डपानिव॥ (शिशु. 17/68)
3. कटुतिक्त कषायास्तु सौरभ्येऽपि प्रकीर्तिताः। (शिशु. 5/33, माल्लिनाथ)
4. नादातुमन्यकरिमुक्तमदाम्बुतिक्तं धूताङ्कुशेन न विहातुमपीच्छताम्भः।
   रुद्धे गजेन सरितः सरूषावतारे रिक्तोमदपात्रकरमास्त चिरं जनौघः॥
   (शिशु. 5/33)

फेंककर नदी के तट पर दांतों के मध्यवर्ती स्थूल भाग से मूसल के समान दोनों दांतों के प्रहार करने के वेग का कोई अवरोधक न होने के कारण स्वयं ही गिर पड़त है[1] और वह क्रोधान्ध गजराज क्रोध के समय शिशुपाल के स्वरूप को धारण कर रखा था, जिस प्रकार शिशुपाल क्रोध से आँसू बहाता हुआ अत्यन्त रोष की गर्मी से उत्पन्न उसका पसीना उसके विशाल कपोल स्थलों को भिगो रहा था एवं उसके विकराल हाथों से पसीने की बूँदें टपक रही थीं ठीक उसी प्रकार क्रोधान्ध हाथी के नेत्र, कपोल तथा शुण्ड-दण्ड पर से मदजल स्रावित हो रहे थे।[2] क्रोधित मदान्ध गजराज को रोकने हेतु महावत अपने तीक्ष्ण अंकुश से गजराज के कान के समीप आघात किये जाने से रक्त स्रावित होने पर भी उस गजराज को अपने वश में नहीं कर सका[3] तथा समीप आने वाली हाथिनियों के पीछे-पीछे चलने के इच्छुक मदान्ध गजराज महावत की कोई परवाह न कर अंकुश के लगने से अपने सिर को तिरछा किये हुए अपने सूँड़ को आगे फैलाकर बहुत धीरे-धीरे चल रहा था[4] अर्थात् उस गजराज पर तीक्ष्ण अंकुश का भी कोई प्रभाव नहीं पड़ा। जैसा कि गजशास्त्र में हाथियों की नस्लों को बताते हुए कहा गया है कि- "भद्रोन्मदो मृगश्चैव विज्ञेयास्त्रिविधा गजाः।" अर्थात् गजशास्त्र के अनुसार हाथी के तीन प्रकार हैं। इनमें से गम्भीर भेदी गज के लक्षण में बताया

---

1. गण्डूषमुज्झितवता पयसः सरोषं नागेन लब्धपरवारणमारुतेन।
   अम्भोधिरोधसि पृथुप्रतिमानभागरुद्धोरुदन्तमुसलप्रसरं निपेते॥
   (शिशु. 5/36)
2. स वमनरुषाश्रु घनघर्मविगलदुरुगण्डमण्डलः।
   स्वेदजलकणकरालकरो व्यरुचत्प्रभिन्न इव कुञ्जरास्त्रिधा॥ (शिशु. 15/4)
3. प्रत्यन्यदन्ति निशिताङ्कुशदूरभिन्ननिर्याणनिर्यदसृजं चलितं निषादी।
   रोद्धुं महेभमपरिव्रढिमानमागादाक्रान्तितो न वशमेति महान् परस्य॥ (शिशु. 5/41)
4. अन्वेतुकामोऽवमताङ्कुशग्रहास्तिरोगतं साङ्कुशमुद्वहञ्शिरः।
   स्थूलोच्चयेनागमदन्तिकागतां गजोऽग्रयाताग्रकरः करेणुकाम्॥
   (शिशु. 12/16)

गया है कि– 'जो हाथी मारने से चमड़ा छूट जाने, रक्त निकल जाने तथा मांस बाहर हो जाने पर भी अपने को नहीं जानता, सम्हालता या नहीं मानता, उस मतवाले हाथी को गम्भीरवेदी हाथी कहते हैं[1] और मृगचर्मीयशास्त्र में लिखा है'– 'जो हाथी चिरपरिचित शिक्षा को भी बहुत विलम्ब से ग्रहण करता है, उस हाथी को गम्भीरवेदी कहते हैं।[2] इस प्रकार शिशुपालबध में वर्णित उपरोक्त प्रसङ्ग इसी गज भेद गम्भीरवेदी गज का ही अनुकरण करता है, इसके अतिरिक्त शिशुपालवध के पाँचवें सर्ग में ही इसी मन्द गम्भीरवेदी हाथी के वर्णन में कहा गया है कि – गम्भीरवेदी गज क्रुद्ध महावत द्वारा अत्यन्त निष्ठुरता पूर्वक चाबुक लगाये जाने पर भी आँखें मूंदकर खड़ा ही रहा और उसने ग्रास को भी ग्रहण नहीं किया[3], इतना ही नहीं वह अपने आगे पड़े हुए ईख के टुकड़ों को भी नहीं ग्रहण किया और अपने समीप में आयी हुई हथिनि की ओर जाने की भी अपेक्षा नहीं किया, किन्तु दोनों आंखों को मूँदकर अपने वनवासकालिक स्वेच्छाविहार के समय अपनी सूँड से वस्त्र के समान नीले सेवारों को दूर हटाकर समुद्र की पत्नियों अर्थात् नदियों को पङ्किल कर देने के पश्चात् कंधे तक गहरे यमुना जल में उपेक्षा के साथ प्रविष्ट होकर शीघ्र ही निरन्तर निस्सृत होने वाले अपने मदजल से बढ़े हुए यमुना के अथाह जल को तैरकर पार करने के[4] महान् आनन्द का ही स्मरण करता रहा।[5]' बारहवें सर्ग में उच्चकाय कोटि के पर्वतारोही

---

1. त्वम्भेदाच्छोणितस्तावान्मासस्य च्यवनादपि।
   आत्मानं यो न जानाति तस्य गम्भीरवेदिता॥ (राजपुत्रीये/गजशास्त्र)
2. चिरकालेन यो वेत्ति शिक्षां परिचितामपि।
   गम्भीरवेदी विज्ञेयः स गजो गजवेदिभिः॥ (मृगचर्मीयशास्त्र)
3. जज्ञे जनैर्मुकुलिताक्षमनाददाने संरब्धहस्तिपकनिष्ठुरचोदनाभिः।
   गम्भीरवेदिनि पुरः कवलं करीन्द्रे मन्दोऽपि नाम न महानवगृह्य साध्यः॥ (शिशु. 5/49)
4. तत्पूर्वमंसयसं द्विपाधिपाः क्षणं सहेलाः परितो जगाहिरे।
   सद्यस्ततस्तेरुरनारतस्रुतस्वदानवारिप्रचुरीकृतं पयः॥ (शिशु. 12/72)
5. क्षिप्तं पुरो न जगृहे मुहुरिक्षुकाण्डं नापेक्षते स्म निकटोपगतां करेणुम्।
   सस्मार वारणपतिः परिमीलिताक्षमिच्छाविहारवनवासमहोत्सवानाम्॥ (शिशु. 5/50)

बलशाली हाथी का वर्णन श्रीकृष्ण द्वारा दृष्टिगोचर होने के प्रसङ्ग में प्राप्त होता है कि चूते हुए मदजल के कणों से युक्त, मेघमालाओं के समान कान्ति वाले विशाल दांतों से सुशोभित एवं उच्चकाय कोटि वाले गजराज ने सैनिकों का मार्ग जिस प्रकार से रोक दिया था, उस प्रकार से कोई पर्वत भी उनका मार्ग अब तक नहीं रोक सका था[1] और वे मार्ग में चारों ओर के वृक्षों को तोड़ डाला और चमकती हुई सेना की पताका-रूपी वनपंक्तियों से सभी दिशाओं को व्याप्त कर दिया, अपने बल से पर्वत के शिखरों के पृष्ठभाग को पीस डाला तथा चलते हुए अपने शरीर-रूपी पर्वतों सारी भूमि को एकदम दुर्गम बना दिया।[2] भगवान् श्रीकृष्ण ने पर्वतों पर चढ़ती हुई सैकड़ों से अधिक हाथियों की पंक्तिंयों को, समीपवर्ती पर्वत की घाटियों से मानों वायु के बवंडर के कारण प्रतिकूल दिशा अर्थात् नीचे से ऊपर जाती हुई स्थूल शिलाओं के समान देखा।[3]

भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा बलवान् कुबलयापीड हाथी के बध किये जाने का प्रसङ्ग पन्द्रहवें सर्ग में उल्लिखित है कि भगवान् श्रीकृष्ण ने उस महाबलवान् कुबलयापीड हाथी का, मूसल के समान मोटे दाँतों को अपने हाथों से ऊखाड़ कर जो वध कर डाला, वह तो सचमुच बलवानों के लिये भी आश्चर्य की बात है।[4] शिशुपालवध में उच्चकाय एवं

---

1. श्च्योतन्मदाम्भःकणकेन केनचिज्जनस्य जीमूतकदम्बकद्युता।
   नगेन नागेन गरीयसोच्चकैररोधि पन्थाः पृथुदन्तशालिना॥ (शिशु. 12/48)
2. भग्नद्रुमाश्चक्रुरितस्ततो दिशः समुल्लसत्केतनकाननाकुलाः।
   पिष्टाद्रिपृष्ठास्तरसा च दन्तिनश्चलन्निजाङ्गाचलदुर्गमा भुवः॥ (शिशु. 12/49)
3. आलोकयामास हरिर्महीधरानधिश्रयन्तीर्गजताः परःशताः।
   उत्पातवातप्रतिकुलपातिनीरुपत्यकाभ्यो बृहतीः शिला इव॥ (शिशु. 12/50)
4. अमुना करेण पृथुदन्तमुसलमुदखानि दन्तिनः।
   तेन यदवधि स एव पुनर्बलशालिनां क इव तत्र विस्मयः॥ (शिशु. 15/30)

कुबलयापीड़ नामक हाथियों के उपरोक्त वर्णन हाथियों के बलशाली होने का ही द्योतक है। जैसा कि गजशास्त्र में भी कहा गया है कि एक ही क्रुद्ध हाथी छः सहस्त्र घोड़ों को मार डालता है।[1] इसके अतिरिक्त शिशुपालवध में कई अन्य ऐसे प्रसङ्ग प्राप्त होते हैं जिनके द्वारा हाथियों के बलशाली होने का प्रमाण प्राप्त होता है, जैसा कि पाँचवें सर्ग में श्रीकृष्ण द्वारा रैवतक पर्वत के प्रस्थान के समय मार्ग के वर्णन में कहा गया है कि- मार्ग में चलते हुए हाथियों से डरे ऊँटों के उछल-कूद करने से उनके पीठ का बोझ गिर गया।[2] और इन्हीं से डरे हुए गर्दभ भी कुछ इसी प्रकार से क्रियाओं में संलग्न हो गये।[3]

गजशास्त्र के सिद्धान्त के अनुसार हाथियों की पूर्ण आयु 120 वर्ष होती है तथा इसमें 12 दशायें होती हैं। इनमें से चतुर्थी दशा वाले हाथी की अवस्था 40 वर्ष तक होती है। शिशुपालवध में युद्ध वर्णन के प्रसङ्ग में माघ इसी चतुर्थी दशा वाले हाथी का वर्णन किया है कि- सघन कवच वाले, पृष्ठवंश से सटाकर बांधे गये रस्से वाले शरीर सम्बन्धी चौथी शोभा को प्राप्त अर्थात् चालीस वर्ष की अवस्था वाले हाथी, प्रलयकाल में वायु में संचालित पर्वतों के बड़े-बड़े चट्टानों के समान चल पड़े।[4] इससे यह प्रतीत होता है कि हाथी 40 वर्ष की उम्र में युवावस्था में आता है। तब उसके अङ्ग प्रत्यङ्ग का विकास होता है। अतः उसकी गति भी बहुत तीव्र रहती है।

---

1. एकः क्रुद्धो गजो हन्तिं षट्सहस्त्राणि वाजिनाम्। (गजशास्त्र)
2. आरक्षमग्नमवमत्य सृणिं शिताग्रमेकः पलायत जवेन कृतार्तनादः।
   अन्यः पुनर्मुहुरुदप्लवतास्तभारमन्योन्यतः पथि बताबिभितामिभोष्ट्रौ (शिशु. 5/5)
3. त्रस्तः समस्तजनहासकरः करेणोस्तावत्खरः प्रखरमुल्ललयाञ्चकार।
   यावच्चलासनविलोलनितम्बबिम्बविस्रस्तवस्त्रमवरोधवधूः पपात॥ (शिशु. 5/7)
4. सान्द्रत्वक्कास्तल्पलाश्लिष्टकक्षा अङ्गीं शोभामाप्नुवन्तश्चतुर्थीम्।
   कल्पस्यान्ते मारूतेनोपनुन्नाश्चेलुश्चण्डं गण्डशैला इवेमाः॥ (शिशु. 18/6)

गजशास्त्र में हाथियों की बोली को चिंघाड़ (बृहती) कहा गया है जिसका प्रयोग शिशुपालवध में माघ ने भी कई स्थलों पर किया है कि युद्ध में हाथियों के मुख से जो चिंघाड़ की ध्वनि निकल रही थी वह रथ के चक्कों से निकली आवाज के समान थी[1]। एक और स्थान पर उल्लिखित है कि समीपस्थ हाथी के सूँ-सूँ शब्दों से डरे हुए खच्चरों ने घबराये हुए सारथि के हाथों से लगाम को छुड़ाकर रथों को तोड़ डाले।[2] रैवतक वर्णन के प्रसङ्ग में माघ ने कहा है कि इस रैवतक पर्वत पर सुप्रसन्न हाथियों के बच्चे प्रत्येक दिशा में सुमधुर किन्तु भीषण चीत्कार करते हैं।[3] इससे यह स्पष्ट होता है कि हाथी रथ के चक्कों से निकली आवाज के समान, सूँ-सूँ, भीषण चीत्कार रूपी शब्द करते हैं।

इस प्रकार माघ की वैदुष्यपूर्ण शास्त्रीय ज्ञान जो कि इनके पूरे महाकाव्य में इस प्रकार व्याप्त है, जिससे ऐसा प्रतीत होता है कि माघ को रंच मात्र भी उनके व्याकरण, दर्शन आदि ज्ञान गजशास्त्र सम्बन्धी ज्ञान तो उत्कृष्ट कोटि का ही है।

---

1. मन्द्रैर्गजानां रथमण्डलस्वनैर्निजुह्नवे तादृशमेव बृंहितम्।
   तारेर्बभूवे परभागलाभतः परिस्फुटैस्तेषु तुरङ्गहेषितैः॥ (शिशु. 12/15)
2. त्रस्तौ समासन्नकरेणुसूत्कृतान्नियन्तरि व्याकुलमुक्तरज्जुके।
   क्षिप्तावरोधाङ्गनमुत्पथेन गां विलङ्घ्य लघ्वीं करभौ बभञ्जतुः॥ (शिशु. 12/24)
3. इह मुहुर्मुदितैः कलभैः रवः प्रतिदिशं क्रियते कलभैरवः।
   स्फुरति चानुवनं चमरीचयः कनकरत्नभुवां च मरीचयः॥ (शिशु. 4/60)

शोध-प्रकाशन विभाग
श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय
(केन्द्रीय विश्वविद्यालय)
बी-4, कुतुब सांस्थानिक क्षेत्र, नई दिल्ली-110016